ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अष्टपाहुड़ प्रवचन

भाग-४

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री अष्टपाहुड़(भावपाहुड़, गाथा १-९२) पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण :

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीर परमात्मा का वर्तमान शासन प्रवर्त रहा है। आपश्री की दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित मोक्षमार्ग, परम्परा हुए अनेक आचार्य भगवन्तों द्वारा आज भी विद्यमान है। श्री गौतम गणधर के बाद अनेक आचार्य हुए, उनमें श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव का स्थान श्री महावीरस्वामी, श्री गौतम गणधर के पश्चात् तीसरे स्थान पर आता है, यह जगत विदित है।

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् ४९ के लगभग हुए हैं। आपश्री ने स्वयं की ऋद्धि द्वारा वर्तमान विदेहक्षेत्र में प्रत्यक्ष विराजमान श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में आठ दिन रहकर दिव्यदेशना ग्रहण की है, वहाँ से आकर उन्होंने अनेक महान परमागमों की रचना की। उनमें अष्टप्राभृत ग्रन्थ का भी समावेश होता है। आचार्य भगवन्त की पवित्र परिणति के दर्शन उनकी प्रत्येक कृतियों में होते हैं। भव्य जीवों के प्रति निष्कारण करुणा करके उन्होंने मोक्षमार्ग का अन्तर-बाह्यस्वरूप स्पष्ट किया है। आचार्य भगवन्त ने मोक्षमार्ग को टिका रखा है, यह कथन वस्तुतः सत्य प्रतीत होता है।

चतुर्थ गुणस्थान से चौदह गुणस्थानपर्यन्त अन्तरंग मोक्षमार्ग के साथ भूमिकानुसार वर्तते विकल्प की मर्यादा कैसी और कितनी होती है वह आपश्री ने स्पष्ट किया है। इस प्रकार निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप स्पष्ट करके अनेक प्रकार के विपरीत अभिप्रायों में से मुमुक्षु जीवों को उभारा है। अष्टप्राभृत ग्रन्थ में मुख्यरूप से निर्ग्रन्थ मुनिदशा कैसी होती है और साथ में कितनी मर्यादा में उस गुणस्थान में विकल्प की स्थिति होती है, यह स्पष्ट किया है।

वर्तमान दिगम्बर साहित्य तो था ही परन्तु साहित्य में निहित मोक्षमार्ग का स्वरूप यदि इस काल में किसी दिव्यशक्ति धारक महापुरुष ने प्रकाशित किया हो तो वे हैं परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी। पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की दिव्य श्रुतलब्धि द्वारा समाज में निर्भीकता से उद्घाटित किया है। शास्त्र में मोक्षमार्ग का रहस्य तो प्ररूपित था ही परन्तु इस काल के अचम्भा समान पूज्य गुरुदेवश्री की अतिशय भगवती प्रज्ञा ने उस रहस्य को स्पष्ट किया है। पूज्य गुरुदेवश्री का असीम उपकार आज तो गाया ही जाता है किन्तु पंचम काल के अन्त तक गाया जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा अनेक परमागमों पर विस्तृत प्रवचन हुए हैं। उनमें अष्टपाहुड़ का भी समावेश होता है। प्रस्तुत प्रवचन शब्दशः प्रकाशित हों, ऐसी भावना मुमुक्षु समाज में से व्यक्त होने से श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुम्बई द्वारा इन प्रवचनों का अक्षरशः प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार किया गया तद्नुसार ये प्रवचन लगभग सात भाग में प्रकाशित होंगे। इस चतुर्थ भाग में **भावपाहुड़** की 92 गाथाओं के प्रवचनों का समावेश है।

भावपाहुड़ में, अनादिकाल से परिभ्रमण करता जीव, जो अनन्त दु:ख सहन करता है, उसका हृदयस्पर्शी वर्णन इस प्राभृत में किया गया है। तथा इन दु:खों से छूटने के लिये शुद्धभावरूप परिणमन करके भावलिंगी मुनिदशा प्रगट करने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है, इसका स्पष्टरूप से वर्णन किया गया है। परिभ्रमण के दु:खों से छूटने के लिये शुद्धभाव से शून्य द्रव्यमुनिलिंग अकार्यकारी है, ऐसा स्पष्टरूप से दर्शाया है। यह प्राभृत अति वैराग्यप्रेरक और भाववाही है। तथा शुद्धभाव प्रगट करनेवाले सम्यक् पुरुषार्थ के प्रति जीव को जागृत करनेवाला है।

उपरोक्त विषयों की सम्पूर्ण छनावट पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक पहलुओं से प्रस्तुत प्रवचनों में की है। आचार्य भगवान के हृदय में प्रविष्ट होकर उनके भावों को खोलने की अलौकिक सामर्थ्य के दर्शन पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में होते हैं। सम्यक्त्वसहित चारित्र का स्वरूप कैसा होता है, इसका विशद वर्णन प्रस्तुत प्रवचनों में हुआ है।

इन प्रवचनों को सी.डी. में से सुनकर गुजराती भाषा में शब्दश: तैयार करने का कार्य नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा किया गया है, तत्पश्चात् इन प्रवचनों को श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा जाँचा गया है। बहुत प्रवचन बैटरीवाले होने से जहाँ आवाज बराबर सुनायी नहीं दी, वहाँ .... करके छोड़ दिया गया है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कोष्ठक का भी प्रयोग किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज में भी इन प्रवचनों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रवचनों को पुस्तकारूढ़ करने में जागृतिपूर्वक सावधानी रखी गयी तथापि कहीं क्षति रह गयी हो तो पाठकवर्ग से प्रार्थना है कि वे हमें अवश्य सूचित करें। जिनवाणी का कार्य अति गम्भीर है, इसलिए कहीं प्रमादवश क्षति रह गयी हो तो देव-गुरु-शास्त्र की विनम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में तथा प्रशममूर्ति भगवती माता के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन समर्पित करते हुए भावना भाते हैं कि आपश्री की दिव्यदेशना जयवन्त वर्तो.. जयवन्त वर्तो..

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर रखा गया है।

अन्तत: प्रस्तुत प्रवचनों के स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षु जीव आत्महित की साधना करें इसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
१०४	०३-१०-१९७०	१ - २	००१
१०५	०४-१०-१९७०	२	०२४
१०६	०५-१०-१९७०	२ से ४	०४३
१०७-बी	११-०१-१९७४	३ से ५	०६२
१०७-ए	१२-०१-१९७४	६ से ८	०७७
१०८	१३-०१-१९७४	९ से १२	०९२
१०९	१५-०१-१९७४	१३ से १८	१०८
११०	१६-०१-१९७४	१९ से २७	१२९
१११	१७-०१-१९७४	२५ से ३१	१५०
११२	१८-०१-१९७४	३२ से ३४	१६७
११३	१३-१०-१९७०	३७ से ४४	१८७
११४	१५-१०-१९७०	४५ से ५१	२११
११५	१६-१०-१९७०	५२ से ५५	२३७
११६	१७-१०-१९७०	५६ से ५८	२५९
११७	२२-०१-१९७४	५८ - ५९	२७८
११८	२४-०१-१९७४	५९ से ६२	२९३
११९-ए	२५-०१-१९७४	६२ से ६४	३११
११९-बी	२६-०१-१९७४	६४ से ६७	३२६
१२०	२१-०१-१९७०	६६ से ६९	३४३
१२१	२३-१०-१९७०	६९ से ७२	३६१
१२२	२४-१०-१९७०	७३ से ७७	३८२
१२३	२५-१०-१९७०	७८ से ७९	४०३
१२४	२६-१०-१९७०	७९ से ८२	४२२
१२५	२७-१०-१९७०	८३ से ८६	४४२
१२६	२८-१०-१९७०	८६ - ८७	४६१
१२७	३०-१०-१९७०	८८ - ८९	४८०
१२८	०१-११-१९७०	९० से ९२	४९९

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ प्रवचन

(श्रीमद् भगवत कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

(भाग - ४)

भावपाहुड़

गाथा-३-४

आगे भावपाहुड की वचनिका लिखते हैं –

(दोहा)

परमातमकूं वंदिकरि शुद्धभावकरतार।
करूं भावपाहुडतणीं देशवचनिका सार।।१।।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत भावपाहुड गाथाबंध की देशभाषामय वचनिका लिखते हैं। प्रथम आचार्य इष्ट के नमस्काररूप मंगल करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा का सूत्र कहते हैं –

णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा।।१।।

नमस्कृत्य जिनवरेन्द्रान् नरसुरभवनेन्द्रवंदितान् सिद्धान्।
वक्ष्यामि भावप्राभृतमवशेषान् संयतान् शिरसा।।१।।

सुर–असुर–नर–पति–वंद्य तीर्थंकर सुसिद्ध समूह वा।
अवशेष संयत शिर झुका नम भाव पाहुड़ कहूँगा।।१।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि मैं भावपाहुड नामक ग्रन्थ को कहूँगा। पहिले क्या करके? जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकर परमदेव तथा सिद्ध अर्थात् अष्टकर्म का नाश करके सिद्धपद को प्राप्त हुए और अवशेष संयत अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु इस प्रकार पंच परमेष्ठी को मस्तक से वन्दना करके कहूँगा। कैसे हैं पंच परमेष्ठी? नर अर्थात् मनुष्य, सुर अर्थात् स्वर्गवासी देव, भवनेन्द्र अर्थात् पातालवासी देव, इन सबके इन्द्रों द्वारा वन्दने योग्य हैं।

भावार्थ – आचार्य 'भावपाहुड' ग्रन्थ बनाते हैं, वह भावप्रधान पंच परमेष्ठी हैं, उनको आदि में नमस्कार युक्त है, क्योंकि जिनवरेन्द्र इस प्रकार हैं–जिन अर्थात् गुणश्रेणी निर्जरायुक्त इस प्रकार के अविरतसम्यग्दृष्टि आदिकों में वर अर्थात् श्रेष्ठ ऐसे गणधरादिकों में इन्द्र तीर्थंकर परमदेव हैं, वह गुणश्रेणीनिर्जरा शुद्धभाव से ही होती है। वे तीर्थंकरभाव के फल को प्राप्त हुए, घातिकर्म का नाशकर केवलज्ञान को प्राप्त किया, उसी प्रकार सर्वकर्मों का नाशकर, परम शुद्धभाव को प्राप्त कर सिद्ध हुए, आचार्य, उपाध्याय शुद्धभाव के एकदेश को प्राप्त कर पूर्णता को स्वयं साधते हैं तथा अन्य को शुद्धभाव की दीक्षा–शिक्षा देते हैं, इसी प्रकार साधु हैं, वे ही शुद्धभाव को स्वयं साधते हैं और शुद्धभाव की ही महिमा से तीन लोक के प्राणियों द्वारा पूजने योग्य–वन्दने योग्य कहे हैं, इसलिए 'भावप्राभृत' की आदि में इनको नमस्कार युक्त है। मस्तक द्वारा नमस्कार करने में सब अंग आ गये, क्योंकि मस्तक सब अंगों में उत्तम है। स्वयं नमस्कार किया तब अपने भावपूर्वक ही हुआ तब 'मन–वचन–काय' तीनों ही आ गये, इस प्रकार जानना चाहिए।।१।।

प्रवचन-१०४, गाथा-१-२, शनिवार, असोज शुक्ल ३, दिनांक ०३-१०-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। पहली गाथा। १६५ गाथा है। आठ पाहुड़ में भावपाहुड़ बड़ा है। १६५ गाथा है। उसमें पहली गाथा। आगे भावपाहुड की वचनिका लिखते हैं–

परमातमकूं वंदिकरि शुद्धभावकरतार।
करूं भावपाहुडतणीं देशवचनिका सार।।१।।

जयचन्द्र पण्डित चलती भाषा में देशवचनिका लिखते हैं। उसमें पहले मांगलिक करते हैं। **'परमातमकूं वंदिकरि'** परमात्मा अरिहन्तादि सिद्ध, उसको वन्दन करके **'शुद्धभावकरतार'** भावपाहुड़ है न? शुद्धभाव के परिणमन करनेवाले भगवान, उसको मैं भावपाहुड़ की आदि में नमस्कार करता हूँ। **'शुद्धभावकरतार'** अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य आत्मदल, उसका सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वह शुद्धभाव है। उसको करनेवाले अरिहन्त परमात्मा हैं। शुद्धभाव कर्ता। भावपाहुड़ है न? शुद्धभाव की प्रधानता से वहाँ कथन आयेगा। जो आत्मा के आश्रय से पवित्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हुआ) वह शुद्धभाव है। पुण्य-पाप भाव है, वह अशुद्धभाव है। अशुद्धभाव बन्ध का कारण है और शुद्धभाव मोक्ष का कारण है। कहते हैं कि शुद्धभाव को करनेवाले परमात्मा और कहनेवाले। करनेवाले हैं और कहनेवाले, दोनों शुद्धभाव ... **'करूं भावपाहुडतणीं'** भावप्राभृत, भावसार की **'देशवचनिका'** चलती भाषा में, मैं उसका सार लिखता हूँ।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत भावपाहुड गाथाबंध की देशभाषामय वचनिका लिखते हैं। प्रथम आचार्य इष्ट के नमस्काररूप मंगल करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा का सूत्र कहते हैं – पहली गाथा में सूत्र कहते हैं। सूत्र कहते हैं।

णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा।।१।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि मैं भावपाहुड नामक ग्रन्थ को कहूँगा। पहिले क्या करके? जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकर परमदेव... उसको वन्दन नकरते हैं। **तथा सिद्ध अर्थात् अष्टकर्म का नाश करके सिद्धपद को प्राप्त हुए...** ऐसे सिद्ध को नमस्कार करके। **और अवशेष संयत...** चौथा पद। **'वसेसे संजदे सिरसा' आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु इस प्रकार पंच परमेष्ठी को मस्तक से वन्दना करके कहूँगा।** मस्तक से वन्दना करके कहूँगा। मन-वचन-काया तीनों आ गये। **कैसे हैं पंच परमेष्ठी? नर अर्थात् मनुष्य, सुर अर्थात् स्वर्गवासी देव, भवनेन्द्र अर्थात् पातालवासी देव, इन सबके इन्द्रों द्वारा वन्दने योग्य हैं।** पंच परमेष्ठी, तीन लोक के जो इन्द्र हैं, उनसे पूजनीक हैं। तीन लोक के इन्द्र से पूजनीक। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक,

... इनसे पूजने योग्य हैं। वह शब्दार्थ किया।

भावार्थ – आचार्य 'भावपाहुड' ग्रन्थ बनाते हैं, वह भावप्रधान पंच परमेष्ठी हैं,... भावशुद्ध परमात्मदशा, सिद्धदशा, आचार्य, उपाध्याय सब वीतरागी दशा है। पाँच पद है, वह वीतरागी दशा भावप्रधान है। समझ में आया? पाँचों पद। वीतरागी दशा पाँचों पद की है। **वह भावप्रधान पंच परमेष्ठी हैं, उनको आदि में नमस्कार युक्त है,...** यह भावपाहुड़ कहने में पहले उनको नमस्कार करना वाजिब है। क्यों वाजिब है? **क्योंकि जिनवरेन्द्र इस प्रकार हैं –जिन अर्थात् गुणश्रेणी निर्जरायुक्त इस प्रकार के अविरतसम्यग्दृष्टि आदिकों में...** चौथे गुणस्थान से जिन कहने में आता है। जिसने सात प्रकृति नाश करके अथवा उपशम करके, क्षयोपशम करके सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में प्रगट हुआ, उसको यहाँ जिन से शुरु किया है। समझ में आया?

अविरतसम्यग्दृष्टि आदिकों में... पाँचवें गुणस्थानवाले, छठे गुणस्थानवाले आदि। उनमें **वर अर्थात् श्रेष्ठ ऐसे गणधरादिकों में...** जिन-वर इन्द्र, चौथे गुणस्थान से पाँचवें-छठवें आदि। और उसमें भी श्रेष्ठ गणधरादि, उसमें भी **इन्द्र तीर्थंकर...** जिनवरेन्द्र। जिन-वर-इन्द्र। जिन-चौथे गुणस्थान से लेकर और वर-गणधरादि से उत्कृष्ट और उसके इन्द्र-तीर्थंकर।

मुमुक्षु : सामान्य केवली नहीं लेंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब आ गये। तीर्थंकर में सामान्य केवली आ गये। समझ में आया?

वह गुणश्रेणीनिर्जरा शुद्धभाव से ही होती है। देखो! कर्म के नाश की धारा अर्थात् गुणश्रेणी की पवित्र पर्याय का प्रगट होना, वह चौथे गुणस्थान से होता है। **शुद्धभाव से ही होती है।** सम्यग्दर्शन में अपना आत्मा परमानन्दस्वरूप, उसकी अन्तर्मुख निर्विकल्प श्रद्धा (हुई), वह शुद्धभाव है। मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, वह तो विकल्प है, आस्रव है। उससे रहित शुद्ध स्वभाव भगवान आत्मा का, उसका अनुभव, श्रद्धा, ज्ञान वह शुद्धभाव है। द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है ऐसे सम्यग्दर्शन पर्याय भी शुद्ध है। शुद्धभाव से निर्जरा होती है। बीच में कोई भक्ति, पूजा, दान, दया का भाव आता है, उससे पापबन्ध होता है, निर्जरारूप धर्म होता नहीं। समझ में आया?

गुणश्रेणीनिर्जरा शुद्धभाव से ही होती है। भाव से ही होती है। ऐसा कहा है, भाई! कथंचित् शुभभाव से भी निर्जरा होती है ऐसा नहीं कहा। कुछ लोग कहते हैं कि शुभ में शुद्ध का अंश है। ऐसा है ही नहीं। धवल की गाथा का आधार देकर कहते हैं न? शुद्ध और शुभ, दोनों निर्जरा का कारण है। है नहीं, लेकिन निमित्त है तो उपचार से कथन किया है। शुद्धभाव से ही निर्जरा होती है। क्या कहा? देखो! **गुणश्रेणीनिर्जरा शुद्धभाव से ही होती है।** पुण्य-पाप के भाव तो आस्रव, विकल्प और बन्ध का कारण है। पुण्य-पाप का भाव वह तो भावबन्ध है।

मुमुक्षु : पुण्य भी बन्ध का कारण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य बन्ध का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सातिशय पुण्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : सातिशय पुण्य समकिती को बँधता है। अज्ञान को सातिशय कहाँ से आया? समझ में आया? सम्यग्दृष्टि में शुद्धभाव, वस्तु चैतन्यदल, आनन्दकन्द, उसकी अनुभवदृष्टि हुई तो शुद्धभाव हुआ। शुद्धभाव के साथ रागादि है। दया, दान, व्रत आदि, भक्ति आदि का (भाव) है तो उसमें सातिशय पुण्यबन्ध हुआ। परन्तु पुण्यबन्ध है। समझ में आया? पुण्यबन्ध का भाव वह अपराध है। जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे वह भाव अपराध है, अपराध है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका फल आवे। तो आये केवलज्ञानी आदि। प्रकृति का फल ऐसा समवसरण है वैसा बताये। उसमें क्या हुआ? आत्मा अन्दर शुद्धभाव से पवित्रपना प्रगट करे, वही शुद्ध निर्जरा और धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

वे तीर्थंकरभाव के फल को प्राप्त हुए,... तीर्थंकरभाव के फल को प्राप्त हुए। क्या कहते हैं? शुद्धभाव से शुद्धता बढ़ती है, कर्म की निर्जरा होती है और शुद्धभाव के फल को प्राप्त हुए। तीर्थंकर तो शुद्धभाव के फल को प्राप्त हुए। केवलज्ञान (प्राप्त किया)। समझ में आया? शुद्धभाव तो **तीर्थंकरभाव के फल को प्राप्त हुए,...** समझ में आया? अपना भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य द्रव्य, उसका शुद्धभाव प्रगट करके जो कर्म

की निर्जरा होती है, उस शुद्धभाव का फल केवलज्ञान है। शुद्धभाव का फल केवलज्ञान है। बीच में शुभ आता है, उसका फल केवलज्ञान नहीं। उसका तो बन्ध फल है। समझ में आया? तीर्थंकर भी जब केवलज्ञान पाते हैं तो शुद्धभाव के फलरूप केवलज्ञान है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे उस भाव का फल तीर्थंकरपना नहीं, केवलज्ञानपना नहीं है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव तो शुभ है। उस शुभभाव का फल तीर्थंकर-केवलज्ञान नहीं है। समझ में आया? शुद्धभाव का फल केवलज्ञान है। शुभभाव का भी अभाव करके शुद्धभाव की परिणति उग्र करेगा तब केवलज्ञान होगा। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, उस भाव से भी केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता। कहते हैं न कि, देखो! तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ तो नियम से केवलज्ञान प्राप्त करेगा। प्रकृति के कारण पायेगा? ऐसा है ही नहीं। ऐसा कहते हैं कि तीर्थंकर प्रकृति जिसको बँध गयी वह नियम से केवलज्ञान पायेगा। तीर्थंकर प्रकृति के कारण से केवलज्ञान पायेगा। ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? केवलज्ञान पाते हैं, वह शुद्धभाव से पाते हैं। समझ में आया? पूर्ण शुद्ध केवलज्ञान, पूर्ण शुद्ध केवलज्ञान शुद्धभाव से प्राप्त होता है। शुभभाव से जैसे तीर्थंकरगोत्र बँधा उस भाव से केवलज्ञान नहीं होता और प्रकृतिबन्ध हुआ तो उससे केवलज्ञान नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह तो बन्ध है। समझ में आया? देखो!

पहले तो शुद्धभाव गुणश्रेणी का कारण कहा। बाद में शुद्धभाव के **फल को प्राप्त हुए, घातिकर्म का नाशकर केवलज्ञान को प्राप्त किया,...** अरिहन्त कैसे हुए, उसकी खबर नहीं। समझ में आया? घातिकर्म का नाश करके हुआ, वह भी असद्भूत व्यवहारनय का वचन है। अशुद्धता का नाश हो गया। शुद्धता के उग्रपने से अशुद्धता का नाश हो गया। वह भी व्यवहारनय का वचन है कि भगवान ने अशुद्धता का नाश किया। अशुद्धता का भी नाश किया नहीं। अपने शुद्धभाव की उग्रता हुई तो अशुद्धता उत्पन्न हुई नहीं तो उसको नाश किया ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? यहाँ तो चार घाति का नाश किया ऐसा कहा। कर्म का नाश आत्मा कर सकता है? वह तो जड़ है। वहाँ अपने शुद्धभाव की उग्रता से जब केवलज्ञान पाया तो अशुद्धता का नाश हुआ, अशुद्धता

उत्पन्न हुई नहीं तो कर्म के रजकण की पर्याय उसके कारण बदल गयी। घातिकर्म की पर्याय घातिकर्म के कारण से बदल गयी, आत्मा के कारण से बदल गयी ऐसा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसके कारण से हुई। कहते हैं... भाषा समझनी (हो तो) भाषा में संक्षेप कैसे करना? घातिकर्म का नाश (किया)। देखो!

तीर्थंकरभाव के फल को प्राप्त हुए, घातिकर्म का नाशकर केवलज्ञान को प्राप्त किया, उसी प्रकार... अब वह कहते हैं कि घातिकर्म का नाश हो तो केवलज्ञान होता है, ऐसा कहो। लेकिन केवलज्ञान प्राप्त किया तो घातिकर्म का नाश हुआ ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा ने अपने पुरुषार्थ से केवलज्ञान पाया तो घातिकर्म का नाश उसके कारण से होता है। घातिकर्म का नाश हो तो केवलज्ञान प्राप्त हुआ, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं। वह तत्त्वार्थसूत्र में आता है कि नहीं? चार घाति का नाश होने से केवलज्ञान (प्राप्त होता है)। लेकिन वह तो निमित्त का कथन है। घातिकर्म तो स्वतन्त्र जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय का आत्मा स्वामी है? नाश करे, बाँधे, आत्मा उसका स्वामी है?

मुमुक्षु : ... बाँधता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बाँधता है, नहीं छोड़ता है। वह तो अज्ञानपने से अशुद्धभाव उत्पन्न करता है, भानपने से शुद्धभाव उत्पन्न करता है। बस इतना। समझ में आया? प्रोफेसरजी! समझ में आता है न? हिन्दी तुम्हारे लिये किया। कल दोपहर को आया था। .... समझ में आया?

कहते हैं कि घातिकर्म का नाश, आत्मा अपने शुद्धभाव के फल को-केवलज्ञान को प्राप्त हुआ, तब घातिकर्म का नाश उसके कारण-कर्म के कारण से नाश हुआ। नाश का अर्थ? कर्म की पर्याय थी वह अकर्मरूप हुई। नाश का अर्थ दूसरा क्या? जो कर्म की पर्याय थी, यहाँ जब अपने स्वभाव के शुद्धभाव के फलरूप केवलज्ञान हुआ तो

घातिकर्म की पर्याय कर्मरूप थी, वह दूसरे समय अकर्मरूप हो गयी। उसका नाम नाश। नाश का अर्थ क्या है?

मुमुक्षु : नाश होता ही नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश किसका होता है? समझ में आया? नाश कैसे करे? नाश अर्थात् व्यय। घातिकर्म की पर्याय व्यय हुई। व्यय का अर्थ कि जो कर्मरूप पर्याय थी, वह अकर्मरूप पर्याय हुई। पुद्गल की अकर्मरूप पर्याय उत्पन्न हुई। कर्मरूप उत्पाद था। उस उत्पाद का व्यय कर अकर्मरूप उत्पाद हुआ।

मुमुक्षु : कार्माणवर्गणा की हुई या कोई और पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कर्मशक्ति थी। वो वर्गणा नहीं। घातिकर्म की परमाणु पर्याय बन्ध थी वह। कार्मणवर्गणा भिन्न। वह नहीं। बँधी है उसकी बात नहीं। वह तो घातिकर्मरूप परमाणु की पर्याय बँधी है, वही यहाँ पुरुषार्थ से शुद्धभाव के फलरूप केवलज्ञान हुआ, उस समय घातिकर्म की पर्याय अकर्मरूप हो गयी। कर्मरूप पर्याय थी, वह अकर्म हो गयी, उसका नाम घातिकर्म का नाश ऐसा व्यवहार से कहने में आता है।

मुमुक्षु : ...उसकी पर्याय फिर क्या हो गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकर्म, कहा न, अकर्म। दूसरे पुद्गल की पर्याय हो गयी। अकर्मरूप हुई वह दूसरी पर्याय हुई।

मुमुक्षु : उनका कहना है कि, कार्मणवर्गणारूप (रह गयी)।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। ऐसा नहीं। कार्मणवर्गणा नहीं हुई, वह तो दूसरी पर्याय हो गयी। कार्मणरूप हो ऐसा कुछ नहीं। समझ में आया?

उसी प्रकार सर्वकर्मों का नाशकर, परम शुद्धभाव को प्राप्त कर सिद्ध हुए,... अन्दर दो पाठ हैं न? पहले अरिहन्त का नमस्कार किया है, दूसरा सिद्ध को नमस्कार किया है। **'जिणवरिंदे'** कहा, फिर सिद्ध को नमस्कार किया है। सिद्ध कैसे हुए, वह कहते हैं। **सर्वकर्मों का नाशकर, परम शुद्धभाव को प्राप्त कर सिद्ध हुए,...** वह भी परमशुद्धभाव सिद्ध है। अपनी पूर्ण निर्मल पर्याय को सिद्ध कहते हैं। मलिन पर्याय को संसारी कहते हैं। कुछ निर्मल और थोड़ी मलिन हो तो उसे साधकभाव कहते हैं। समझ

में आया? दो बात कही। एक अरिहन्त और सिद्ध। अब, तीसरा आचार्य।

आचार्य, उपाध्याय शुद्धभाव के एकदेश को प्राप्त कर पूर्णता को स्वयं साधते हैं... क्या कहते हैं? आचार्य, उपाध्याय, साधु किसको कहिये? कि जिसने अपनी शुद्ध वीतरागी पर्याय को प्राप्त की है। तीनों ने अपने शुद्ध स्वभाव के आश्रय से शुद्ध पर्याय पुण्य-पाप के विकल्प से रहित निर्विकल्प शुद्धपर्याय को प्राप्त की है और उस शुद्धपर्याय के प्राप्ति से सिद्धपद का साधन करते हैं। फिर से...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धपर्याय आचार्य, उपाध्याय, साधु में शुद्धपर्याय है न? आचार्य, उपाध्याय, साधु में शुद्ध पर्याय है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण नहीं। साधते हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु उसको कहते हैं कि जिसने अपने शुद्ध चैतन्य आनन्द के आश्रय से शुद्ध वीतरागी पर्याय अपूर्ण प्राप्त की है। वह शुद्ध भाव की पर्याय के जोर से सिद्धपद को साधते हैं। शुद्ध पर्याय के साधन से सिद्धपद को साधते हैं। व्यवहारनय से ... आदि आते हैं, उससे सिद्धपद साधते हैं ऐसा नहीं। समझ में आया? देखो! कितना स्पष्ट किया है।

आचार्य, उपाध्याय... साधु। आचार्य, उपाध्याय दो। **शुद्धभाव के एकदेश को...** दो की बात पहले करते हैं। **एकदेश को प्राप्त कर पूर्णता को स्वयं साधते हैं...** देखो! अभी तो आचार्य, उपाध्याय किसको कहना उसका पता नहीं। आचार्य, उपाध्याय इसको कहते हैं कि अपना शुद्धभाव प्रगट किया है। लेकिन अपूर्ण है। तो शुद्धभाव के साधन से सिद्धपद को साधते हैं। पुण्य-पाप, महाव्रतादि आते हैं, उससे सिद्धपद को साधते हैं ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? जयचन्द्र पण्डित ने इतना तो अर्थ किया है।

आचार्य, उपाध्याय शुद्धभाव के एकदेश को प्राप्त कर... एक अंश को प्राप्त कर **पूर्णता को स्वयं साधते हैं...** भाषा देखो! समझ में आया? आत्मा आनन्दस्वरूप है, शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसका एक अंश शुद्धता पर्याय-अवस्था में प्रगट की। छठवें

गुणस्थान में। वह शुद्धता की पर्याय हुई, उससे पूर्ण शुद्ध को साधते हैं। शुद्धता की दशा प्राप्त हुई उससे पूर्ण शुद्धता को साधते हैं। बीच में पंच महाव्रतादि आते हैं, उससे सिद्धपद को साधते हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! कितनी स्पष्ट लिखावट की है, देखो! समझ में आया?

शुद्धभाव के एकदेश को प्राप्त कर पूर्णता को स्वयं साधते हैं... स्वयं साधते हैं। अपने कारण से पुरुषार्थ करके साधते हैं। आहा! समझ में आया? **अन्य को शुद्धभाव की दीक्षा-शिक्षा देते हैं,...** देखो! क्या कहते हैं? आचार्य, उपाध्याय इसको कहिये कि दूसरे को शुद्धभाव की शिक्षा-दीक्षा दे। पुण्य की क्रिया की बात नहीं। वह बीच में आता है, उसकी बात नहीं करते हैं। आहा! पण्डितजी! क्या है, देखो! वह दीपचन्दजी में आता है। 'आत्मावलोकन' है न दीपचन्दजी का? चिद्विलास के कर्ता। आत्मावलोकन में आता है कि मुनि तो वीतरागभाव का ही उपदेश देते हैं। **'मुहु मुहु'** बारम्बार वीतरागभाव का ही उपदेश देते हैं। है न आत्मावलोकन? दीपचन्दजी नहीं?

मुमुक्षु : अनुभवप्रकाश बनाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। चिद्विलास आत्मानुभव।

आचार्य और उपाध्याय उसको कहिये कि जो अपने पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, अपने शुद्ध स्वभाव में से शुद्धता एकदेश प्रगट की है। और एकदेश शुद्धता से पूर्ण को साधते हैं। एक बात। अब दूसरे को उपदेश क्या देते हैं, वह बात है। समझ में आया? **अन्य को शुद्धभाव की दीक्षा-शिक्षा देते हैं,...**

वियरायं वियरायं, जियस्स णिय ससरूओ वियरायं।
मुहु मुहु गणदि वियरायं सो गुरुपयं भासदि सया।।२।।

जीव का निजस्वरूप जो वीतराग है ऐसा बारंबार जो कहे वही गुरुपदवी को सदा शोभते हैं,... आत्मावलोकन। आत्मावलोकन, दीपचन्दजी का है।

मुमुक्षु : आत्मावलोकन?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आत्मावलोकन में। देखो फिर से।

जीव का निजस्वरूप जो वीतराग है ऐसा बारंबार जो कहे... वीतराग को ही

कहे। वीतरागभाव प्रगट करो, वीतरागभाव धर्म है, वीतरागभाव मोक्ष का मार्ग है, वीतरागभाव शुद्धभाव है, शुद्धभाव मोक्ष का उपाय है, **ऐसा बारंबार जो कहे वही गुरुपदवी को सदा शोभते हैं,...** वही गुरुपदवी को शोभते हैं। बाकी शुभभाव से होता है (ऐसा कहे) वह तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा श्लोक है। नहीं, नहीं। **'मुहु'** अर्थात् बारम्बार। आपको नहीं आयेगा वह। **'मुहु'** का अर्थ बारम्बार। **'मुहु'** अर्थात्। बारम्बार वीतराग का ही उपदेश साधु जगत को दे। वीतरागभाव वह धर्म है, वीतरागभाव मोक्ष का उपाय है, वीतरागभाव वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वीतरागभाव ही आत्मा का, जैनदर्शन का सार है। ऐसा बारम्बार... **'मुहु मुहु'** अर्थात् बारम्बार वही उपदेश देते हैं। बारम्बार वही उपदेश देते हैं। बारम्बार अर्थात् एक बार कहे फिर दूसरी बात करे ऐसा नहीं। बारम्बार वही उपदेश दे। समझ में आया? ऐई! देवीलालजी! आत्मावलोकन है न? देखा है या नहीं?

वियरायं वियरायं, जियस्स णिय ससरूओ वियरायं।
मुहु मुहु गणदि वियरायं सो गुरुपयं भासदि सया।।२।।

जीव का निजस्वरूप जो है, वह वीतराग है... यहाँ ऐसा कहा। **'जियस्स णिय ससरूओ'** ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा—जिन सो ही आत्मा। वीतराग का स्वभाव अविकारी रसकन्द वही आत्मा और उसकी प्राप्ति करने में वीतरागभाव का ही उपदेश देते हैं। **'मुहु मुहु गणदि वियरायं सो गुरुपयं भासदि सया' वह गुरुपदवी पर सदा शोभते हैं,...** बाकी पुण्य-पाप की क्रिया बतानेवाले और उससे लाभ है ऐसा कहे वह गुरुपद है नहीं। गुरुपद है नहीं। समझ में आया? **'भासदि सया'** पाठ में क्या कहा? सदा शोभते हैं। उसके सिवा दूसरे शोभते नहीं। अस्ति-नास्ति निकलती है कि नहीं? ऐई! नवलचन्दभाई! यह शुभभाव तो आता है न, शुभभाव में आये है न? ऐसा कहते हैं। धूल में भी आये नहीं। मिथ्यात्व में हैं। दूसरी गाथा है।

मुमुक्षु : ... आत्मा की भावना...

पूज्य गुरुदेवश्री : बारम्बार आत्मा वीतरागस्वरूप जिनस्वरूप है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र वीतरागस्वरूप है, वही वीतरागभाव का उपदेश आचार्य, उपाध्याय देते हैं। समझ में आया? सारे जैनदर्शन के शास्त्र का सार वीतराग है। सूत्र का तात्पर्य वीतराग है। सारे शास्त्र का तात्पर्य वीतराग है। पण्डितजी! शास्त्र का तात्पर्य वीतराग है।

मुमुक्षु : ... कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लेकिन सारे शास्त्र का तात्पर्य वीतराग है। तो वीतरागभाव कहो। क्योंकि आत्मा वीतरागस्वभाव है। शक्ति में से वीतराग की पर्याय प्रगट करना वह शुद्धभाव है। उसके सन्मुख (होकर) शुद्धभाव प्रगट करना वही जैनदर्शन है, वही जैनधर्म है और वही मोक्ष का मार्ग है। दूसरे कहते हैं, नहीं। चौथे से लेकर छठवें गुणस्थान तक शुभभाव ही होता है। शुभभाव में शुद्ध का अंश है, वह निर्जरा है। अेम शुभभाव। आहाहा! गजब किया है। पूरे मार्ग को उल्टा फिराकर चक्कर घुमा दिया। उसको माननेवाले भी ऐसे मिले।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको मिले। ... बैठी हो तो भी मिले। एक बार हम वहाँ गये थे। जूनागढ़ में। बीच में बैठे। ... कोई आये। जिसको सर फोड़ना है वह कहीं भी फोड़े। धर्म तो वीतराग परमात्मा ने जो कहा वह वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। वीतरागस्वरूप न हो तो वीतरागता कहाँ से आयेगी? वीतरागता कोई राग में से, निमित्त में से आती है? बराबर है? वीतराग-राग रहित आत्मा का स्वभाव शान्तरस, अकषाय स्वभाव वह स्वभाव आत्मा है। उस आत्मा में शक्तिरूप-स्वभावरूप वीतरागता है, उसका आश्रय करने से वीतरागता प्रगट होगी। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों वीतरागी पर्याय हैं। लेकिन वह एकदेश पर्याय आचार्य, उपाध्याय को है। उससे सर्वदेश को साधते हैं-पूर्ण को साधते हैं। और उपदेश भी वही देते हैं। समझ में आया? आप भी पूर्ण वीतरागता और शुद्धता को साधते हैं और शुद्धता प्रगट की है और शुद्धता का उपदेश देते हैं। आहाहा! भगवानजीभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! यह मार्ग है। बाकी सब हो बीच में। ज्ञान करावे। भाव होता है, (उसका) ज्ञान कराये।

शुद्धभाव दीक्षा-शिक्षा। देखो! दीक्षा भी शुद्धभाव की और शिक्षा-समझ भी शुद्धभाव की। दीक्षा पंच महाव्रत की क्रिया वह नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार से समझाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार के कथन तो ऐसे ही आये न। व्यवहार निमित्त किसको बताते हैं? कि नैमित्तिक शुद्धता को बताते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में क्या बताये? बाहर निमित्त से कथन तो वही आये न। अन्दर दीक्षा देने का भाव है, वह वीतरागभाव है। वीतरागभाव की दीक्षा वह दीक्षा है। ऐसा आचार्य, उपाध्याय मोक्षमार्ग में वीतरागभाव की दीक्षा देते हैं। बाकी पंच महाव्रत का विकल्प आये वह जानने लायक है।

शिक्षा भी वह दे, देखो! उपदेश भी वही दे। भैया! वीतरागता प्रगट करनी है। वीतरागता शक्ति में से व्यक्त करनी है। वह मार्ग वीतराग का है। बराबर है? समझ में आया? जयचन्द्र पण्डित इतना स्पष्टीकरण करते हैं। पहले के पण्डित भी कैसे हैं। स्पष्ट—जैसा है, वैसा मार्ग यह है। आपको रुचे, न रुचे इससे मार्ग दूसरा होता नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... पहले उसको समझ में तो लेना पड़ेगा न? समझ में मार्ग तो यह है। दूसरा कोई मार्ग है नहीं।

इसी प्रकार साधु हैं,... पहले दो की बात कही। सन्धि आती है न? **वे ही शुद्धभाव को स्वयं साधते हैं...** देखो! साधु भी शुद्धभाव को साधते हैं। राग को साधे वह साधु ऐसा नहीं। है भैया! उसमें है? शुद्धभाव को साधे। समझ में आया? साधु उसको कहे कि वह भी कहे कि शुद्धभाव को आप साधे। वीतरागी पर्याय प्रगट करके उसकी साधना करे। आहाहा! यह साधन, देखो! समझ में आया? पूर्णानन्द प्रभु, सहजानन्दमूर्ति आत्मा, चिद्घन, चिद्घन वीतरागी बिम्ब आत्मा, उसमें से शुद्धता साधने का साधक उपदेश देते हैं। और साधु भी शुद्धता को साधते हैं। बीच में पंच महाव्रत आते हैं लेकिन उसको साधते नहीं, देखो! यहाँ कहा। व्यवहारनय के कथन में ऐसा

आये कि पंच महाव्रत पालते हैं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं। वह तो व्यवहारनय का कथन है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य ने पूरी जिन्दगी पाले थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाला कुछ धूल भी नहीं। राग पले? अभी कहते हैं, देखो! आप अट्ठाईस मूलगुण को हेय बताते हो, तो कुन्दकुन्दाचार्य ने भी अट्ठाईस मूलगुण पाले। पूरी जिन्दगी पाले। राग को पालते हैं? राग की रक्षा करते हैं मुनि? ... पण्डितजी! कुछ लोग कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य ने भी पंच महाव्रत पाले और आप कहते हैं कि वह आस्रव है। कहाँ पाले? वह तो उसमें आया था उसको जाना। ऐसा लिखा है उसमें।

मुमुक्षु : पाला है, तो बाहर से थोड़ा आया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाला ही नहीं है। राग को पालते ही नहीं।

मुमुक्षु : महाव्रत पालन करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत का पालन करते हैं ऐसा कहते हैं न? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं कहते। वह तो अपने शुद्धभाव का पालन करते हैं। आहाहा! बहुत फर्क है। बात बात में फर्क है। दुनिया और वीतरागमार्ग में (बहुत फर्क है)।

देखो! **इसी प्रकार साधु हैं,...** जैसे आचार्य-उपाध्याय को कहा वैसे **साधु हैं, वे ही शुद्धभाव को स्वयं साधते हैं और शुद्धभाव की ही महिमा से तीन लोक के प्राणियों द्वारा पूजने योग्य-वन्दने योग्य कहे हैं,...** साधु है, वह शुद्धभाव का उपदेश नहीं देते। क्योंकि साधु अपने शुद्धभाव को साधते हैं। बस, इतना।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आचार्य-उपाध्याय। समझ में आया?

मुमुक्षु : साधु को उपदेश देने का अधिकार नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। कहते हैं कि अधिकारी आचार्य-उपाध्याय हैं।

मुमुक्षु : ... मुख्य अधिकारी आचार्य-उपाध्याय हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका मुख्य अधिकारी। गौण तो सम्यग्दृष्टि भी उपदेश करते हैं न, लेकिन गौणपने।

मुमुक्षु : ... एकल विहारी होते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। अकेले हो। सम्यग्दृष्टि भी उपदेश तो करते हैं न। लेकिन वह उसके मुख्य अधिकार नहीं हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करे। समझ में आया? अहो! आचार्य-उपाध्याय की पदवी तो शुद्ध वीतरागदशा है। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में मशगुल हैं।

मुमुक्षु : ... उपदेश देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उपदेश देते नहीं। उपदेश होता है उसे जाने। भाषा तो उपदेश ... भाषा तो ऐसी है, देखो! दीक्षा-शिक्षा दे। वाणी दे? लेकिन भाषा समझानी कैसे? भाव में वीतरागभाव का भाव प्रगट हो, ऐसा भाव है। विकल्प ऐसा आया तो विकल्प को भी जानते हैं। भाषा व्यवहार में कथन कैसे करना? शुद्धभाव का उपदेश देते हैं। उपदेश तो वाणी की क्रिया है। आत्मा की क्रिया है क्या? देवीलालजी! बहुत कठिन बात।

मुमुक्षु : उपदेश देना वह तो व्यभिचारी भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प ही व्यभिचार है न। राग की क्रिया है ही नहीं। लेकिन आता है उसको जानते हैं तो ऐसा कहने में आता है कि ऐसा उपदेश दिया। कथन की— जड़ की पद्धति ऐसी है। भगवान तो शुद्ध विकल्परहित पड़ा है। उसमें क्या है? उसको तो विकल्प भी नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव-बाव कुछ नहीं। ... अपना तिरने का उपाय साधते हैं। ऐसा है। दूसरे तिरे, न तिरे, वह उसके कारण है। ऐसे कर्ता की चर्चा का कर्ता नहीं। करुणा आये वह विकल्प है, वह भी राग है। इसमें कुछ मेल खाता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! उपदेश दे और कहे दूसरा तिरे, ना तिरे उसके कोई सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : तरण तारण लखे है ने?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब भाषा की कथनी ही ऐसी है। तरण-तारण कौन?

अपने को तारते हैं। और उपदेश निकल गया और दूसरे को निमित्त हुआ, उपादान ... लायक हो तो तारते हैं, ऐसा उपचार से कथन कहने में आता है। किसको तारे? बन्ध अधिकार में लिया है बन्ध अधिकार में। बन्ध अधिकार में लिया है समयसार में। कि दूसरा का बन्ध में होता है, मोक्ष होता है, तेरे विकल्प से कोई उसको बन्ध-मोक्ष नहीं होता। तुम विकल्प करो कि उसको बन्ध कराऊँ, उसको मोक्ष कराऊँ तो तेरे अध्यवसाय से बन्ध-मोक्ष नहीं होता। उसके राग के आश्रय से बन्ध करता है और वीतराग के आश्रय से मोक्ष करता है। वह तो उसके आश्रय से है। बन्ध अधिकार में है, समयसार। बन्ध-बन्ध। ... फिर बन्ध है न? २६७ गाथा। २६७।

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करेसि तुमं।।२६७।।

उसके अध्यवसाय के आश्रय से अज्ञान के कारण से बन्ध होता है तो तुम क्या करते हो उसके बन्ध में? और उसका अध्यवसाय नाम शुद्धभाव से मुक्ति होती है तो तुम क्या करते हो, उसका मोक्ष? २६७।

मुमुक्षु : हिन्दी में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुजराती है।

मुमुक्षु : बन्ध मोक्ष करूँ ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मोक्ष करूँ। ले लेना।

सौ जीव अध्यवसानकारण कर्मथी बंधाय जयां
ने मोक्षमार्गे स्थित जीवो मुकाय, तुं शुं करे भला? २६७।

तुम दूसरे का क्या करते हो? २६७ गाथा है। हिन्दी में है। हिन्दी दोपहर को चलती है। वह मुक्त होता है तो भी वीतरागभाव से मुक्त होता है। तेरी कल्पना से उसको मुक्ति होती है? और बँधता है तो अज्ञानभाव से वह बँधता है। तेरी कल्पना से वह बँध जाता है ऐसा कभी है नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वही। २६७। कौन बन्ध-मोक्ष करे? कथन में ऐसा आता

है। तरणतारण। तीर्थंकर किसी को तारते नहीं। अपने आत्मा को तारते हैं, बस। अकेले अपने को तारते हैं। ... करे नहीं। आचार्य-उपाध्याय हुआ तो अपना शुद्धभाव प्रगट किया और शुद्धभाव से पूर्ण शुद्धता को प्राप्त करे। बस, वह करते हैं। तीर्थंकर ने भी ऐसा किया। शुद्धभाव एकदेश प्रगट किया और एकदेश शुद्ध से पूर्ण शुद्ध को साधते हैं। वह कार्य करते हैं। विकल्प और वाणी-बाणी का कर्ता-फर्ता आत्मा है नहीं। सुनो-सुनो, अब। कहो, समझ में आया कुछ?

शुद्धभाव की ही महिमा से तीन लोक के प्राणियों द्वारा पूजने योग्य-वन्दने योग्य कहे हैं,... देखो! शुद्धभाव को लेकर पंच परमेष्ठ वन्दनीक हैं। शुभभाव से वन्दनीक हैं और देह को नग्न करे इससे वन्दनीक है नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत का विकल्प, नग्न दशा वह वन्दनीक है? नग्न दशा जड़ की है, विकल्प तो आस्रव है। वह वन्दनीक है? भाषा बतावे तो क्या बतावे? व्यवहार उसके पास होता है, ऐसा बतावे। ज्ञान कराये। वन्दनीक तो यह है।

वह तो अपने मोक्षपाहुड़ में आ गया। पंच परमेष्ठी आत्मा में बसते हैं। पंच परमेष्ठी वीतरागी दशा है। आत्मा में अन्दर में पाँचों पद पड़े हैं। आहाहा! आत्मा ही अरिहन्त है, आत्मा ही सिद्ध है, आचार्य, उपाध्याय आत्मा है। क्योंकि पाँचों पद वीतराग दशा है। वीतराग दशा का स्वभाव तो अपने में पड़ा है। जिनस्वरूप ही आत्मा है। पाँचों पद की अनन्त पर्याय का पिण्ड भगवान आत्मा अपने निज स्वरूप में है। पाँचों पद अपने द्रव्य से भिन्न है नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ ... व्यवहार का कथन ही ऐसा है। भाषा समझने में व्यवहार आता है। लेकिन व्यवहार अनुसरण करने लायक नहीं। ऐसी बात है। ... क्यों किया आपने? हम तो अपने कारण से समझेंगे। आप ऐसा क्यों कहते हो? अरे! सुन तो सही! ऐई! देवीलालजी!

देवलाली एक मन्दिर है। देवलाली जाते हैं भक्ति करने को। वहाँ है न? ... करे। भक्ति करे। हम श्रीमद् की भक्ति करते हैं तो धर्म हो जायेगा। धूल में भी धर्म नहीं है। धूल में भी करते-करते नहीं होता। आत्मा का ज्ञायकभाव का आश्रय करने से पहली मुक्ति मिथ्यात्व से होती है। व्यवहार-फ्यवहार आता है उससे क्या होता है? ... चलो भक्ति करो... भक्ति करो। भक्ति तो विकल्प है। पर के आश्रय में उससे विकल्प उठते

हैं। क्या निर्विकल्पता आती है पर के आश्रय से? समझ में आया?

कहते हैं कि **शुद्धभाव की ही महिमा से तीन लोक के प्राणियों द्वारा पूजने योग्य-वन्दने योग्य कहे हैं, इसलिए 'भावप्राभृत' की आदि में इनको नमस्कार युक्त है।** जिसने शुद्धभाव पूर्ण प्राप्त किया, अरिहन्त-सिद्ध और आचार्य-उपाध्याय शुद्धभाव को प्रगट करके एकदेश को पूर्ण को साधते हैं और आचार्य-उपाध्याय शुद्ध का उपदेश देते हैं। साधु तो अपने शुद्ध का ही साधन करते हैं। इसलिए पंच परमेष्ठी वन्दन और नमस्कार योग्य है। समझ में आया? निरालम्बी वस्तु अत्यन्त भिन्न वर्तती है। शरीर, विकल्प से भी भिन्न। विकल्प का भी तत्त्व को स्पर्श नहीं। आस्रव का स्पर्श आत्मा को कैसा? एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व का स्पर्श कैसा? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जो है, वह है। उसमें कुछ फिरे ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी चीज़ है कहाँ? वस्तु ही ऐसी है।

भगवान आत्मा कर्म और शरीर के रजकण कभी छूता नहीं, लेकिन विकल्प जो पंच महाव्रत का विकल्प है, उसको भी आत्मा कभी छूता नहीं। दोनों तत्त्व भिन्न है। एक तत्त्व दूसरे को छूये तो दो तत्त्व एक हो जाते हैं। समझ में आया? देखो! कितना अच्छा अर्थ किया है! भावपाहुड़ लिखा। मांगलिक। पंच परमेष्ठी को वन्दने और पूजनेयोग्य क्यों कहते हैं? पंच परमेष्ठी को वन्दन और नमस्कार योग्य इसलिए कहते हैं कि अरिहन्त और सिद्ध तो पूर्ण शुद्धता को प्राप्त हुए हैं। भले अरिहन्त ... शुद्धता को प्राप्त (हुए हैं), सिद्ध पूर्ण शुद्धता को (प्राप्त हुए हैं)। समझ में आया? वह शुद्धता के कारण वन्दन और नमस्कार योग्य है। आचार्य, उपाध्याय भी शुद्धता के कारण वन्दन-नमस्कार योग्य है। साधु भी अपने शुद्ध स्वरूप को साधते हैं इस कारण वन्दन और नमस्कार योग्य है। महान मांगलिक है। समझ में आया?

'भावप्राभृत' की आदि में इनको नमस्कार युक्त है। मस्तक द्वारा नमस्कार करने में... पाठ आया न ऐसा? क्या आया? **'सिरसा' 'सिरसा'** बोल है न? **'सिरसा'**

वन्दन करता हूँ। जड़ से वन्दन करता हूँ। लेकिन वहाँ विनयभाव आया है तो सिर नमन होात है तो **'सिरसा'** वन्दन करता हूँ, ऐसा कहने में आता है। देखो!

मुमुक्षु : 'सिरसा' अर्थात् सिर नमाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिर नमाता है। सिर तो जड़ है। भाषा क्या करे? भाव है, बस। भाषा ऐसी आती है।

मस्तक द्वारा नमस्कार करने में सब अंग आ गये, क्योंकि मस्तक सब अंगों में उत्तम है। सारे शरीर में मस्तक उत्तम अंग है। समझ में आया? **सब अंग आ गये,...** एक तो यह बात। **मस्तक द्वारा नमस्कार करने में सब अंग आ गये, क्योंकि मस्तक सब अंगों में उत्तम है। स्वयं नमस्कार किया तब अपने भावपूर्वक ही हुआ...** नमस्कार करने में भाव भी आया। आया? **तब 'मन-वचन-काय' तीनों ही आ गये,** लो! नमस्कार किया तो वाणी भी आयी, वचन आया, भाव आ गया। मन-वचन-काया तीनों आ गये। समझ में आया?

अपने भावपूर्वक ही हुआ... भाव बिना ऐसी वन्दन की क्रिया होती है। ऐसा बताया यहाँ पाठ में। वाणी आती है, शरीर ... है, उसमें भाव भी साथ में निमित्त से है। **तब 'मन-वचन-काय' तीनों ही आ गये, इस प्रकार जानना चाहिए।** तीनों आ गये। यह पहली गाथा कही। भावपाहुड़। १६५ गाथा है। दशेय पाहुड़ में यह पाहुड़ सबसे बड़ा है। अपने से वह छूट गया है। ... आहाहा!

गाथा-२

आगे कहते हैं कि लिंग द्रव्य भाव के भेद से दो प्रकार का है, इनमें भावलिंग परमार्थ है -

भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो गुणदोसाणं जिणा [१]बेन्ति।।२।।

१. पाठान्तरः - विन्ति।

भावः हि प्रथमलिंगं न द्रव्यलिंगं च जानीहि परमार्थम्।
भावो कारणभूतः गुणदोषाणां जिना [1]ब्रुवन्ति।।२।।

है भाव पहला लिंग जानो द्रव्य लिंग परमार्थ नहिं।
जिनवर कहें गुण दोष के कारण सदा हैं भाव ही।।२।।

अर्थ – भाव प्रथमलिंग है, इसीलिए हे भव्य! तू द्रव्यलिंग है, उसको परमार्थरूप मत जान, क्योंकि गुण और दोषों का कारणभूत भाव ही है, इस प्रकार जिन भगवान कहते हैं।

भावार्थ – गुण जो स्वर्ग–मोक्ष का होना और दोष अर्थात् नरकादिक संसार का होना इनका कारण भगवान ने भावों को ही कहा है, क्योंकि कारण कार्य के पहिले होता है। यहाँ मुनि–श्रावक के द्रव्यलिंग के पहिले भावलिंग अर्थात् सम्यग्दर्शनादि निर्मलभाव हों तो सच्चा मुनि–श्रावक होता है, इसलिए भावलिंग ही प्रधान है। प्रधान है, वही परमार्थ है, इसलिए द्रव्यलिंग को परमार्थ न जानना, इस प्रकार उपदेश किया है।

यहाँ कोई पूछे – भाव का स्वरूप क्या है? इसका समाधान – भाव का स्वरूप तो आचार्य आगे कहेंगे पर यहाँ भी कुछ कहते हैं – इस लोक में छह द्रव्य हैं, इनमें जीव–पुद्गल का वर्त्तन प्रकट देखने में आता है – जीव चेतनास्वरूप है और पुद्गल स्पर्श, रस, गंध और वर्णस्वरूप जड़ है। इनकी अवस्था से अवस्थान्तररूप होना ऐसे परिणाम को 'भाव' कहते हैं। जीव का स्वभाव–परिणामरूप भाव तो दर्शन–ज्ञान है और पुद्गल कर्म के निमित्त से ज्ञान में मोह–राग–द्वेष होना 'विभावभाव' है। पुद्गल के स्पर्श से स्पर्शान्तर, रस से रसान्तर इत्यादि गुण से गुणान्तर होना 'स्वभावभाव' है और परमाणु से स्कन्ध होना तथा स्कन्ध से अन्य स्कन्ध होना और जीव के भाव के निमित्त से कर्मरूप होना ये 'विभावभाव' हैं। इस प्रकार इनके परस्पर निमित्त–नैमित्तिक भाव होते हैं।

पुद्गल तो जड़ है, इसके नैमित्तिकभाव से कुछ सुख–दुःख आदि नहीं है और जीव चेतन है, इसके निमित्त से भाव होते हैं, उनसे सुख–दुख आदि होते हैं अतः जीव को स्वभाव–भावरूप रहने का और नैमित्तिकभावरूप न प्रवर्त्तने का उपदेश है। जीव के पुद्गल कर्म के संयोग देहादिक द्रव्य का सम्बन्ध है, इस बाह्यरूप को 'द्रव्य' कहते

१. पाठान्तरः – विदन्ति।

हैं और 'भाव' से द्रव्य की प्रवृत्ति होती है, इस प्रकार द्रव्य की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार द्रव्य-भाव का स्वरूप जान कर स्वभाव में प्रवर्त्ते विभाव में न प्रवर्त्ते, उसके परमानन्द सुख होता है; और विभाव रागद्वेषमोहरूप प्रवर्त्ते, उसके संसारसम्बन्धी दु:ख होता है।

द्रव्यरूप पुद्गल का विभाव है, इस सम्बन्धी जीव को दु:ख सुख नहीं होता अत: भाव ही प्रधान है, ऐसा न हो तो केवली भगवान को भी सांसारिक सुख-दु:ख की प्राप्ति हो, परन्तु ऐसा नहीं है। इस प्रकार जीव के ज्ञान दर्शन तो स्वभाव है और रागद्वेषमोह ये स्वभाव-विभाव हैं और पुद्गल के स्पर्शादिक और स्कन्धादिक स्वभाव-विभाव हैं। उनमें जीव का हित-अहितभाव प्रधान है, पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी प्रधान नहीं है। बाह्य द्रव्य निमित्तमात्र है, उपादान के बिना निमित्त कुछ करता नहीं है।

यह तो सामान्यरूप से स्वभाव का स्वरूप है और इसी का विशेष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो जीव का स्वभाव-भाव है, इसमें सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है। इसके बिना सब बाह्यक्रिया मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं, ये विभाव हैं और संसार के कारण हैं, इस प्रकार जानना चाहिए।।२।।

गाथा-२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि लिंग द्रव्य भाव के भेद से दो प्रकार का है, इनमें भावलिंग परमार्थ है – मुनि का नग्नपना अट्ठाईस मूलगुण वह द्रव्यलिंग होता है, लेकिन उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भावलिंग की मुख्यता है। वह जो न हो तो द्रव्यलिंग की कोई कीमत है नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्यलिंग...

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंग को लिंग कहे न। ऐसा ही द्रव्यलिंग होता है। वीतरागी भाव प्रगट हुआ तो उसे नग्नपना ही हो जाता है। उसमें इतनी ... है। नग्नपना हो जाता है। वस्त्र-पात्र रख दे और मुनिपना भावलिंग हो ऐसा होता नहीं। समझ में आया? भाव की बात करते हैं तो सम्यग्दर्शनसहित की बात करते हैं। भाव सम्यग्दर्शन पहले होना चाहिए। पीछे द्रव्यलिंग। पंच महाव्रतादि का विकल्प आता है। फिर ध्यान

करते हैं तो भावलिंग चारित्र का पीछे प्रगट होता है। समझ में आया? भावलिंग पहले प्रगट हो गया और पीछे द्रव्यलिंग विकल्प धारते हैं, ऐसा है? यहाँ भावलिंग में पहले सम्यग्दर्शन लेना है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान को पहले प्रगट कर बाद में द्रव्यलिंग होता है। चारित्र जब आये, पहले नग्नपना हो जाता है, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प की प्रतिज्ञा भी होती है, और बाद में ध्यान में आते हैं तो सप्तम गुणस्थान होता है। समझ में आया? ऐसा नग्नपना और अट्ठाईस मूलगुण की ऐसी दशा न हो और अन्तर में ध्यान की सप्तम दशा हो ऐसा नहीं होता। लेकिन ऐसा है तो उससे भी होती नहीं और वह न हो और हो जाये ऐसा भी नहीं। अमरचन्दभाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : साधु भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वही कहते हैं। अपने सम्यग्दर्शनसहित पहले भावलिंग चारित्र नहीं प्रगट हुआ है। लेकिन द्रव्यलिंग ले लिया। अट्ठाईस मूलगुण की प्रतिज्ञा पहले लेते हैं न? पंच महाव्रत की प्रतिज्ञा लेते हैं न? बाद में ध्यान करते हैं तो भावलिंग चारित्र प्रगट होता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उतर जाते हैं। पहले ... निकल जाता है। बाद में ध्यान करके सप्तम आता है।

मुमुक्षु : साथ में नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, एक साथ नहीं। बाद में सप्तम आता है तब द्रव्यलिंग को निमित्त कहने में आता है। पहले कपड़े उतर जाये, नग्न हो जाये, पंच महाव्रतादि का विवेक, बाद में ध्यान में आ जाये तब सप्तम होता है। सप्तम हुआ और बाद में वस्त्र-पात्र उतारते हैं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ध्यान करे तब सप्तम आ जाये। समझ में आया? लेकिन यहाँ भावलिंग 'क्षजप' का अर्थ सम्यग्दर्शन का जोर देना है। सम्यग्दर्शन बिना कुछ

होता नहीं और बाद में भी भावलिंग चारित्र हो तो बाह्य का नग्न लिंग भी हो। लेकिन मात्र नग्नपना और अट्ठाईस मूलगुण मात्र हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र न हो तो उसकी कोई कीमत है नहीं। समझ में आया? वह बात कहते हैं।

भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो गुणदोसाणं जिणा बेन्ति।।२।।

द्रव्यलिंग को परमार्थ न जानो। होता है पहले। ऐसा कोई कहे कि चारित्र हमको हो गया। लेकिन हमारा गृहस्थावेश छूटा नहीं। ऐसा नहीं होता। ऐसा होता नहीं। कहते हैं न कई लोग? श्वेताम्बर में कहते हैं, वेश स्त्री का हो और मुनिपना हो जाता है। कपड़ा हो और केवलज्ञान हो जाता है। ऐसा होता ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है न। नाचते हैं ऐलचीकुमार। रस्सी पर नाचते-नाचते केवलज्ञान हो गया।

मुमुक्षु : आहार लेते-लेते...

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार लेते-लेते, खाते-खाते हो गया। ऐसा होता नहीं। वह सब बात विपरीत है।

यहाँ तो प्रथम भावलिंग की महत्ता कहनी है।

प्रवचन-१०५, गाथा-२, रविवार, असोज शुक्ल ४, दिनांक ०४-१०-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। उसकी दूसरी गाथा। **आगे कहते हैं कि लिंग द्रव्य भाव के भेद से दो प्रकार का है, इनमें भावलिंग परमार्थ है –** साधु को द्रव्यलिंग मुनिपना, नग्नपना, अट्ठाईस मूलगुण आदि होता है। लेकिन उसमें परमार्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान न हो तो उसकी कीमत है नहीं। द्रव्यलिंग कोई परमार्थ चीज़ है नहीं। द्रव्यलिंग तो साधारण चीज़ है। साधारण का अर्थ? भाव जो शुभ हो तो पुण्यबन्ध का कारण है। नग्नपना कोई पुण्यबन्ध या पापबन्ध का कारण है नहीं। वह कहते हैं, देखो!

भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो गुणदोसाणं जिणा बेन्ति।।२।।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि भाव है वह प्रथम लिंग है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान पहले हुए बिना अकेला द्रव्यलिंग धारण करना उसमें कुछ है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन... कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन ही है, अन्दर भावलिंग। अथवा द्रव्यलिंग मात्र है लेकिन अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं। वह बात पंचास्तिकाय में है। पंचास्तिकाय में। कोई ऐसा कहे कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होने के बाद द्रव्यलिंग धारण करना। ऐसा भी नहीं। समझ में आया? वह आता है अन्दर। अर्थात् यहाँ प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान की प्रधानता है।

अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य निर्मल परमात्मस्वरूप उसका अनुभव सम्यग्दर्शन निर्विकल्प आनन्द का स्वाद आये बिना मात्र मुनिपना द्रव्यलिंग धारण करते हैं, उसमें कुछ लाभ है नहीं।

मुमुक्षु : अज्ञान ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नुकसान ही है। बन्धभाव है न। दो-चार जगह है। १८५ पन्ने पर, २१३, ३७२, १६० इतने पन्ने पर यह बात है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? पहले १६६ पन्ने पर है। देखो! १६६। भाव को प्रधान जानकर परमार्थ जाने। **'जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।'** है न? छठवीं गाथा, छठवीं गाथा। छठवीं-छठवीं। छठवीं है न? **'जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।'** हे मुनि! मोक्षपुरी का मार्ग जिनदेव ने प्रयत्न करके उपदेश किया। हे शिवपुरी के पथिक मार्ग चलनेवाला तू भाव ही को प्रथम जान, परमार्थरूप जान। भावरहित द्रव्यमात्र लिंग से तुझे क्या साध्य है? कुछ भी साध्य नहीं। १८५।

मुमुक्षु : गाथा कौन-सी?

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्ना आये तब पता चले। गाथा-३४। तीस और चार।

द्रव्यलिंग धारण किया और उसमें परम्परा से भी भावलिंग की प्राप्ति न हुई... पाठ में है ऐसा, हों! **इसलिए द्रव्यलिंग निष्फल गया, मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई, संसार में ही भ्रमण किया।** और विशेष लिखते हैं। **यहाँ आशय इस प्रकार है कि द्रव्यलिंग है, वह भावलिंग का साधन है,...** क्योंकि द्रव्यलिंग तो पहले सम्यग्दर्शन हुआ, बाद में मुनिव्रत से पहले पंच महाव्रत ग्रहण करना पड़ता है। भावरूप चारित्र बाद में प्रगट होता है।

मुमुक्षु : नग्न अवस्था हुई फिर सम्यग्दर्शन तो हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। पहले सम्यग्दर्शन हो, उसके बाद। नग्न अवस्था हो और सम्यग्दर्शन नहीं हो, ऐसा अनन्त बार हुआ। पहले चौथा गुणस्थान हो, अनुभव हो, सम्यग्दर्शन का निर्विकल्प अनुभव हो, बाद में द्रव्यलिंग नग्नपना धारण करे, तब भावलिंग अभी चारित्र नहीं है। चारित्र तो बाद में अन्दर ध्यान में एकाग्र होता है तब (होता है)। ऐसी व्यवहार की पद्धति है।

मुमुक्षु : तब गुणस्थान चतुर्थ होता है या पाँचवाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई भी हो। चतुर्थ से पाँचवाँ गुणस्थान तो पहले अनुभव में होता है। बाद में नग्नपना धारण करे। मात्र नग्नपना धारण किया और सम्यग्दर्शन नहीं है, उससे लाभ नहीं है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **द्रव्यलिंग है, वह भावलिंग का साधन है परन्तु**

काललब्धि बिना द्रव्यलिंग धारण करने पर भी भावलिंग की प्राप्ति नहीं होती है, इसलिए द्रव्यलिंग निष्फल जाता है। इस प्रकार मोक्षमार्ग में प्रधान भावलिंग ही है। यहाँ कोई कहे कि इस प्रकार है तो द्रव्यलिंग पहिले क्यों धारण करें? उसको कहते हैं कि इस प्रकार माने तो व्यवहार का लोप होता है,... सम्यग्दर्शन हो, अनुभव हो, बाद में मुनिव्रत का, पंच महाव्रतादि का भाव पहले ग्रहण करना, बाद में स्वरूप के ध्यान में चारित्र होता है। हो तो हो। न हो तो न भी हो। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन अनुभव आत्मा का आनन्द का स्वाद तो आया है। बाद में चारित्र हो तो द्रव्यलिंग धारण करना ऐसा नहीं। क्योंकि ऐसी व्यवहार पद्धति उड़ जाये। सम्यग्दर्शन है, अनुभव है, पीछे पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का नग्नपना धारण होता है। लेकिन तब चारित्र है नहीं। सम्यग्दर्शन है। लेकिन बाद में कोई कहे कि चारित्र होने के बाद द्रव्यलिंग धारण करना ऐसा बनता नहीं। समझ में आया? जरा सूक्ष्म बात है।

द्रव्यलिंग धारण किया, भावचारित्र होता है कि नहीं होता है, उसकी बात बाद में। लेकिन भावलिंग चारित्र हो तो द्रव्यलिंग धारण करना ऐसा व्यवहार नहीं है। ...चन्दजी! क्योंकि सम्यग्दर्शन अनुभव निर्विकल्प भान तो पहले (हुआ) है अथवा पंचम गुणस्थान विशेष शान्ति (प्रगट हुई है), बाद में मुनिव्रत तो पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, सावद्ययोग के त्याग की पहले प्रतिज्ञा करते हैं और नग्नपना भी पहले हो जाता है। तब तक तो अभी चौथा-पाँचवाँ गुणस्थान है। लेकिन वह पंच महाव्रतादि धारण किया, सर्व सावद्ययोग का त्याग किया, अन्तर में ध्यान करने से सप्तम गुणस्थान हो जाता है, तब भावलिंग में वह द्रव्यलिंग निमित्त कहने में आता है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! कोई कहे कि, चारित्र आये उसके बाद द्रव्यलिंग धारण करना। आवे कहाँ से? वह उसकी रीत ही नहीं है। पहले सम्यग्दर्शन बिना मात्र द्रव्यलिंग नहीं होता।

सम्यग्दर्शन बिना मात्र द्रव्यलिंग धारण करे, वह तो कोई चीज़ है ही नहीं। लेकिन सम्यग्दर्शन है और बाद में चारित्र हो तो द्रव्यलिंग धारण करना ऐसा भी नहीं। सम्यग्दर्शन के बाद उसको पंच महाव्रत, सावद्ययोग का त्याग का द्रव्यलिंग व्यवहार से पहले आता है। और बाद में ध्यान में करने से चारित्र आता है। और किसी को न आये तो अन्दर में चौथा गुणस्थान रहे। बाहर में छठवें गुणस्थान की क्रिया रहे तो वह भी

समकित दृष्टि सहित द्रव्यलिंगी कहने में आता है। ऐई! बहुत कठिन बात, भाई! समझ में आया कुछ?

द्रव्यलिंग पहले धारण करना, इस प्रकार न जानना कि इसी से सिद्धि है। भावलिंग को प्रधान मानकर उसके सन्मुख उपयोग रखना, द्रव्यलिंग को यत्नपूर्वक साधना, इस प्रकार का श्रद्धान भला है। भाई! हमको तो चारित्र आ जाये अन्दर में, पीछे द्रव्यलिंग नग्नपना धारण करेंगे। ऐसे नहीं होता। समझ में आया? सम्यग्दर्शन पहले हुआ उससे पहले नग्नपना हो या न हो उसके साथ कोई सम्बन्ध है नहीं। वह कोई परमार्थ चीज़ है नहीं। लेकिन सम्यग्दर्शन हुआ, बाद में चारित्र हो तो नग्नपना और अट्ठाईस मूलगुण धारण करे, ऐसा भी नहीं। पहले अट्ठाईस मूलगुण और नग्नपना चारित्र प्रगट होने से पहले सम्यग्दर्शन सहित होने पर भी वह दशा पहले आती है। पीछे ध्यान करते हैं तो सप्तम आ जाता है। न आये तो बाहर की क्रिया छठवें गुणस्थान की-व्यवहार की रहे। अन्तर में चौथे गुणस्थान (सहित) पंच महाव्रत (रहे)।

मुमुक्षु : ये तो हर गुणस्थानों में आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चौथा गुणस्थान रहे।

मुमुक्षु : ध्यान में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान में नहीं आया।

मुमुक्षु : भावलिंग तब प्रगट होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब भावलिंग प्रगट होता है। लेकिन चारित्र का भावलिंग नहीं हुआ और द्रव्यलिंग धारण किया, तो भी उसमें अन्दर सम्यग्दर्शन है। द्रव्यलिंग की अट्ठाईस मूलगुण आदि छठवें गुणस्थान की व्यवहार क्रिया सब बराबर यथार्थ है। तो उसको भी द्रव्यलिंगी कहने में आता है। वह भी नौवीं ग्रैवेयक चले जाते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा द्रव्यलिंगी नौवीं ग्रैवेयक जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा भी जाता है और मिथ्यादृष्टि भी जाते हैं। तीनों जाते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार सम्यग्दर्शन हो वह भी द्रव्यलिंगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चारित्र का भाव नहीं है न? मुनिपना का चारित्र नहीं और बाह्य द्रव्यलिंगी पंच महाव्रत की क्रिया है, उस अपेक्षा से।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के प्रभाव से...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... से नहीं। शुभभाव की प्रधानता से। मिथ्यादृष्टि भी शुभभाव से नौवीं ग्रैवेयक जाये। वैसे समकिती भी उसको शुभभाव होता है, शुक्ललेश्या। अरे रे! गजब भाई! यह तो मार्ग तो जैसा है वैसा होगा। आगे-पीछे कोई करे तो ऐसा चले नहीं। देवीलालजी।

मुमुक्षु : ... द्रव्यलिंगी धारण करे ध्यान में सम्यग्दर्शन धारण करे त्यारे के पछी।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंग हुआ। लेकिन उसका भावलिंग तो चौथे-पाँचवें गुणस्थान जितना रहा। चारित्र आया नहीं। तो द्रव्यलिंग की अट्ठाईस मूलगुण की क्रिया (निरतिचार) रहे, शुक्ललेश्या रहे तो नौवीं ग्रैवेयक चला जाये।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन है ही नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रश्न ही नहीं। होता है तो सम्यग्दर्शन पहले होता है, पीछे धारण करते हैं। और कदाचित् पहले धारण कर लिया लेकिन पीछे भी स्वरूप का ध्यान करने से समकित होता है। बाहर में धारण किया तो उससे समकित होता है, ऐसा नहीं। बहुत गड़बड़ी है।

मुमुक्षु : अगर सम्यग्दर्शन नहीं हुआ और द्रव्यलिंग धारण कर ले भी तो क्या फायदा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई फायदा नहीं है। गति में जाते हैं इतना। सम्यग्दर्शन का इतना लाभ है। लेकिन चारित्र नहीं है तो द्रव्यलिंग से सत् गति मिलती है, भवभ्रमण कम नहीं होता। द्रव्यलिंग की कोई कीमत नहीं, यहाँ यह कहना है। लेकिन द्रव्यलिंग आये बिना रहता नहीं। देवीलालजी!

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि भी नौवीं ग्रैवेयक जाते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : जाते हैं।

मुमुक्षु : और सम्यग्दृष्टि भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : और पंचम गुणस्थानवाला भी जाये।

मुमुक्षु : तो फिर उसकी विशेषता क्या हुई?

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेषता कुछ नहीं। शुभभाव है तो जाता है, इतना। तीनों की शुभभाव की उग्रता से जाते हैं।

मुमुक्षु : वह फिर संसार में भ्रमण करेगा...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह संसार भ्रमण करेगा, यह संसार भ्रमण नहीं करेगा।

मुमुक्षु : भवकट्टी हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप का अनुभव है, सम्यग्दर्शन में आत्मा का स्वाद आया, बाद में द्रव्यलिंग धारण किया। क्योंकि एकदम पहले चारित्र आ जाये और बाद में द्रव्यलिंग धारण करे ऐसा नहीं होता। द्रव्यलिंग धारण किया लेकिन भावलिंग चारित्र प्रगट न हुआ।

मुमुक्षु : तो द्रव्यलिंगी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंगी है।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि होते हुए भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : होते हुए भी। लेकिन उसके जन्म-मरण का नाश हो गया है। अल्प भव रह गया है। वहाँ से निकलकर अन्तर भावलिंग सम्यग्दर्शन सहित चारित्र प्रगट करके, मुक्ति हो जायेगी।

यहाँ तो भाव की मुख्यता है। यह कहते हैं न, देखो! **भाव प्रथमलिंग है, इसीलिए हे भव्य! तू द्रव्यलिंग है, उसको परमार्थरूप मत जान,...** द्रव्यलिंग आया तो अब हम ध्यान करेंगे और समकित होगा ऐसा नहीं है। समझ में आया? वह चीज़ दूसरी है। समझ में आया? **क्योंकि गुण और दोषों का कारणभूत भाव ही है,...** गुण दोष का कारण भाव है। बाह्य लिंग कुछ है नहीं। बाह्य तो बाह्य चीज़ है। **इस प्रकार जिन भगवान कहते हैं।** अभी चलती गाथा में। अभी यह दूसरी गाथा चलती है न? दूसरी चलती है।

गुण और दोषों का कारणभूत भाव ही है, इस प्रकार जिन भगवान कहते हैं। अशुद्धभाव हो तो नरक गति आदि चार (गति मिले)। अशुद्ध अर्थात् शुभ और अशुभ दोनों। शुद्धभाव हो तो जन्म-मरण घटेगा। शुद्ध के भान बिना अकेला अशुद्ध (भाव) हो तो चार गति मिलेगी। चाहे तो पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण हो तो वह अशुद्धभाव है। उससे स्वर्गादि मिले लेकिन वह तो दुःख है। चार गति का दुःख है। संसार है।

यहाँ तो यह प्रश्न है कि पहले सम्यग्दर्शन हुआ। बाद में चारित्र जब हो, तब द्रव्यलिंग धारण करना ऐसा है? कि द्रव्यलिंग पहले धारण करना और बाद में चारित्र आता है? कि द्रव्यलिंग पहले धारण करना ऐसा आता है। सम्यग्दर्शन है लेकिन द्रव्यलिंग धारण किये बिना अन्दर में चारित्र की ध्यानदशा उसको उत्पन्न होती नहीं। और द्रव्यलिंग ... द्रव्यलिंग धारण किये बिना ध्यान आता है उसको? द्रव्यलिंग धारण किया तो ध्यान आता है ऐसा नहीं। तो तो ऐसा हुआ तो सम्यग्दर्शन है, मुनिव्रत धारण ... अट्ठाईस मूलगुण आदि की प्रतिज्ञा ली। सम्यक् चारित्र तो है नहीं अभी। चारित्र तो अन्तर में ध्यान करेगा, सम्यग्दर्शन है, उग्र आश्रय करके लीनता करेगा तब चारित्र प्रगट करेगा। ऐसा कोई कहे कि चारित्र प्रगट हो तब हमें नग्नपना धारण करना। तो व्यवहार का लोप हो जाता है। ऐई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। बिल्कुल नहीं। व्यवहार नहीं है। वह व्यवहार है नहीं। यह तो इतनी चीज़ पहले आती है। उसको भी द्रव्यरूप निमित्त तब कहने में आता है कि अन्तर में ध्यान में उतरे तब। अनुभव में उतरकर चारित्र की प्रगट दशा करे तब वह द्रव्यलिंग को निमित्त कहने में आता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। वस्त्र-पात्र पड़ा हो और चारित्र अन्दर आ जाये (ऐसा नहीं होता)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, बिल्कुल नहीं। वस्त्र-पात्र रह जाये, स्त्री-

कुटुम्ब रह जाये, ममता में अन्दर मुनिपना आ जाये ऐसा नहीं होता। नौ-नौ कोटि से जब तक वस्त्र-पात्र का त्याग न हो... नौ कोटि के त्याग का क्या अर्थ है? मन से, वचन से, काया से वस्त्र का करण, कारण, अनुमोदन छूट जाना चाहिए। द्रव्य से, हों! ऐई!

मुमुक्षु : वस्त्र पर द्वेष नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्वेष कहाँ है? किसने कहा वस्त्र पर द्वेष है? वस्त्र रखते हैं, उसकी तीव्र ममता है। तीव्र आस्रव है तब तक उसको चारित्र धर्म होता नहीं। गुण है। वस्त्र है उसके प्रति जितना राग है, तब तक आस्रव उग्र है, वह आस्रव उग्र है, उसमें वस्त्र का निमित्त कहने में आता है। तो आस्रव उग्र हो और चारित्र आ जाये ऐसा होता नहीं। देवीलालजी! समझने की चीज़ है। जहाँ-जहाँ जैसा योग्य है, उसको बराबर समझना चाहिए। ऐसा काम करे ऐसा नहीं। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। सातवें पहले होता है। पहले होता है। फिर छठवें विकल्प आता है। पंच महाव्रतादि का विकल्प। तब निमित्त कहने में आता है।

मुमुक्षु : ... सम्यग्दर्शन पहले होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बात यह है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको ध्यान कहाँ से आवे? भान तो है नहीं। देवीलालजी! व्यवहार साबित किया।

मुमुक्षु : ... दर्शन-ज्ञान-चारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तीनों। सब है न। दर्शन-ज्ञान हो गया तो चारित्र हो जाये साथ में ऐसा नहीं। और चारित्र हो पीछे नग्नपना हो और वस्त्र छूट जाये ऐसा नहीं। पहले चौथे-पाँचवें गुणस्थान में विकल्प आया कि मैं पंच महाव्रत धारण करूँ, अट्ठाईस मूलगुण धारण करूँ, नग्न दशा हो जाये। विकल्प सहित ऐसा हो जाये। पहले ऐसा हो और बाद में जो ध्यान करे और सप्तम आया तो उसको निमित्त कहे। और ध्यान करके सप्तम गुणस्थान में न आया तो मात्र द्रव्यलिंग रह गया। समकित है।

मुमुक्षु : ... द्वारा ...

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे-पाँचवें पर रहे। बाहर की क्रिया तो ऐसी शुद्ध होगी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बिल्कुल नहीं। वस्त्र की क्या जरूरत? लेकिन वस्त्र है तो नौ कोटि का त्याग तो हुआ नहीं। काया से वस्त्र का त्याग करे तब कहने में आता है। मन, वचन और काया। करना, करवाना और अनुमोदन। नौ है न? नौ कोटि, नौ प्रकार। तो काया से वस्त्र का त्याग कब कहने में आता है? कि काया से भी वस्त्र छूट जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वस्त्र रहे और काया से त्याग हो, ये दो हो सकते नहीं।

मुमुक्षु : काया...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा होता नहीं। कोई वस्त्र डाल दे, वह दूसरी बात है।

मुमुक्षु : तो उपसर्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने भाव से वस्त्र रखे, पात्र रखे और कहे कि हमें मुनिपना अन्दर है। (ऐसा) तीन काल में होता नहीं। नेमिदासभाई! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जब तक छठवाँ न हो तब तक द्रव्यलिंगी कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष ... हो किसी को लेकिन वह है तो द्रव्यलिंगी। लेकिन

उसने द्रव्यलिंग धारण किया तो समकित होता है ऐसा नहीं। समकित का उपाय दूसरी चीज़ है, द्रव्यलिंग दूसरी चीज़ है। द्रव्यलिंग धारण किया इसलिए समकित होता है ऐसा नहीं। परन्तु समकित हो तो द्रव्यलिंग धारण करना ही पड़े ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वह बात ही झूठी है। वह सब बात झूठी है। नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार द्रव्यलिंगी गया। तो फिर समकित क्यों न हुआ? समकित का उपाय दूसरी चीज़ है। वह रास्ता ही नहीं। बिल्कुल नहीं। द्रव्य का आश्रय करना वह सम्यग्दर्शन का पन्थ है। देवीलालजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका क्या प्रश्न है। यहाँ तो चारित्र की बात चलती है। चारित्र की बात चलती है।

भावार्थ। दूसरी गाथा का भावार्थ। **गुण जो स्वर्ग-मोक्ष का होना और दोष अर्थात् नरकादिक संसार का होना इनका कारण भगवान ने भावों को ही कहा है,...** भाव के कारण स्वर्ग-नरक है और भाव के कारण मोक्ष है। कोई बाह्य द्रव्यलिंग के कारण से है नहीं। यहाँ द्रव्यलिंग अर्थात् नग्नपना। **क्योंकि कारण कार्य के पहिले होता है।** देखो! समझ में आया? कारण है तो कार्य के पहिले होता है। तो यहाँ मुनि श्रावक के द्रव्यलिंग के पहले भावलिंग हो। भावलिंग का अर्थ यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान। चारित्र हो जाये ऐसा नहीं। भाव में पहले ... श्रावक को पहले मुनिपना आ गया और बाद में पंच महाव्रत धारण करे, ऐसा है? ऐसा नहीं। मार्ग तो ऐसा है इसकी पहले तुलना करनी चाहिए। आगे-पीछे थोड़ा फेरफार हो जाये तो उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। क्या कहते हैं? देखो!

सच्चा मुनि-श्रावक होता है, इसलिए भावलिंग ही प्रधान है। मुनि द्रव्यलिंग से पहले भावलिंग हो। उसका अर्थ क्या? द्रव्यलिंग से पहले भावलिंग हो। उसका अर्थ क्या? सम्यग्दर्शन। वह भाव पहले (होता है)। चारित्र पहले हो और पीछे द्रव्यलिंग हो, ऐसा है? देवीलालजी! ऐसा तो अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण किया है। नौवीं ग्रैवेयक

गया। तो क्या हुआ? **'मुनिव्रत धार अनन्तबेर ग्रैवेयक उपजायो, आतम ज्ञान बिन लेश सुख न हायो।'** आता है या नहीं उसमें? छहढाला। ग्रैवेयक उपजायो उसमें क्या हुआ। यदि वह (कारण) है तो उसको क्यों हुआ नहीं? अनन्त बार हुआ न। यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन का उपाय का दूसरा है और बाह्य लिंग आता है फिर चारित्र का उपाय दूसरा है।

इसलिए भावलिंग ही प्रधान है। प्रधान है, वही परमार्थ है,... बाद में द्रव्यलिंग धारण किया, फिर भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र के बिना परमार्थ है नहीं। समझ में आया? मात्र व्यवहार द्रव्यलिंग से कुछ लाभ है नहीं। **इसलिए द्रव्यलिंग को परमार्थ न जानना,...** द्रव्यलिंग को भी यथार्थ न जानना कि द्रव्यलिंग हुआ तो अपने परमार्थ भावलिंग होगा। ऐसा नहीं। समझ में आया? **द्रव्यलिंग को परमार्थ न जानना, इस प्रकार उपदेश किया है।** भगवान आचार्यदेव, तीर्थंकरदेव ने (ऐसा उपदेश किया है)। समझ में आया? पण्डितजी! दिगम्बर उत्सर्ग मार्ग है और श्वेताम्बर अपवाद मार्ग है, वह झूठ है।

मुमुक्षु : अपवाद अर्थात् झूठा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवाद मार्ग का अर्थ नरम। नरम है लेकिन मार्ग है। बिल्कुल नहीं। शास्त्र में प्रवचनसार में ऐसा लिया है कि उत्सर्ग मार्ग तो अपने ध्यान में रहना सप्तम गुणस्थान में, वह मुनि का उत्सर्ग मार्ग है। अपवाद मार्ग पंच महाव्रत का विकल्प उठना आदि वह सब अपवाद है। पंच महाव्रत का विकल्प है। लेकिन वस्त्र-पात्र रखना वह अपवाद मार्ग है ऐसा नहीं। ऐई! मार्ग तो जैसा है वैसा है। न्यून, अधिक, विपरीत बिल्कुल मानेगा तो दृष्टि विपरीत होगी। समझ में आया? यह तो वीतराग का मार्ग है। किसी का बनाया हुआ है? अमरचन्दभाई!

यहाँ कोई पूछे - भाव का स्वरूप क्या है? इसका समाधान - भाव का स्वरूप तो आचार्य आगे कहेंगे पर यहाँ भी कुछ कहते हैं -

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आ गया। आ गया। ... कहा न? पहले भावलिंग हो तो

सच्चा मुनि, श्रावक हो। भावलिंग बिना सच्चा मुनि ... भावलिंग ही प्रधान है। प्रधान है सो परमार्थ है। वह आ गया।

इसलिए द्रव्यलिंग को परमार्थ न जानना, इस प्रकार उपदेश... भगवान जिनेश्वर देव ने किया है। श्रद्धा में तो बराबर रखे। श्रद्धा का ठिकाना नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : चतुर्थ गुणस्थानवर्ती ... भाव करे वह द्रव्यलिंग भाव नहीं करे तो उसको भावलिंग कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित का भावलिंग, चारित्र का भावलिंग नहीं।

मुमुक्षु : ... गृहस्थी हो सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव है न। हो। सम्यग्दर्शन वह भावलिंग है। लेकिन वह चारित्र का भावलिंग नहीं। बात तो ऐसी है।

यहाँ तो तीनों में पहले भावलिंग नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान का अनुभव पहले होना चाहिए। फिर श्रावक और मुनिपना का व्रत आता है। फिर स्वरूप में ध्यान करने से आत्मा का आश्रय करने से चारित्र होता है, अंश से इतनी स्थिरता, तो द्रव्य के आश्रय से होता है। बाहर का पंच महाव्रत लिया, ऐसा लिया तो चारित्र होता है ऐसा नहीं। देवीलालजी! बहुत गड़बड़।

मुमुक्षु : ... और लोग ऐसे ही बन जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन जाते हैं। वह तो दृष्टान्त दिया था न। छिलका कूटते हैं। छिलका। लाखोंपति की स्त्री थी तो छिलका (कूटती थी)। छिलके के नीचे चावल था। क्या कहते हैं? ओखल-ओखल। ओखल में नीचे चावल चला जाता था और ऊपर छिलका रहता था। एक गरीब स्त्री आयी। ओहो! यह स्त्री छिलका कूटती है तो उसमें कुछ होगा। तो उसने घर जाकर पति को कहा, लाईये छिलका। चावल कूटती थी। तो चावल कूटते-कूटते चावल था वह ओखल में नीचे चला जाता था और छिलका ऊपर रह जाता था। तो एक स्त्री ने देखा कि यह छिलका कूटती है। लेकिन अन्दर में चावल है।

वैसे मुनि भी अन्तर में आत्मदर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित है, वह चावल है और पंच महाव्रत और नग्नपना है, वह तो ऊपर का छिलका है। छिलका देखकर तो अज्ञानी भी कहे मैं भी पंच महाव्रत धारण करूँ और मैं भी मुनि हो जाऊँ। वह दृष्टान्त दिया था, मोक्षमार्गप्रकाशक में। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। ऐसा ही है न। ... दिये बिना बाहर से कहाँ लाये। ... चावल का दृष्टान्त दिया है न? चावल-चावल। चावल में वह लाली है न लाली? लाली गये बिना अकेला छिलका निकल जाये उसमें कुछ है नहीं। छिलका निकल जाये और लाली निकल जाये तो दो प्रकार है—वह द्रव्य है और यह भाव है। बाहर से स्त्री, कुटुम्ब, वस्त्रादि छूट जाये, अन्दर में एकत्वबुद्धि राग से छूट जाये। समझ में आया? ... अपवाद है। आपके केशवलालजी थे। वह कहते थे, हमारा मार्ग अपवाद है।

मुमुक्षु : इस काल में उत्सर्ग मार्ग होता ही नहीं, अपवाद मार्ग ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवाद मार्ग होता ही नहीं। सच्चा मार्ग हो तो अपवाद कहने में आता है। झूठ बात है। मिथ्यादृष्टि ... बात करे। समझ में आया? हम व्यवहार को साधते हैं। वस्त्र रखकर। धूल में भी नहीं। मिथ्यात्व को साधते हैं। समझ में आया? गृहीत मिथ्यात्व है। वस्त्र-पात्र रखकर हम अपवाद मार्ग साधते हैं, ऐसा माननावाला मिथ्यादृष्टि, गृहीत मिथ्यादृष्टि है। खोड़ीदासभाई! मार्ग तो ऐसा है। कोई उल्टा जाने तो वस्तु की स्थिति बदल जाये? वस्तु तो है वैसी है।

भगवान आत्मा... यहाँ तो आचार्य कहते हैं, भाव की प्रधानता रखना। इसमें दो प्रकार। पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, बाद में द्रव्यलिंग धारण करना। और उसमें भी भाव की प्रधानता रखना। चारित्र मुझे प्रगट हो ऐसी (भावना) रखना। समझ में आया? **इस लोक में छह द्रव्य हैं, इनमें जीव-पुद्गल का वर्त्तन प्रकट देखने में आता है –** भावलिंग की व्याख्या करते हैं। जीव और पुद्गल दो प्रकट दिखने में आता है। समझ में आया? उसमें आता है। अष्टावक्र। अष्टावक्र साधु है न? अन्यमत के साधु। अष्टावक्र अर्थात् आठों अंग टेढ़े। ... उसको कहते हैं न वेदान्ती। ... अष्टावक्र था (और)

जनकविदेही सभा थी। जनकविदेही राजा। सभा में विद्वान बहुत लोग थे। तो अष्टावक्र आया। शरीर के आठों अंग वक्र। सब विद्वान लोग हँसने लगे। तो अष्टावक्र कहते हैं, अरे! जनकविदेही! तेरी सभा चमार की है सब? चाण्डाल चमार की सभा तेरी है। ... शरीर ऐसा देखते हैं तो चण्डाल है। मेरा शरीर देखते हैं। मैं आत्मा कौन हूँ उसकी तो उसे खबर नहीं। समझ में आया? अष्टावक्र अर्थात् आठों अंग टेढ़े। ऐसे... ऐसे...

मुमुक्षु : सभा में कहा, राजा! यह ... चमार है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चमार है। शरीर को देखकर उसे हँसना आया? मैं आत्मा कौन हूँ उसको तो देखते नहीं। समझ में आया? सब चमार है।

मुमुक्षु : उनको देखकर हँसते हैं लोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे कैसे आया? ऐसे हँसना क्यों आया? शरीर तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है। वर्ण तो काला भी हो, ऐसा भी हो उससे आत्मा को क्या है? आत्मा अन्दर चीज़ क्या है? उसकी दृष्टि क्या है? उसका ज्ञान है? उसका चारित्र क्या है? वह देखना है कि यह देखना है? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जीव और जड़ दो हैं। **जीव चेतनास्वरूप है...** भगवान आत्मा जानन-देखन चेतनास्वरूप है। वह जीव। **और पुद्गल स्पर्श, रस, गंध और वर्णस्वरूप जड़ है।** जीव चेतनास्वरूप है। पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण जड़ है। **इनकी अवस्था से अवस्थान्तररूप होना ऐसे परिणाम को 'भाव' कहते हैं।** अवस्था की अवस्थान्तर बदलना उसका नाम भाव कहने में आता है। ऐसे परिणाम को। जीव का स्वभाव तो परिणामरूप भाव, **जीव का स्वभाव-परिणामरूप भाव तो दर्शन-ज्ञान है...** क्या कहते हैं, देखो! भगवान आत्मा चेतना स्वभाव, उसका स्वभाव परिणामरूप भाव, स्वभाव परिणामरूप भाव दर्शन-ज्ञान है। देखना, जानना वह परिणाम स्वभावरूप परिणाम है। दर्शन-ज्ञान-चेतनारूप कहा न पहले? चेतनारूप है न? तो चेतनारूप का दर्शन-ज्ञान परिणाम वह भाव है। जानने-देखने का परिणाम वह जीव का भाव है, स्वभावभाव है।

और पुद्गल कर्म के निमित्त से ज्ञान में मोह-राग-द्वेष होना 'विभावभाव'

है। अपना निज स्वभाव, चेतना स्वभाव, वह चेतनारूप उसका आश्रय करके जो परिणाम जानना-देखना हुआ, वह अवस्थान्तर करके अवस्था बदली, वह भाव जीव का स्वभावभाव है। और पुद्गल के उदय के निमित्त से जीव में मोह-राग-द्वेष होता है, वह विभावभाव है। वह विभाव छोड़नेयोग्य है, स्वभाव प्रगट करनेयोग्य है। समझ में आया? जीव का स्वभाव, परिणामरूप भाव तो दर्शन-ज्ञान है। **पुद्गल कर्म के निमित्त से ज्ञान में मोह-राग-द्वेष होना 'विभावभाव' है।** विभाव है। वह अपना स्वभाव नहीं। क्योंकि चेतना स्वभाव है, उसका परिणाम है, वह स्वभावभाव है। निमित्त से अपनी पर्याय में नैमित्तिक मोह-राग-द्वेष, मिथ्यात्व राग-द्वेष उत्पन्न होना वह विकारी विभावभाव है। यह भाव की व्याख्या करते हैं। समझ में आया?

पुद्गल के स्पर्श से स्पर्शान्तर, रस से रसान्तर इत्यादि गुण से गुणान्तर होना 'स्वभावभाव' है... परमाणु में स्वभावभाव होता है न? स्पर्श से स्पर्शान्तर पर्याय से दूसरी पर्याय हो **और परमाणु से स्कन्ध होना तथा स्कन्ध से अन्य स्कन्ध होना...** वह विभाव है। **और जीव के भाव के निमित्त से कर्मरूप होना ये 'विभावभाव' हैं।** विभावभाव है। एक परमाणु में स्पर्श से स्पर्शान्तर होना वह स्वभावभाव है। परमाणु का स्कन्ध होना वह पुद्गल का विभावभाव है और राग का, द्वेष का निमित्त पाकर कर्मपर्याय स्कन्ध में होना वह भी पुद्गल का विभावभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वभाव-विभाव दोनों में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों हैं। जीव में भी स्वभाव-विभाव है, पुद्गल में भी स्वभाव-विभाव है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अकेला स्वभाव ही है।

यहाँ तो दूसरी चीज़ सिद्ध करनी है कि पुद्गल में विभाव है लेकिन उसको सुख-दुःख नहीं। और जीव में विभाव है, वह दुःख का कारण है। समझ में आया? परमाणु स्कन्धरूप हो या कर्मरूप हो उसमें दुःख है? विभावरूप हुआ तो पुद्गल को दुःख है? आत्मा में जानना-देखना परिणाम है, वह सुखरूप है। ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम उत्पन्न होना, वह सुखरूप है। वह स्वभावभाव है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अपने से होता है। स्वभाव से परमाणु में होात है न। एक परमाणु है, उसमें रस से रसान्तर होना अपना स्वभाव है। समझ में आया? अनन्त परमाणु पड़े हैं न? मात्र द्रव्य है। एक समय में काला हो और दूसरे समय नीला हो जाये, एक समय में खट्टा और दूसरे समय में मीठा हो जाये। वह तो स्वभावभाव है।

मुमुक्षु : गमन करने की शक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गमन करने की शक्ति अलग। क्षेत्रान्तर। यह तो रूपान्तर।

मुमुक्षु : पहले आम खट्टा होता है, दूसरे समय मीठा हो जाता है। तो वह स्वभाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव। एक परमाणु का स्वभाव है। जब परमाणु स्कन्धरूप हुआ तो विभाव है।

यहाँ तो ये सिद्ध करना है कि उसमें स्वभाव हो या विभाव हो। सुख-दुःख तो जड़ को है नहीं। समझ में आया? जीव में स्वभाव हो तो सुखरूप है और पुण्य-पाप का विभाव है, वह दुःखरूप है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शरीर जीवित है क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहता है? शरीर जीवित है कहाँ, शरीर तो जड़ है, मिट्टी है। जैसा यह है, वैसा यह है। विभाव है। लेकिन विभाव का दुःख है उसको? शरीर का दुःख है विभाव से? और मात्र परमाणु अलग हो जाये तो सुखी है, ऐसा है? आतमा अपना ज्ञान, दर्शन आनन्द का स्वभाव (रूप परिणमन) करे तो सुख है और कर्म के निमित्त के लक्ष्य से मिथ्यात्व राग-द्वेष उत्पन्न करे तो दुःख है। इसलिए आत्मा को छुड़ाना है, विभाव छुड़ाना है। विभावभाव छुड़ाकर स्वभावभाव प्रगट करने का उपदेश है। पण्डितजी! बात तो ऐसी है। शरीर में बड़ा रोग आ जाये। बहुत रोग आ जाये। शरीर का दुःख है? शरीर का दुःख है? वह तो जड़ की अवस्था है। उसमें क्या है?

मुमुक्षु : अपना मान रहा है तो दुःख हो रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मानता है अन्दर में। वह तो जीव की बात है। शरीर में

दु:ख नहीं होता। यह कहते हैं। यह पर्याय विभाविक है। उसमें दु:ख नहीं है। अज्ञानी अपना मानकर राग-द्वेष करते हैं, वह विभाव दु:खरूप है। चीज़ दु:खरूप नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : इलाज करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इलाज तो होता है, कौन करे? विकल्प आया और दवा आती है तो आती है दवा से मिटता नहीं। परमाणु की पर्याय मिटनी हो तो निमित्त कहने में आये। कौन मिटाये? आहाहा!

देखो न, इस बहन की बेटी असाध्य हो गयी है। उसे ले गये हैं। भावनगर। ब्रह्मचारी बेटी है। असाध्य हो गयी है। हम गये थे। हम तो हमारे वैराग्य के लिये थे। उसके लिये नहीं गये थे।... पूरा शरीर थम्भ गया है। देखो! यह जड़ की दशा। तो जड़ को दु:ख है? अन्दर में आत्मा में रागादि द्वेष उत्पन्न होता है, वह दु:ख है। विभावभाव दु:ख है। आहाहा! समझ में आया? जड़ का स्वभाव... आहाहा! जवान शरीर में क्षण में असाध्य। वह पर्याय क्या है? कितनी सम्हाल करे। खाना-पीना... कौन करे? विकल्प करे। वह तो जड़ की पर्याय होनी है, वह होती है। जड़ को तो दु:ख है नहीं। रोग की अवस्था हो तो दु:ख नहीं, निरोग की अवस्था हो तो सुख नहीं। शरीर में कहा सुख-दु:ख है?

आत्मा में अपना जानना-देखना स्वभाव वह तो अपना परिणाम है, वह सुखरूप है। और मोह के निमित्त से अपने में विभावभाव उत्पन्न हो, शुभ या अशुभ, दोनों विभाव दु:ख हैं। यह विसंवाद है। एक में दूसरा बड़ा हो गया। **'एयत्तणिच्छयगदो'** भगवान आत्मा अपना स्वभाव में रहे वही शोभा को प्राप्त है। **'बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी'** ओहो! कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से उसमें जो बन्ध कथा अर्थात् बन्धभाव पुण्य-पाप उत्पन्न हुआ, वह विसंवाद-झगड़ा खड़ा हुआ। आहाहा! चैतन्यब्रह्म आनन्दकन्द प्रभु, उसमें झगड़ा उत्पन्न हुआ। पुण्य-पाप का भाव झगड़ा उत्पन्न हुआ। समयसार की तीसरी गाथा है। **'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।'** .... द्रव्यस्वभाव अपना सुन्दर है। और पर के निमित्त से अबन्धस्वभाव में बन्धभाव उत्पन्न होना, वह दूसरी चीज़ आ गयी। एक में दूसरी चीज़ आ गयी। विसंवाद... विसंवाद... दु:ख...

दु:ख... दु:ख। वह दु:ख है। समझ में आया? उसका इलाज कोई बाहर का नहीं है। यह दु:ख का इलाज अन्तर आश्रय करने से मिलता है। यह इलाज भी अपने करने से होता है। कोई पर कर सकता नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! भगवान! तेरी तो बलिहारी है। तुझमें तो अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है। तुम ईश्वर-परमेश्वर हो, प्रभु! निमित्त के आधीन होकर पामरता उत्पन्न हुई, वह क्या तेरी चीज़ जै? भगवान! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, वह भाव छोड़। आहाहा! तुझे सुखी होना हो, नाथ! प्रभु चैतन्यद्रव्य है अन्दर। इसके आश्रय से स्वभावभाव पर्याय प्रगट कर, विभावभाव का व्यय कर, स्वभाव की उत्पत्ति कर, ध्रुव स्वभाव तो त्रिकाल पड़ा है। समझ में आया? यह मार्ग है। प्रवीणभाई! चौरासी में भटकता दु:खी प्राणी, अरे! कहते हैं कि दया करो, दया करो। तुम्हारी दया करो, भाई! आहाहा! समझ में आया? दुनिया को देखना छोड़ दे, प्रभु! दुनिया... नाथ। तेरा आत्मा क्या चीज़ और क्या विभाव है, उसको सम्हाल। आहाहा! कपूरभाई! भाई गुजर गये न? धरमशीभाई गुजर गये। ... भाई आये थे। वह कहते हैं कि आहा! अरे रे! मोह में जीवन गया, मोह में जीवन चला जा रहा है। अर र! इस मोह में जीवन चला जा रहा है। बात सच्ची है कहा, भाई! बहुत अच्छा बोले थे। यहाँ आये थे न। ...भाई गुजर गये उसके बाद।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय धर्म होता है। जीव तो जीव चैतन्य भगवान उससे धर्म होता है। आहाहा! भगवान जागृत ज्योति सदा शाश्वत् चैतन्य ज्योति, जागती ज्योति भगवान आत्मा अन्दर है। उस पर नजर करने से सुख होता है, धर्म होता है। बाकी धर्म-बर्म कोई दूसरी चीज़ है नहीं। आहाहा! अरे! जीवन का प्रवाह चला जा रहा है। जीवनकाल चला जा रहा है, बापू! वस्तु यह है।

यह कहा न? **'जिणा बेन्ति'** वीतराग परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। भगवान! तेरा भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मुख्य परमार्थ है, वह मोक्ष का मार्ग है। बाह्यलिंग हो, होता है। लेकिन वह परमार्थ नहीं। समझ में आया? आचार्य ने कितनी करुणा से बात कही है। आहाहा! भगवान! तेरा स्वरूप तो चेतनास्वरूप है न, प्रभु! चेतना का परिणाम जानना-देखना होना, वह तेरा भाव परिणाम कहने में आता है। वह धर्म का परिणाम है।

मोह के निमित्त से अन्दर विकल्प उठते हैं। भगवान! वह तो विभाव है। चाहे तो शुभभाव हो। भाई! तुझे दु:ख है। आहाहा! समझ में आया? दु:ख का भाव टालना और आनन्द के स्वभाव के आश्रय से आनन्द का परिणाम प्रगट करना, वह आत्मा को संसार नाश करता है। समझ में आया कुछ?

इनके परस्पर निमित्त-नैमित्तिक भाव होते हैं। दोनों को। किसको? जीव और पुद्गल। समझ में आया? कर्म के निमित्त से आत्मा में मोह-राग उत्पन्न होता है और जीव के राग-द्वेष के निमित्त से परमाणु में विभावरूप कर्मपर्याय उत्पन्न होती है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। अपने-अपने से होता है। उसमें यह निमित्त, उसमें यह निमित्त। समझ में आया? कहते हैं कि **पुद्गल तो जड़ है, इसके नैमित्तिकभाव से कुछ सुख-दु:ख आदि नहीं है...** आहाहा! आत्मा का राग-द्वेष मिथ्यात्व निमित्त और कर्मरूप पर्याय का होना नैमित्तिक। लेकिन कर्म में सुख-दु:ख नहीं है। .... सुख नहीं, वह कहते हैं, देखो!

नैमित्तिकभाव से कुछ सुख-दु:ख आदि नहीं है और जीव चेतन है, इसके निमित्त से भाव होते हैं, उनसे सुख-दुख आदि होते हैं... भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञान चेतनास्वरूप, उसमें जो भाव हो, अपने स्वभाव से भाव हो तो सुखरूप है। पर के निमित्त से भाव उत्पन्न हो तो दु:खरूप है। पुद्गल में तो अकेला परमाणु सुखरूप है या स्कन्ध दु:खरूप है, ऐसा है नहीं। अकेला परमाणु रहो, ... विभाव पर्याय बिना, सुखी है ऐसा नहीं, वह तो जड़ है। और अनन्त परमाणु का स्कन्ध इकट्ठे होकर केवलज्ञानावरणी प्रकृति का परिणमन हो। उत्कृष्ट। तो उस प्रकृति को दु:ख है? समझ में आया?

निमित्त से भाव होते हैं, उनसे सुख-दुख आदि होते हैं अत: जीव को स्वभाव-भावरूप रहने का और नैमित्तिकभावरूप न प्रवर्त्तने का उपदेश है। भावलिंग कहा न पहले? भगवान! तेरा स्वभावभाव प्रगट है, प्रभु! शरण कोई दूसरी चीज़ नहीं। तीन काल, तीन लोक में नहीं। समझ में आया? **जीव को स्वभाव-भावरूप रहने का...** स्वभाव रहने का पहले कहा। जानना-देखना स्वभावभाव है, पहले कहा। जानना-देखना स्वभावभाव, ज्ञातादृष्टा का परिणाम वह स्वभावभाव।

और नैमित्तिकभावरूप न प्रवर्त्तने का उपदेश है। कर्म के निमित्त से नैमित्तिक तेरे में मिथ्यात्व राग-द्वेष है ऐसे नहीं प्रवर्तना, भगवान! वह तो दुःखरूप है। मार्ग तो यह है, भाई! समझ में आया कुछ? और **जीव के पुद्गल कर्म के संयोग देहादिक द्रव्य का सम्बन्ध है, इस बाह्यरूप को 'द्रव्य' कहते हैं और 'भाव' से द्रव्य की प्रवृत्ति होती है,...** भाव हो तो द्रव्य की प्रवृत्ति उसके कारण से भले जड़ में हो, ऐसे द्रव्य की प्रवृत्ति होती है। **इस प्रकार द्रव्य-भाव का स्वरूप जान कर स्वभाव में प्रवर्त्ते विभाव में न प्रवर्त्ते, उसके परमानन्द सुख होता है; और विभाव रागद्वेषमोहरूप प्रवर्त्ते, उसके संसारसम्बन्धी दुःख होता है।**

द्रव्यरूप पुद्गल का विभाव है, इस सम्बन्धी जीव को दुःख सुख नहीं होता... क्या कहा? द्रव्यलिंग में कहते हैं, कोई भी पर्याय हो....

प्रवचन-१०६, गाथा-२ से ४, सोमवार, असोज शुक्ल ५, दिनांक ०५-१०-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़ चलता है। उसकी दूसरी गाथा का भावार्थ। पीछे आया है। **विभाव रागद्वेषमोहरूप प्रवर्त्ते, उसके संसारसम्बन्धी दुःख होता है।** है? पुराना है, उसमें पहली पंक्ति। पुराना है न? **विभाव रागद्वेषमोहरूप प्रवर्त्ते, उसके संसारसम्बन्धी दुःख होता है।** है? दूसरी-दूसरी। देखो! क्या कहते हैं? कि विभाव तो जड़ में भी होता है और चैतन्य में भी विभाव होता है। चैतन्य में विभाव क्या? मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव, शुभ-अशुभभाव वह विभावभाव है। और यह शरीरादि भाव है, वह भी विभावभाव जड़ का है। जड़ का विभावभाव दुःख का, सुख का कारण नहीं।

आत्मा में शुद्ध चैतन्यस्वरूप अपना ज्ञान-दर्शन स्वभाव है। उस तरफ का परिणाम करना, ज्ञान-दर्शन, ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम वह स्वभावभाव है, वह सुखरूप है। और स्वभावभाव से विपरीत चाहे तो पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, मिथ्यात्व, वह सब विभावभाव है। ये दुःख है। समझ में आया? विभावभाव दुःख है उसको छोड़ने का और स्वभावभाव का परिणमन करने का उपदेश है। समझ में आया?

आत्मा, वस्तु जो आत्मा है सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर भगवान ने जो आत्मा देखा है, वह तो चैतन्यमूर्ति ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि स्वभावमय आत्मा है। उसका जो परिणाम-स्वभाव का परिणाम अन्तर्मुख दृष्टि करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो परिणाम, वीतरागी परिणाम (हुआ) वह आत्मा का स्वभावभाव है। वह आत्मा को सुखरूप है। और जितना पुण्य और पाप, मिथ्यात्वभाव आदि विकारी भाव है, वह दुःखरूप है। और शरीर जड़ादि का विभावभाव है, वह कोई सुख-दुःख का कारण है नहीं। वह तो जड़ है। जड़ विभाव हो तो कोई दुःख नहीं। अकेला परमाणु हो तो उसको कोई सुख नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! क्या कहा? देखो!

विभाव रागद्वेषमोहरूप प्रवर्त्ते, उसके संसारसम्बन्धी दुःख होता है। पुण्य-पाप का भाव मेरा है, मैं उसका हूँ। और राग-द्वेष का भाव वह विभाव है, वह दुःख है। और **द्रव्यरूप पुद्गल का विभाव है, इस सम्बन्धी जीव को दुःख सुख नहीं होता...** शरीर सम्बन्धी पुद्गल की पर्याय विभाव है। शरीर के विभाव से आत्मा को सुख-दुःख है नहीं। समझ में आया? **द्रव्यरूप पुद्गल का विभाव है,...** चाहे तो लक्ष्मी है, वह भी द्रव्यरूप पुद्गल की विभाविक पर्याय है। लड्डू-बड्डू है, वह भी जड़ की विभाविक पर्याय है। यह शरीरादि जड़ की विभाविक अवस्था है। वाणी भी जड़ की विभाविक अवस्था है। मन का रजकण भी विभाविक अवस्था है। वह कोई दुःख का कारण नहीं। जड़ को। समझ में आया? जड़ अपने को भी दुःख का कारण नहीं है। समझ में आया?

इस सम्बन्धी जीव को दुःख सुख नहीं होता अतः भाव ही प्रधान है,... अपना चैतन्य स्वभाव, द्रव्य वस्तु, परमानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा, उसका सम्यग्दर्शन, उसका सम्यक्ज्ञान और उसमें लीनता ऐसी मोक्षमार्ग की पर्याय, भाव ही प्रधान है। द्रव्य की कोई कीमत है नहीं। समझ में आया? **ऐसा न हो तो केवली भगवान को भी सांसारिक सुख-दुःख की प्राप्ति हो,...** क्या कहते हैं? आत्मा में विभावभाव है, वही दुःख है। यदि ऐसा न हो तो केवली को शरीरादि विभावभाव तो है। समझ में आया? केवली को शरीर है, वाणी है, कर्म है, (वह) विभावभाव है। तो जड़ को भी दुःख नहीं और केवली को भी विभावभाव से अपने में दुःख नहीं। न्याय समझ में आता है? आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : जड़ का परिणमन...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको दु:ख नहीं। और उससे अपने में दु:ख नहीं। आहाहा! समझ में आया? न्याय समझते हैं कि नहीं? यह तो सादी भाषा की बात है।

भगवान आत्मा... यहाँ यह सिद्ध करना है कि द्रव्यलिंग जो है-शरीर का नग्नपना, वस्त्ररहितपना, व्यवहार आहार-पानी की क्रिया वह सब तो जड़ की पर्याय है। द्रव्यलिंग है वह तो जड़ की पर्याय है। उससे कोई आत्मा को सुख-दु:ख होता नहीं। अपने में सुख होता है, वह अपना आत्मा चैतन्यमूर्ति सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप, ऐसी दृष्टि करने से, सम्यग्दर्शन करने से अपने में स्वभावभाव सुखरूप भाव होते हैं। और पुण्य और पाप का भाव होता है, लेकिन पुण्य-पाप मेरा है ऐसा मिथ्यात्वभाव है, वह दु:खरूप है। आहाहा! समझ में आया? तो विभावभाव छोड़ने का और स्वभावभाव करने का भगवान का उपदेश है।

ऐसा न हो तो केवली भगवान को भी सांसारिक सुख-दु:ख की प्राप्ति हो, परन्तु ऐसा नहीं है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा, उसको विभावभाव है नहीं। मिथ्यात्व राग-द्वेष है नहीं। तो सुखी है। शरीर की अवस्था विभाव है, जड़ है लेकिन उस जड़ को दु:ख नहीं, भगवान को दु:ख नहीं। बराबर है? '...'! न्याय-लॉजिक से तो बात सिद्ध करनी है न? न्याय समझना पड़ेगा कि नहीं। ऐसे-ऐसे माने सम्प्रदाय में पड़ा और कुछ खबर नहीं और धर्म हो जायेगा, ऐसा नहीं।

कहते हैं कि जितने प्रकार का पुण्य-पाप का विकल्प जो है, वह मेरा है, ऐसा मिथ्यात्वभाव और पुण्य-पाप का भाव दोनों विभावभाव है, वह दु:खरूप है। समझ में आया? और उससे रहित अपना चैतन्य स्वभाव, जिसमें-आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की, प्रतीति, ज्ञान और लीनता, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम जीव को सुखरूप है। बाह्य जीव कोई सुखरूप नहीं, बाह्य चीज़ कोई दु:खरूप नहीं। पुण्य-पापभाव दु:खरूप है, वह सुखरूप नहीं। देवीलालजी! आहाहा!

कहते हैं कि जड़ के विभाव से यदि भगवान आत्मा को दु:ख हो तो केवली को भी शरीर जड़ तो है। जड़ में विभावभाव है। यह शरीर तो मिट्टी है, जड़ की जड़ पर्याय

मिट्टी है यह तो। विभावपर्याय जड़ को भी दुःखरूप नहीं और केवली को दुःखरूप नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! यह तो सीधी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : बाह्य सामग्री...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य सामग्री सुख-दुःख का कारण नहीं और बाह्य सामग्री जड़ में विभाव है, उसको दुःख नहीं। नेमिदासभाई! ये पैसे-वैसे, हजीरा, मकान, आबरू, कीर्ति वह जड़ की विभाव अवस्था है। तो जड़ की अवस्था को दुःख नहीं और उससे आत्मा को दुःख नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे आत्मा को दुःख नहीं।

मुमुक्षु : उससे सुख है..

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख भी नहीं। उसका तो प्रश्न ही कहाँ रहा? समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ... उसमें दुःख नहीं और सुख भी नहीं। सुख है। भगवानजीभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : भावप्रधान सुख...

पूज्य गुरुदेवश्री : भावप्रधान सिद्ध करना है न? तो स्वभाव भगवान आत्मा का स्वभाव चैतन्यमूर्ति की दृष्टि-ज्ञान और रमणता ही सुखरूप है। दुनिया में पैसेवाले, मिट्टीवाले सुखी है, ऐसा मूढ मानते हैं। मूढ-पागल मानते हैं। प्रोफेसरजी! दो-पाँच-दस करोड़ रुपये आये, आबरू मिली, ५०-५० लाख की एक साल की कमाई है। सुखी है। धूल में भी नहीं है। पागल है। क्योंकि वह चीज़ सुख का कारण नहीं, वह चीज़ दुःख का कारण नहीं। सुख-दुःख उसमें नहीं है। समझ में आया? अज्ञानी ने कल्पना की है कि मुझे यह ठीक है। वह कल्पना तो मिथ्याभ्रम है, वह तो दुःख है। आहाहा! कहो, समझ में आया? और कल्पना जो विभावभाव है, वह अपनी पर्याय में स्वभाव से उल्टी दशा है। तो उसको छोड़। यदि तुझे धर्म करना हो और सुखी होना हो तो। और भगवान आत्मा आनन्दकन्द प्रभु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' सिद्ध स्वरूप ही अपना

प्रभु आत्मा है, उसकी दृष्टि लगाओ। उसकी दृष्टि लगाओ, उसका ज्ञान कर और उसमें लीन हो, वह मोक्षमार्ग ही सुखरूप है। समझ में आया? इन्द्र का इन्द्रासन सुखरूप नहीं, ऐसा कहते हैं। और इन्द्र का इन्द्रासन उसको सुखरूप या दुःखरूप जड़ को नहीं ऐसा कहते हैं। ऐई! नेमिदासभाई! ये सब तुम्हें सेठ और सुखी कहते हैं। बँगला है, पैसे है। ओहोहो! पागल है? आहाहा! पागल के गाँव बसता है। पागल-मूर्ख। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक तो पैसे रखना और मूर्ख कहना...

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे रख सके कौन? पैसे है, वह मेरा है ऐसी मान्यता है, वह भ्रम है और दुःख है। समझ में आया? शरीर सुन्दर हो, शरीर सुन्दर हो, वह आत्मा को सुख का कारण नहीं। वैसे दुःख का भी कारण नहीं। शरीर सुन्दर है तो सुख नहीं। जड़ को कैसा सुख? आहाहा! और शरीर में तीव्र रोग आया। महारोग, १६ रोग। तो शरीर को दुःख नहीं। और इस कारण से आत्मा में दुःख नहीं। आत्मा विभावभाव करे तो दुःख है। बात बराबर है? आहाहा!

देखो! मार्ग वीतराग का। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा इन्द्रों के बीच में समवसरण में ऐसा फरमाते थे। अरे! सुन तो सही, भगवान! भावप्रधान हमारा धर्म है। भाव का अर्थ-द्रव्यलिंग धारण किया, अट्ठाईस मूलगुण लिया, नग्न हुआ वह कोई सुखरूप नहीं। वह कोई धर्म नहीं। समझ में आया? और उसमें सुख नहीं। बाह्य से नग्नपना हुआ, उससे शरीर को सुख है? वह तो जड़ है। आहाहा! वैसे वह जीव में सुख का कारण नहीं। वह तो जड़ है। सुख का कारण तो भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का कन्द प्रभु आत्मा वो सुख का कारण है। उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसकी रमणता सुखरूप और सुख का कारण है। उससे उल्टा विभावभाव करना मिथ्यादर्शन, पुण्य में धर्म है, पाप में ठीक है, अनुकूलता में मुझे मजा है, ऐसी मिथ्यात्व भावना और साथ में राग-द्वेष (होना) वह दुःख है। समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसा है। बालक को भी समझ में आये ऐसा है। उसमें ऐसी कोई चीज़ नहीं कि संस्कृत, व्याकरण पढ़ा हो तो समझ में आया? ऐसी कोई चीज़ नहीं। यह तो बालक चार कक्षा तक पढ़ा हो, उसको भी समझ में आये

ऐसी चीज़ है। समझ में आया? बात ख्याल में तो आनी चाहिए कि नहीं? क्या चीज़ है? ऐसे ही अन्धश्रद्धा से चले तो ऐसे धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

द्रव्यरूप पुद्गल का विभाव है, इस सम्बन्धी जीव को दुःख सुख नहीं होता... शरीर का विभाव परिणमन हो, वाणी का हो, उसमें आत्मा को क्या? (उससे) सुख-दुःख है? आहाहा! **ऐसा न हो तो केवली भगवान को भी सांसारिक सुख-दुःख की प्राप्ति हो, परन्तु ऐसा नहीं है।** बराबर है? **इस प्रकार जीव के ज्ञान दर्शन तो स्वभाव है और रागद्वेषमोह ये स्वभाव-विभाव हैं...** क्या कहते हैं? इस प्रकार यह आत्मा जानन-देखन स्वभाव ऐसा जो परिणाम, जानना-देखना परिणाम वह स्वभाव है और पुण्य-पाप का मिथ्यात्व आदि भाव वह विभाव है। मोह के निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ मिथ्यात्व और राग-द्वेष विभावभाव दुःखरूप है। अपने स्वभाव के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ ज्ञान-दर्शन परिणाम वह सुखरूप है। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार जीव के ज्ञान दर्शन तो स्वभाव है और रागद्वेषमोह... ज्ञान-दर्शन का परिणाम स्वभाव, **रागद्वेषमोह ये स्वभाव-विभाव हैं...** एक पंक्ति में दोनों समा दिये। आहाहा! भगवान आत्मा जानन-देखन का परिणमन, सम्यग्दर्शन-ज्ञान का परिणमन हुआ, वह परिणाम स्वभावरूप है, वह परिणाम सुखरूप है। और जितना राग-द्वेष-मोहभाव है, वह विभावभाव है, वह दुःखरूप है बस। परचीज़ दुःखरूप है कि परचीज़ सुखरूप है, ऐसा है नहीं।

उनमें जीव का हित-अहितभाव प्रधान है,... देखो! पुद्गल लिया। **पुद्गल के स्पर्शादिक और स्कन्धादिक स्वभाव-विभाव हैं।** क्या कहते हैं? यह जड़ है न? तो एक परमाणु में जो स्पर्शादिक परिणमन है, वह स्वभाव है और स्कन्ध का परिणमन है, वह विभाव है। **पुद्गल के स्पर्शादिक और स्कन्धादिक स्वभाव-विभाव हैं। उनमें जीव का हित-अहितभाव प्रधान है,...** सबमें हित-अहितभाव प्रधान है। हितभाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, अहितभाव मिथ्यादर्शन-राग-द्वेष परिणाम।

पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी प्रधान नहीं है। क्या कहते हैं? कि द्रव्यलिंग ले लिया, मुनिपना, नग्नपना, वस्त्र छोड़ दिया, स्त्री-कुटुम्ब छोड़ दिया वह कोई हित-अहितभाव का कारण नहीं। आहाहा! अमरचन्दभाई! वह हित-अहित नहीं है। आहाहा! परवस्तु।

समझ में आया? **पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी प्रधान नहीं है। बाह्य द्रव्य निमित्तमात्र है,...** लो! बाह्य द्रव्य तो निमित्तमात्र है। **उपादान के बिना निमित्त कुछ करता नहीं है।** अपने परिणाम में विभावभाव करे तो बाह्य चीज़ को निमित्त कहने में आता है। वह कोई निमित्त विभावभाव उत्पन्न कराता नहीं। और अपना परिणाम स्वभावभाव करे तो उसमें भी बाह्य द्रव्यलिंग निमित्त कहने में आता है। लेकिन स्वभावभाव को निमित्त करवाता नहीं। समझ में आया? बाह्य तो निमित्तमात्र जड़ पुद्गल की पर्याय नग्न दिगम्बर लिंग है। **उपादान के बिना निमित्त कुछ करता नहीं है।** देखो! भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपादान से जो परिणमन करे तो सुखरूप है। बाह्य द्रव्यलिंग उसको निमित्त कहने में आता है। और आत्मा अपने को भूलकर मिथ्यात्व राग-द्वेष परिणाम करे, वह दुःखरूप है। बाह्य चीज़ है, उसको निमित्त कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं... अन्तर...

निमित्त, नैमित्तिक को प्रसिद्ध करते हैं। ऐसा है तो अन्दर ऐसा होना चाहिए। अविनाभाव से। परन्तु ऐसा तो अनन्त बार हुआ नहीं। द्रव्यलिंग तो अनन्त बार हुआ, भावलिंग तो हुआ नहीं। वह बात तो यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

उपादान के बिना निमित्त कुछ करता नहीं है। कुछ करता नहीं का अर्थ— उपादान हो तो कुछ करता नहीं। परन्तु उसको निमित्त कहने में आता है। **यह तो सामान्यरूप से स्वभाव का स्वरूप है...** वह तो सामान्यरूप से स्वभाव का स्वरूप है। अपने स्वभाव से शुद्धता प्रगट करे तो सम्यग्दर्शन धर्म होता है। परचीज़ को निमित्तमात्र कहने में आता है। स्वभाव सम्यग्दर्शन प्रगट करे नहीं तो द्रव्यलिंग को निमित्त भी कहने में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा है। यहाँ तो एक अंश भी गड़बड़ चले नहीं। चीज़ ऐसी है।

और इसी का विशेष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो जीव का स्वभाव-भाव है,... लो! सामान्यरूप से स्वभाव का स्वरूप है। क्या कहते हैं? चैतन्य द्रव्य का स्वभाव का परिणमन हुआ, वह सामान्य स्वभावरूप से। शुद्ध चैतन्यद्रव्य का सामान्यरूप से सम्यग्दर्शन-चारित्र का भेद न करो तो स्वभाव का परिणमन, वह सामान्य स्वभाव है।

यह जीव का मोक्षमार्ग और सुखरूप है। **और इसी का विशेष...** कहो। किसका? वह सामान्य स्वभाव स्वरूप का। सामान्य स्वभाव स्वरूप का अर्थ—उस द्रव्य की बात यहाँ नहीं। आत्मा त्रिकाली जो द्रव्य सामान्य है, उसके आश्रय से शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट किया, वह सामान्यरूप से स्वभाव है। सामान्यपने वह तीनों स्वभाव है। विशेषरूप से तीन भाग है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। समझ में आया? पण्डित जयचन्द्र(जी) ने भी कितना स्पष्टीकरण किया, देखो!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मानते हैं न। स्वभावभाव सामान्यरूप से सुखरूप और विभावभाव दु:खरूप। उसका विशेष। क्या कहा, समझ में आया?

सामान्यपने स्वभावभाव सुखरूप और विभावभाव दु:खरूप। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। हुआ? अब सामान्य स्वभाव है, वह क्या? कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्य है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र तीनों को संक्षेप में सामान्य स्वभाव कहने में आता है। यह स्वभाव आत्मा को सुखरूप और मोक्ष का मार्ग है। **और इसी का विशेष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो जीव का स्वभाव-भाव है,...** लो! विशेष स्वभावभाव। सम्यग्दर्शन, आत्मा का निर्विकल्प अनुभव और सम्यग्ज्ञान-आत्मा का ज्ञान और आत्मा में लीनता, वह तीन प्रकार के स्वभाव का विशेष भाव है। कहो, समझ में आया?

इसमें (तीन में) सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में भी सम्यग्दर्शन मुख्य है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान-चारित्र सब होता नहीं, झूठ है। आहाहा! समझ में आया? जैसे भावलिंग बिना द्रव्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं। उसको एक ओर रख दिया। अब तीन प्रकार का जो स्वभाव है, उसमें भी सम्यग्दर्शन हो तो तीन प्रकार का स्वभाव कहने में आता है। सम्यग्दर्शन न हो तो ज्ञान-चारित्र भी है नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

इनमें (तीनों में) विशेष सम्यग्दर्शन... अर्थात् उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों प्रकार का आत्मा का जो स्वभाव परिणाम है। **उसमें सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है।** यह भावप्रधान की व्याख्या है। **'भावो हि पढमलिंगं'** ऐसा कहा था न? दूसरी गाथा का

अर्थ चलता है। **'भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।'** द्रव्यलिंग परमार्थ चीज़ है नहीं। तो फिर **'भावो हि पढमलिंगं'** अर्थ क्या? मुख्य तो स्वभावभाव, वीतरागभाव आत्मा का, वह भावलिंग है। और उसका तीन भेद ज्ञान-दर्शन-चारित्र। और उसमें भी सम्यग्दर्शनभाव वह **'पढमं'**। समझ में आया? **सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है।** देखो! कल आया था नहीं? शुभ-अशुभभाव का मूल मिथ्यात्व है। पण्डितजी! कल आया था। शुभ-अशुभभाव का मूल मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : शुभ है या अशुभ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ... शुभ-अशुभभाव का मूल मिथ्यात्व है। सुबह में आया था, वह दूसरी चीज़ है।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व से शुभ-अशुभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व से शुभ-अशुभ होता है। मिथ्यात्व गया, बाद में शुभ-अशुभ है ही नहीं। समझे? इसलिए यहाँ सम्यग्दर्शन प्रधान कहा। समझ में आया? शुभ-अशुभभाव तो... भले दो को... परन्तु कहते हैं कि शुभ-अशुभ विभावभाव की उत्पत्ति का मूल क्या? मूल मिथ्यात्व। विभ्रम। भ्रम-अज्ञान। वह मूल है। उसमें से दो भाव उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दर्शन के मूल में क्या है? सम्यग्दर्शन-त्रिकाली चैतन्य का भान हुआ तो उसमें से शुद्ध परिणति ही उत्पन्न होती है। शुद्ध ही उत्पन्न होती है। अशुद्धता उत्पन्न होती नहीं। आहा! समझ में आया? जगत को न्याय से चीज़ नहीं बैठती न? बाह्य क्रिया और बहुत तो शुभ परिणाम की क्रिया में सर्वस्व मान लिया। यहाँ तो कहते हैं कि शुभ परिणाम की उत्पत्ति का मूल तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? और मिथ्यात्व का नाश करने से जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, वह शुद्ध (की) उत्पत्ति का कारण है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का ध्येय वस्तु, वह शुद्ध की उत्पत्ति का कारण है। अशुद्ध की उत्पत्ति का कारण सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहारचारित्र है तो समकित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी व्यवहारचारित्र होता नहीं। मिथ्यात्व होता है। व्यवहारचारित्र तो विभावभाव है। विभावभाव है तो शुद्ध उत्पन्न होता है? समझ में

आया ? अन्तर की श्रद्धा का मार्ग समझना महा अपूर्व बात है। दूसरी बात तो सब भ्रम है। समझ में आया ? यहाँ तो व्यवहारचारित्र का अर्थ ? राग की मन्दता का परिणाम। वह तो विभाव है और विभाव की उत्पत्ति का कारण तो मिथ्यात्व है। समझ में आया ? और विभाव समकितदृष्टि का कारण ? भाई ! गजब बात करते हैं न। प्रभु ! क्या करते हो ? जो विभावभाव है, उसकी उत्पत्ति का कारण मिथ्यात्वभाव है। और वही विभावभाव सम्यग्दर्शन का कारण है। कितनी उल्टी प्रतीति और अन्दर में शल्य बड़ा पड़ा है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या निमित्त है ? है ही नहीं। क्या मिले ? अपने स्वभाव की दृष्टि करे तो निमित्त उनको है, ऐसा कहने में आता है। नहीं तो निमित्त कोई सुख का कारण... द्रव्यलिंग सुख का कारण नहीं, ऐसा कहा या नहीं ? ... सम्यग्दर्शन का कारण नहीं। भाई !

यहाँ तो क्या कहा ? कि द्रव्यलिंग सुख का, दु:ख का कारण नहीं। क्योंकि वह तो जड़ की-शरीर की अवस्था ... समझ में आया ? तो जड़ की अवस्था दु:ख का कारण नहीं, सुख का कारण नहीं। विभाव दु:ख का कारण और स्वभाव सुख का कारण। और स्वभाव में भी द्रव्यलिंग जड़ की दशा उसका कारण नहीं। क्योंकि वह तो दु:ख का कारण भी नहीं और सुख का भी कारण नहीं। समकित का कारण नहीं और दु:ख -विभाव का कारण भी नहीं। समझ में आया ? मूल बात ऐसी है कि चैतन्य की दृष्टि के विषय की मुख्यता-प्रधानता दृष्टि में आती नहीं। प्रधानता दूसरी चीज़ की लगती है। ऐसी बात है।

किसी भी तरह दृष्टि में या तो राग की मन्दता या तो द्रव्यलिंग की क्रिया, (उसकी) महत्ता है। अन्दर उससे कुछ-कुछ लाभ होगा। समझ में आया ? वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! महामिथ्या शल्य है। बड़ा कठिन जगत को। अर्थ कैसा सुन्दर किया है, देखा न ? भाई ने अर्थ किया है। पण्डित जयचन्द्र(जी) ने यह अर्थ तो किया है। गृहस्थाश्रम में पण्डित थे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके घर रहा। तुम भी तो पण्डित हो। छोटा पण्डित है। आहाहा! धवल का अर्थ। यह स्वभावभाव मिला, उसको सारा धवल मिल गया। बड़े-बड़े... 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो...' आता है या नहीं? छहढाला में। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो' तेरे लाख शास्त्र और करोड़ शास्त्र हो। आगम में कहाँ सम्यग्दर्शन है? आगम में-शास्त्र में सम्यग्दर्शन है?

मुमुक्षु : उसमें तो ज्ञान नहीं है, ऐसा आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तो ज्ञान भी नहीं। शास्त्र में तो ज्ञान भी नहीं। और शास्त्र तो जड़ की पर्याय विभाविक पर्याय है। विभाविक पर्याय को सुख-दुःख नहीं और विभाविक पर्याय जीव में सुख-दुःख का कारण नहीं। समझ में आया? आहाहा! मिथ्यात्व की चीज़ क्या है और मिथ्यात्व कैसे उत्पन्न होता है, उसका पता नहीं। महापाप तो यह है। कसाईखाना और सात व्यसन के पाप से भी बड़ा पाप मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के पाप की तो कोई खबर नहीं। आहाहा! ऐसी बात चली थी। पहले से इस प्रकार के अभ्यास में मान्यता चली। उसमें आत्मा का खून होता है। खबर नहीं कि मैं क्या करता हूँ? क्या मानता हूँ?

यहाँ तो स्पष्ट कर दिया, देखो! जीव में स्वभावभाव जो त्रिकाली है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगट करना, पर के अवलम्बन के बिना, निमित्त के आश्रय बिना द्रव्य के आश्रय से प्रगट करना, वह सुखरूप है। इस सुखरूप में दूसरी कोई चीज़ सुखरूप नहीं। और अपना स्वभाव भूलकर पर से कोई लाभ होगा, ऐसा मिथ्यात्वभाव और शुभ-अशुभभाव (होना), वह विभावभाव है, वह दुःखरूप है। उस दुःखरूप में बाह्यलिंग कोई कारण है नहीं। निमित्त कहने में आता है। कब? कि उपादान में ऐसा हो तो निमित्त कहने में आता है। यह बात तो आ गयी।

इसके बिना सब बाह्यक्रिया मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं,... किसके बिना? सम्यग्दर्शनभाव प्रधान है। समझ में आया? श्रेणिक राजा... भरत चक्रवर्ती समकित था। छियानवें हजार स्त्री थीं। छियानवें करोड़ पैदल थे, छियानवें करोड़ गाँव थे। तो क्या वह चीज़ दोष करती है? वह तो विभाविक पर्याय पर की है। समझ में आया? क्या आत्मा को वह दोष उत्पन्न कराते हैं? और समकित में विघ्न करती है वह चीज़? यह

श्रद्धा। ऐसा कहते हैं कि यह तो बड़े लोगों की बात है। हमारे जैसे साधारण की बात नहीं। साधारण की बात क्या? सिद्धान्त तो एक है या दो सिद्धान्त है? सिद्धान्त तो एक ही बात है। चाहे तो इतनी ऋद्धि हो, चाहे तो नग्न मुनि हो और बाह्य में वस्त्र का धागा भी न हो। परन्तु वह बाह्यलिंग है, वह जड़ की पर्याय है, उससे मुझे लाभ होगा, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है। मूल तत्त्व ऐसा है। इसमें किसी की सिफारिश चले नहीं। सिफारिश कहते हैं न? सिफारिश नहीं चलती। मार्ग तो ऐसा है। इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र यह मार्ग कहते हैं। समझ में आया? इसके सिवा दूसरा मार्ग माने तो मिथ्यात्व है।

इसके बिना सब बाह्यक्रिया मिथ्यादर्शन... देखो! अपना शुद्ध स्वरूप, उसकी सम्यग्दृष्टि बिना बाह्य क्रिया मिथ्यादर्शन कहते हैं। क्यों? क्योंकि बाह्य क्रिया अपनी है और उससे मुझे लाभ होगा, ऐसा भाव पड़ा है उसमें। **मिथ्याज्ञान-चारित्र हैं, ये विभाव हैं...** वह संसार का कारण है। **इस प्रकार जानना चाहिए।** बहुत अच्छा कहा है। **'भावो हि पढमलिंगं'** की व्याख्या की, हाँ! **'भावो हि पढमलिंगं'** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मुख्य भावप्रधान है। उसमें भी सम्यग्दर्शन मुख्य लेना।

कोई ऐसा कहे कि भाई! दर्शन-ज्ञान-चारित्र भावलिंग पहले प्रगट हो। बाद में नग्न मुनि वस्त्र-पात्र छोड़ देना। उसका निषेध करने को कहा है। उसमें सम्यग्दर्शन भावप्रधान है। तीनों भाव आये और बाद में द्रव्यलिंग करना, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

गाथा-३

आगे कहते हैं कि बाह्यद्रव्य निमित्तमात्र है इसका 'अभाव' जीव के भाव की विशुद्धता का निमित्त जान बाह्यद्रव्य का त्याग करते हैं

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स।।३।।

भावविशुद्धिनिमित्तं बाह्यग्रंथस्य क्रियते त्यागः।
बाह्यत्यागः विफलः अभ्यन्तरग्रन्थयुक्तस्य।।३।।

नित भाव शुद्धि अर्थ बाहर ग्रन्थ का परित्याग है।
अन्तः परिग्रह-युक्त के बहिरंग त्याग भि व्यर्थ है।।३।।

अर्थ – **बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है, परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह रागादिक हैं, उनसे युक्त के बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है।**

भावार्थ – **अन्तरंग भाव बिना बाह्य त्यागादिक की प्रवृत्ति निष्फल है, यह प्रसिद्ध है।।३।।**

गाथा-३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि बाह्यद्रव्य निमित्तमात्र है... बाह्य तो निमित्तमात्र है। यदि अपने से शुद्ध उपादान प्रगट करे तो। **'इसका अभाव' जीव के भाव की विशुद्धता का निमित्त...** है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो प्रगट किया हो तो बाह्य चीज़ है, उसको निमित्त कहने में आता है। ऐसा कारण **जान बाह्यद्रव्य का त्याग करते हैं–** इस कारण से पर का लक्ष्य छोड़ने का उपदेश कहने में आता है।

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स।।३।।

अर्थ – बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है,... अन्दर शुद्धभाव प्रगट करने में उस बाह्य चीज़ को निमित्त कहने में आता है। तो लक्ष्य छोड़ दे। निमित्त का लक्ष्य छोड़ दे और स्वभाव का लक्ष्य कर। समझ में आया? **परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह रागादिक हैं, उनसे युक्त...** है। अभ्यन्तर परिग्रह तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष सहित है। **उनसे युक्त के बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है।** अन्दर में अज्ञान और राग-द्वेष का त्याग न हुआ तो बाह्य त्याग तो निष्फल है। कुछ लाभदायक है नहीं। समझ में आया? भावपाहुड़ चलता है। समझ में आया?

कहते हैं ने। अब आगे कहेंगे। यूँ तो अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण किया। क्यों उससे लाभ न हुआ? उपादान अन्तर द्रव्य की दृष्टि हो तो बाह्य का त्याग करना, ऐसा निमित्त का कथन है। छोड़ दे बाहर का। ऐसे। ऐसे तो बाह्य अनन्त बार छोड़ा। परन्तु भाव प्रगट किया नहीं तो उसका सब निष्फल है। आहाहा!

भावार्थ – अन्तरंग भाव बिना बाह्य त्यागादिक की प्रवृत्ति निष्फल है, यह प्रसिद्ध है। यह तो प्रसिद्ध है कहते हैं। अनन्त बार हुआ। फिर भी सम्यग्दर्शन बिना उसका कोई सफलपना हुआ नहीं। गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन प्रगट किया, यह प्रतिभाव का भाव का त्याग नहीं, निमित्त का त्याग नहीं। फिर भी उसका सम्यग्दर्शन सफल है। वह मोक्ष के मार्ग में चढ़ गया। मोक्षमार्गी जीव है। समझ में आया?

गाथा-४

आगे कहते हैं कि करोड़ों भवों में तप करे तो भी भाव बिना सिद्धि नहीं है–

भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो ।।४।।

भावरहितः न सिद्ध्यति यद्यपि तपश्चरति कोटिकोटी।
जन्मान्तराणि बहुशः लंबितहस्तः गलितवस्त्रः ।।४।।

शुध भाव बिन नहिं सिद्धि हो फिर भले चाहे तप करो।
बहुशः करोड़ों जन्म तक भुज लंब वस्त्र–विहीन हो।।४।।

अर्थ **– यदि कई जन्मान्तरों तक कोडाकोडि संख्या काल तक हाथ लम्बे लटकाकर, वस्त्रादिक का त्याग करके तपश्चरण करे तो भी भावरहित को सिद्धि नहीं होती है।**

भावार्थ **– भाव में मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्ररूप विभाव रहित सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप स्वभाव में प्रवृत्ति न हो तो कोड़ाकोड़ि भव तक कायोत्सर्गपूर्वक नग्नमुद्रा धारणकर तपश्चरण करे तो भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है,**

इस प्रकार भावों में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भाव प्रधान हैं और इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है, क्योंकि इसके बिना ज्ञान-चारित्र मिथ्या कहे हैं, इस प्रकार जानना चाहिए।।४।।

गाथा-४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि करोड़ों भवों में तप करे तो भी भाव बिना सिद्धि नहीं है- भावलिंग की व्याख्या है न?

भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो।।४।।

'लंबियहत्थो गलियवत्थो' लम्बे हाथ करके और वस्त्र बिना नग्न होकर खड़ा रहे। ऐसा कहते हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन बिना यह सब निरर्थक है। समझ में आया कुछ? भाषा कैसी कही है, देखो! **'लंबियहत्थो गलियवत्थो' 'गलिय'** अर्थात् वस्त्र बिना का। **'गलिय'** अर्थात् नाश। नग्नदशा।

अर्थ - यदि कई जन्मान्तरों तक... 'कई' अर्थात् अनन्तानन्त जन्म तक। कोडाकोडि संख्या काल तक... कोड़ाकोड़ी तो संख्या शब्द लिया है। अनन्त बार **हाथ लम्बे लटकाकर, वस्त्रादिक का त्याग करके... 'गलिय'** का अर्थ किया। **'गलिय'** अर्थात् पिघल गया अर्थात् नाश हो गया। **वस्त्रादिक का त्याग करके तपश्चरण करे तो भी भावरहित को सिद्धि नहीं होती है।** सम्यग्दर्शन की सिद्धि बिना उसको जन्म-मरण का लाभ मिटेगा नहीं। लाभ होगा जन्म-मरण का।

मुमुक्षु : देह पर भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देह पर का भाव नहीं। सम्यग्दर्शन के भाव बिना बाह्यलिंग की क्रिया से आत्मा को कुछ लाभ नहीं। बस, इतना। देह पर तो बहुत ममता होती है। परन्तु अन्दर में राग की एकताबुद्धि पड़ी है। उस एकता से छूटकर स्वभाव की एकता करता नहीं तो बाह्यलिंग कुछ लाभकारी है नहीं। शरीर से ब्रह्मचर्य लेकर तो नौवीं ग्रैवेयक गये, शरीर को खण्ड-खण्ड करे फिर भी क्रोध न करे। समझ में आया? परन्तु अभ्यन्तर

में स्वभाव की ओर के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं है तो पर के आश्रय में बुद्धि पड़ी है उसकी। शरीर आश्रित किया, रागादि किया वह मेरी (चीज़) है, मुझसे उत्पन्न होती है, ऐसी मिथ्यादृष्टि पड़ी है। समझ में आया?

जीव भगवान आत्मा द्रव्य, उसका आश्रय नहीं है तो उसको अजीव का आश्रय, जड़ की क्रिया में आश्रयबुद्धि पड़ी है। और जब चैतन्य का आश्रय नहीं है तो सम्यग्दर्शन -पर्याय नहीं है तो उससे उल्टी राग की पर्याय में अपनापना पड़ा है। दो बोल लिये हैं न? द्रव्यलिंगी को शरीराश्रित क्रिया और रागादि में ममता रहती है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। वहाँ भी बहुत अच्छी बात न्याय से कही है। जीवद्रव्य भगवान आत्मा, ऐसी दृष्टि नहीं है तो शरीरादि की क्रिया मेरी है, मैं करता हूँ... मैं करता हूँ... बराबर ध्यान रखकर शरीर ऐसा चलाता हूँ, ऐसी दृष्टि उसकी रहती है। और सम्यग्दर्शन का परिणाम नहीं तो आस्रव में अपनेपने की बुद्धि होती है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है। दुनिया अपनी कल्पना से उसको बताये। वह तो अनादि से किया है उसने। क्या कहते हैं? **भावरहित को सिद्धि नहीं होती है।**

भावार्थ – भाव में मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्ररूप विभावरहित... देखो! तीन विभावरहित। मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान-मिथ्या आचरण राग-द्वेष का, वह विभाव है। मिथ्यादर्शन / मिथ्याश्रद्धा। द्रव्यलिंग से मुझे लाभ होगा, राग-कषाय मन्द है, उससे मुझे लाभ होगा—ऐसा मिथ्यात्वभाव, उसके साथ राग-द्वेषभाव। वह तो विभावभाव है। मिथ्याज्ञान। क्योंकि राग में अपने ज्ञान को रोका है। ज्ञान स्व-परप्रकाशक है, उसकी दृष्टि तो की नहीं। और मिथ्याचारित्र। राग का परिणाम भले शुभ हो, परन्तु वह मिथ्या -चारित्र है। समझ में आया? स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन (होता है) और पर में लाभ है, ऐसा मिथ्यादर्शन। वह विभावभाव है। स्वभाव के आश्रय से सम्यक्ज्ञान; मात्र राग का ज्ञान और पर का ज्ञान, वह मिथ्यात्वज्ञान है। स्वभाव के आश्रय से स्थिरता, वह चारित्र; पर के लक्ष्य से ऐसे शुभभाव का आचरण, वह मिथ्याचारित्र है। समझ में आया? पण्डितजी! ऐसा कठिन लगे। दूसरा कोई सरल मार्ग होगा या नहीं? मार्ग ही यही है फिर सरल-कठिन मार्ग का प्रश्न ही कहाँ है? मार्ग ही यह है। समझ में आया?

भाव में मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्ररूप विभावरहित... तीनों

विभावभाव दु:खरूप है। उससे रहित। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप स्वभाव में प्रवृत्ति न हो...** इसके बिना इन तीनों में प्रवृत्ति नहीं होती। समझ में आया? जब तक मिथ्यादर्शन है, पुण्य परिणाम से धर्म, पुण्य परिणाम धर्म का कारण है, ऐसी बुद्धि पर ऊपर पड़ी है तो मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण है। उससे रहित **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप स्वभाव में प्रवृत्ति न हो...** मिथ्यादर्शन आदि का अभाव न करे तो स्वभाव की प्रवृत्ति न हो। स्वभाव में प्रवृत्ति न हो तो विभाव में प्रवृत्ति हो। ऐसा कहते हैं। क्या कहा?

फिर से। कहते हैं कि जब तक पुण्य परिणाम और देह की क्रिया में लक्ष्य है और ध्येय में वह है, तब तक तो मिथ्यादर्शन है। उस ओर ज्ञान का झुकाव है, वह मिथ्याज्ञान है। रागादि का परिणाम शुभ-अशुभ आदि मिथ्याचारित्र है। तीन से रहित हुए बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रवृत्ति नहीं होती। आहाहा! क्योंकि यहाँ प्रवृत्ति में पड़ा है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रवृत्ति नहीं होती। समझ में आया? पुण्यभाव में ही सब प्रवृत्ति पड़ी है। मिथ्यादर्शन है, मिथ्याज्ञान है, मिथ्याचारित्र है तीनों। उससे रहित हुए बिना सम्यग्दर्शन आदि में प्रवृत्ति नहीं होती। मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र के अभाव बिना स्वलक्ष्यी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रवृत्ति नहीं होती। ऐसा कहते हैं। नहीं होती।

कोड़ाकोड़ि भव तक कायोत्सर्गपूर्वक नग्नमुद्रा धारणकर... देखो! कोड़ाकोड़ी तो शब्द लिया है। चाहे जितना काल। अनन्तानन्त भव तक **कायोत्सर्गपूर्वक नग्नमुद्रा धारणकर तपश्चरण करे...** महीने-महीने के उपवास करे। समझ में आया? **तो भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है,...** तो सम्यग्दर्शन और मुक्ति की प्राप्ति उसको होती नहीं। ... बहुत कड़क है, ऐसा कहते हैं। कड़क कहो या जैसी है वैसी कहो, वस्तु तो यह है। तुम्हें रुचे नहीं, इसलिए कड़क लगे। ऐसे तो अनन्त भव में नग्नपना धारण किया, कहते हैं। और कायोत्सर्ग लिया। ध्यानमुद्रा। कायोत्सर्ग है न? नग्न मुद्रा। बिल्कुल वस्त्र का धागा नहीं। गलित वस्त्र और लम्बे हाथ। और तपश्चरण किया। बाह्य की क्रिया मुनिव्रत का भाव लिया। **तो भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है,...** ऐसा करे तो मुक्ति का थोड़ा तो लाभ होता होगा न? बेकार है। मजदूरी है। ... कष्ट बहुत, लाभ

में महापाप का लाभ। आहाहा! कष्ट का भाव, वह दुःखरूप विभावभाव है, उसका जिसने आश्रय लिया है, वह अनन्त भव करके उसमें रहे, फिर भी मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया?

इस प्रकार भावों में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भाव प्रधान हैं... देखो! ऐसी क्रिया में जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, उस भाव से जीव को लाभ होता है। स्वद्रव्य आश्रय से सम्यग्दर्शन (होता है), उसमें कोई विकल्प या पर की अपेक्षा ही नहीं है। समझ में आया? सम्यग्ज्ञान। अपने स्वरूप का ज्ञान। उसमें कोई शास्त्र की अपेक्षा भी नहीं। और चारित्र-जिसमें शुभभाव की भी अपेक्षा नहीं। ऐसे भाव में-ऐसे भाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भावप्रधान है। **इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है,...** फिर ऐसा कहा। .... **इसमें सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है।** दूसरी गाथा में। समझ में आया? तीसरी गाथा में भी वह लिया। दूसरी गाथा में भी वह आया। आहाहा! दर्शन है, वह आत्मा का अनुभव, निर्विकल्प अनुभव, वह मुख्य-प्रधान है। उसके बिना सब एक के बिना के शून्य हैं। अंक बिना के शून्य। आहाहा! बाह्य त्याग की, राग की... दूसरा भी बाह्य त्याग करे तो उसके ऐसा हो जाये। आहाहा! महिमा आती है मिथ्यादृष्टि को। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि मिथ्यात्व के त्याग की चीज़ जब तक नहीं है, तब तक उसको मिथ्यात्वभाव की प्रवृत्ति पड़ी है। उसमें अनन्त भव करे, तपस्या करे, त्याग करे, मर जाये फिर भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। ... कोड़ाकोड़ी तो नाम लिया है। बाकी अनन्त। अनन्त भव किया। श्रीमद् ने कहा है, अनन्त बार दीक्षा ली। श्रीमद् राजचन्द्र। नग्नपना अनन्त बार धारण किया, पंच महाव्रत अनन्त बार लिये। श्रीमद् लिखते हैं, हों! उन्होंने तो ऐसा लिया है कि अनन्त बार जैन का आचार्य हुआ। बाह्य व्यवहार। परन्तु अपने सम्यक् चैतन्यमूर्ति भगवान की दृष्टि बिना सब निष्फल है तेरा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अभव्य के लिये हैं, ऐसा (लोग) कहते हैं। ऐसा अर्थ किया है।

भाई! यह समय मिला है, बापू! ऐसा फिर से मिलेगा। ... आ गया न? उसके

बिना मिथ्यात्व का मिलान कैसे हो? ऐसा कहते हैं। ... कहते हैं कि भगवान!

मुमुक्षु : बाह्य त्याग...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। स्थानकवासी में कहते हैं। आप त्याग तो करो। बाह्य त्याग करके तो देखो। अरे! बाह्य त्याग तो अनन्त बार हुआ। सुन न।

मुमुक्षु : बाह्य त्याग तो किया है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : किया है न। बाह्य त्याग तो परवस्तु का त्याग ही है। उसमें कहाँ घुस गया है? छोड़ना, वह भी मिथ्यात्वभाव है। पर जड़ छोड़ूँ। तो जड़ क्या अन्दर घुस गया है तो छोड़ूँ? तेरा अधिकार है उस पर? बहुत सूक्ष्म है। उसको वह हजम होना बहुत कठिन है।

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रवृत्ति... जब तक मिथ्यादर्शन-ज्ञान की प्रवृत्ति में अन्दर पड़ा है, तब तक अन्तर की प्रवृत्ति कहाँ से आयेगी? और अन्तर की प्रवृत्ति में भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन प्रधान है। उसमें भी प्रधान सम्यग्दर्शन है। मूल है। सम्यग्दर्शन का मूल है द्रव्य। कारणपरमात्मा। उसमें कोई पर्याय भी नहीं, राग भी नहीं, निमित्त-फिमित्त कुछ भी नहीं। त्रिकाली भगवान ज्ञायकभाव कारणप्रभु, वह सम्यग्दर्शन का कारण है। पर्याय भी कारण नहीं, राग भी कारण नहीं, निमित्त कारण नहीं, देव-गुरु-शास्त्र भी कारण नहीं, प्रतिमा नहीं और भगवान पूजा, यात्रा, वह भी कारण नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : निमित्त की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ करे तो निमित्त कहते हैं। समझ में आया?

इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है, क्योंकि इसके बिना ज्ञान-चारित्र मिथ्या कहे हैं, इस प्रकार जानना चाहिए।

●●●

प्रवचन-१०७ बी, गाथा-३ से ५, शुक्रवार, पोष कृष्ण ३, दिनांक ११-०१-१९७४

भावपाहुड़ दो गाथायें पूरी हुईं, तीसरी गाथा।

आगे कहते हैं कि बाह्यद्रव्य निमित्तमात्र है... १३१ पृष्ठ पर है? **इसका 'अभाव' जीव के भाव की विशुद्धता का निमित्त जान बाह्यद्रव्य का त्याग करते हैं–** अर्थ में (स्पष्ट) करेंगे। तीसरी गाथा।

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स।।३।।

कहते हैं कि बाह्य स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा छोड़ दे और साधु हो परन्तु अभ्यन्तर में मिथ्यात्व न छोड़े और सम्यग्दर्शन न हो तो वह सब निष्फल है। समझ में आया?

***अर्थ* – बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है,...** निमित्त। **परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह रागादिक हैं, उनसे युक्त के...** अन्तर में राग के परिणाम, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति ऐसे शुभभाव, वे मेरे हैं और मुझे उनसे लाभ है, ऐसी जब तक दृष्टि है, तब तक उसे बाह्य का त्याग कुछ लाभदायक नहीं है। आहाहा! भाव का अधिकार है न यह? भाव में भी आत्मा... परद्रव्य के त्याग में तो निमित्तपना है। उसमें कोई आत्मा का लाभ नहीं। वह तो भाव राग के त्याग के लिये निमित्त का त्याग करता है। परन्तु जिसे अन्दर में राग का त्याग नहीं, (उसे वह त्याग कुछ लाभदायक नहीं)। आहाहा! यहाँ वीतरागभाव है न? चाहे तो वह दया, दान, भक्ति, भगवान की पूजा आदि का भाव हो, उस राग की जब तक अन्दर एकताबुद्धि है, तब तक का सब बाह्य त्याग उसे निष्फल है। कहो, समझ में आया? भगवान की भक्ति करो और खूब करो तो कल्याण हो जायेगा। यह बात एकदम झूठ है।

मुमुक्षु : भावयुक्त पूजा करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव क्या है? राग है। अशुद्ध राग है, अशुद्ध राग है। अशुद्ध राग में लाभ मानता है तो मिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग जगत से

अलग प्रकार का है। ... दया, दान, व्रत, तप में धर्म मनावे, वह भी शुभभाव है। कहीं दान में और भक्ति (करने में), यह मन्दिर बनाने के और भक्ति करना, बहुत धुन लगाना भगवान की, यह सब रागभाव है।

चैतन्य वस्तु भगवान आत्मा जो पुण्य और पाप के भाव से रहित और शुद्धभाव का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसकी दृष्टि में रागरहितपना जहाँ न आवे और सम्यग्दर्शन की शुद्धि चैतन्य के आश्रय से न हो, तब तक का सब त्याग, भक्ति, वह सब संसार खाते हैं। समझ में आया? स्त्री, पुत्र छोड़े, साधु हुए, जंगल में रहे, इससे क्या हुआ? जो छोड़ने का है, वह तो छोड़ा नहीं। अन्दर में जो शुभभाव है, उसकी एकता छोड़नी है, वह तो छोड़ी नहीं। बाह्य त्याग में क्या रहा? उसमें उसे क्या लाभ हुआ? जन्म-मरण का अन्त उसमें कुछ आनेवाला नहीं है। भाव...

कहते हैं कि **रागादिक हैं, उनसे युक्त के बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है।** अन्दर में राग का प्रेम है। चाहे तो भगवान की भक्ति हो, नामस्मरण हो, भगवान की धुन लगावे। धुन लगाओ, धुन लगाओ। भूल जाओ। क्या भूल जाये? भगवान को—अपने को। अपने को भूलकर भगवान की भक्ति की धुन। ऐसी राग की जब तक बुद्धि-प्रेम है, (तब तक तो संसार है)। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, प्रभु! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग तो दुनिया से अलग प्रकार का है।

कहते हैं कि **बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है, परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह रागादिक हैं,...** जिसे अन्दर राग के भाव की रुचि है, प्रेम है... आहाहा! वह तो मिथ्यात्व परिग्रह है। भारी सूक्ष्म बातें, भाई! भगवान की भक्ति और पंच महाव्रत के परिणाम, वह सब राग है। और राग का जब तक प्रेम है, तब उसे आत्मा के शुद्ध स्वभाव का प्रेम नहीं। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। आहाहा! जिसे राग का प्रेम है, उसे प्रभु का—स्वयं का प्रेम नहीं है। आहाहा! और जिसे अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा, उसकी जिसे दृष्टि और प्रेम हुआ, उसे राग का प्रेम नहीं रहता। राग होता अवश्य है। समझ में आया? आहाहा!

दृष्टि फेर से शुद्धि नहीं हुई, ऐसा कहते हैं। बाह्य त्याग किया, भक्ति की, व्रत पालन किये। आहाहा! परन्तु अन्तर वस्तु की शुद्धि भूतार्थ, सत्यार्थ प्रभु त्रिकाल,

उसका आश्रय लेकर शुद्धि करना चाहिए, वह शुद्धि नहीं की। आहाहा! समझ में आया? भगवानजीभाई! मुश्किल से बेचारा करता हो भक्ति, पूजा, दान, व्रत और तप, उसमें मानता हो कि यह करते-करते उसमें धर्म हो जायेगा। धीरे-धीरे होगा। अभी कहते थे न! आहिस्ता-आहिस्ता। परन्तु किसका आहिस्ता-आहिस्ता? राग करते-करते आहिस्ता-आहिस्ता सम्यग्दर्शन होगा? समझ में बात? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो वीतराग का मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर। ऐसा तो बहुत बार मंगलिक में बोलते हैं। केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं। नहीं आता? बोलते हैं न? मांगलिक में बोले, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं। परन्तु कहना किसे? जिसे जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नाम स्मरणादि का भाव राग है वह, उस राग की जिसे रुचि है, उसे मिथ्यात्व का परिग्रह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन बातें हैं।

भगवान चैतन्यस्वरूप राग—पुण्य के विकल्प से रहित प्रभु का स्वरूप है पूरा। प्रभु स्वयं, हों! भगवान है, वे तो दूसरे रहे, बाहर रह गये। ऐसे भगवान आत्मा के प्रति शुद्धि की रुचि की दृष्टि के बिना राग की एकता की बुद्धि हो, वहाँ सर्व त्याग करे, मुनिपना ले, भगवान की भक्ति करे, शरीर अर्पण कर दे। सब निष्फल है। निष्फल अर्थात्? धर्म के लिये निष्फल है। भटकने के लिये सफल है। आहाहा!

यह आया है न? प्रवचनसार में।... जो कोई महापुरुषार्थ भक्ति का, व्रत का, तप का, दान का, दया का भाव पुरुषार्थ करता है। अबुद्धा। परन्तु सम्यग्दर्शन बिना का। क्योंकि राग की क्रिया, वह मेरा धर्म है और राग करते-करते मुझे धर्म होगा। यह व्यवहार करते-करते शुद्धि होगी, ऐसे जो अबुद्धा, महाभागा पुण्यवन्त हो, दुनिया करोड़ों माने। आहाहा!.... वीर हो परन्तु मिथ्यादर्शन सहित है।... पराक्रम सफल है। जो चार गति फलती है, वह उसे फलेगी।...

उसके सामने जिसे तत्त्वदृष्टि हुई है, सम्यग्दर्शन की शुद्धि हुई है... आहाहा! राग हो, परन्तु राग से पृथक् जिसे आत्मा चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द का सागर जहाँ अन्दर डोल रहा है, ऐसे परमात्मस्वरूप की जिसे अन्तर्मुख होकर दृष्टि, अनुभव होकर ज्ञान हुआ है, वह बुद्धा है, ज्ञानी है, महाभाग है। पुण्यवन्त भी हो, जिसे लाखों लोग नमन करे परन्तु वास्तविक... वह वीर है। अपने आनन्द के स्वभाव में पुरुषार्थ करने को

वीर है। आहाहा! भारी कठिन, भाई!... उसका जो स्वभावसन्मुख का पराक्रम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का। ... उस परिणाम का फल अब संसार नहीं आयेगा। आहाहा! उसे भवभ्रमण रुक गया है। और मिथ्यादृष्टि अबुद्धा (जिसे) राग की रुचि है, यह तो भावपाहुड़ है न? इसे शुद्धभाव जो आत्मा का, चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसमें अशुद्धभाव का जो प्रेम है, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब मार्ग, भाई!

शुद्ध चैतन्यघन पवित्र पिण्ड प्रभु है। उसकी जिसे अन्तर्दृष्टि हुई है, उसे राग की एकता टूट गयी है। एकत्व निश्चयगत समय। स्वयं अपना स्वरूप अन्दर शक्ति पूरा सत्त्व है, आनन्द का नाथ है। ज्ञान का तो भण्डार है। श्रद्धा की शक्ति का सागर है। आनन्द से भरपूर तत्त्व है। वीतरागमूर्ति आत्मा है। आहाहा! उसकी जिसे दृष्टि और शुद्धि प्रगट हुई है, उसका सब सफल है। सफल अर्थात् धर्म के लिये सफल, संसार के लिये अफल है। आहाहा! मार्ग बहुत भाई ऐसा। लोगों को ऐसा दिया है न, जैन के नाम से अजैनपना दिया है। अजैन अर्थात् राग। राग को परोसा है। राग करो... यह राग करो... यह राग करो और राग करने से होगा। वह तो अजैनपना है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, अहो! जो रागादि से युक्त है। **बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है।** भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु, ऐसी सिद्धि जिसे सम्यग्दर्शन नहीं और राग की एकताबुद्धि पड़ी है, उन सबका त्याग, भक्ति और पूजा रण में चिल्लाने जैसा है। आहाहा! समझ में आया? उसका त्याग निष्फल है।

भावार्थ – अन्तरंग भाव बिना... अन्तर-अंग। शुद्ध चैतन्यघन का अंग अर्थात् निर्मल दृष्टि-ज्ञान और चारित्र। ऐसे **अन्तरंग भाव बिना बाह्य त्यागादिक की प्रवृत्ति निष्फल है,...** अर्थात् कि उसका फल संसार है। उसका फल कहीं मोक्ष और धर्म नहीं है। आहाहा! **यह प्रसिद्ध है।** यह तो प्रसिद्ध है, कहते हैं ऐसा। आहाहा!

चौथी गाथा।

आगे कहते हैं कि करोड़ों भवों में तप करे तो भी भाव बिना सिद्धि नहीं है– करोड़ों भव में मुनिपना ले, तपस्या करे, महीने-महीने के अपवास करे। शरीर को जीर्ण कर डाले, अपवास करके, आहार का त्याग करके, रस का त्याग करके। परन्तु शुद्धभाव

सम्यग्दर्शन बिना इन सबकी सिद्धि नहीं है। उसे धर्म नहीं और उसे मुक्ति नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो।।४।।

आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भगवान वीतरागदेव का सन्देश देते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का सन्देश देते हैं कि परमात्मा ऐसा कहते हैं, भाई!

अर्थ – यदि कई जन्मान्तरों तक... जन्मान्तरों अर्थात् जन्म से जन्म... जन्म से जन्म... करोड़ों। यद्यपि मनुष्यभव तो एक साथ करोड़ नहीं होते। क्योंकि बीच में-बीच में पशु आवे, और कोई मनुष्य हो। लगातार आठ भव भी मनुष्य हो और आठों भव में मुनिपना लेकर क्रिया, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करे। **जन्मान्तरों तक कोडाकोडि संख्या काल तक...** क्रोड़ाक्रोड़। ओहोहो! करोड़ को करोड़ गुणा गुणे इतने काल तक वह अपवास करे, व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, तपस्या करे और **हाथ लम्बे लटकाकर,...** अर्थात् कुछ परिग्रह हाथ में नहीं और **वस्त्रादिक का त्याग करके...** वस्त्र का धागा न रखे। नग्न मुनि हो। करोड़ों भव तक, करोड़ों वर्ष तक। आहाहा! **तो भी भावरहित को सिद्धि नहीं होती है।** परन्तु अन्तर में चैतन्यमूर्ति भगवान का सम्यग्दर्शन, परमात्मा स्वयं शुद्ध का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—ये तीन भाव। उसमें भी सम्यग्दर्शन मुख्य। आहाहा! ऐसे भाव बिना ऐसे करोड़ों भव करते-करते होगा, क्या होगा? धूल? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। उसी प्रकार यह राग की क्रिया करते-करते सम्यग्दर्शन होगा। मूढ है। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : बहुत कठिन बात पड़ेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें आगे तो अनन्त भव किये। आगे आयेगा अभी। आगे आयेगा। ऐसे निर्ग्रन्थरूप तो अनन्त बार तूने ग्रहण किये और छोड़े। द्रव्यलिंगी। सातवीं गाथा में है। **'गहिरउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं'** अनन्त संसार में क्या किया? आहाहा! अनन्त नग्नमुनि, हों! यह वस्त्रसहितवाले तो द्रव्यलिंगी भी नहीं हैं। जो वस्त्रसहित मुनिपना मानते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं, तो वे द्रव्यलिंगी भी नहीं हैं। आहाहा! गजब बात है, बापू! मार्ग वीतराग का झेलना...

परन्तु कोई नग्नमुनि होकर, वस्त्र को छोड़कर नग्न हो, ऐसा भी यदि जंगल में नग्नरूप से करोड़ों भव रहे, परन्तु जिसे आत्मद्रव्य चिदानन्द प्रभु का आश्रय और सिद्धि प्रगट नहीं, **'भूदत्थम'** भूतार्थ ऐसा भगवान सत्यार्थ ऐसा नित्यानन्द प्रभु, उसे जिसने ज्ञान की पर्याय में पकड़ा नहीं, उसकी सम्यग्दर्शन शुद्धि हुई नहीं, उसकी मुक्ति नहीं। आहाहा! लोगों को ... ऐसा चढ़ा दिया है न। ऐसी बात सुनते हुए उसे ऐसा लगे। अरर! व्यवहार का तो नाश कर डालते हैं। वे व्रत और तप में धर्म मनावे। तब वे और भगवान की भक्ति में धर्म मनावे। गुरु की भक्ति करो। गुरु की भक्ति, देव की भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण होगा। दोनों झूठे हैं। नवनीतभाई! शरीर के बलवान वे उपवास आदि में उतर गये। मन के बलवान जरा विचार में, इन बातों में उतर गये कि ऐसा आत्मा। समझे बिना... आहाहा! और कोई दान में और दया में उतर गये। क्योंकि नाम आवे न उसमें। धर्म के चार प्रकार। दान सेवत ... भावना। ऐई! चेतनजी कहते नहीं चार बोल? दान सेवत तद्भाव। यह दान और सेवा और सद्भाव चारों राग है। व्यवहार की बातें हैं। आहाहा! दान करे करोड़ों के, अरबों के, परन्तु वह शुभराग है। शरीर से शील पालन करे, वह भी शुभराग है। आहाहा! दान, शील, तप। अपवासादि करे, वह भी शुभराग है। भाव, वह शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? बापू! तेरे जन्म-मरण के चक्र। चौरासी के अवतार में डोल रहा है, भाई! एक अवतार के बाद एक... एक अवतार के बाद एक... अनन्त काल में इस आत्मा की दृष्टि और सिद्धि बिना। ऐसा अनन्त बार किया है परन्तु जन्म-मरण मिटे नहीं। आहाहा!

भावार्थ – भाव में मिथ्यादर्शन,... देखो!... लिया है न। मिथ्यादर्शन अर्थात्? यह शुभराग का कण भी मुझे धर्म है और यह धर्म का कारण है, ऐसा मिथ्यादर्शन। आहाहा! **मिथ्याज्ञान,...** स्वस्वरूप का ज्ञान छोड़कर इस राग का और पर का, शास्त्र का ज्ञान, वह सब मिथ्याज्ञान है। आहाहा! भगवान आत्मा...

मुमुक्षु : शास्त्र का ज्ञान 'समयसारजी' का जो ज्ञान हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार का ज्ञान हो, वह भी परलक्ष्यी ज्ञान। बापू! यह तो मार्ग अलग, बापू! भाई! आहाहा! पर-सन्मुख के लक्ष्यवाला शास्त्र का पठन, अरे! भगवान की वाणी सुने। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर समवसरण में विराजते हों और

उनकी दिव्यध्वनि सुने तो वह सुनने में राग है और उस ओर का जो क्षयोपशम होता है, वह परलक्ष्यी ज्ञान है। वह स्वलक्ष्यी ज्ञान नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा कठिन, बापू! दुनिया को, सम्प्रदायवालों को तो यह ऐसा कठिन लगे। सम्प्रदाय में होवे, तब तो रहने न दे। निकाल डाले। यहाँ जंगल में हैं। यहाँ कहाँ सम्प्रदाय है। नवनीतभाई! आहाहा!

यह देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य तो पुकार करके कहते हैं, कुछ गुप्त नहीं रखते। करोड़ों-करोड़ों वर्ष तक अपवास कर, करोड़ों-करोड़ों वर्ष तक तेरे ब्रह्मचर्य-शील पालन कर और महाव्रत आदि पालन कर, तथापि भगवान आत्मा का शुद्धभाव जो चैतन्यमूर्ति की प्रतीति और सम्यग्दर्शन शुद्धभाव, इसके बिना सब निरर्थक है। दुनिया को पचे, न पचे, समाज समतौल रहे, न रहे, इसकी कुछ दरकार इसमें नहीं है कि यह समाज को ठीक नहीं पड़ेगा, समाज बिखर जायेगी। बिखरे तो बिखरे, रहो तो रहो। मार्ग तो यह है। कहो, जादवजीभाई! यह सब वहाँ स्थानकवासी के प्रमुख। कलकत्ता में। यह लड़का जगा एक इनमें।

मुमुक्षु : भारी जगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भारी जगा। अभी तो पन्द्रह वर्ष हुए हैं। अन्दर का जोर है। अव्यक्तरूप से भी... मार्ग यह है, बापू! उसे आत्मा में से इसकी पुकार आना चाहिए। समझ में आया? जितनी पराश्रित क्रियायें, जितना पर व्यवहार, वह अनन्त काल करे तो भी करोड़ों भव में उसमें जन्म-मरण मिटे, ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा, देखो! **भाव में मिथ्यादर्शन,...** राग की एकताबुद्धि, राग शुभभाव भक्ति करते-करते कल्याण होगा, व्रत पालते-पालते कल्याण होगा, ऐसा जो भाव, उसे मिथ्यादर्शन कहते हैं। आहाहा! 'हरि का मारग है शूरों का, कायर का नहीं काम जोने; प्रथम पहला मस्तक रखकर, फिर हरि...' हरि अर्थात् आत्मा। हरि— आत्मा। हरि कहा है न उसमें—पंचाध्यायी में। आत्मा स्वयं हरि है। राग-द्वेष और अज्ञान को हरनेवाला ऐसा प्रभु चैतन्य हरि है। राग, द्वेष और अज्ञान का रक्षक, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह आत्मा नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि, **मिथ्यादर्शन,...** जिसे यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव—

परमात्मा की भक्ति, हों! तीर्थंकर त्रिलोकनाथ देव की भक्ति का भाव, उसमें प्रेम है कि यह मुझे धर्म होगा तो वह मिथ्यादर्शन है। ऐसी बात सुनते हुए पसीना उतर जाये ऐसा है। वे सब अभी (ऐसा कहते हैं), धुन कराओ भगवान की भक्ति की। क्या कहलाता है वह? तबला। तबला नहीं, झांझर। लाख कर न झांझर तेरी। सुन न! वह तो परसन्मुख का विकल्प है, राग है। समझ में आया? भगवान ऐसा स्वयं कहते हैं। यह भगवान का सन्देश है न? किसका है यह?

मिथ्याज्ञान,... आत्मा का ज्ञान छोड़कर राग को जानना, पुण्य को जानना, भगवान को अकेला जानना, उस ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं। अपना भगवान उसमें रह गया। आहाहा! और **मिथ्याचारित्ररूप...** अर्थात् मिथ्यादर्शन-ज्ञान सहित राग में एकाकार होना, राग में लीनता, वह मिथ्याचारित्र। वह **विभाव...** वह विभावभाव। उससे **रहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप स्वभाव में...** यह तीन है, वह विभावभाव, विपरीतभाव है। उनसे रहित **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप स्वभाव में प्रवृत्ति न हो...** आहाहा! ऐसे तीन भाव से रहित और भगवान चैतन्य ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप स्वभाव जिसका स्व-भाव, चिद् चैतन्यघन, उसमें जिसकी प्रवृत्ति न हो **तो कोड़ाकोड़ि भव तक कायोत्सर्गपूर्वक नग्नमुद्रा धारणकर...** कायोत्सर्ग लगावे ऐसे। बाहुबलीजी ऐसे बारह महीने रहे न! राग की थोड़ी अस्थिरता थी तो केवल (ज्ञान) नहीं हुआ। सम्यग्दृष्टि थे, मुनि थे। जरा सी खटक रह गयी। यह भूमि भरत की है, भरत को बुरा लगा होगा। इस खटक से केवलज्ञान अटक गया। आहाहा! वह तो चारित्रदोष, हों! यहाँ तो मिथ्यात्व का दोष है। आहाहा!

कोड़ाकोड़ि भव तक कायोत्सर्गपूर्वक... है न पाठ में? **'गलियवत्थो'** हाथ खुले रखकर, शरीर नग्नपना, वस्त्र का धागा नहीं। आहाहा! नग्नमुद्रा। माता से जन्मा ऐसा देह **धारणकर तपश्चरण करे तो भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है,...** नहाया उतना पुण्य, लोग नहीं कहते? ....भाई! नहाया उतना पुण्य। नहाया नहीं, वह तो मैला किया है। आहाहा! राग की क्रिया को अपनी मानी तो आत्मा को मैला किया है। आहाहा! नहाया कब है? परन्तु ऐसे दृष्टान्त लगा दे कि नहाया उतना पुण्य।

इस प्रकार भावों में... भाव अर्थात् निर्मल पर्याय शुद्ध में **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-**

चारित्ररूप भाव प्रधान हैं... आहाहा! यह सब भक्ति के, व्रत के, तप के भाव में भी शुद्धता नहीं है। उसमें आत्मा का सम्यग्दर्शन, शुद्ध चैतन्य के—भगवान आत्मा के पवित्र दर्शन—प्रतीति ज्ञान और रमणता, वह भाव की प्रधानता है। **और इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है,...** मुख्य तो यह है। चारित्र बाद में और ज्ञान बाद में। परन्तु सम्यग्दर्शन का ही जहाँ ठिकाना नहीं (वहाँ चारित्र कैसा?) आहाहा! दुनिया को मजदूरी में चढ़ा दिया बेचारे को। गुरु की भक्तिवाले को गुरु की भक्ति में चढ़ा दिया। व्रत और तप करनेवाले को क्रियाकाण्ड में चढ़ा दिया, पैसेवाले को दया-दान में चढ़ा दिया। करो दान इसमें, धर्म होगा। धूल भी धर्म नहीं, सुन न। तेरे पुण्य का भी ठिकाना नहीं। आहाहा! अभी तो इसे शुद्ध सम्यग्दर्शन की खबर नहीं।

अभी यह भगवान को २५०० वर्ष (हुए)। बीस लाख का जम्बुद्वीप बनाते हैं, अमुक कोई ऐसा करते हैं और कोई ऐसा करते हैं। मानो ओहोहो! क्या करते हैं मानो! कौन करे? बापू! बाहर की चीज़ कौन करे? भाई! तुझे खबर नहीं। राग का कर्ता हो तो जहाँ मूढ है, उसके बदले इस बाह्य वस्तु को कौन करे? यह तो उसके कारण से होता है। आहाहा! हम यह कराते हैं, हम यह करते हैं। कहते हैं कि भाई! तेरे सम्यग्दर्शन की शुद्धि बिना, यह सब शुभभाव है और सब बाहर की क्रिया तो स्वतन्त्र जड़ की हुई है। वह शुभभाव कहीं संसार से (छुड़ावे), ऐसी चीज़ नहीं है। सम्यग्दर्शन मुख्य है।

क्योंकि इसके बिना ज्ञान-चारित्र मिथ्या कहे हैं,... जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की प्रतीति / सम्यग्दर्शन नहीं, उसके शास्त्र के पठन भी सब अज्ञान है। समझ में आया? **सम्यग्दर्शन प्रधान है, क्योंकि इसके बिना ज्ञान...** सम्यक् चैतन्यमूर्ति की अन्तर प्रतीति सम्यक् शुद्धता के लक्ष्य के भानसहित, इसके बिना ज्ञान, वह ज्ञान ही नहीं। भले हजारों-लाखों लोगों को समझाना आता हो। ऐसी भाषा हो, क्षयोपशम हो, परन्तु वह ज्ञान नहीं। आहाहा! कहो, रसिकभाई! ऐसी बातें बहुत भारी कठिन। ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़ की बात है। यह सोनगढ़ की है या भगवान के घर की है? आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान के घर की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जा आये? ठीक! करते हैं? कोई कहता था कि दो कड़ी ऐसी

और दो कड़ी ऐसी ... है ऐसा कहते थे। बीच में ऐसा सोने का हो और बीच में दो कड़ी निश्चित की न? ... कहते थे। वह होने के काल में होता है, बापू! ऐसी बातें हैं, भाई!

यहाँ तो आत्मा को उत्कीर्ण कर देने की बात है। जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से आत्मा को उत्कीर्ण किया, वह लेखे लगा। हो गया, समाप्त। बाकी सब बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन। भगवान आत्मा जिसे व्यवहार के राग की अपेक्षा बिना एक चैतन्यवस्तु में भगवान आत्मा की अपेक्षावाली दृष्टि अन्तर शुद्ध, उस बिना के ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। उस बिना के चारित्र के वर्तन को चारित्र नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? यह लोग ऐसा कहते हैं, आहाहा! अमुक बालब्रह्मचारी है। बापू! उसमें क्या हुआ? शरीर से कुछ विषय नहीं लिया तो वह शुभभाव है। वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा!

ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उस ब्रह्मानन्द का-आनन्द का सेवन (होना), उसका नाम यथार्थ में तो ब्रह्मचर्य है। आहाहा! समझ में आया? काया द्वारा शील पालन करे, तथापि वह शुभभाव है, धर्म नहीं। आत्मा के आनन्द द्वारा जिसने ब्रह्म को सेवन किया... आहाहा! उसने ब्रह्मचर्य पालन किया। आहाहा! भाई! ऐसी बातें हैं, भगवान! और वह ब्रह्मचर्य उसे मुक्ति का कारण होता है। समझ में आया? वे देखो न! स्त्री के सामने देखे नहीं तो ऐसे बड़े ब्रह्मचारी कहलाये। स्वामी नारायण में ऐसा बहुत होता है। ... ऐसे देखे नहीं। आहाहा! हमारे वहाँ घर के पास स्वामी नारायण का मन्दिर था।

मुमुक्षु : पर्दा आड़े डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्दा नहीं, वह बाहर खड़ा रहे। स्त्री हो तो साधु अन्दर हो तो ऐसे देखकर चला आवे। घर के आगे साथ में ही है। अरे! बापू! उसमें क्या हुआ? वस्तु की खबर बिना तेरे... आहाहा! और सम्यक् वृत्ति तो कदाचित् राग की आसक्ति उसे हो, परन्तु उसे सुखबुद्धि अन्दर से उड़ गयी है। उसे छियानवें हजार स्त्रियों का विषय भी हो, परन्तु उसे जहर जैसा देखता है। आहाहा! यह छियानवें हजार स्त्रियों का भोग हो। चक्रवर्ती तीर्थंकर को छद्मस्थ में, हों! गृहस्थाश्रम में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, परन्तु उस राग को जहर देखते हैं। आहाहा! काला नाग। स्त्री का प्रेम और

आसक्ति के भाव को काला नाग देखते हैं। वह जहर के घूँट हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि आत्मा के आनन्द के समक्ष उसे जहर जानता है। मिथ्यादृष्टि उस शुभभाव को अमृत जानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जहर को अमृत जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव जहर है। आहाहा! बातों में बहुत अन्तर, बापू! दृष्टि और ज्ञान के कारण में बड़ा अन्तर। आहाहा! हमारे हीराजी महाराज बेचारे... गये। छोड़कर चले गये फिर, (संवत्) १९७२ के वर्ष। बहुत नरम। इस 'पालियाद' में। दशाश्रीमाली। वीतराग का मार्ग है, वह केवलज्ञान जिसे जँचे, उसे भव नहीं होते। मैंने कहा ऐसी बातें करे, वह अपने को जँचती नहीं। सम्प्रदाय छोड़ दिया। १९७२, फाल्गुन महीना था। फाल्गुन शुक्ल १३। ५८ वर्ष। कितना हुए? ५८ वर्ष हुए। बहुत नरम। महाराज! मैं तो इसमें रह नहीं सकूँगा। मुझे यह बात अन्दर जँचती नहीं, उसका क्या करना? इतना बोले। कषाय मन्द, नरम बहुत थे। यह दृष्टि नहीं थी। वस्तु तो थी ही कहाँ। कानजी! उतावला होता है। यह भूल अब बाधक नहीं है। इतना कहा। यह भूल अवरोधक नहीं है। मैंने कहा, महाराज! यह मूर्ति-बूर्ति की पूजा वह भूल नहीं, यह तो बड़ी भूल है। आहाहा! यह तो १९७२ की बात है, हों! यह बड़ी भूल है, कहा। इसका शल्य है। आहाहा!

भगवान का ज्ञान जिसे जँचे और उसे मिथ्यात्व रहे, और संसार रहे—ऐसा नहीं होता, कहा। अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा जिसके ज्ञान में बैठे, उन्हें भव हो तो इसे भव हो। और तुम तो ऐसा कहते हो, केवली ने देखा तब भव घटेंगे, अभी कुछ नहीं होगा। यह वाणी ही नहीं तुम्हारी। वीतराग की यह वाणी नहीं। आगम की यह वाणी नहीं, कहा। तब तो वे शास्त्र मानते थे न। तब कहाँ यह दिगम्बर था। श्वेताम्बर शास्त्र को... परन्तु वह अन्दर का था न। परन्तु सब ... भाई! यह भूल बाधक नहीं। मूर्ति को मानते हों तो वह तो भूल सही। बहुत नरम व्यक्ति थे। अरे! इस वस्तु की तो खबर नहीं थी। आहाहा! उनकी कषाय की मन्दता हीराजी महाराज... यह नहीं। महाराज! नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। वह शल्य दूसरी रह गयी है। अनन्त बार जैन साधु होकर गया, भाई! तब तो नग्न की खबर भी कहाँ थी? १९७२ की बात है। १९७० में दीक्षा। दो वर्ष

की दीक्षा। २५ वर्ष की उम्र। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वैसा होगा। परन्तु यह सर्वज्ञ परमेश्वर जगत में है, ऐसी जिनकी सत्ता का स्वीकार जिसे हो... आहाहा! बापू! उसे भव नहीं होते। समझ में आया? उसे जगत में भगवान है, ऐसा जँचा कहलाये। उनकी बातें माने, भगवान है, उसमें क्या हुआ?

यह दृष्टान्त देखो न! सम्यग्दर्शन बिना का ज्ञान और चारित्र मिथ्यात्व है, भाई! जिसमें सत् सत्रूप से रहकर टिके नहीं, वह धर्म क्या? सच्चिदानन्द प्रभु, उसके सत् के प्रतीति भाव को जिसने पकड़ा, उसका ज्ञान और स्थिरता, वह मोक्ष का मार्ग है। बाकी यह सब दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव सब असत्... असत्... असत्... झूठे हैं। समझ में आया? ऐसा। यह तो अजर प्याला है, भाई! इसलिए बेचारे ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वालों ने तो ऐसा कर दिया। एकान्त निश्चय है। उन्हें व्यवहार है नहीं। अरे! भगवान! सुन न, भाई! व्यवहार आता अवश्य है, होता अवश्य है। परन्तु वह धर्म नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन—ध्रुव का दर्शन। ज्ञायकभाव, ऐसा प्रभु, उसे जिसने ज्ञान की वर्तमान पर्याय द्वारा ज्ञायक को पकड़ा नहीं, ऐसे सम्यग्दर्शन बिना सब ज्ञान, चारित्र और व्रत और सब मिथ्यात्व। उसकी भक्ति कर-करके धुन में चढ़े और मर जाये। भगवानजीभाई! ऐसी भक्ति लगाओ, धुन लगाओ, धुन लगाओ। हमारे वे कहते, मोतीलाल। बोटाद। मौन में से धुन और धुन में से... ऐसा ऐसा कहते। शब्द उठा और उसमें से यह जगत (हुआ)। ऐसे जैन थे परन्तु... मौन था पहले। उसमें से उठी धुन, धुन में से यह सब हुआ। ऐसी गप्प मारे। और ऐसे वे श्रीमद् के भगत कहलाये। आहाहा!

भगवान तो अन्दर मौनस्वरूप विराजता है। उसमें विकल्प, शुभराग, दया, दान का राग भी नहीं। ऐसी चीज़ की दृष्टि बिना, ऐसी चीज़ के भान बिना ज्ञान और चारित्र सच्चे नहीं हो सकते। **इस प्रकार जानना चाहिए।** आहाहा!

गाथा-५

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं –

परिणाममि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहिरे य जई।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ।।५।।

परिणामे अशुद्धे ग्रन्थान् मुञ्चति बाह्यान् च यदि।
बाह्यग्रन्थत्यागः भावविहीनस्य किं करोति।।५।।

यदि भाव-शुद्धि नहीं पर छोड़े परिग्रह बाह्य का।
तो भाव-विरहित के परिग्रह बाह्य त्याग न लाभदा।।५।।

अर्थ – यदि मुनि बनकर परिणाम अशुद्ध होते हुए बाह्य परिग्रह को छोड़े तो बाह्य परिग्रह का त्याग उस भावरहित मुनि को क्या करे? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं करता है।

भावार्थ – जो बाह्य परिग्रह को छोड़कर मुनि बन जावे और परिणाम परिग्रहरूप अशुद्ध हों, अभ्यन्तर परिग्रह न छोड़े तो बाह्यत्याग कुछ कल्याणरूप फल नहीं कर सकता। सम्यग्दर्शनादि भाव बिना कर्मनिर्जरारूप कार्य नहीं होता है।।५।।

गाथा-५ पर प्रवचन

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं –

परिणाममि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहिरे य जई।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ।।५।।

अर्थ – यदि मुनि बनकर परिणाम अशुद्ध होते हुए... मुनि हुआ, नग्न मुनि हुआ, वस्त्र छोड़ दिये। दिगम्बर मुनि में तो नग्नमुनि को ही मुनि कहते हैं। दूसरे मुनि तीन काल में नहीं होते। यह सब श्वेताम्बरादि जो वस्त्रसहित मानते हैं, वह जैनदर्शन नहीं है, वह जैनधर्म नहीं है, वह जैनदर्शन नहीं है। माने, न माने, जगत की स्वतन्त्रता

है। समझ में आया? यह चौदहवीं गाथा वहाँ पढ़ी गयी थी कल। नहीं? यह दर्शनपाहुड़ की। चौदहवीं। नीचे थी न, वहाँ नजर गयी। वहाँ लिखी है न वहाँ? दर्शनपाहुड़ की। ... ओहोहो!

मुनि बनकर... मुनि की व्याख्या यह। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार छोड़े, वस्त्र भी छूट जाये, पात्र भी छूट जाये, उसे बाह्य मुनि-व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? जो यह वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मानते हैं, वह तो जैनदर्शन से अत्यन्त विरुद्ध बात है। मिथ्यादर्शन के पोषक हैं। ग्राह्य बात यह है। यह तो नग्नमुनि जो हो, वस्त्र छोड़कर। वह **अशुद्ध होते हुए...** परन्तु उसे यदि अन्दर राग का प्रेम है, यह व्रत पालने का राग होता है, उसका उसे प्रेम और रुचि है, वह अशुद्ध है। आहाहा! मिथ्यात्वभाव है। यह तो अव्वलदोम की बातें हैं, भाई! आहाहा! यह कहेंगे, तुरन्त ही कहेंगे। भान बिना के प्रभु, शुद्ध बिना के तूने नग्नपना अनन्त बार लिया और अनन्त बार छोड़ा, उसमें क्या हुआ? भाई! जो सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए, मिथ्यात्व छोड़ना चाहिए, जो था वह तो किया नहीं मूल में। आहाहा! समझ में आया? अभी बेचारे को देखो न! महिलाओं को उलझन में (डाले)। तुम बालब्रह्मचारी होओ, तुम्हें बहुत लाभ होगा। वहाँ अकेले की कौन सेवा करेगा। तुम्हारे ... मर जाये तो विधवा होओगी। तब यह किसी के सामने देखने की अपेक्षा यहाँ आओ तो हमारी आर्यिकायें सेवा करेंगी, अमुक करेंगी। यह मुंडाओ सिर। यहाँ ध्यान रखनेवाले बहुत होते हैं, वहाँ कौन होगा? अर र! मार डाले बेचारे को।

कहते हैं कि यहाँ तो नग्नपना लेकर बैठे। जो जैनदर्शन में व्यवहार कहलाता है। परन्तु उसे यदि अशुद्ध हो—पाँच महाव्रत पालता हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, उसके लिये बनाया हुआ आहार प्राण जाये तो भी न लेता हो। आहाहा! ऐसी सर्दी में बर्फ गिरे तो वस्त्र का टुकड़ा नहीं रखे। तापणी तापे नहीं। कोई तापणी (अग्नि) करके बैठा हो, वहाँ जाकर तापे नहीं, बैठे नहीं। उससे क्या हुआ? कहते हैं। अन्तर में शुद्ध चैतन्य भगवान की सम्यग्दृष्टि प्रगट नहीं की और राग की एकताबुद्धि में पड़ा, वह तो अशुद्धता के भाव में पड़ा है। आहाहा! हजारों रानी छोड़े, हजारों दुकान के धन्धे छोड़े,

अरबों रुपये के पैसे (धन) छोड़े, परन्तु उस राग की एकता छोड़े नहीं, तब तक अशुद्धता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अशुद्ध होते हुए बाह्य परिग्रह को छोड़े... अशुद्ध का अर्थ राग, शरीर है, वही मैं हूँ। पुण्य के परिणाम है, वह मैं और वे मुझे कल्याण का कारण। उस राग से **अशुद्ध होते हुए...** बहिर् दृष्टिवाला बाह्यत्याग चाहे जितना करे **तो बाह्य परिग्रह का त्याग उस भावरहित मुनि को क्या करे?** आहाहा! शुद्धभाव की दृष्टि तो हुई नहीं। आहाहा! **बाह्य परिग्रह का त्याग उस भावरहित मुनि को क्या करे? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं करता है।** जरा भी लाभ नहीं। स्वर्ग में तो जायेगा न बेचारा, वह नरक में न जाकर। स्वर्ग और नरक दोनों में दु:ख के अंगारे सुलगते हैं। स्वर्ग में भी धूल में अग्नि है वहाँ। समझ में आया? पुण्य के फल भोगता है, वह राग और कषाय अग्नि है। स्वर्ग में सुख नहीं। स्वर्ग में राग का दु:ख है। समझ में आया? आत्मा के आनन्द में सुख है, उसकी तो खबर नहीं होती। **कुछ भी लाभ नहीं करता है।** धर्म में।

भावार्थ – जो बाह्य परिग्रह को छोड़कर मुनि बन जावे और परिणाम परिग्रहरूप अशुद्ध हों,... परिग्रह अर्थात् अन्दर राग की पकड़ हो। शुभराग मेरा। राग के ऊपर दृष्टि है। तत्त्व के ऊपर दृष्टि है नहीं, उसकी खबर नहीं। पुण्य की क्रिया के दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, व्रतादि के भाव में प्रेम है। आहाहा! **अभ्यन्तर परिग्रह न छोड़े...** वह राग की एकता नहीं छोड़ता, **तो बाह्यत्याग कुछ कल्याणरूप फल नहीं कर सकता। सम्यग्दर्शनादि भाव बिना कर्मनिर्जरारूप कार्य नहीं होता है।** लो! सम्यग्दर्शन बिना उसे कर्म की निर्जरा नहीं होती। मिथ्यादर्शन में तो बन्ध है। राग की एकताबुद्धि में तो मिथ्यात्व का बन्ध और संसार का बन्धन है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-६

आगे उपदेश करते हैं कि भाव को परमार्थ जानकर इसी को अंगीकार करो –

जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।
पंथिय सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण।।६।।

जानीहि भावं प्रथमं किं ते लिंगेन भावरहितेन।
पथिक शिवपुरीपंथाः जिनोपदिष्टः प्रयत्नेन।।६।।

निज भाव को जानो प्रथम भावों बिना लिंग क्या करे?
जिन-कथित शिवपुर पंथ जानो पथिक! स्व पुरुषार्थ से।।६।।

अर्थ – हे शिवपुरी के पथिक ! प्रथम भाव को जान, भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है? शिवपुरी का पंथ जिनभगवंतों ने प्रयत्नसाध्य कहा है।

भावार्थ – मोक्षमार्ग जिनेश्वरदेव ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मभावस्वरूप परमार्थ से कहा है, इसलिए इसी को परमार्थ जानकर सर्व उद्यम से अंगीकार करो, केवल द्रव्यमात्र लिंग से क्या साध्य है? इस प्रकार उपदेश है।।६।।

प्रवचन-१०७ ए, गाथा-६ से ८, शनिवार, पोष कृष्ण ४, दिनांक १२-०१-१९७४

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। गाथा-५ हुई। गाथा पहले रखी न... साधु हुए परन्तु जिन भावना, द्रव्यस्वभाव के प्रयत्न की भावना न हो तो वह साधुपना कुछ लाभदायक नहीं है। जिनभावना। वस्तु स्वभाव है, वह वीतरागस्वरूप है और उसकी भावना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह जिनभावना है। उसमें भी सम्यग्दर्शन जिनभावना है। जिसे स्वद्रव्य के आश्रय की भावना नहीं, वह सब पुण्य और दया, दान और व्रत के परिणाम की भावनावाले, यह कहते हैं कि वे मिथ्यादृष्टि और संसार को ... नहीं।

आगे उपदेश करते हैं कि भाव को परमार्थ जानकर इसी को अंगीकार करो– भाव का अर्थ यहाँ शुद्धभाव।

जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।
पंथिय सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण।।६।।

इसका अर्थ किया... किया। ...यह किया है न? अर्थ नहीं। उसमें किया है, पुराने में।

अर्थ – हे शिवपुरी के पथिक ! आहाहा! आत्मा के परमानन्द के स्वरूप को प्राप्त करनेवाला पथिक। परमानन्द पूर्ण स्वरूप ऐसी जो मोक्षदशा, वह शिवपुरी। जिसमें कोई उपद्रव नहीं। परमानन्द की मूर्ति आत्मा प्रगट हो, ऐसे शिवपुरी के पथिक। आहाहा! सम्बोधन देखो! हे मोक्षपुरी के पथिक! आहाहा! तेरा पन्थ तो शिवपुरी का पन्थ है, भाई! **प्रथम भाव को जान,...** पहले में पहला चैतन्यद्रव्य ज्ञायकभाव, शुद्धभाव, पवित्र भाव को जान। पहले में पहले यह जान, ऐसा कहते हैं। प्रथम कहा न? **'पढमं'** आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्ण वीतरागस्वरूप से विराजमान प्रभु है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति अथवा सम्यग्दर्शन, वह प्रथम भावना है, वह प्रथम भाव है। आहाहा! लो! यह कहते हैं न कि पहले व्यवहार करना, व्यवहार (करने से) पश्चात् सम्यग्दर्शन होगा। व्यवहार तो राग है, विकल्प है, पराश्रित प्रवृत्ति है, हेय है। यहाँ तो प्रभु आत्मा शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानन्द के अन्तर सन्मुख होकर जो श्रद्धा-ज्ञान हो, वह प्रथम **'पढमं'** लिंग है। आहाहा! धर्म का चिह्न, लिंग और निशान, यह है पहला।

प्रथम भाव को जान,... शुद्ध भाव त्रिकाली चैतन्यमूर्ति प्रभु, वस्तु स्वभाव, उसे जान। आहाहा! **भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है?** अन्तर चैतन्य द्रव्य जो वस्तु है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान की भावना बिना वह वीतरागस्वरूपी प्रभु, उसकी वीतरागी पर्याय बिना बाह्य लिंग से प्रयोजन क्या है? देखो! वीतरागमार्ग। आहाहा! यह पंच महाव्रत और नग्नपना, यह व्यवहार समिति, गुप्ति। वह क्या है? वह चीज़ क्या है? आहाहा! वे कहते हैं न कि निवृत्तिवाले को प्रवृत्ति भी करना। आहाहा! निवृत्तिवाले को प्रवृत्ति करने का अर्थ क्या? राग करना? और दूसरे को सुख-दुःख में मदद करना। साधक को इतना तो होना चाहिए न। दूसरे को भी कुछ करना। कौन करे? भाई!

आहाहा! राग का होना और करना, वह ही जहाँ स्वरूप को विघ्नकारक है। आहाहा! पर का करना तो जीव में नहीं, राग का करना नहीं। और द्रव्य में पर्याय का करना भी नहीं। ऐसा शिवपुर का पन्थ है। आहाहा!

कहते हैं कि **भावरहित...** भाव का अर्थ, यह द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध चैतन्य, उसकी श्रद्धा और भाव। जिनभाव। आहाहा! त्रिकाली वस्तु के आश्रयवाला भाव। उसे यहाँ भाव कहते हैं। उस **भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है? शिवपुरी का पंथ...** शिवपुरी, मोक्षदशा, पूर्ण मोक्षदशारूपी शिवपुरी, उसका पन्थ तो **जिनभगवन्तों ने प्रयत्नसाध्य कहा है।** त्रिकाली शुद्ध स्वभाव में प्रयत्न करना, उस प्रयत्न से स्वभाव साध्य होता है। समझ में आया? यह तो प्रयत्न... वस्तु जो त्रिकाली ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव, अकेला अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु, उसमें स्वभाव के प्रति प्रयत्न, जिनवर ने तो यह कहा है।

त्रिकाली चैतन्य ज्ञायकपिण्ड प्रभु द्रव्यस्वभाव, उसे **शिवपुरी का पंथ जिनभगवन्तों ने प्रयत्नसाध्य कहा है।** स्वरूप में प्रयत्न करना, उससे वह साध्य होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? जो प्रयत्न अनादि से पुण्य और पाप में भ्रान्ति में वर्त रहा है, उस प्रयत्न को स्वभाव में जोड़ दे। आहाहा! यहाँ तो मोक्षमार्गीरूप से ही उसे सम्बोधित किया है। हे मोक्षमार्ग के पथिक! शिवनगरी में जानेवाला तू। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कितनी करुणा से उसका उपदेश कहते हैं। शिवपुरी के पथिक प्रभु! तेरा नित्यानन्द भगवान स्वभाव है, उसे तू प्रयत्न से साध। अपने आप कोई पुरुषार्थ बिना मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शिवपुरी का पंथ... मोक्ष का पन्थ परमात्मा ने, जिनेश्वरदेव ने, वीतरागी पर्याय में सर्वज्ञ होकर प्रगट हुई दशावाले प्रभु ने तो यह कहा है। आहाहा! जिसकी दशा में वीतराग और सर्वज्ञता प्रगट हुई है, उसे शिवपुरी का पन्थ अन्तर स्वभाव में प्रयत्न करना, यह भगवान ने कहा है। समझ में आया इसमें? अन्तर्मुख प्रयत्न करना, वह भगवान ने कहा है, ऐसा कहते हैं। **हे शिवपुरी के पथिक !** वीतराग देवों ने, केवलियों ने, परमात्मा ने... आहाहा! उस पन्थ को प्रयत्न-साध्य किया है। ऐसा कहा न? **'जिणउवइट्ठं पयत्तेण'** आहाहा! ऐसा तेरा जो झुकाव परसन्मुख है... ऐसा कहते हैं,

उसे त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ, उसकी ओर का प्रयत्न बदल डाल। आहाहा! और प्रयत्न से ही साध्य है। परमात्मा स्वयं प्रयत्न से साध्य होता है। समझ में आया? लो! इसमें तो काललब्धि और सब निकाल डाला और प्रयत्नसाध्य कहा। आहाहा! काललब्धि का अर्थ? यह जिस समय स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करे, उसका भान हुआ, तब यह काललब्धि है, ऐसा ज्ञान हुआ। ... काललब्धि लेकर पन्थ का... वह यह... आनन्द... ऐ जिनजी जाणजो। कोई जिज्ञासु है, वह काललब्धि की आशा से पड़े हैं। तब जिन को मार्ग प्राप्त करूँगा।

कोई कहते हैं न काललब्धि। परन्तु काललब्धि,... उसे करना है, उस पर्याय पर देखना है? उसे देखना तो अन्तर चैतन्यमूर्ति वीतरागबिम्ब प्रभु, अकषायस्वभाव का अकेला रस, वह आत्मा। उसमें प्रयत्न करना, ऐसा जिनवरदेव ने कहा है। ऐसा कहकर पुण्य-पाप में प्रयत्न करना या पर में प्रयत्न करना, वह कहीं वस्तु का स्वरूप नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह वीतराग मार्ग भारी अलग, भाई! दुनिया के साथ मिलान नहीं खाता। नुस्क निकाले, विवाद करे।

यहाँ तो (कहते हैं), पथिक। आहाहा! शिवपुरी का पन्थ। पथिक। शिवपुरी का पन्थ। ऐसा दो बार लिया। शिवपुरी के पन्थ में चलनेवाला, परन्तु तेरा पन्थ कैसा है? **'जिणउवइट्ठं पयत्तेण'** त्रिलोकनाथ परमात्मा ने तो पुरुषार्थ से साध्य होता है, ऐसा कहा है। होना होगा वह होगा, बनना होगा वह बनेगा। अपने क्या काम? ऐसा यहाँ नहीं कहा। आहाहा! भगवान ने देखा है, उसका प्रयत्न क्या? तेरे स्वभाव में उसका बहुमान आवे। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागरस से रेलमछेल हो गयी जिनकी दशा। आहाहा! जिनकी वीतरागी पर्याय और सर्वज्ञ पर्याय अर्थात् ज्ञान और चारित्र की पर्याय वहाँ पूरी हो गयी। दर्शन तो है ही।

ऐसे भगवान ने शिवपुरी का पन्थ, शिवपुरी के पथिक को। ऐसा। शिवपुरी का पन्थ। नमोत्थुणं में आता है न, शिवमयम, नमोत्थुणं में आता है शिवमयम। आहाहा! **हे शिवपुरी के पथिक!** शिवपुर का पन्थ तो जिनेश्वरदेव ने प्रयत्न साध्य कहा। देखो! ऐसे... आहाहा! इसका अर्थ कि जिनेश्वरदेव ने स्वभावसन्मुख के प्रयत्न की बात की है। समझ में आया? शिवपुरी के पथिक को शिवपुरी का पन्थ स्वभाव-सन्मुख के

प्रयत्न परमात्मा ने बात की है। आहाहा! कहो, समझ में आया? भगवान ने देखा होगा, तब होगा। ऐसा वेदन कर-करके भूल गया है।

मुमुक्षु : भगवान ने जाना...

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने तो यह कहा। तेरा परमात्मा अन्दर चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द है, वह प्रयत्न से साध्य है। स्वभाव के पुरुषार्थ से साध्य है। वह राग के पुरुषार्थ से, निमित्त के पुरुषार्थ से साध्य नहीं है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें कि व्यवहार के पुरुषार्थ से वह प्राप्त नहीं है। आहाहा! क्या हो? लोगों ने बाहर के व्यवहार को इतनी महिमा दे दी है कि जो वस्तु का माहात्म्य ही नहीं इतना।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय शान्तरस का सागर आत्मा, उसका पन्थ तो अन्दर प्रयत्न साध्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? उसमें नहीं कहा? उसमें आता है या नहीं? 'अध्यात्मपंचसंग्रह', ज्ञानदर्पण में। उसमें लिखा है कि तू होनहार... होनहार... कहता है, परन्तु भगवान ने उपदेश पुरुषार्थ का किया, वह क्या है? भगवान ने कहा है, यह पुरुषार्थ कर। यह बात कहाँ रही तेरी? भले तू होनहार को... परन्तु उसका अर्थ उस पर्याय में पुरुषार्थ, वह व्यवहार है। त्रिकाल द्रव्य पर जाना ... द्रव्य, वह निश्चय है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त बात और बहुत मजबूत बात। मजबूत दृढ़ ऐसा भगवान आत्मा, दृढ़ नित्य ध्रुव, ऐसा प्रभु आत्मा, उसका पंथ तो प्रयत्न साध्य है, कहते हैं। आता है... ज्ञानी की भूमिका पुरुषार्थ साध्य है। आहाहा! यह पुरुषार्थ कौन सा? पुण्य-पाप का नहीं। आहाा! जिनवर ने कहा हुआ उपदेश अर्थात् कि जिनभावना, त्रिकाली जिनस्वरूप जो है, उसकी भावना, उसका नाम प्रयत्न और पुरुषार्थ है। व्यवहार-ब्यवहार का पुरुषार्थ, वह सब भटकने का पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का पुरुषार्थ भी राग है, नपुंसकता है, कहते हैं। आहाहा! प्रयत्न तो उसे (कहते हैं), प्र-यत्न। प्र-विशेष, यत्न-यत्न। जुड़ जाये चैतन्य के स्वरूप में, उसे हम प्रयत्न कहते हैं। आहाहा! ऐसा जिनवरदेव ने समवसरण में परमात्मा ने ऐसा कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि परमात्मा तो ऐसा कहते हैं। शिवपुरी का पन्थ। पहले पथिक कहा। परन्तु हे शिवुपरी के पथिक! तेरी नगरी तो शिवपुरी है, बापू! वहाँ तुझे तो बसना है। तेरा नगर और तेरा राज तो वहाँ है। आहाहा!

शिवपुरी का पन्थ... गजब गाथा आयी, भाई! जिनेश्वरदेव ने प्रयत्न साध्य कहा है। इसका अर्थ कि स्वसन्मुख होने का पुरुषार्थ उसमें से प्राप्त होता है। आहाहा! परसन्मुख के प्रयत्न से वह प्राप्त नहीं होता। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है तो भी गड़बड़ करते हैं। आहाहा! अभी इसकी श्रद्धा में यह बात बैठती नहीं। आहाहा! भाई! तेरे जन्म-मरण के उद्धार का पन्थ तो यह है। आहाहा!

देखा और कल सुना। यह उमेदभाई ने कहा। अनोपचन्द के पुत्र का पुत्र। ओहोहो! कुण्डलावाले अनोपचन्द का। ... किया है। ... सोलह दिन से हाथ नहीं आता। मुम्बई में। आहाहा! ... ... एकदम युवा है। अभी यहाँ आया था महीने पहले। पहले... गिर गया। फिर ऐसा हुआ कि सोलह दिन हुए हाथ नहीं आता यह। सत्रह दिन हुए। ओहोहो! यह संसार! ... ले गये हैं। ... उसे ही देखे, ऐसा कहते हैं। यह ... गया न... पीछे-पीछे जाये, उसकी बात है यह तो। आहाहा! बापू! भगवान है अन्दर। उसके पीछे जा न, उसके सन्मुख देख न। आहाहा! भाई! तुझे जिनवर का मार्ग वहाँ प्राप्त होगा। वह कहीं बाहर नहीं कि बाहर से मिले ऐसा है। परन्तु जिसे चार गति के दुःख का दुःख लगा हो, उसके लिये यह है। स्वर्ग में भी जिसे सुख लगता हो तो उसे इस प्रकार से नहीं होगा। चार गति... आता है न? चार गति दुःख से डरी। योगसार में।

चारों गति में उपजना, वह दुःखी-दुःखी होना है। शिवपुरी में उपजना, वह सुखी होना है। आहाहा! वह शिवपुरी का पन्थ ऊपर हे पथिक! जिनवरदेव ने वह तो अन्तर स्वभावसन्मुख के प्रयत्न से साध्य कहा है। आहाहा! अपने आप मार्ग मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। पुरुषार्थ साध्य है। आहाहा! भारी कठिन पड़े जगत को। व्रत पालन किये, तपस्या की इसलिए.... अनन्तबार द्रव्यलिंगी हुआ। भगवान! वह तेरा आत्मा एक-एक शक्ति-वीतरागी शक्ति से भरपूर तत्त्व है। ऐसी अनन्त शक्ति का सागर प्रभु अन्दर उछलता है। आहाहा! उसकी ओर के प्रयत्न साध्य से उसे प्राप्त होता है। प्रभु! तेरा पन्थ तो अन्तर में जाने का प्रयत्न साध्य है, वह पन्थ है। आहाहा! अब यह कहता है कि बीच में व्यवहार चाहिए, व्यवहार भी वहाँ... अपना साधना? वह तो निष्क्रिय जड़ हो गया, ऐसा कहते हैं। अरर्र! प्रभु! आहाहा! अन्तर में साधन करता है वह तो... क्रियावाला राग की अपेक्षा से कहो, परन्तु स्वभाव की परिणति अपेक्षा से सक्रिय और

चैतन्य जागृत है वह तो। जड़ नहीं। आहाहा! बहुत बदल डाला, चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा किया। ओहोहो! प्रभु! मार्ग तो ऐसा है, भाई! दूसरे प्रकार से कुछ भी बदलेगा, बापू! तू बदल जायेगा - चार गति के फेरे में पड़ेगा। आहाहा! देखा न, ऐसा काल, कलकत्ता में ले जाते हैं, देखो न! लोगों को उठा ले जाये, उनके हाथ और पैर काट डाले और भीख मँगाये। नजरों से देखा है कलकत्ता में। वह रेकड़ी होती है न? ... हॉस्पिटल में... आहाहा! ऐसे पराधीन मिथ्या और राग-द्वेष में दु:खी...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... डॉक्टर और उनके लोग ऐसा करे कि हमें तो कुछ... आहाहा! सौ रपये हों। वह फिर उसे... सब बेच डाले। अरर! तूने क्या किया प्रभु? कहाँ जाना है? तेरा पन्थ तो यह है, भाई! रेकड़ी में डाले, देखा है। वड़ोदरा की। माँ-पुत्री मुम्बई में जाते थे। थोड़ी दूर पड़ी, थोड़ी आगे... आयी। उठाकर ले गयी। उसने लेकर आँख फोड़ डाली। ... माँगने। वहाँ उसकी माँ चली आयी वापस फिरकर। वहाँ उसे माँगते देखा। अरे! यह तो मेरी पुत्री है। ऐसा कहा तो वह... भाग गया। अरर! ऐसे... क्या करता है, प्रभु! तू यह? कहाँ जाना है भाई! तुझे? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, तू प्रभु भव्यजीव है। शिवपुर का पथिक है। आहाहा! तुझे तो इस पन्थ में जाने की बात है। और यह पन्थ तो वीतराग सर्वज्ञदेवों ने गणधरों और इन्द्रों के बीच तो यह कहा है। अन्तर्मुख के प्रयत्न साधने से अन्तर भगवान मिले, ऐसा है। समझ में आया? लोगों को भारी कठिन (पड़ता है)। भाई! मार्ग तो यह है। कहा है न यह **'पुरिपंथं'** हे पथिक! तेरा पन्थ तो यह है, प्रभु! दूसरा खोजने जायेगा तो नहीं मिलेगा। यह आत्मा वहाँ नहीं मिलेगा। व्यवहार के दया, दान, व्रत, तपस्या के भाव, भक्ति, यात्रा के भाव, बापू! वहाँ उसमें आत्मा नहीं मिलेगा। उसमें तो गति मिलेगी। भटकने के दु:ख की गति बहुत की। आहाहा!

भावार्थ - मोक्षमार्ग जिनेश्वरदेव ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मभावस्वरूप परमार्थ से कहा है,... आहाहा! भगवान आत्मा, जिसका स्वभाव चैतन्य आनन्दादि स्वभाव, ऐसा आत्मभावस्वरूप, उसकी दृष्टि-ज्ञान और शान्ति वह आत्मस्वभावस्वरूप मोक्षमार्ग है। यह रागादि कोई मोक्षमार्ग नहीं है, आत्मस्वरूप भाव नहीं है। आहाहा!

मोक्ष का मार्ग जिनेश्वरदेव ने... हिन्दी भाषा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् आत्मभावस्वरूप। ऐसा। वह आत्मभावस्वरूप है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य भगवान की सम्यक्दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, वह आत्मभावरूप है। व्यवहार का शुभभाव आदि, वह आत्मभावरूप नहीं। आहाहा! वह नहीं ... में नहीं आता? ... का... उसके लड़के को डाकू ले गये थे। डाकू ले गये। इसलिए लड़के से ऐसा कहलवाया, बापूजी! दस हजार रुपये दो। मैं रहूँगा... नहीं दिये। उन डाकुओं ने मारकर गाँव के बाहर छोड़ गये। आहाहा! ... आता है न। बात आती है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्द्रह-बीस? आता है। ... दस हजार का कहा। फिर बड़ी... रखी, हों! इसलिए डाकू ने कहा कि दस हजार तेरा पिता दे तो छोड़ दूँगा। उसने लिखा, बापू! दस हजार दो। मैं आऊँगा तो कमाऊँगा। नहीं दिये। मारकर छोड़कर गये। आहाहा! क्या यह दशायें जन्म-मरण की! बापू! इससे छूटना हो तो यह पन्थ है।

भगवान अन्दर में पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मभावस्वरूप है। परमार्थ से इसे मोक्षमार्ग कहा है। है न? **आत्मभावस्वरूप परमार्थ से कहा है,...** आहाहा! वस्तु त्रिकाली भगवान की श्रद्धा अन्तर सन्मुख की निर्विकल्प श्रद्धा। निर्विकल्प अर्थात् वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी वेदन का ज्ञान। आहाहा! और वीतरागी रमणतारूप चारित्र, वह आत्मभावस्वरूप भगवान ने कहा है। वह आत्मभावरूप है। आहाहा! पच्चीस वर्ष का जवान लड़का, दो वर्ष का विवाहित मर गया। ... पर में दिखाई दे। लड़का... आहाहा! उस समय देखो काणो झगड़ा करे अन्दर। परन्तु उसे खबर नहीं, बापू! वह तो संयोगी चीज़ है। इसलिए ऐसा ही हो वहाँ। आहाहा! वह तेरी स्वाभाविक चीज़ (नहीं है)

मुमुक्षु: दस हजार रुपये उसके पिता नहीं दिये और उसने (डाकू ने) मार डाला, इन दोनों में कठोर परिणाम किसके?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कुछ... उसे बेचारे को ऐसा कि... ऐसा कि दस हजार बिना ऐसे का ऐसा ले जाये? मार डालेगा, उसे खबर नहीं। संसार में तो ऐसा बनता है,

बापू! आहाहा! जीते जी आँख में मिर्च भरे, जीते जी तेजाब छिड़के शरीर में। आहाहा! नरक में ऐसे दु:ख तूने भोगे, बापू! भाई! तुझे खबर नहीं। यहाँ आया, जहाँ जन्मा, पच्चीस-पचास वर्ष की उम्र और शरीर कुछ ठीक और स्त्री-पुत्र और पाँच-पचास लाख पैसे हुए... वहाँ आहाहा! भाई! यह सब चीज़ें भूतावळ की जाल है सब, भाई! यह सब भूतावळ है। आहाहा! यह तेरी चीज़ नहीं। प्रभु! तेरी चीज़ तो अन्तर आत्मस्वभाव पूर्णानन्द है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, उसे आत्मभावस्वरूप कहा। पर्याय की बात है, हों!

इसलिए इसी को परमार्थ जानकर सर्व उद्यम से अंगीकार करो,... पहला यह भगवान आत्मा कितना और कैसे है, उसका ज्ञान करके उसमें स्थिर होओ। आहाहा! वहाँ जाओ... वहाँ जाओ... भाई! आहाहा! भारी मार्ग। दुनिया से। आहाहा! एक तो ऐसे साधु नाम धराकर जगत को कहे, प्रवृत्ति करना, वह साधु जीव का कर्तव्य है। वह भी एक मार्ग है। अरे! भगवान! प्रभु! यह क्या कहता है? भाई! जिनवरदेव ने यह कहा है। त्रिलोकनाथ परमात्मा की इच्छा बिना की वाणी में यह आया। प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति करने योग्य यह कार्य है। यह परमार्थ है। परमार्थ में पर की मददगिरी होना परमार्थ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें, बापू!

कहा न? **इसी को परमार्थ जानकर सर्व उद्यम से अंगीकार करो,...** आहाहा! यह परमार्थ। वह परमार्थ दूसरे को दु:खी देखकर दु:ख टालना, पैसा देना, अनाज देना... बापू! वह तो पर की चीज़ है। उस लेने-देने की क्रिया में तेरा अधिकार नहीं है। तेरे परिणाम हों, वहाँ शुभ। दूसरे को आहार-पानी देना और... वह शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान अबन्धस्वरूप में तो बन्ध का कारण हुआ वह तो। आहाहा! वह कहीं परमात्ममार्ग नहीं। आहाहा!

केवल द्रव्यमात्र लिंग से क्या साध्य है? भगवान! अकेला द्रव्यपना, पंच महाव्रत और नग्नपना, बारह व्रत और लंगोटी और क्षुल्लक आदि... आहाहा! उससे क्या साध्य है? उसमें तुझे साध्य क्या? प्राप्त क्या होगा? **इस प्रकार उपदेश है।** भगवान तीर्थंकरों का सर्वज्ञदेवों का यह उपदेश है। बाहर के सुख के साधन देखकर न ललचा,

प्रभु! यह सुख का साधन तो प्रभु! तेरे अन्दर में है। आहाहा! रसिकभाई! दो-पाँच-दस लाख की पूँजी हो, लड़का अच्छा हुआ हो। सुख के साधन में खिंच जाए। आहाहा! भाई! वहाँ सुख नहीं। वह सुख के साधन नहीं। भाई! तेरे सुख का साधन तो अन्तर्मुख में परिणति होना, वह है। आहाहा! ऐसा मार्ग भारी कठिन पड़े। फिर कहे, सोनगढ़वाले यह निश्चय-निश्चय... व्यवहार। हम तो दोनों बातें करते हैं। यह पूनमभाई कहते थे कि अपने में और उनमें अन्तर क्या? अकेली निश्चय की बातें करते हैं। बातें नहीं, बापू! निश्चय के भाव की बात है। आहाहा! यहाँ तो निश्चय और व्यवहार दोनों हम कहते हैं। अर्थात् क्या? आहाहा! व्यवहार, व्यवहार के स्थान में होता है, परन्तु वह कोई मार्ग नहीं है।

गाथा-७

आगे कहते हैं कि द्रव्यलिंग आदि तूने बहुत धारण किये, परन्तु उससे कुछ भी सिद्धि नहीं हुई –

भावरहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारे।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं।।७।।

भावरहितेन सत्पुरुष! अनादिकालं अनंतसंसारे।
गृहीतोज्झितानि बहुशः बाह्यनिर्ग्रंथरूपाणि।।७।।

हे सत्पुरुष! बहिरंग साधु रूप को बहुशः लिया।
छोड़ा अनादि काल से बहु भवों में भावों विना।।७।।

अर्थ **– हे सत्पुरुष! अनादिकाल से लगाकर इस अनन्त संसार में तूने भावरहित निर्ग्रन्थरूप बहुत बार ग्रहण किये और छोड़े।**

भावार्थ **– भाव जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसके बिना बाह्य निर्ग्रन्थरूप द्रव्यलिंग संसार में अनन्तकाल से लगाकर बहुत बार धारण किये और छोड़े तो भी कुछ सिद्धि न हुई। चारों गतियों में भ्रमण ही करता रहा।।७।।**

गाथा-७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि द्रव्यलिंग आदि तूने बहुत धारण किये, परन्तु उससे कुछ भी सिद्धि नहीं हुई –

भावरहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारे।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं।।७।।

अर्थ – हे सत्पुरुष! आहाहा! पाठ में है। **'सपुरिस'** आहाहा! उसमें पथिक लिखा। **हे सत्पुरुष!** उसे कहते हैं। आहाहा! **अनादिकाल से लगाकर...** बापू! अनादि से होकर अनन्त संसार में, अनन्त काल में पूर्व **तूने भावरहित...** सम्यग्दर्शन ऐसा जो शुद्धभाव, स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ जो शुद्धभाव, उसके बिना **निर्ग्रन्थरूप बहुत बार ग्रहण किये...** अकेले वस्त्रवाले की तो यहाँ बात भी नहीं। वस्त्रसहित, वह तो द्रव्य निर्ग्रन्थ भी नहीं है। यह तो निर्ग्रन्थ नग्न मुनिपना तूने अनन्त बार लिया। आहाहा! हजारों रानियाँ छोड़कर, राज को छोड़ा, दुकानें छोड़ीं, व्यापार छोड़ा और नग्नपना, माता से जन्मा ऐसा मुनिपने का वेश अनन्त बार लिया। आहाहा! **और छोड़े।** ऐसे द्रव्यलिंग अनन्त बार आये और गये। उसमें कहीं आत्मा की वीतरागी दृष्टि बिना उसे द्रव्यलिंग भी व्यवहार से कहने में नहीं आता। आहाहा! है न पाठ? **'गहिउज्झियाइं'** वह मुनिपना जिसने... कहा न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' नग्नमुनि, दिगम्बर, पंच महाव्रत का पालनेवाला अनन्त बार (हुआ)। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी डिगाने आवे तो रूवांटा चलित नहीं हो। ऐसी जिसकी शरीर की क्रिया और ब्रह्मचर्य की क्रिया। परन्तु वह सब सम्यग्दर्शन बिना व्यर्थ है। समझ में आया? जैनमार्ग अर्थात् वीतरागभाव जहाँ न आया, उसके बिना यह सब राग की क्रियाएँ अनन्त बार ग्रहण की और छोड़ी, उससे कहीं जीव को संसार का अन्त नहीं आता।

तूने भावरहित... भाव अर्थात् यह शुद्धभाव। चैतन्य जिनभावना। वीतरागी स्वरूप की अन्तर में चैतन्य द्रव्य को स्पर्श करके होती एकाग्रता। आहाहा! ऐसे भाव बिना तूने ऐसे मुनिपना अनन्त बार लिये और छूट गये। उससे तुझे क्या लाभ है? भाई!

भावार्थ – भाव जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... यह व्याख्या की। स्वरूप भगवान आत्मा का, उसकी दृष्टि और ज्ञान और उसकी रमणता, ऐसा जो परमार्थ उसका स्वरूप। निश्चय। '**उसके बिना बाह्य निर्ग्रन्थरूप द्रव्यलिंग संसार में अनन्त काल से लगाकर बहुत बार धारण किये...**' ओहोहो! अनन्त बार जैन दिगम्बर साधु हुआ और छूट गया। वीतरागमूर्ति प्रभु को तूने पकड़ा नहीं। ऐसे क्रियाकाण्ड में राग को पकड़कर अनन्त काल व्यतीत किया। आहाहा! ऐसे **निर्ग्रन्थरूप द्रव्यलिंग संसार में अनन्तकाल से लगाकर बहुत बार धारण किये...** अनन्त बार धारण किये। आहाहा! **और छोड़े...** छूट गया। वस्तु कुछ थी नहीं। वीतरागभाव प्रगट नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन जिनभावना, वह तो आयी नहीं। वह की नहीं—प्रगट की नहीं। ऐसे भाव में रहकर भटक मरा। उसमें फिर ऐसे भी भव होते हैं। कोई उठा ले जाये और मार डाले और.... आहाहा! वे नहीं ले गये थे तीन-चार व्यक्ति? दिगम्बर। छूट गये। चार व्यक्ति यात्रा में जाते थे। पकड़ गये।... आहाहा! पकड़कर ले जाये वहाँ... आहाहा! गृहस्थ के लड़के हों पैसेवाले, टाईमसर चाय, टाईमसर टीकड़ी, टाईमसर रोटी, टाईमसर सोना। यह वे डॉक्टर-वैद्य वहाँ क्या करे? नींद भी कहाँ आवे। इस आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना ऐसे भव अनन्त बार किये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसके ... पणा जब अनन्त बार हुए बाह्य, ऐसे भव तो अनन्त बार हुए। उससे अनन्तगुणा।

चारों गतियों में भ्रमण ही करता रहा। आहाहा! चार गति में भटका। यहाँ बड़ा सेठिया अरबोंपति कहलाये। बड़े डॉक्टर खड़े हों, ऐसे... खम्मा-खम्मा पलंग में, वह मरकर नरक में जाये। आहाहा! यह बात करते हैं। तूने चार गति में भ्रमण किया, भाई! बाहर की चीज़ में बहिरात्मपने का साधन अर्थात् चार गति प्राप्त हुई है। बाह्य निर्ग्रन्थपना है, वह राग है। बाहर की क्रिया है। उसके प्रेम में तो बहिरात्मपना है। वह आत्मा में नहीं आ सकता। बाहर में भटकेगा चार गति में। आहाहा! अरे! ऐसा वीतराग मार्ग अरिहन्त सर्वज्ञ ने कहा, वह सुनने को नहीं मिलता। आहाहा! उसका क्या होगा?

श्रीमद् ने कहा न? 'बाह्य क्रिया में राचते, अन्तर भेद न कोई, ज्ञानमार्ग निषेधते, वही क्रियाजड़ यहाँ।' करुणा उपजे जोई। 'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई; माने मारग मोक्ष का, करुणा उपजे जोई।' तेरा योगफल क्या आयेगा? प्रभु! यहाँ से

कहाँ जायेगा? बापू! जहाँ अनन्त काल रहना है। वह राग के प्रेम में पड़कर जायेगा कहाँ? भाई! चार गति में अनन्त काल रहेगा। आहाहा! वीतराग... वीतराग... वीतराग... वह वीतराग आत्मा, हों! उस वीतराग आत्मा की श्रद्धा, उसका ज्ञान और चारित्र यह परमार्थ मोक्षमार्ग है। उसके बिना ऐसे द्रव्यलिंग ग्रहण किये और छूटे। चार गति में भटका। यह अब दु:ख की व्याख्या करते हैं।

गाथा-८

वही कहते हैं –

भीसणणरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तो सि तिव्वदुक्खं भावहि जिणभावणा जीव ।।८।।

भीषणनरकगतौ तिर्यग्गतौ कुदेवमनुष्यगत्योः।
प्राप्तोऽसि तीव्रदु:खं भावय जिनभावनां जीव! ।।८।।

भीषण नरक तिर्यंच कुत्सित देव मानुष गति में।
अति तीव्र दुख पाया करो जिन-भावना इस जन्म में।।८।।

अर्थ – हे जीव ! तूने भीषण (भयंकर) नरकगति तथा तिर्यंचगति में और कुदेव कुमनुष्यगति में तीव्र दु:ख पाये हैं, अत: अब तू जिनभावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना भा, इससे तेरे संसार का भ्रमण मिटेगा।

भावार्थ – आत्मा की भावना बिना चार गति के दु:ख अनादि काल से संसार में प्राप्त किये, इसलिए अब हे जीव ! तू जिनेश्वरदेव का शरण ले और शुद्धस्वरूप का बारबार भावनारूप अभ्यास कर; इससे संसार के भ्रमण से रहित मोक्ष को प्राप्त करेगा, यह उपदेश है।।८।।

गाथा-८ पर प्रवचन

वही कहते हैं—

भीसणणरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तो सि तिव्वदुक्खं भावहि जिणभावणा जीव।।८।।

जिनभावना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह जिनभावना। हे जीव!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : है न अन्तिम।

तूने भीषण (भयंकर) नरकगति... भगवान! नरकगति भयंकर, बापू! सुनना कठिन पड़े। हजारों बिच्छू का डंक, उसकी अपेक्षा अनन्तगुणी पीड़ा जहाँ होती है। आहाहा! एक बिच्छू काटे वहाँ चिल्लाहट मचाता है। उस लड़की को बिच्छू ने काटा नहीं था तुम्हारे? गोकलशीभाई।... छोटी लड़की को। चिल्लाहट-चिल्लाहट (मचावे)। आहाहा! कहते हैं कि भीषण नरकगति। आहाहा! **(भयंकर)...** बापू! नरक में तू अनन्त बार गया, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! वह भूतकाल की बातें तू भूल गया प्रभु! वर्तमान में मोहित हुआ। भूतकाल में तू कहाँ रहा? प्रभु! भयंकर-भयंकर नरक गति। ओहो! ऐसा शब्द प्रयोग किया है।

तथा तिर्यंचगति में... पशु। आहाहा! चकला-चकली। मार डाले। मोर को मारे। आहाहा! रास्ते... समाप्त। आहाहा! भावनगर में मोर बहुत उड़ नहीं सकते। पंख बहुत। आहाहा! ऐसे तिर्यंच में, बापू! तूने दुःख अनन्त बार भोगे। तुझे किसमें विश्राम लगा? आहाहा! तिर्यंचगति। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक। निगोद में... आहाहा! तेरी अस्ति स्वीकार करना कठिन पड़े। ऐसे निगोद में, बापू! अनन्त बार गया, भाई! **कुदेव...** व्यन्तर और भूत ऐसे कुदेव हुआ। दूसरे को... यहाँ अपना नौकर हो, वह वहाँ उससे बड़ा देव हुआ हो। स्वयं फिर व्यन्तर-भूतड़ा हुआ हो। आहाहा! यहाँ उसका नौकर हो। गरीब व्यक्ति। अब... स्वर्ग का बड़ा देव हुआ। और यह मरकर व्यन्तर भूतड़ा हुआ। देखकर हाय... हाय..! श्वेताम्बर में एक आता है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा वह... भूल गया।... लोग साधारण था... और उसका जो सेठ था, वह... इन्द्र है, वह बड़ी ऋद्धि लेकर भगवान के दर्शन करने जाता है। वहाँ उसने देखा कि यह तो.... है। ऐसा आता है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा का है यह।... आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। यह तो ऊपर का देव। ऊपर का है। ...बड़ा ऐसे नीचे उतरता है। दूसरा देव बीच में आवे सही न। बात तो सब पढ़ी है। सत्रह बार तो भगवतीसूत्र सोलह हजार श्लोक और लाख श्लोक प्रमाण टीका। सत्रह बार पढ़ा है। परन्तु यह वस्तु नहीं। यह तो एक घड़ाके ग्यारहवीं गाथा **'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवा'** आहाहा! ...फाड़ डाला अन्दर से। एक शब्द ने! भूतार्थ भगवान आत्मा सत्यार्थ प्रभु सत्य वस्तु ध्रुव त्रिकाल। आहाहा! उसका आश्रय कर, तुझे समकित होगा। ऐसी बात है कहाँ? समझ में आया?

कुदेव कुमनुष्यगति में... कुमनुष्य में हल्का मनुष्य हो, ..., वाघरी... **तीव्र दुःख पाये हैं, अतः अब तू जिनभावना...** प्रभु! अब तू कुछ नया कर। **शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना...** शुद्धभाव की व्याख्या की। जिनभावना बहुत जगह आता है। इसमें आता है। आहाहा! वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा की भावना कर, उसकी एकाग्रता कर। उससे जन्म-मरण के अन्त आवे ऐसा है। आहाहा!

जिनभावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना... भाव। अन्तर द्रव्यस्वभाव की एकाग्रता की भावना कर। भावना शब्द से विकल्प नहीं। अन्तर में एकाग्र हो। जहाँ प्रभु पूर्ण विराजता है, वहाँ एकाग्र हो। आहाहा! **इससे तेरे संसार का भ्रमण मिटेगा।** उससे चार गति का भटकना मिटेगा। देखो! चार गति ली थी न? आहाहा! चार गति, वह संसार परिभ्रमण, दुःख है। आहाहा!

भावार्थ - आत्मा की भावना बिना चार गति के दुःख अनादि काल से संसार में प्राप्त किये, इसलिए अब हे जीव! आत्मा की भावना, ऐसा कहा न? श्रीमद् में आता है, 'आतम भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान।' **तू जिनेश्वरदेव का शरण ले और शुद्धस्वरूप का बारबार भावनारूप अभ्यास कर; इससे संसार के भ्रमण से रहित मोक्ष को प्राप्त करेगा, यह उपदेश है।** लो! विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-९

आगे चार गति के दु:खों को विशेषरूप से कहते हैं, पहिले नरकगति के दु:खों को कहते हैं –

सत्तसु णरयावासे दारुणभीमाइं असहणीयाइं।
भुत्ताइं सुइरकालं दु:क्खाइं णिरंतरं अहियं।।९।।

[१]सप्तसु नरकावासेषु दारुणभीषणानि असहनीयानि।
भुक्तानि सुचिरकालं दु:खानि निरंतरं सोढानि[२]।।९।।

सातों नरक आवास में चिर-काल दारुण भयंकर।
अति असहनीय अनेक दुख बहु-विध सहे हैं निरन्तर।।९।।

अर्थ – हे जीव ! तूने सात नरकभूमियों के नरक आवास बिलों में दारुण अर्थात् तीव्र तथा भयानक और असहनीय अर्थात् सहे न जावें – इस प्रकार के दु:खों को बहुत दीर्घ काल तक निरन्तर ही भोगे और सहे।

भावार्थ – नरक की पृथ्वी सात हैं, उनमें बिल बहुत हैं, उनमें दस हजार वर्ष से लगाकर तथा एक सागर से लगाकर तेतीस सागर तक आयु है, जहाँ आयुपर्यन्त अति तीव्र दु:ख यह जीव अनन्त काल से सहता आया है।।९।।

प्रवचन-१०८, गाथा-९ से १२, रविवार, पोष कृष्ण ६, दिनांक १३-०१-१९७४

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़ है। नौवीं गाथा।

आगे चार गति के दु:खों को विशेषरूप से कहते हैं, पहिले नरकगति के दु:खों को कहते हैं – छहढाला में आता है पहले। पहली ढाल में आता है।

---

१. मुद्रित संस्कृत प्रति में 'सप्तसु नरकावासे' ऐसा पाठ है।
२. मुद्रित संस्कृत प्रति में 'स्वहित' ऐसा पाठ है। 'सहिय' इसकी छाया में।

सत्तसु णरयावासे दारुणभीमाइं असहणीयाइं।
भुत्ताइं सुइरकालं दुःक्खाइं णिरंतरं अहियं।।९।।

अर्थ – हे जीव ! तूने सात नरकभूमियों के... नीचे सात नरक हैं। उनमें **नरक आवास बिलों में...** उनमें नारकी को रहने के बिल हैं। आहाहा! **दारुण...** तीव्र दुःख सहन किये। यह जिनभावना, सम्यग्दर्शन की भावना बिना। उसने ऐसी पुण्य-पाप की भावना अनन्त बार की। जिसके फल में नरकगति में पाप के फलरूप से चला जाये। **दारुण...** कठोर दुःख, भाई! ....भूल गया। वर्तमान देखकर भूत को भूल गया। वर्तमान में यह सब देखे। भूत-गत काल में क्या हुआ, उसे भूल गया। कहते हैं कि ऐसे दुःख तूने सहन किये। कैसे? कठोर। एक बात।

भयानक... दारुण और दुःखादि। भयानक दुःख। ओहोहो! नरक की पीड़ा करोड़ों बिच्छू डंक मारे उसकी अपेक्षा अनन्तगुणी भयानक पीड़ा तुझे थी, भाई! यहाँ जरा ठीक अनुकूल पड़े वहाँ... हो गया। दुनिया की देखा-देखी कि इसे इतना मिला, यह इतना सुखी है। धूल भी नहीं, भाई! वीतरागस्वभाव भगवान आत्मा की अन्तर में भावना बिना, उसकी भिन्न भावना अर्थात् वीतरागी पर्याय बिना ऐसे दुःख तूने अनन्त बार नरक में सहन किये। दो। तीव्र और भयानक—दो।

तीन। **असहनीय...** भाई! तुझसे सहन न हों, ऐसे अनन्त दुःख सहन किये हैं। सहन न हों, तथापि सहन किये। आहाहा! **सहे न जावें – इस प्रकार के दुःखों को...** बाहर से बात करते हैं। मूल तो अन्दर मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष भाव का दुःख है। जिनभावना आत्मा स्वभाव चैतन्यप्रभु वीतरागमूर्ति ऐसा भगवान स्वयं आत्मा, उसकी श्रद्धा की भावना, निर्विकल्प दृष्टि की भावना किये बिना ऐसी स्थिति में मिथ्यात्व और राग-द्वेष से दुःखी हुआ। निमित्त से समझाते हैं।

इस प्रकार के दुःखों को बहुत दीर्घ काल... यह शब्द प्रयोग किया है। एक तो तीव्र, कठोर, भयानक, असहनीय, दीर्घ काल। ओहो! क्षण, दो क्षण या वर्ष दो वर्ष नहीं, असंख्य-असंख्य अरब वर्ष। और वह भी **निरन्तर...** यह शब्द प्रयोग किया है। असंख्य अरब वर्ष तक ऐसे दुःख, भाई! तूने तीव्र, भयानक और सहन न हो ऐसे (सहन किये)। क्या करे? कहाँ जाये? जहाँ जाने की चीज़ है, उसकी तो इसे खबर नहीं।

बाहर की जगत की मिठास, उसमें पड़ा, उसे ऐसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष के दु:ख सहन करना पड़ेंगे।

भोगे... निरन्तर ही भोगे... अन्तर पड़े बिना कठोर, भयानक, सहन न हों ऐसे, दीर्घ काल, निरन्तर (भोगे)। आहाहा! इसके ख्याल में तो यह बात ले। तूने ऐसे दु:ख, प्रभु! अनन्त बार सहन किये। तेरी प्रभुता को भूलकर। तेरी प्रभुता अनन्तगुणी अन्दर है, महाप्रभु है। चैतन्य आनन्द है। ज्ञानस्वभाव और शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतराग स्वभाव... ऐसी उसकी महिमा है। उसे न जानकर, उसे बाहर से ही इसने महिमा दी। इसलिए इसने ऐसे अनन्त बार दु:ख सहन किये। उसके रोने से भी दु:ख न गये, इतने तो दु:ख इसे। देखनेवाले को रुदन आवे। भाई! तूने ऐसे दु:ख सहन किये हैं। तू भूल गया है। भुलभुलैया आता है न? वडोदरा में। दूसरी बहुत जगह होता है। वडोदरा में गये थे।

मुमुक्षु : गोंडल में ... पास में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गोंडल? वडोदरा में... भुलभुलैया है और घुसे अन्दर। निकलना किस प्रकार? व्यक्ति खड़ा है। ले, यह दो आने। ...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भूल निकाले तो जाये, ऐसा है। आहाहा!

चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु, उसके अन्तर रास्ते जाना चाहिए। उसके बदले यह पुण्य और पाप, बाह्य सामग्री के अधिकपना के माहात्म्य के समक्ष दौड़ गया। इसलिए इसे ऐसे नरक के असहनीय, निरन्तर, बहुत काल सहन किये। आहाहा! आचार्यदेव कहते हैं। भाई! अभी तेरी नींद उड़ती नहीं? आहाहा!

भावार्थ – नरक की पृथ्वी सात हैं, उनमें बिल बहुत हैं,... रहने के स्थान बहुत हैं। आहाहा! **उनमें दस हजार वर्ष से लगाकर...** उसकी स्थिति छोटी में छोटी दस हजार वर्ष की। **एक सागर से लगाकर तेतीस सागर तक...** यह एक तेज सिरदर्द करे तो इसे रात बड़ी पड़े। ऐसे सिर का दर्द आवे। सहन नहीं किये जायें। रात्रि में नींद नहीं आवे, करवट बदला करे। यह तो एक अनन्तवें भाग की व्याधि है। इससे अनन्तगुणी नरक में सागरोपम तक (सहन की है)। ओहोहो! एक सागर के दस कोड़ाकोड़ी

पल्योपम, एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। भाई! निरन्तर ऐसे काल में तू रहा, प्रभु! आहाहा! तुझे किसकी महिमा चाहिए? तुझे किसमें अधिकपने दूसरे में दिखाना है? अधिकपना तो चैतन्यमूर्ति का अन्दर पृथक् है। आहाहा! **'णाणसहावाधियं मुणदि आदं'**।

भगवान आत्मा ज्ञान के, आनन्द के स्वभाव से (एकत्व है), राग से और संयोग से और एक समय की पर्याय से भिन्न है। उसकी महिमा भासित न होकर जगत की बाहर की चीज़ में, एक समय की दशा में, राग में या संयोग में अधिकपना भासित होने से वहाँ मिथ्यात्व का महा दु:ख है। संयोग से तो बात की है। जिनभावना ऐसी नहीं की; इसलिए मिथ्यात्वभावना भायी है। आहाहा! अजिनभावना। आहाहा! आचार्य भी भूले हुए को भान कराते हैं। प्रभु! तू भूल गया, कहाँ था, कैसे दु:ख सहन किये, यह तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह बताकर जिनभावना कराने की बात बतानी है। बापू! प्रभु! परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ है न। तेरी एक समय की पर्याय वहाँ (पर में) झुक गयी है। वह महामिथ्यात्व और राग-द्वेष है और उसके कारण से बाह्य के प्रतिकूल संयोग आते हैं। उस प्रतिकूल संयोग में कुछ दु:ख नहीं है। शरीर में दु:ख नहीं है। उन प्रतिकूल संयोगों की ओर की दृष्टि और राग-द्वेष का भाव, वह दु:ख है।

ऐसे सागरोपम तक **तीव्र दु:ख यह जीव अनन्त काल से सहता आया है।**

गाथा-१०

आगे तिर्यंचगति के दु:खों को कहते हैं –

खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च।
पत्तो सि भावरहिओ तिरियगईए चिरं कालं।।१०।।

खननोत्तापनज्वालन [१]वेदनविच्छेदनानिरोधं च।
प्राप्तोऽसि भावरहितः तिर्यग्गतौ चिरं कालं।।१०।।

१. मुद्रित संस्कृत प्रति में 'वेयण' इसकी संस्कृत 'व्यञ्जन' है।

नित खनन उत्तापन प्रजालन बुझाना छेदन रुधन।
के दुःख भोगे दीर्घ-कालिक तिर्यग्गति के भाव-बिन।।१०।।

अर्थ – हे जीव ! तूने तिर्यंचगति में खनन, उत्तापन, ज्वलन, वेदन, व्युच्छेदन, निरोधन इत्यादि दुःख सम्यग्दर्शन आदि भावरहित होकर बहुत कालपर्यन्त प्राप्त किये।

भावार्थ – इस जीव ने सम्यग्दर्शनादि भाव बिना तिर्यंचगति में चिरकाल तक दुःख पाये – पृथ्वीकाय में कुदाल आदि खोदने द्वारा दुःख पाये, जलकाय में अग्नि से तपना, ढोलना इत्यादि द्वारा दुःख पाये, अग्निकाय में जलाना, बुझाना आदि द्वारा दुःख पाये, पवनकाय में भारे से हलका चलना, फटना आदि द्वारा दुःख पाये, वनस्पतिकाय में फाड़ना, छेदना, राँधना आदि द्वारा दुःख पाये, विकलत्रय में दूसरे से रुकना, अल्प आयु से मरना इत्यादि द्वारा दुःख पाये, पंचेन्द्रिय पशु-पक्षी-जलचर आदि में परस्पर घात तथा मनुष्यादि द्वारा वेदना, भूख, तृषा, रोकना, वध-बन्धन इत्यादि द्वारा दुःख पाये। इस प्रकार तिर्यंचगति में असंख्यात अनन्तकालपर्यन्त दुःख पाये* ।।१०।।

गाथा-१० पर प्रवचन

आगे तिर्यंचगति के दुःखों को कहते हैं –

खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च।
पत्तो सि भावरहिओ तिरियगईए चिरं कालं।।१०।।

अर्थ – हे जीव ! तूने तिर्यंचगति में... एकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में अनन्त बार गया। आहाहा! **तिर्यंचगति में खनन,**... पृथ्वीकाय को खोद डाला। एकेन्द्रिय है न पृथ्वीकाय? भाई! वह जीव है। यह सफाई करने के लिये धूल खोदकर बाहर लाते हैं न? दीवाली में बाहर से भर-भरकर (लाते हैं)। एक कण में-कण में असंख्य जीव हैं। आहाहा! दिखता है, वह तो उनका शरीर दिखता है। उसमें जीव शरीर से भिन्न है। उसे यह खोदने के लिये चरसा मारे, खनन एकेन्द्रिय जीव। आहाहा! बापू! ऐसे खनन की पीड़ा तूने अनन्त बार सहन की।

* देहादि में या बाह्य संयोगों से दुःख नहीं है, किन्तु अपनी भूलरूप मिथ्यात्वरागादि दोष से ही दुःख होता है, यहाँ निमित्तादि द्वारा उपादान का-योग्यता का ज्ञान कराने के लिए यह उपचरित व्यवहारनय से कथन है।

उत्तापन,... सूर्य की धूप ऐसी गिरी। पानी गर्म हो गया। समुद्र गर्म हो जाता है। मछलियाँ अन्दर मर जाती हैं, ऐसी धूप की गर्मी। समुद्र गर्म हो जाता है। मछलियाँ मरती हैं और समुद्र गन्ध मारता है। उत्तापन अर्थात् पानी गर्म हो गया। आहाहा! सचेत एकेन्द्रिय जीव है। उसने अग्नि का निमित्त और फिर उष्णता (सहन की)। आहाहा! अरे रे! वह जीव है और उसे दुःख है, यह कौन माने? उस पानी के जीव को **उत्तापन,...** सूर्य की धूप के ताप में गर्म पानी होकर जले, दुःखी हो। भाई! ऐसी बात... आहाहा! इन्द्रिय से दिखे नहीं, ऐसी चीज़ों में आत्मा है कहाँ? भाई! और उसके शरीर की यह तो शरीर से बात की है, उसे धूप लगकर सुखाया है, भाई! उसका दुःख तो उसे भ्रमणा और राग-द्वेष का है। परन्तु संयोग से कथन करके समझाते हैं।

नीचे लिखा है। नीचे नोट (फुटनोट)। **देहादि में या बाह्य संयोगों से दुःख नहीं है,...** नीचे है न? देहादि तो जड़ है। उनमें क्या दुःख होगा? **बाह्य संयोगों से दुःख नहीं है,...** यह ताप पड़ा, वह दुःख नहीं। **किन्तु अपनी भूलरूप मिथ्यात्वरागादि दोष से ही दुःख होता है,...** मूल तो भ्रमणा... आहाहा! आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय रस का कन्द प्रभु, वह पर में सुख है और पर में ठीक है, ऐसी मान्यता से दुःखी हुआ है। उस दुःख की ज्वाला में सुलग रहा है। समझ में आया? ऐसा कहकर प्रभु! तू अब वापस मुड़, ऐसा कहते हैं। यह आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, इसकी ओर जा न, आ न! इसके बिना तेरे दुःख नहीं मिटेंगे, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो जरा पाँच-पचास लाख पैसे हों, शरीर ठीक हो, लड़के ठीक हों और कुछ धन्धा चलता हो, पाँच-पच्चीस नौकर बड़े हैं। हजार-हजार, दो-दो हजार के वेतनदार। बड़ा कारखाना चलता हो पाँच करोड़ का और... आहाहा! भूल गया है। तू वहाँ दुःखी है। मन की संकल्प-विकल्प की ज्वाला से सुलग रहा है। तुझे उसका भान नहीं। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई!

यह बाहर की मिठास... शरीर ठीक हो और यह हो। आहाहा! डॉक्टर बेचारे कहते थे न। बहुत वैराग्य से कहते थे। लड़की तो बीस वर्ष की थी। कुएँ में डाल दी। ... तीन दिन में तो बाहर निकले। ...कोई सगा नहीं, प्रिय नहीं। कोई सगा-प्रिय हुआ नहीं। कोई निकालने आया नहीं... इस ओर कहे, तीन दिन का सड़ा हुआ शरीर। यह देखने से ऐसा हो जाये कि... आहाहा! इस शरीर के भोग लेना और इसमें प्रसन्नता

(लगना), वह दु:ख है। आहाहा! ...यहाँ कहते हैं... आहाहा! ऐसे दु:ख कितनी बार सहे होंगे? लड़के हैं न सब? ऐसे अनन्तबार दु:ख सहन किये। तो भी तुझे हर्ष आता है, प्रभु! ऐसा कहते हैं। जहाँ हर्ष करने जैसी चीज़ है, वहाँ आता नहीं और जहाँ हर्ष नहीं है, जहर का प्याला है, वहाँ... आहाहा! उसे तू गले में ऐसे गटक-गटक कर पीता है, भाई! यह राग और द्वेष और मिथ्याभ्रान्ति के प्याले दु:ख हैं परन्तु तुझे सुख लगते हैं। अरे! इसने भगवान आत्मा की भावना (भायी नहीं)। जिनभावना। भावपाहुड़ है न? अर्थात् वीतरागी प्रभु की वीतरागी पर्याय की भावना इसने कभी नहीं की। यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप इसने भाये हैं। यह तो आस्रव की भावना, संसार की भावना, भटकने की भावना है। आहाहा!

उत्तापन, ज्वलन,... अग्नि से सुलगे। अग्नि से। पहलू बदले, जलाये, अग्नि... पानी छिड़के अग्नि को। आहाहा! .... वे अग्नि के जीव हैं, प्रभु! इसमें तू अनन्त बार था। दीर्घ दृष्टि से भी अभी तक कहाँ रहा तब? तू तो त्रिकाली चीज़ है। तो कहाँ रहा? कि ऐसी जगह रहा। अब तुझे ऐसा मनुष्यपना मिला, प्रभु! जो करने का है, वहाँ आ न, वहाँ आ। चैतन्यप्रभु आनन्द का धाम, वहाँ बसने योग्य है। वहाँ दृष्टि करके स्थिर होने योग्य है। आहाहा! दृष्टि नहीं की, इसलिए यह दृष्टि करके वहाँ स्थिर हुआ। भ्रमणा और राग-द्वेष में पड़ा। आहाहा! यह बाह्य से दु:खों का वर्णन करते हैं।

वेदन,... वेदना। ...आदि का दु:ख। इस शरीर का काट डाले। **व्युच्छेदन,...** छेद डाले। यह वनस्पति देखो न! आहाहा! वनस्पति। हरितकाय, दूधी, करेला, सब्जी। इस घीसोडा के ऊपर की रग निकालते हैं न? सम्हार कर फिर टुकड़े करके खाते हैं। आहाहा! रग निकालने जाते हैं, वहाँ रग में अनन्त असंख्य जीव हैं, उनका घात हो जाता है। विच्छेद हो जाता है। आहाहा! वनस्पति आदि।

निरोधन... रोकना। आगे जाये, उसे रोकना। आहाहा! लोहे की बड़ी कोठी हो, एक व्यक्ति रहे उतनी। पच्चीस हाथ की लम्बी। उसमें ... डालकर अन्दर रखे। तिर्यंच की बात है। अलमारी हो। दीवार को अलमारी की जरूरत नहीं। चूहा आवे, अन्दर जहाँ घुसे वहाँ... न हो ऊँचा, पैर लटके। निरोधन। वहीं का वहीं मरे। आहाहा! आहार नहीं, पानी नहीं, हवा नहीं। अलमारी में। ... अन्दर घुसने जाये। घुसने जाये, वहाँ हो गया।

वहाँ फँसे और मर जाये। भाई कहते थे न। सूकर को सूकर। सूकर के हाथ-पैर सरिया द्वारा बाँधकर, जैसे शक्करकन्द को सेंकते हैं, वैसे अग्नि में डालता था। नारणभाई कहते थे। एक पारसी। आहाहा! सूकर के पैर सरिया द्वारा बाँधकर जैसे अग्नि में शक्करकन्द डालते हैं, वैसे अन्दर डाल दिया। आहाहा! ऐसे तो नरक और तिर्यंच में बहुत दु:ख सहे हैं। उस दु:ख को मिटाने का अवसर है न, प्रभु तेरा। आहाहा! जिसमें नजर डालने से भव न रहे, ऐसी चीज़ में नजर डाल न, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इत्यादि दु:ख सम्यग्दर्शन आदि भावरहित... देखा! भावरहित अर्थात् यह। सम्यग्दर्शन—चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि और उसकी भावना। उसके बिना **बहुत कालपर्यन्त प्राप्त किये।** बहुत काल प्राप्त (हुआ)। यह तिर्यंच की बात है। पशु में। आहाहा!

भावार्थ – इस जीव ने सम्यग्दर्शनादि भाव बिना... आत्मा निर्मलानन्द प्रभु निश्चय सम्यग्दर्शन। उसका आत्मज्ञान और आत्मा की रमणता, ऐसे भाव अर्थात् पर्याय बिना **तिर्यंच गति में चिरकाल तक दु:ख पाये–** देखो! यह स्पष्टीकरण करते हैं। **पृथ्वीकाय में कुदाल आदि खोदने द्वारा...** दु:ख। पृथ्वी में खोदे-खोदे। हाथ से यह करे... यह करे... खोदते-खोदते गहरा जाये और ऊपर गिरे तो वह बाई मर जाये। यहाँ मर गयी थी बाई। पृथ्वी में गहरा-गहरा सफेदा लेने जाये वहाँ। ऊपर बहुत भार हो तो नीचे पड़े और मर जाये। यहाँ बाई मर गयी थी। आहाहा!

जलकाय में अग्नि से तपना,... देखा! यह सब उसके साथ लेना। अग्नि से पानी गर्म हो। धगधगता पानी। उसमें जीव अन्दर मरते हैं। **ढोलना...** पानी ढोले। आहाहा! गर्मी के दिन में सेठिया बैठा हो, रात्रि में पानी ऐसे हवा के लिये डाले। आहाहा! ऐसा करता हो। **अग्निकाय में जलाना,...** देखा! एक के बाद एक शब्द लिया है वापस इसका। अग्निकाय से जलाये। **बुझाना...** अग्नि को बुझावे। वह उसे दु:ख है। **पवनकाय में भारे से हलका चलना,...** लो! वायु। **फटना आदि द्वारा दु:ख पाये, वनस्पतिकाय में फाड़ना,...** विच्छेद आया था न? वनस्पतिकाय को फाड़ना, टुकड़े करना, **छेदना, राँधना आदि द्वारा दु:ख पाये,...** आहाहा! **विकलत्रय**

में दूसरे से रुकना,... रुंधन आया था न? निरोधन। ओहोहो ! ... लिया है। **दूसरे से रुकना,...** सामने आवे, उसे मारे। लोहे का... आहाहा!

मनुष्यादि द्वारा वेदना,... वेदन... मनुष्यादि मारे, काटे। चूहे को पिंजरे में भरकर गर्म-गर्म धगधगता पानी ऊपर डाले। एक बार पालेज में निकला था। .... पिंजरे में चूहे, धगधगता पानी डाले। अरे! यह तू क्या करता है भाई? आहाहा! यह तो चूहे मारने की। पिंजरे में चूहे थे। पिंजरा आता है न लोहे का? अनाज की दुकान हो, बहुत बड़ी दुकान हो... वह समाप्त हो जाये। पिंजरे में चूहे बहुत थे तो उसमें ऊपर गर्म-गर्म पानी सिर पर डाले, धगधगता। आहाहा! यहाँ जरा गाली दे, वहाँ इसे हो जाये, हमारा अपमान! अरे! बापू! तूने क्या किया? किसमें अपमान? भाई! ऐसे दुःख तो तूने अनन्त बार सहन किये हैं। उसमें अनन्त काल गया है। आहाहा!

अल्प आयु से मरना... एकेन्द्रिय, यह दो इन्द्रिय। ... मरे, दुःख पाये। **पंचेन्द्रिय पशु-पक्षी-जलचर आदि में परस्पर घात...** मच्छ... बड़ा मगरमच्छ, छोटे मगरमच्छ को पूरा निगले। आहाहा! पूरे चूहे को निगले, नेवला। **मनुष्यादि द्वारा वेदना, भूख, क्षुधा,...** पानी मिले नहीं, आहार मिले नहीं। **तृषा, रोकना, वध-बन्धन इत्यादि द्वारा दुःख पाये। इस प्रकार तिर्यंचगति में असंख्यात अनन्तकालपर्यन्त दुःख पाये।** इसका स्पष्टीकरण किया है। दुःख तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष का है।

गाथा-११

आगे मनुष्यगति के दुःखों को कहते हैं -

आगंतुक माणसियं सहजं सारीरियं च चत्तारि।
दुक्खाइं मणुयजम्मे पत्तो सि अणंतयं कालं।।११।।

आगंतुकं मानसिकं सहजं शारीरिकं च चत्वारि।
दुःखानि मनुजजन्मनि प्राप्तोऽसि अनन्तकं कालं।।११।।

हैं मानसिक कायिक सहज आगंतुकी ये चतुर्विध।
बहु दुःख भोगे मनुज भव में दीर्घ काल अनन्त तक।।११।।

अर्थ **– हे जीव ! तूने मनुष्यगति में अनन्त काल तक आगन्तुक अर्थात् अकस्मात् वज्रपातादिक का आ गिरना, मानसिक अर्थात् मन में ही होनेवाले विषयों की वांछा का होना और तदनुसार न मिलना, सहज अर्थात् माता, पितादि द्वारा सहज से ही उत्पन्न हुआ तथा रागद्वेषादिक से वस्तु के इष्ट अनिष्ट मानने से दुःख का होना, शारीरिक अर्थात् व्याधि, रोगादिक तथा परकृत छेदन, भेदन आदि से हुए दुःख – ये चार प्रकार के और चकार से इनको आदि लेकर अनेक प्रकार के दुःख पाये।।११।।**

गाथा-११ पर प्रवचन

आगे मनुष्यगति के दुःखों को कहते हैं –

आगंतुक माणसियं सहजं सारीरियं च चत्तारि।
दुक्खाइं मणुयजम्मे पत्तो सि अणंतयं कालं।।११।।

अर्थ – हे जीव ! तूने मनुष्यगति में अनन्त काल तक आगन्तुक अर्थात् अकस्मात् वज्रपातादिक का आ गिरना,... आहाहा! बैठा हो, वहाँ गिरे बड़ा वज्र सिर पर। ऊपर से गिरे बड़ा टोकरा। आहाहा! यह देखो न अमरेली में स्लेब गिरा ऊपर। अशेषभाई मर गये। अशेषभाई काम करते थे और उनके दो मिस्त्री थे। स्लेब थे तो स्लेब में बैठे। स्लेब गिरा ऊपर। दो-तीन मण का सीमेंट का। दोनों मर गये। ऐसा तो अनन्त बार है, एक बार नहीं, भाई! काल अनन्त गया है। अनन्त काल में कौन सी बात अनन्त बार नहीं हुई? आदिरहित काल में जिसकी आदि नहीं, ऐसे अनन्त काल में ऐसे दुःख मनुष्यपने के अनन्त बार हुए। उसे याद करे तो बाहर में अभिमान करने का अवसर नहीं रहता। यह मेरे, इसका गुमान रहता नहीं। आहाहा! यह अकस्मात्।

मानसिक अर्थात् मन में ही होनेवाले विषयों की वांछा का होना... विषय की वांछा हो और मिले नहीं और फिर जले। इच्छा प्रमाण इच्छा हो और इच्छा प्रमाण मिले नहीं। आहाहा! उसकी कल्पना की दाह में सुलगता है। आहाहा! दो भाई में इस

भाई को ऐसा और मेरे नहीं। दोनों अलग हुए तब समान थे। छोटा बढ़ गया और मैं घट गया। है न? ... पाँच पदार्थ की। **वांछा का होना और तदनुसार न मिलना,...** वांछा प्रमाण नहीं मिले, इसलिए कल्पना (करे)। आहाहा!

सहज अर्थात् माता, पितादि द्वारा सहज से ही उत्पन्न हुआ... ... दुःख दे। माता-पिता ऐसे मिले हों। **रागद्वेषादिक से वस्तु के इष्ट-अनिष्ट मानने से दुःख का होना,...** यह दो सहज में डाला। इष्ट-अनिष्ट मानने से दुःख होना। आहाहा! अनुकूलता में राग और प्रतिकूलता में द्वेष, ऐसे इष्ट-अनिष्ट में दुःखी होना। आहाहा! चौथा। **शारीरिक अर्थात् व्याधि, रोगादिक तथा परकृत छेदन,...** शरीर में कठोर व्याधि आना। आहाहा! देखो न! यह क्या कहलाता है? ... ...

मुमुक्षु : ... काय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... बहुत पीड़ा। यहाँ पड़ा हो। छोटे-छोटे लड़कों को है तुम्हारे। आहाहा!

परकृत छेदन,... अँगुली काटे, हाथ काटे। आहाहा! यह कलकत्ता में देखा हुआ है न एक। अँगुली को। व्यवस्थित एक मण्डली है। आहाहा! मनुष्य को उठाकर लावे। जवान लड़के को कहीं से। उसे दो हाथ काट डाले यहाँ से। पैर काट डाले यहाँ से। वह (भीख) मँगावे। आहाहा! प्रभु... प्रभु! उसकी वेदना, उसकी कल्पना में ऐसा हो। यह मक्खियाँ बैठे। हाथ-पैर तो न मिले कुछ। आहाहा! ऐसे दुःख सम्यग्दर्शन बिना, वीतरागी प्रभु की भावना बिना ऐसे दुःख सहन किये।

छेदन, भेदन आदि से हुए दुःख - ये चार प्रकार के और चकार से इनको आदि लेकर अनेक प्रकार के दुःख पाये। मनुष्यपने में ऐसे दुःख प्राप्त हुए। दिखता है न प्रत्यक्ष। विषय लेने गया हो और उसे कुछ खबर न पड़े कि यह तो धनी आया, उसे डाले पाखाने में। आहाहा! यहाँ से कब वापस निकलने के अवसर की खबर न हो। उलझन... उलझन में मर जाये उसमें। आहाहा! जगत में क्या नहीं होता? प्रतिकूलता के संयोग अपार। उसकी भीड़ में भिडाये जाये। ऐसे दुःख तूने मनुष्यपने में सहन किये। उसे याद न करे। यह पैसे मिले, स्त्री मिली, यह हुआ... यह हुआ... हम सुखी हैं न।

एक व्यक्ति कहता था, हम सुखी हैं न। महाराज कहते हैं, दु:खी है परन्तु हम तो सुखी हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वड़ोद में। उमराला के पास वड़ोद है न! रूपल सेठ, गाँव के नगरसेठ। आहाहा! हम सुखी हैं। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! पाँच हजार-दस हजार महीने में पैदा हो, लड़के ठीक हों, पैसा-पूँजी हो।...बापू! तुझे खबर नहीं। उस दु:खी की ज्वाला में तू सुलग रहा है। आहाहा! आमदनी हो लाख की, दो लाख की। एक लाख रुपये पैदा किये। दो लाख किये, पाँच लाख किये। उसका हर्ष आता है। वह कषाय अग्नि है। आहाहा! कषाय में कीड़ा सुलगता है, वहाँ कषाय का।

शान्ति का नाथ, शान्तिनाथ आत्मा है। आहाहा! ऐसा अकषायस्वभावी भगवान, उसकी तूने भावना नहीं की और यह सब भावना करके ऐसे दु:ख वेदन किये। इसी प्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि हैं, आचार्य हैं। शास्त्र का पुकार है। जगत को ऐसा प्रसिद्ध करते हैं। परसन्मुख का वीर्य शिथिल कर, भाई! ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष और पुण्य-पाप के भाव के प्रति की रुचि का भाव ढीला कर, भाई! नहीं तो ऐसे दु:ख सहन किये। सुनने में तुझे त्रास होगा। यह तूने जीते-जी सहन किये हैं। परन्तु यह दु:ख .... आहाहा! कहाँ माने इसमें? अभी दो कारखाना है। दो-पाँच लाख के कारखाने चलते हैं। पचास-पचास हजार, लाख पैदा हो। आहाहा! अब इसमें दु:खी था भूतकाल में, कौन याद करे इसमें?

मुमुक्षु : वर्तमान दु:खी है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान भी दु:खी है, इसका तो भान ही कहाँ है। आहाहा!

गाथा-१२

आगे देवगति के दु:खों को कहते हैं –

सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिव्वं।
संपत्तो सि महाजस दु:खं सुहभावणारहिओ ।।१२।।

सुरनिलयेषु सुराप्सरावियोगकाले च मानसं तीव्रम्।
संप्राप्तोऽसि महायश ! दु:खं शुभभावनारहित: ।।१२।।

प्रिय देवियों के विरह में अति तीव्र मानस दुख सहे।
हे महायश! शुभ भावना से रहित बन देवत्व में।।१२।।

अर्थ – हे महायश ! तूने सुरनिलयेषु अर्थात् देवलोक में सुराप्सरा अर्थात् प्यारे देव तथा प्यारी अप्सरा के वियोगकाल में उसके वियोग सम्बन्धी दु:ख तथा इन्द्रादिक बड़े ऋद्धिधारियों को देखकर अपने को हीन मानने के मानसिक तीव्र दु:खों को शुभभावना से रहित होकर पाये हैं।

भावार्थ – यहाँ 'महायश' इस प्रकार सम्बोधन किया। उसका आशय यह है कि जो मुनि निर्ग्रन्थलिंग धारण करे और द्रव्यलिंगी मुनि की समस्त क्रिया करे, परन्तु आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख न हो, उसको प्रधानतया उपदेश है कि मुनि हुआ वह तो बड़ा कार्य किया, तेरा यश लोक में प्रसिद्ध हुआ, परन्तु भली भावना अर्थात् शुद्धात्मतत्त्व के अभ्यास बिना तपश्चरणादिक करके स्वर्ग में देव भी हुआ तो वहाँ भी विषयों का लोभी होकर मानसिक दु:ख से ही तप्तायमान हुआ ।।१२।।

गाथा-१२ पर प्रवचन

आगे देवगति के दु:खों को कहते हैं – नरक का कहा, तिर्यंच का कहा, मनुष्य का कहा। (अब) देव।

सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिव्वं।
संपत्तो सि महाजस दु:खं सुहभावणारहिओ ।।१२।।

लो! शुभभावना, देखा! दो बार। शुभभावना ही यह है। सम्यग्दर्शन की भावना, वही शुभभावना है। वह शुभभाव तो अशुभभाव है-अशुद्धभाव है। आहाहा!

अर्थ – हे महायश! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, हों! **हे महायश!** है न पाठ? ऐसा कहते हैं, तूने मुनिपना लिया, स्त्री, कुटुम्ब छोड़ा, महात्याग किया परन्तु प्रभु! तू द्रव्यलिंग में प्रसन्न हो गया। **तूने सुरनिलयेषु अर्थात् देवलोक में सुराप्सरा अर्थात् प्यारे देव...** बापू! जब तू स्वर्ग में गया वहाँ उस पुण्यभाव अर्थात् अशुद्धभाव से स्वर्ग मिला, उसमें तेरे प्रिय देव और प्रिय अप्सरा, उनके वियोग काल में असह्य दुःख तुझे आया, भाई! प्रिय में प्रिय अप्सरा, प्रिय में प्रिय देव, वे देव जाये, क्षण में उड़ जाये। फू... जाओ। उनके वियोग काल में तुझे बहुत दुःख हुए, बापू!

उसके वियोग सम्बन्धी दुःख तथा इन्द्रादिक बड़े ऋद्धिधारियों को देखकर अपने को हीन मानने के मानसिक तीव्र दुःख... ओहोहो! अपने से अधिक बाहर के इन्द्रादि, महाऋद्धिवाले देव दुःखी, स्वयं हल्का देव हो। आहाहा! अपमान... अपमान, अनादर... अनादर। इसके दुःख तुझे हुए, भाई! समझ में आया? स्वर्ग में भी तेरे पुण्य हीन-न्यून में मिथ्यादृष्टिरूप से द्रव्यलिंग धारण करके सम्यग्दर्शन की भावना बिना ऐसा मुनिपने का क्रियाकाण्ड करके स्वर्ग में गया। परन्तु वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव सब बहुत, इन्द्रपद को प्राप्त, यह देखकर तुझे अन्दर जलन हुई। आहाहा! वहाँ मैं मनुष्यरूप से साधारण जीव की अपेक्षा अधिक गिना जाता था, यहाँ मैं अधिक नहीं, मैं हीन हो गया। ... देव में जाये नहीं, शास्त्र में ऐसा लेख है। सभा में बैठा हो और बोलना चाहे। ... देवा! मा भाष—बोलना नहीं। बापू! तुझे। आहाहा! ... ... यह तो कितने तीन लाख, चार लाख जितने खर्च किये थे। यह जाने कि ... सब राजा इकट्ठे हुए और कुछ बोलने लगा। ... बैठ जाओ। आहाहा! ... बैठ जाओ। उसे ऐसा कि ऐसा वहाँ तो पाखाना बनाया था। कितने खर्च किये थे? लाखों, करोड़ रुपये। ऐसा कि मुझे राज में ... मान्य हुआ। बोलने लगा, बैठ जाओ। ...

मुमुक्षु : मेहरबानी करके बैठ जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेहरबानी करके बैठ जाओ। आहाहा! मेहरवानी करके बैठ जाओ। गजब है न! अपमान-अपमान। करोड़ों का तालुका। ... अंग्रेज सरकार ने। ....

इस जगत के देखो न! उसे कहने गये बेचारे साधारण। ऐसा पाप करना रहने दो। हम इस हाथ से करेंगे और इस हाथ से भोगेंगे। हम राजा हैं। ... अभी नरक में रंक होकर रोता होगा।... आहाहा! उसकी पीड़ा-रुदन का पार नहीं होता। ऐसी पीड़ा में अभी पड़े होंगे। यहाँ का पर्दा बन्द हो गया और वह पर्दा खुल गया बाहर नरक का। भाई! अवसर आये और तूने किया नहीं कुछ और की तो यह उल्टी सब राग-द्वेष की भावना, ऐसा कहते हैं। उसके फल में स्वर्ग में गया तो वहाँ अपमान के दुःख तूने सहन किये। आहाहा!

मानसिक तीव्र दुःखों को शुभभावना से रहित होकर पाये हैं। शुभ अर्थात् वह शुभ ही यह शुद्ध है। पुण्य-पाप में आता है न? समयसार में। उसे ही शुद्ध कहा। आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु की दृष्टि, ज्ञान और रमणता तथा विकल्परहित की निर्विकल्प दशा, उसे यहाँ शुभ कहा जाता है। बाकी तो व्रत, नियम और तप के विकल्प, वे सब अशुद्ध हैं। आहाहा! जिसके फल में गति मिले, वह भाव अशुद्ध है। जिसके फल में मुक्ति मिले, वह भाव शुद्ध है। बाहर की इस सब जंजाल में यह कहाँ... निवृत्ति कहाँ है इसे? मुझे निवृत्ति नहीं। मरने की फुरसत नहीं हमें। ऐसा धन्धा हमारे (चलता है)। आहाहा! मरने पड़ेगा तो पड़ेगा पैरों से नीचे, भाई! हाय... हाय... रे... मुझे नहीं कराना... चले जाओ। कहाँ जाकर उतारा करेगा? रोता था। व्यक्ति नहीं खुशालभाई का दामनगर का बनिया ... उसके बापू। होशियार व्यक्ति। इस संसार का... है। मरते समय लोग देखने आवे और आँख में से आँसू बहते जायें। सब लोग देखने आवे और आँख में से आँसू बहते जाये। क्या है? भाई! मैंने कुछ किया नहीं, मेरा सब काल इसमें गया। आँख में से आँसू की धारा। ... खुशाल प्रेमचन्द, दामनगर। आहाहा! ढीला किये बिना यह आगे नहीं जा सकेगा। आहाहा! बाहर की अधिकाई और मान-अपमान छोड़ न। आहाहा!

भावार्थ – यहाँ 'महायश' इस प्रकार सम्बोधन किया। उसका आशय यह है कि जो मुनि निर्ग्रन्थलिंग धारण करे... ऐसा कहते हैं। तू नग्नमुनि हुआ-दिगम्बर मुनि (हुआ)। यह वस्त्रवाले तो मुनि नहीं, व्यवहार से मुनि नहीं। जैनदर्शन में तो निर्ग्रन्थ मुनि, नग्न मुनि को द्रव्यलिंग कहा जाता है। ऐसा तूने धारण किया। **समस्त**

क्रिया करे,... है तू। द्रव्यलिंगी की। पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, निर्दोष आहार, पानी... आहाहा! **परन्तु आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख न हो...** आहाहा! परन्तु उस शुभ की क्रिया का रस तो राग है। भगवान आत्मा की ओर का भाव जो शुद्ध उपयोग है, उसके तो सन्मुख हुआ नहीं, उसकी भावना की नहीं। आहाहा! यह धर्म तो शुद्ध उपयोग है। यह पंच महाव्रत और यह सब शुभ उपयोग है, यह सब धर्म नहीं। आहाहा! यह तो अधर्म है।

आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख... शुद्धोपयोग, वह आत्मा के सन्मुख का भाव है। शुभभाव, वह परसन्मुख का भाव है। शुभ उपयोग दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, पूजा वह तो परलक्ष्यीभाव है। यह तो **आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख न हो, उसको प्रधानतया उपदेश है...** उसे यहाँ उपदेश कहते हैं। द्रव्यलिंगी साधु हुआ। हजारों रानियाँ छोड़ी, राजपाट छोड़े, पंच महाव्रत पालन किये परन्तु वह सब बाह्य लक्ष्यवाली क्रियाएँ परन्तु प्रभु! अन्तर सन्मुख होने का जो उपयोग उसकी तो तूने दृष्टि की नहीं। आहाहा! बहिर्मुख की जो यह सब शुभक्रियाएँ, वे तो संसार खाते की है।

आत्मा के स्वरूप शुद्धोपयोग के सन्मुख न हो, उसको प्रधानतया उपदेश है... मुख्य उसे कहा जाता है। इसलिए महायश कहा है न। महाशय। तेरी इज्जत तो बढ़ी बाहर में। उसमें भला क्या हुआ? आहाहा! ऐसा नग्नमुनि, दिगम्बर मुनि हो, पंच महाव्रत पाले, समिति, गुप्ति पालन करे। उसमें क्या हुआ? वह तो संसार है। वह तो संसार की दिशा की ओर का भाव है। आत्मा का स्वरूप सन्मुख का भाव तो शुद्धोपयोग है। वह संसारपन्थ है, यह मोक्षपन्थ है। आहाहा! जगत का जँचा नहीं। मूल चीज़ और उसका भाव और उसकी भावना। मूल चीज़ आत्मा और उसका भाव शुद्ध त्रिकाल और उसकी भावना वीतरागी निर्मल पर्याय। उसके सामने तो तूने कभी देखा नहीं। आहाहा! क्या किया तूने?

मुनि हुआ वह तो बड़ा कार्य किया,... यह व्यवहार से बात की। **तेरा यश लोक में प्रसिद्ध हुआ,...** महायश कहा न? **परन्तु भली भावना अर्थात् शुद्धात्मतत्त्व के अभ्यास...** आहाहा! भगवान पवित्र विकल्प राग, दया, दान के विकल्प से रहित

प्रभु आत्मा, ऐसा जो आत्मा, उसकी **भली भावना अर्थात् शुद्धात्मतत्त्व के अभ्यास बिना...** अन्तर चैतन्यद्रव्य की दृष्टि और अनुभव बिना... आहाहा! **तपश्चरणादिक करके स्वर्ग में देव भी हुआ...** तपस्या की, व्रत पालन किये। आहाहा! और उसके फल में स्वर्ग गया। **वहाँ भी विषयों का लोभी होकर...** क्योंकि शुभभाव, वह तो विषय है। उसके प्रेम में, महाव्रत के प्रेम में पड़ा विषय का लोलुपी है, कहते हैं। आहाहा! इसने स्वविषय नहीं किया। अपने अभ्यास बिना वस्तु जो चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ, उसके सन्मुख की दृष्टि और अभ्यास बिना। **तपश्चरणादिक करके स्वर्ग में देव भी हुआ तो वहाँ भी विषयों का लोभी होकर मानसिक दु:ख से ही तप्तायमान हुआ।** वहाँ मानसिक दु:ख में तपते हुए दाह-जलन (भोगी)। आहाहा! अरे! यह सब मुझसे बड़े। वहाँ मुझसे छोटे थे। यहाँ तो बड़े हो गये। मैं हीन रहा, ऐसी मानसिक कल्पना से दु:खी हुआ। स्वर्ग में भी दु:ख को भोगा। एक सम्यक् चैतन्य की दृष्टि और भावना बिना। इसलिए किसी भी प्रकार से प्रभु! तू आत्मद्रव्य की ओर आ। आहाहा! अन्तर में जा... अन्तर में जा... अन्तर में देख कि जिससे तुझे निधान प्राप्त होंगे। आहाहा! और उसके कारण तुझे मुक्ति, शरीर का नाश हो जायेगा। स्वर्गादि गति का नाश और मुक्ति होगी। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१३

आगे शुभभावना से रहित अशुभ भावना का निरूपण करते हैं -

कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणाई य।
भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ।।१३।।

कांदर्पीत्यादी: पंचापि अशुभादिभावना: च।
भावयित्वा द्रव्यलिंगी प्रहीणदेव: दिवि जात:।।१३।।

हो द्रव्यलिंगी अशुभ कान्दर्पी इत्यादि भावना।
पाँचों हि भाकर हीन-पुण्यी देव दिवि में जा हुआ।।१३।।

अर्थ – हे जीव ! तू द्रव्यलिंगी मुनि होकर कान्दर्पी आदि पाँच अशुभ भावना भाकर प्रहीणदेव अर्थात् नीचदेव होकर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ।

भावार्थ – कान्दर्पी, किल्विषिकी, संमोही, दानवी और अभियोगिकी – ये पाँच अशुभ भावना हैं। निर्ग्रन्थ मुनि होकर सम्यक्त्व भावना बिना इन अशुभ भावनाओं को भावे तब किल्विष आदि नीच देव होकर मानसिक दुःख को प्राप्त होता है।।१३।।

प्रवचन-१०९, गाथा-१३ से १८, मंगलवार, पोष कृष्ण ८, दिनांक १५-०१-१९७४

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। गाथा १३। यह भावपाहुड़ है अर्थात् आत्मा चैतन्य शुद्ध वीतरागस्वरूप है, ऐसी दृष्टि और ऐसा शुद्धभाव कभी किया नहीं। और इस शुद्धभाव बिना अनन्त बार नरक में गया, पशु की योनि में रहा, मनुष्य में रहा और देव में रहा। सर्वत्र यह दुःखी था। देव में भी हीन देव हो। यह बात अब लेते हैं। देव होता है। अब यहाँ साधु तक की बात है कि जैन का साधु हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ है तो भी इसने कुभावना छोड़ी नहीं और आत्मतत्त्व जो शुद्ध चैतन्य भगवान, ऐसे पवित्र परमात्मा का स्वरूप उसकी इसने भावना—जिनभावना की नहीं। चार गति में तो भटका। देव हुआ और साधु भी ऐसा अनन्त बार हुआ, ऐसा कहते हैं। ऐसा यहाँ कहना है।

कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणाई य।
भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ।।१३।।

सम्यग्दर्शन की भावना बिना दूसरे भव तो अंगीकार किये। जिनभावना (की नहीं)। परन्तु कहते हैं कि ऐसे साधुपना लिया, परन्तु उसने जिनभावना नहीं भायी, कुभावना भायी। संसार में तो स्त्री, पुत्र, परिवार में, धन्धे में तो पाप किये और वीतराग भावना भायी नहीं। और पुण्य भी किये परन्तु वीतरागभाव की भावना बिना, वह स्वर्गादि में भी दुःखी है। यहाँ तो वहाँ तक लेना है अब कि ऐसे तो भव किये, परन्तु जैन साधु के भव में भी तूने जिनभावना भायी नहीं। आहाहा!

अर्थ – हे जीव! तू द्रव्यलिंगी मुनि होकर... बाह्य से नग्नदिम्बर सन्त हुआ। ओहो! गृहस्थाश्रम में पड़े हैं, उन्हें तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष की भावना थी, इसलिए

भटके, परन्तु मुनि होकर भी जिसने आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, जिसमें राग का अंश नहीं, ऐसी चीज़ की दृष्टि नहीं की, इसलिए हे **जीव! तू द्रव्यलिंगी मुनि होकर कान्दर्पी आदि पाँच अशुभ भावना भाकर...** पाठ में **'असुहादि'** है। यहाँ **अशुभ भावना भाकर...** अर्थात् किसी समय अशुभ भावना में शुभ भी हो। देव होते हैं न? परन्तु वह सब जिनभावना बिना की। पुण्य और पाप के भाव, वह रागभाव है। राग है, भाई! राग की भावना तो मिथ्यात्वभाव है।

मुनि होकर **अशुभ भावना भाकर प्रहीणदेव अर्थात् नीचदेव...** हुआ। उसमें हीन देव में भी अपमान आदि में दुःख को सेवन किया। अपने से अधिक पुण्यवन्त प्राणी देखकर शुभभाव के वश स्वर्ग में गया, उसे देखकर अन्दर द्वेष होता है। सहन नहीं होता। अरे! यह क्या? बापू! ऐसी भावना साधु होकर भी मिथ्यात्व की भावना और राग की भावना भाने से, स्वर्ग में गया कोई शुभभाव था इसलिए। परन्तु वह शुभ भी अशुभ ही है। समझ में आया? वह जीव **नीचदेव होकर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ।** यह इसका इतिहास कहते हैं। जीव का इतिहास। आहाहा! चार गति में किस प्रकार भटका? भाई! तुझे आत्मा, निर्विकल्प आनन्द का नाथ कन्द प्रभु, उसे छोड़कर तूने शुभाशुभ भावना अनन्त बार की। आहाहा!

चैतन्यद्रव्य वस्तु परमानन्द और ज्ञान की मूर्ति है, ऐसी तूने दृष्टि की भावना कभी नहीं की। इसलिए इसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आया। संसार में पाप किये और नरक में गया, पशु में गया, वह तो एक ओर रहो, कहते हैं। परन्तु यह तो गृहस्थाश्रम छोड़कर साधु हुआ तो भी जिनभावना नहीं भायी। वहाँ भी अशुभ-शुभभाव में रहा। आहाहा! यह तो वीतराग परम स्वभावी, वीतराग मार्ग है। यह रागरहित अन्तर चीज़ प्रभु, उसका माहात्म्य लाकर उसकी एकाग्रता करना, ऐसी दृष्टि इसने अनन्त काल में नहीं की। साधु हुआ तो भी (नहीं की)।

भावार्थ – कान्दर्पी,... कान्दर्पी अर्थात् कुचेष्टायें ऐसी करे और साधु होकर विकथाएँ करे। त्यागी न हो उसे तो कहते हैं भले वह पाप किये और नरक में गया और पशु में गया। परन्तु यह तो साधु होकर भी ऐसी विकथाएँ करता है। **किल्विषिकी,...** हल्का देव हो। ढेढ़। उसमें भी हल्के जीव होते हैं न? ऐसे देव में किल्विषिकी ढेढ़

जैसे, हरिजन-हल्के देव होते हैं। उनमें अनन्त बार गया। **संमोही,...** मोह। राग और द्वेष के मोह में साधु होकर भी उस मोह की ही भावना भायी। आहाहा! इससे वहाँ देव हुआ। **दानवी...** असुर जैसा हुआ। दानवी अर्थात् असुर। असुर जैसी प्रकृति रखी। कौतूहल की, मस्करी की, राग की... उसके कारण असुर में गया। यह इसका अनादि का इतिहास है। कहो, समझ में आया?

और अभियोगिकी –... वहाँ स्वर्ग में सेवक हुआ। अभियोग अर्थात् सेवक। यहाँ साधु हुआ परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! बारह के व्रतादि पालन किये, परन्तु उसमें विकथा आदि का अशुभभाव भी आया। स्वर्ग में सेवक हुआ। देव का सेवक हुआ। वे सब दुःखी हैं। आहाहा! देव में आये तो भी उनके ऊपर के वापस सेवक। इन्द्र और बड़े देवों की सेवा करना। **ये पाँच अशुभ भावना हैं। निर्ग्रन्थ मुनि होकर...** ऐसा कहते हैं, देखो! **सम्यक्त्व भावना बिना...** हेतु तो यह है। आहाहा! संसार की पिंजड़ में पड़ा और आत्मा को भूला, इसीलिए तो भटका, परन्तु यह संसार, स्त्री, पुत्र, परिवार तूने छोड़ दिया। ऐसे नग्नरूप से भी निर्ग्रन्थदशा में अनन्त बार आया, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना... आहाहा! पूर्ण परमात्मस्वरूप, शुद्ध चैतन्यघन आत्मा, उसे इसने विश्वास में, प्रतीति में, भरोसे में न लेकर, अकेले विकल्प की भावनायें भायीं। आहाहा!

अशुभ भावनाओं को भावे, तब किल्विष आदि नीच देव होकर... हल्के देव हो, हल्के। **मानसिक दुःख को प्राप्त होता है।** मन में दुःख... दुःख... दुःख... ओहोहो! देव में आये, वे तो ढेढ़ जैसे... सभा में जाये तो बोलने न दे। आहाहा! वीतरागी आत्मा प्रभु, ऐसे जिनभावना; सम्यग्दर्शन कहो या जिनभावना कहो। सम्यग्दर्शन कहो या त्रिकाली चीज़ की एकाग्रता अन्दर में-श्रद्धा में, ऐसी चीज़ बिना ऐसी भावना की, मरकर स्वर्ग में गया। अपमान के दुःख सहन किये। मन में मानसिक दुःख (सहन किये)। आहाहा!

गाथा-१४

आगे द्रव्यलिंगी पार्श्वस्थ आदि होते हैं, उनको कहते हैं –

पासत्थभावणाओ अणाइकालं अणेयवाराओ।
भाऊण दुहं पत्तो कुभावणाभावबीएहिं।।१४।।

पार्श्वस्थभावना: अनादिकालं अनेकवारान्।
भावयित्वा दु:खं प्राप्त: कुभावनाभावबीजै: ।।१४।।

बहु बार काल अनादि से पार्श्वस्थ आदि भावना।
भाकर कुभावन भावमय बीजों से भीषण दुख सहा।।१४।।

अर्थ – हे जीव! तू पार्श्वस्थ भावना से अनादि काल से लेकर अनन्त बार भाकर दु:ख को प्राप्त हुआ। किससे दु:ख पाया? कुभावना अर्थात् खोटी भावना, उसका भाव – वे ही हुए दु:ख के बीज, उनसे दु:ख पाया।

भावार्थ – जो मुनि कहलावे और वस्तिका बांधकर आजीविका करे, उसे पार्श्वस्थ वेषधारी कहते हैं। जो कषायी होकर व्रतादिक से भ्रष्ट रहे, संघ का अविनय करे, इस प्रकार के वेषधारी को कुशील कहते हैं। जो वैद्यक ज्योतिषविद्या मंत्र की आजीविका करे, राजादिक का सेवक होवे, इस प्रकार के वेषधारी को संसक्त कहते हैं। जो जिनसूत्र से प्रतिकूल, चारित्र से भ्रष्ट आलसी इस प्रकार वेषधारी को 'अवसन्न' कहते हैं। गुरु का आश्रय छोड़कर एकाकी स्वच्छन्द प्रवर्ते, जिन आज्ञा का लोप करे, ऐसे वेषधारी को 'मृगचारी' कहते हैं। इनकी भावना भावे, वह दु:ख ही को प्राप्त होता है।।१४।।

गाथा-१४ पर प्रवचन

आगे द्रव्यलिंगी पार्श्वस्थ आदि होते हैं, उनको कहते हैं – पार्श्वस्थ आदि साधु होते हैं। कहते हैं कि साधु में भी बहुत भेद हैं। वे भी मिथ्यादृष्टि होवे न... आहाहा! गृहस्थाश्रम में नरक में जाने के भाव किये, पशु के किये, स्वर्ग के किये और

मनुष्यपने के किये। परन्तु यह तो साधु होकर भी चार गति के भटकने के भाव किये, ऐसा कहते हैं। यह तो देव का भाव है। आहाहा!

पासत्थभावणाओ अणाइकालं अणेयवाराओ।
भाऊण दुहं पत्तो कुभावणाभावबीएहिं।।१४।।

अर्थ – हे जीव! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत को सम्बोधन कर कहते हैं, हे आत्मा! आहाहा! **तू पार्श्वस्थ भावना से अनादि काल से लेकर अनन्त बार भाकर...** पार्श्वस्थ साधु। साधु के पास रहे अवश्य परन्तु क्रिया सब कलुषित। अशुभभावना, राजा को प्रसन्न करना, राजा बड़े करोड़पति, अरबोंपति हों, उनके साथ सम्पर्क करना, उनकी महिमा करना, यह सब पार्श्वस्थ साधु कहलाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त बार भाकर दुःख को प्राप्त हुआ। किससे दुःख पाया? कुभावना अर्थात् खोटी भावना,... राग की भावना, अशुभ की भावना, कुतुहल की भावना। आहाहा! राजा आदि बड़े सभा में आवे। ... कथा में। तो उन्हें मक्खन लगाये, गुणगान करे, सम्पर्क करे। आहाहा! उसमें तो मर गया, कहते हैं। कहो, समझ में आया? यहाँ कहा न साधु राजा को वश करके राज का मान प्राप्त करे। वहाँ क्या राज का मान चाहिए था। अनन्त बार भावना भायी। **दुःख के बीज,...** इस वीतराग दृष्टि बिना सब राग की भावनायें दुःख का बीज है। **उनसे दुःख पाया।**

भावार्थ – जो मुनि कहलावे और वस्तिका बाँधकर... मकान बाँधकर रहे। **उसे पार्श्वस्थ वेषधारी कहते हैं।** साधु के पास रहने पर भी वेशधारी कहते हैं। **और कषायी होकर व्रतादिक से भ्रष्ट रहे,...** कषाय मान... मान... मान... लोभ और राग और माया में कुटिलता, कपटता के रस में पड़ा व्रतादिक से भ्रष्ट हो जाता है। होवे नग्न मुनि दिगम्बर। आहाहा! उसमें भी तूने भावना नहीं भायी, ऐसा कहते हैं। जो करनेयोग्य था, वह वहाँ भी नहीं किया। साधु होकर, मुनि होकर। आहाहा! आचार्य महाराज तो ऐसा ... गृहस्थाश्रम में तो मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष की सेवा की और चार गति में भटका... आहाहा! परन्तु त्यागी होकर भी तूने वह की वही जाति सेवन की। अशुभभावना आदि की भावना करके मरकर अन्त में देवादि हुआ।

संघ का अविनय करे,... कोई ऐसी शक्ति पुण्य की हो, राजा आदि मानते हों, अरबोंपति मानते हों, मन्त्र-तन्त्र दिये हों। संघ का अविनय करे। कौन संघ? सच्चे सन्त, सच्चे साधु को गिने नहीं। आहाहा! **इस प्रकार के वेषधारी को कुशील कहते हैं।** पाँच है, उनकी व्याख्या। पार्श्वस्थ, ... इस कोटि की। **जो वैद्यक ज्योतिषविद्या मंत्र की आजीविका करे,...** वैद्यक करे, दवायें बताये, ज्योतिष बतावे। मन्त्र दे। इस मन्त्र से तुम्हारा ऐसा होगा। पद्मावती का मन्त्र। आहाहा! चक्रेश्वरी का मन्त्र। चक्रेश्वरी है न? कहाँ? पालिताणा है न? नीचे नहीं? चक्रेश्वरी देवी है। भोंयरा में है। ऐसे मन्त्र दे। यह क्या है? वे उसे माने। उसके नाम से पैसा खर्च करे और प्रसन्न हो। आहाहा! **वैद्यक ज्योतिषविद्या मंत्र की आजीविका करे,...** लो! आहाहा! पैसा उगाहे। भण्डार भरे अपने नाम के। गृहस्थ के यहाँ... क्या कहलाता है वह? थापण रखे। लाख, दो लाख, पाँच लाख। उसके नाम के रहे। आहाहा! ऐ! साधु होकर भी तूने यह किया! ऐसा अनन्त बार किया है। एक बार नहीं किया। आदिरहित काल। अनन्त काल का यह इसका इतिहास है। आहाहा!

राजादिक का सेवक होवे... देखा! मक्खन चुपड़े, राजा के गुणगान करे, करोड़पति, अरबपति को भी खुशामद करे। ओहो! तुम तो भारी धर्मी, तुम तो ऐसे। राजा-लक्ष्मीवाले का सेवक होकर। **इस प्रकार के वेषधारी को संसक्त कहते हैं।** परिचय करनेवाले। बड़े राजा हों और करोड़पति का परिचय करनेवाले। भाई! उनका परिचय है क्या? भगवान आत्मा अन्दर छोड़कर यह क्या? आहाहा! धर्मी का परिचय नहीं तो ऐसे सब फटे प्याला (अभिमानी) राजा। आहाहा! माँस खाते हों, लम्पटी हों, अरबों की उपज हो। ऐसे राजाओं को प्रसन्न रखे। मरकर पशु में जायेगा। देव में जायेगा तो हल्का देव होगा। आहाहा! यहाँ तो चैतन्य भगवान आत्मा का जिसे माहात्म्य नहीं आता, उसे इन दूसरे बाह्य पदार्थों का माहात्म्य नहीं छूटता। वह भी वहीं का वहीं भटककर मरता है चार गति में। आहाहा! साधु होकर भी ढेढ़ जैसे देव में जाता है।

जो जिनसूत्र से प्रतिकूल,... है। वीतरागदृष्टि। आहाहा! वीतरागभाव जिनसूत्र बताते हैं, उससे प्रतिकूल। उसे तो व्यवहार की रुचि, पुण्य और पाप की। उसके प्रेम में फँसे, वे जिनसूत्र की आज्ञा का अविनय करते हैं। भगवान की आज्ञा तो वीतरागभाव

करने की है। जिनसूत्र में वीतरागभाव का पोषण है। वह वीतरागभाव तो निकाला नहीं और राग के पोषण की बातें निकाली, वह जिनसूत्र से प्रतिकूल है। आहाहा! **चारित्र से भ्रष्ट आलसी...** स्वरूप की चारित्रदशा नहीं और व्यवहार के व्रत का ठिकाना नहीं, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार वेषधारी को 'अवसन्न' कहते हैं।** अवसन्न कहा जाता है।

गुरु का आश्रय छोड़कर एकाकी स्वच्छन्द प्रवर्ते,... गुरु के साथ रहे तो विनय करना पड़े, निर्मान रहना पड़े। छोड़कर अकेले स्वच्छन्द से प्रवर्तन करे। **जिन आज्ञा का लोप करे...** आहाहा! **ऐसे वेषधारी को 'मृगचारी' कहते हैं।** जैसे हिरण चलते हैं, वैसे वे सब चलनेवाले। आहाहा! **इनकी भावना भार्वे, वह दुःख ही को प्राप्त होता है।** लो! ऐसी राग की भावना इस प्रकार की, वह दुःख को ही प्राप्त होता है।

गाथा-१५

ऐसे देव होकर मानसिक दुःख पाये, इस प्रकार कहते हैं –

देवाण गुण विहूई इड्ढी माहप्प बहुविहं दट्ठुं।
होऊण हीणदेवो पत्तो बहु माणसं दुक्खं।।१५।।

देवानां गुणान् विभूतीः ऋद्धीः माहात्म्यं बहुविधं दृष्ट्वा।
भूत्वा हीनदेवः प्राप्तः बहु मानसं दुःखम्।।१५।।

उन सुरों के गुण ऋद्धि वैभव का विविध माहात्म्य लख।
बहु मानसिक दुख सहे पाकर हीन पुण्यी देव बन।।१५।।

अर्थ – हे जीव ! तू हीन देव होकर अन्य महर्द्धिक देवों के गुण, विभूति और ऋद्धि रूप अनेक प्रकार का माहात्म्य देखकर बहुत मानसिक दुःख को प्राप्त हुआ।

भावार्थ – स्वर्ग में हीन देव होकर बड़े ऋद्धिधारी देव के अणिमादि गुण की विभूति देखे तथा देवांगना आदि का बहुत परिवार देखे और आज्ञा, ऐश्वर्य आदि का माहात्म्य देखे, तब मन में इसप्रकार विचारे कि मैं पुण्यरहित हूँ, ये बड़े पुण्यवान् हैं, इनके ऐसी विभूतिमाहात्म्य ऋद्धि है, इस प्रकार विचार करने से मानसिक दुःख होता है।।१५।।

गाथा-१५ पर प्रवचन

ऐसे देव होकर मानसिक दुःख पाये इस प्रकार कहते हैं – ऐसा देव होता है और मानसिक पीड़ा का पार नहीं होता। आहाहा! मेरा हृदय जलता है। अन्दर हळाहळ सुलगता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

देवाण गुण विहूई इड्ढी माहप्प बहुविहं दट्ठुं।
होऊण हीणदेवो पत्तो बहु माणसं दुक्खं।।१५।।

अर्थ – हे जीव ! तू हीन देव होकर... हल्का देव हुआ। **अन्य महर्द्धिक देवों के...** बड़ा महर्द्धिक देवों के गुण, पुण्य और इज्जत बड़ी देखकर। **विभूति...** बड़े देव की विभूति देखकर मन में जला। मानसिक चिन्ता में सुलग गया। ऐसे-ऐसे बड़े देव। हम जैन साधु थे। यह और ऐसे बड़े हुए। मानसिक पीड़ा (भोगता है)। बहुमान दे नहीं। अपमान जहाँ हो, वहाँ हो। **और ऋद्धि रूप अनेक प्रकार का माहात्म्य देखकर...** देव की बाहर की ऋद्धि, गुण, विभूति का माहात्म्य देखकर **बहुत मानसिक दुःख को प्राप्त हुआ।** आहाहा!

भावार्थ – स्वर्ग में हीन देव होकर बड़े ऋद्धिधारी देव के... बहुत बड़ी ऋद्धिवाले देव देखकर **अणिमादि गुण की विभूति...** गुण की। अणिमा अर्थात् छोटा रूप करना हो तो हो, बड़ा रूप करना हो तो हो। छोटा-बड़ा। अणिमा, महिमा आती है न? **देवांगना आदि का बहुत परिवार देखे...** अपनी अपेक्षा देव को बहुत इन्द्राणियाँ, देवियाँ देखे तो दुःख हो। आहाहा! मानसिक ज्वाला से सुलगता है। यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं, कि भाई! तूने आत्मा की दृष्टि नहीं की और ऐसे साधुपने में भी जब गया, उसमें देव में भी तुझे मानसिक दुःख हुआ। मन में चिन्ता के दुःख का पार नहीं रहता। मरे वहाँ तक उसका कोई भव बदले, ऐसा नहीं। आहाहा! अब तो यह अवसर आया, बापू! ऐसा कहते हैं। अब तो दृष्टि बदल। यह राग का प्रेम और राग की रुचि, जैनदर्शन में उसे मिथ्यात्व कहते हैं। चाहे तो शुभराग हो, उसका भी प्रेम और रुचि को मिथ्यात्व कहते हैं। वह अजैनभावना है। आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे लिये तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे हो उसके लिये है।

मुमुक्षु : साधु के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु की बात की, तब वह आ गया बीच में। यह तो साधु ऐसा हुआ तो भी उसने राग की भावना भायी और मरकर दुःखी हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और उसमें गृहस्थाश्रम में रचा-पचा, वह स्त्री, पुत्र, इज्जत, कीर्ति और भोग में मर गया ऐसा का ऐसा। चला गया। उसका पशु जैसा अवतार। आहाहा! समझ में आया? अरे! अपना जो करना है, वह किया नहीं। और बाहर से लगायी सब। आहाहा! लड़के पढ़े, होशियार हों, हमारे जैसे हों, हजार-हजार, दो हजार के वेतनवाले हों, अच्छे घर की बहू मिले। सुखी हो। मर गया अब, सुन न। धूल में भी नहीं। वहाँ तो अकेले राग और विकार का पोषण है। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! भाई! यह तो तूने सब दुःख के साधन खड़े किये हैं। तेरी जिन्दगी स्वयं से व्यतीत की। लड़कों को पढ़ावे। स्वयं डॉक्टर हो, दो लड़कों को डॉक्टर बनावे तो प्रसन्न हो और उसकी बहू भी डॉक्टर हुई हो, उसे रखे। लड़कियाँ डॉक्टर होती हैं न अभी? लड़के की बहू अर्थात् दोनों डॉक्टर हों तो प्रसन्न हो कि अपने लड़के....

मुमुक्षु : एक घर में दोनों कमाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों जनें कमायें। अरे रे! स्वरूपचन्दभाई! कल कहा था, नहीं? वे डॉक्टर, महेता डॉक्टर कल आये थे बेचारे। नरम व्यक्ति। फोटो लिया न? उसने कहा, महाराज आवे तो मुझे बुलाना। बहुत बड़ा डॉक्टर। महेता। क्या आफिस... आया था मिलने। ऐसे नरम है। स्वयं से यह सब किया है। ... नहीं होता। क्या होता है महाराज को? मैंने कहा बुखार आता है। दूसरा कुछ नहीं। बुखार नहीं मिटता, दूसरा कुछ नहीं। ...अब उसका सुना तो एक लड़का २९ वर्ष का केंसर में मर गया। डॉक्टर होकर। देखो! इस जगत के सख-केंसर। स्वरूपचन्दभाई! चार लड़के हैं। एक डॉक्टर है। और यह बेचारा डॉक्टर था। केंसर हुआ। कौन कहता था? अपने कान्तिभाई कुण्डलावाले, वे आये थे। कुण्डलावाले हैं न दो व्यक्ति? वे आये थे। ... आहाहा!

देखो! यह धूल में है नहीं। पुनर्जन्म की थोड़ी बात की। राजुल की। पुनर्जन्म है कहाँ? यह निर्णय (करने का) ठिकाना नहीं होता। कहाँ गये तुम? आहाहा!

कहा न यह तुम्हारा जेठाभाई! कौन तुम्हारा वह? शिवलाल। शिवलाल पानाचन्द कलेक्टर है। आई.पी.एस.। साढ़े तीन हजार का वेतन है। ...जवान। वीसाश्रीमाली बनिया था। आया एक बार। (संवत्) १९७७ के वर्ष में बोटाद।.. नौकरी की। सात सौ का वेतन। फिर तो साढ़े तीन हजार बढ़ गया। मैंने कहा, भाई! शिवलालभाई, यह आत्मा है, इसका कुछ पढ़ा है आत्मा का? कहे, हाँ, पढ़ा है। बहुत मस्तिष्क! बहुत मस्तिष्क! पूरे अलमारी के अलमारी (पुस्तकें) पढ़े और याद रहे, ऐसा व्यक्ति। ... साथ में पढ़े हुए। पहला नम्बर उसका आया था। दूसरा नम्बर... का आया था। इसलिए सरकार देती है न नम्बर? उसे दूसरा नम्बर दिया था, कक्षा में। वह उसे पूछा, वह कहे, पढ़ा है, परन्तु आत्मा है या नहीं, मैंने निर्णय नहीं किया। आहाहा! तुम्हारे बापू साथ में थे। ...वहाँ उसका ननिहाल था न। शिवलालभाई का ननिहाल वहाँ। नागरभाई साथ में थे। व्याख्यान पूरा हुआ। (संवत्) १९७७ की बात है। बराबर आये और बैठे। मैंने पूछा। कहा, अभी निर्णय नहीं किया। ओय! यह पढ़े सब। अभी आत्मा है या नहीं, यह निर्णय नहीं किया। कैसा है और कैसे है, उसे और एक ओर रखो। अरर्र! क्या किया परन्तु तूने यह? वह ४८ वर्ष की उम्र में मर गया। साढ़े तीन हजार का मासिक वेतन। कलेक्टर और वहाँ का दीवान। यहाँ कोहनी में कुछ दर्द हुआ। ... ४८ वर्ष की उम्र में समाप्त। अभी ४८। जाओ दुनिया में... जाओ। आहाहा! उसका उतारा कहाँ होगा, बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे भव तो अनन्त किये परन्तु यह साधुपना लेकर तूने घोटाला किया। आहाहा! घोटाले के धन्धे में पड़ा, वह तो वहाँ घोटाला ही था। परन्तु त्यागी होकर भी तूने क्या किया? आहाहा! यह शुभरस और राग करके उसमें और उसमें जिन्दगी व्यतीत की। रागरहित मेरा नाथ चैतन्य प्रभु कौन है? मैं जो कहलाता हूँ, चीज़ क्या है? उसकी इसे दृष्टि और ज्ञान किये बिना ऐसे पार्श्वस्थ आदि साधु होकर स्वर्ग में अपमान सहन किये, मानसिक दु:ख सहन किये। आहाहा! अरबों वर्ष रहे। और उस देव को बड़ी ऋद्धि। देखी जाये नहीं, सहन की जाये नहीं। आहाहा! मरण

नजदीक में हो नहीं। देव का तो आयुष्य छूटे नहीं। देव तो जितना आयुष्य लेकर आया, उतना रहनेवाला है। आहाहा! प्रभु! अनादि-अनन्त तेरा नाथ आत्मा... आहाहा! जिसमें संसार की कला का, विकल्प का भी जिसमें अवकाश नहीं है। आहाहा! ऐसा विज्ञानघन वीतरागस्वरूपी प्रभु, उसके सन्मुख तूने देखा नहीं और उससे विमुख, सन्मुख को छोड़कर विमुख तूने सब काम किये। साधु होकर भी ऐसे किये, भाई! आहाहा! देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य को। उसे ... साधु हुआ तो भी तूने ऐसा किया। आहाहा!

स्वर्ग में हीन देव होकर बड़े ऋद्धिधारी देव के अणिमादि गुण की विभूति देखे तथा देवांगना आदि का बहुत परिवार देखे... ओहोहो! इसकी इतनी-इतनी देवियाँ, मुझे तो एक भी देवी नहीं मिलती। देवी होवे तो साधारण हो। आहाहा! **आज्ञा,...** करे तो, हुक्म करे तो हजार देव हाजिर हों। यहाँ आज्ञा करे तो कोई सुने नहीं। देव होवे तो भी। आहाहा! और अज्ञा करने जाये तो वह ... ऐसा सुनकर दु:खी हो बेचारा। आहाहा!

आज्ञा, ऐश्वर्य... महत्ता देखकर। आहाहा! इसकी महत्ता, इसका शरीर, इसकी इज्जत, इसकी देवांगना, इसके देव, इसके सामान्य देव। ओहोहो! अपने तो देव हुए तो वापस ढेढ़ जैसे हल्के। आहाहा! **माहात्म्य देखे तब मन में इस प्रकार विचारे कि मैं पुण्यरहित हूँ,...** देव-देव विचार करे। अरे! मैं पुण्यरहित। **ये बड़े पुण्यवान् हैं,...** बड़े पुण्यवान हैं। आहाहा! **इनके ऐसी विभूतिमाहात्म्य ऋद्धि है, इस प्रकार विचार करने से मानसिक दु:ख होता है।** मन में कल्पना के दु:ख का पार नहीं होता। आहाहा!

तुम्हारा लड़का... मगनभाई को वह नहीं? राणपुर। वे रहते न वहाँ जयचन्दभाई और वे। जयचन्दभाई... उसमें उसे... लेते उसका उसे नाम निश्चित हुआ तो वह नहीं सुहाया। मैंने कहा यह मूलचन्दजी बड़े हैं, इन्हें ठहराओ नाम। फिर जले... जले... जले... कहते थे। ...ज्वाला सुलगती है। परन्तु क्या है? यह सब तीनों शिष्यों में मेरा नाम भी नहीं। यह सब मूलचन्दजी के नाम के। अब क्या होली है? (संवत्) १९७४ की बात है। १९७५ की। आहाहा! माघ कृष्ण, ओहोहो! कितने वर्ष हो गये? लो, ५५ वर्ष हुए। वे कहते थे, हों! जलन होती है... जलन होती है... मुझे बहुत होती है। परन्तु है क्या? यह सब मूलचन्दजी का नाम लेते हैं, मेरा नाम (नहीं)। उसे ऐसा कि कुमार

है न रायचन्दकुमार, 'खस' का। उसका नाम ... ... मूलचन्द का नाम रखे। मैंने कहा, ... यह जलन। इसी प्रकार देव में जलन का पार नहीं होता। बड़े पुण्यवन्त ऋद्धिवाले देखकर, बापू! जल गया, सुलग गया, तू वहाँ। भाई! तुझे आत्मा के वीतरागभाव की खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? इस रागरहित प्रभु, उसकी श्रद्धा-ज्ञान की महिमा का पार नहीं होता। वह महिमा तूने की नहीं और राग के फल और राग की महिमा में तू रच-पच गया। आहाहा!

मानसिक दुःख होता है। आहाहा! आचार्य की कैसी शैली है! साधु हुआ तो भी ऐसी भावना भायी, स्वर्ग में गया, वहाँ भी दुःखी हुआ प्रभु तू। आहाहा! तेरी अपेक्षा अधिक भाववाले, वीतरागी वृत्तिवाले, शुभभाववाले, पुण्यवाले स्वर्ग में जाते हैं तो वे तो बड़ी ऋद्धि को पाते हैं। आहाहा! और तू वहाँ जाकर हल्का देव होगा। दुःखी होगा। तू देख नहीं सकेगा। उसकी विभूति, उसकी ईश्वरता, उसकी आज्ञा, उसकी इन्द्राणी का परिवार... आहाहा! इसलिए कहते हैं कि अवसर आया, भाई! अब तो कर। ऐसा कहते हैं। आहाहा! छोड़ न सब होली। प्रभु स्वयं चैतन्यस्वभाव, भगवान वीतरागमूर्ति है, उसके सन्मुख देख न। आहाहा! वहाँ तेरे कल्याण का पन्थ पड़ा है। आहाहा! जन्म-जरा-मरण के उद्धार का पन्थ वहाँ है। **ऐसी विभूतिमाहात्म्य ऋद्धि है, इस प्रकार विचार करने से मानसिक दुःख होता है।**

गाथा-१६

आगे कहते हैं कि अशुभ भावना से नीच देव होकर ऐसे दुःख पाते हैं, ऐसे कहकर इस कथन का संकोच करते हैं –

चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो।
होऊण कुदेवत्तं पत्तो सि अणेयवाराओ।।१६।।

चतुर्विधविकथासक्तः मदमत्तः अशुभभावप्रकटार्थः।
भूत्वा कुदेवत्वं प्राप्तः असि अनेकवारान्।।१६।।

आसक्त विकथा चतुर्विध मद-मत्त हो बहुश: हुआ।
नित अशुभ भाव प्रगट प्रयोजन युक्त कुत्सित देवता।।१६।।

अर्थ – हे जीव ! तू चार प्रकार की विकथा में आसक्त होकर, मद से मत्त और जिसके अशुभ भावना का ही प्रकट प्रयोजन है, इस प्रकार होकर अनेक बार कुदेवपने को प्राप्त हुआ।

भावार्थ – स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा और राजकथा, इन चार विकथाओं में आसक्त होकर वहाँ परिणाम को लगाया तथा जाति आदि आठ मदों से उन्मत्त हुआ ऐसी अशुभ भावना ही का प्रयोजन धारण कर अनेक बार नीच देवपने को प्राप्त हुआ, वहाँ मानसिक दु:ख पाया।

यहाँ यह विशेष जानने योग्य है कि विकथादिक से तो नीच देव भी नहीं होता है, परन्तु यहाँ मुनि को उपदेश है, वह मुनिपद धारण कर कुछ तपश्चरणादिक भी करे और वेष में विकथादिक में रक्त हो, तब नीच देव होता है, इस प्रकार जानना चाहिए।।१६।।

गाथा-१६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि अशुभ भावना से नीच देव होकर ऐसे दु:ख पाते हैं, ऐसे कहकर इस कथन का संकोच करते हैं –

चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो।
होऊण कुदेवत्तं पत्तो सि अणेयवाराओ।।१६।।

अर्थ – हे जीव ! तू चार प्रकार की विकथा में आसक्त होकर,... आहाहा! **स्त्रीकथा,...** स्त्री ऐसी होती है... स्त्री ऐसी होती है... स्त्री ऐसी होती है... यह विकथा-पापकथा है। उसमें तू लवलीन रहा। आहाहा! **भोजनकथा,...** भोजन ऐसा होता है, लापसी ऐसी होती है, लड्डू ऐसे होते हैं, अमुक ऐसा होता है, अमुक ऐसा। उसमें वह प्रसन्न-प्रसन्न हो। आहाहा! यह **स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा...** देश में ऐसा हुआ, इस देश में ऐसा... इस देश में ऐसा। अब वह देश में (रहा), तुझे क्या काम? और **राजकथा...** इन चार विकथा में पड़ा।

तू चार प्रकार की विकथा (विपरीत कथा) में आसक्त होकर, मद से मत्त... हमको यह कथा करना आता है, हमको यह आता है। इन सब निर्बलों को बोलना भी नहीं आता। इसे क्या आता है? कितने ही होते हैं न? ऐसी बातें करना आवे... ऐसी आवे... ऐसे मानो, ओहोहो! **मद से मत्त और जिसके अशुभ भावना का ही प्रकट प्रयोजन है,...** उसे तो अशुभ भावना का ही प्रयोजन है, कहते हैं। **इस प्रकार होकर अनेक बार कुदेवपने को प्राप्त हुआ।** ऐसे भाव से कुदेव हुआ सही। अन्दर थोड़ा शुभभाव हो। आहाहा! मिथ्यादृष्टि विराधक होकर स्वर्ग में गया, वह मानसिक दु:ख से पीड़ित है। एक वीतराग दृष्टि बिना, सम्यग्दर्शन बिना, जिनभावना बिना।

भावार्थ – स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा और राजकथा इन चार विकथाओं में आसक्त होकर वहाँ परिणाम को लगाया... लवलीन... बातें करे... आहाहा! स्त्री की बातें, भोजन की बातें, मानो देव का पुत्र उतरा। ऐई! सब बातें करे। इसका ऐसा होगा... इसका ऐसा होगा... परन्तु क्या है अब? ऐसे आनन्द के भोजन छोड़कर यह बातें तूने किसकी लगायी है यह सब? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन, प्रभु तेरी चीज़ है। आहाहा! वह जिनभावना है। अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा नाथ आत्मा है, उसका अनुभव वह आनन्द का भोजन है। उसे छोड़कर ऐसी सब बातें (करे), स्त्री और भोजन और राग-द्वेष की।

लगाया तथा जाति आदि आठ मदों से उन्मत्त हुआ... बड़े घर के हैं। हमारी माता बड़े घर की लड़के की लड़की, उसके हम पुत्र? क्या है परन्तु अब? आहाहा! हम बड़े राजा के कुँवर हैं। हम गर्भश्रीमन्त हैं। हम गर्भ में आये, तब से हमारे पिताजी पैसेवाले-करोड़ोंपति, अरबोंपति थे। तो क्या हुआ परन्तु अब तुझे? तुझे क्या हुआ? आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसे जाति, कुल, मद, ऐश्वर्य **मदों से उन्मत्त हुआ...** अपनी जानी हुई विद्या के पठन के मद में पागल हो गया है, उन्मत्त हो गया है। आहाहा! **ऐसी अशुभ भावना ही का प्रयोजन धारण कर अनेक बार नीच देवपने को प्राप्त हुआ, वहाँ मानसिक दु:ख पाया।** मानसिक दु:ख। यहाँ की पोल वहाँ खुल्ली हो गयी, कहते हैं। हल्का देव होकर बड़े देव को देखकर मानसिक दु:खी हुआ। आहाहा!

यहाँ यह विशेष जानने योग्य है कि विकथादिक से तो नीच देव भी नहीं होता है,... यहाँ तो विकथा पाकर देव हुए, ऐसा कहा न? **परन्तु यहाँ मुनि को उपदेश है, वह मुनिपद धारण कर कुछ तपश्चरणादिक भी करे...** कुछ व्रत पाले, थोड़ी तपस्या, अपवास आदि करे। **और वेष में विकथादिक में रक्त हो...** अकेली विकथा से कहीं स्वर्ग में नहीं जाया जाता। परन्तु उस वेश में वर्तन कुछ ब्रह्मचर्य हो, उसकी तपस्या हो और उसके साथ यह सब विकथा हो।

और वेष में विकथादिक में रक्त हो, तब नीच देव होता है, इस प्रकार जानना चाहिए। लो! आहाहा! यह जीव का इतिहास सब अज्ञान का। आहाहा! तेरे घर में ऋद्धि, समृद्धि पड़ी है, उसकी तो तुझे खबर नहीं होती। उसका ज्ञान नहीं, उसकी रुचि नहीं, उसका आश्रय नहीं, उसका आदर नहीं। और ऐसा मुनिपना लेकर भी ऐसी विकथा में पड़ा है, भले देव हो, किंचित् शुभभाव हो तो सही। आहाहा! वहाँ दुःखी होगा, प्रभु! इसलिए सम्यग्दर्शन को प्रगट कर। आहाहा! उसके संस्कार तो कर कि यह चिदानन्द भगवान वीतरागी मूर्ति प्रभु, वह मैं हूँ। मुझमें राग और संसार की कोई चीज़ है ही नहीं। आहाहा! ऐसी प्रतीति के संस्कार तो डाल कि जिससे तुझे सम्यग्दर्शन, अनुभव होकर मुक्ति होगी। करने का तो यह है। कहो, समझ में आया? यह पैसे खर्च किये, यह किया और वह किया सब बातें, बापू! किसका अभिमान? **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो!

गाथा-१७

आगे कहते हैं कि ऐसी कुदेवयोनि पाकर वहाँ से चय कर जो मनुष्य-तिर्यंच होवे, वहाँ गर्भ में आवे, उसकी इस प्रकार व्यवस्था है -

असुईबीहत्थेहि य कलिमलबहुलाहि गब्भवसहीहि।
वसिओ सि चिरं कालं अणेयजणणीण मुणिपवर।।१७।।

अशुचिवीभत्सासु य कलिमलबहुलासु गर्भवसतिषु।
उषितोऽसि चिरं कालं अनेकजननीनां मुनिप्रवर!।।१७।।

हे मुनि-प्रवर! तुम विविध जननी के अशुचि वीभत्समय।
कलि मल बहुल गर्भाशयों में रहे हो चिर-काल तक।।१७।।

अर्थ – हे मुनिप्रवर ! तू कुदेवयोनि से चयकर अनेक माताओं की गर्भ की बस्ती में बहुत काल रहा। कैसी है वह बस्ती? अशुचि अर्थात् अपवित्र है, बीभत्स (घिनावनी) है और उसमें कलिमल बहुत है अर्थात् पापरूप मलिन मल की अधिकता है।

भावार्थ – यहाँ 'मुनिप्रवर' ऐसा सम्बोधन है सो प्रधानरूप से मुनियों को उपदेश है। जो मुनिपद लेकर मुनियों में प्रधान कहलावे और शुद्धात्मरूप निश्चय चारित्र के सन्मुख न हो, उसको कहते हैं कि बाह्य द्रव्यलिंग तो बहुत बार धारण कर चार गतियों में ही भ्रमण किया, देव भी हुआ तो वहाँ से चयकर इस प्रकार के मलिन गर्भवास में आया, वहाँ भी बहुत बार रहा।।१७।।

गाथा-१७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ऐसी कुदेवयोनि पाकर... कुदेव की योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ। **वहाँ से चय कर जो मनुष्य-तिर्यंच होवे,...** वहाँ से आकर मनुष्य और तिर्यंच होवे, **वहाँ गर्भ में आवे, उसकी इस प्रकार व्यवस्था है** – लो! ऐसा देव हुआ और मरकर वापस मनुष्य में आया। आहाहा!

हे मुनिप्रवर! ऐसा कहा न? देखो!

असुईबीहत्थेहि य कलिमलबहुलाहि गब्भवसहीहि।
वसिओ सि चिरं कालं अणेयजणणीण मुणिपवर।।१७।।

आहाहा! **अर्थ – हे मुनिप्रवर!** सम्बोधकर (कहते हैं)। द्रव्यलिंगी है न? **तू कुदेवयोनि से चयकर...** ऐसे कुदेव में अपमान में रहा। वहाँ से चयकर आया। **अनेक माताओं की गर्भ की बस्ती में बहुत काल रहा।** आहाहा! माता के पेट में उल्टे सिर... आहाहा! परन्तु भूल गया। बाहर जहाँ आवे, वहाँ हो गया। उसमें और अवयव बड़े हों, शरीर पाँच इन्द्रियाँ कुछ... हो, हो गया... भूला। आहाहा!

गर्भ की बस्ती में... गर्भ की बस्ती अर्थात् पेट में अन्दर। **बहुत काल रहा।**

शास्त्र तो यहाँ तक कहते हैं कि किसी-किसी समय तो बारह-बारह वर्ष तक गर्भ में रहे। उसे (गुजराती में) छोड-छोड कहते हैं। सवा नौ महीने में जन्मे, वह तो और.... कोई दो वर्ष, तीन वर्ष, बारह वर्ष तक गर्भ में, गर्भ में छोड रहे, ऐसा पाठ है। तथा वहाँ मरकर और फिर से वहाँ जाये बारह वर्ष। चौबीस वर्ष की बात है कायस्थिति की। गर्भ में रहने की चौबीस वर्ष की (स्थिति है)। दो भव होकर। आहाहा! ऐसा तुझे अनन्त बार हुआ है। यहाँ जरा सुविधा बाहर की देखी, बस! हो गया। ओहोहो! मानो मैं तो क्या फला? बापू! हार गया है, भाई!

भगवान आत्मा के अनन्त गुण की महिमा की तुझे खबर नहीं होती। उसकी प्रभुता की पर्याय के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तृणवत् लगे, ऐसा तेरा नाथ आत्मा। आहाहा! जिसकी एक क्षण की शान्ति और श्रद्धा के समक्ष इन्द्र के हजारों, करोड़ों इन्द्राणी के भोग सड़े हुए बिल्ली, कुत्ते जैसे हों, वैसे देखे। आहाहा! ऐसा तेरा नाथ भगवान पूर्णानन्द स्वरूप महिमा करनेयोग्य है, उसकी तो तूने महिमा की नहीं और बाहर की महिमा में रच-पच गया।

कैसी है वह बस्ती? यह तो बहुत काल रहा, ऐसा कहा है न? सवा नौ महीने तो बराबर है। कोई सात महीने में जन्मता है। **अशुचि अर्थात् अपवित्र है,...** यहाँ तो अकेला अपवित्र स्थान है, वहाँ रहा। आहाहा! **बीभत्स (घिनावनी) है...** जिसमें घृणा उपजे, ऐसी पूरी स्थिति है। जिसमें रहा, वह तो घृणा उपजे ऐसी। आहाहा! उसमें सवा नौ महीने रहा। उस देव में से आया था तो यहाँ आया वापस। **और उसमें कलिमल बहुत है अर्थात् पापरूप मलिन मल की अधिकता है।** आहाहा! वहाँ परिणाम भी मलिन है और मलिनता के घेराव में शरीर पड़ा रहा।

भावार्थ - यहाँ 'मुनिप्रवर' ऐसा सम्बोधन है, सो प्रधानरूप से मुनियों को उपदेश है। मुनि हो, उसे उपदेश है। मुख्यता यह है। **जो मुनिपद लेकर मुनियों में प्रधान कहलावे... 'मुनिप्रवर'** शब्द है न? बड़े मुनि कहलावे, लाखों लोग जिनकी सभा में आवे, उससे क्या हुआ? भाई! आहाहा! **मुनियों में प्रधान कहलावे और शुद्धात्मरूप निश्चय चारित्र के सन्मुख न हो,...** लो! शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा के

सन्मुख तो हुआ नहीं। आहाहा! शुद्ध भगवान चिदानन्दमूर्ति प्रभु, ऐसा उसके निश्चयचारित्र के सन्मुख तो है नहीं। आहाहा! अन्तर के सन्मुख से तो विमुख है बाहर में।

उसको कहते हैं कि बाह्य द्रव्यलिंग तो बहुत बार धारण कर चार गतियों में ही भ्रमण किया,... देखा! **बाह्य द्रव्यलिंग...** जैन मुनिपना। **बहुत बार...** अनन्त बार **धारण कर...** 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' वहाँ और दूसरा अर्थ करते हैं, यह तो अभव्य के लिये कहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब करते हैं न! यह तो अभव्य के लिये कहा है, भव्य नहीं। भव्य को तो चारित्र होता है, उसके परिणाम होते ही हैं। कौन सा चारित्र? अणुव्रत और महाव्रत। आहाहा! अणुव्रत और महाव्रत तो सब विकल्प-राग है। अन्दर में सन्मुख होकर दृष्टि में स्थिर हुआ है। स्वभाव की चैतन्य दृष्टि हुई है, उसमें लीनता हुई है। उसे चारित्र कहा जाता है। वह कहीं बाह्य वेश और व्रत, वह चारित्र नहीं है। आहाहा! यह तो चारित्र लेकर भी मुंझाणो है। आहाहा!

देव भी हुआ... द्रव्यलिंग तो बहुत बार धारण कर चार गतियों में ही भ्रमण किया,... लो! देखा! उसमें चार गति ली है। क्योंकि स्वर्ग में गया परन्तु वापस मनुष्य होकर, पशु होकर चार गति में भटकता है। **देव भी हुआ तो वहाँ से चयकर इस प्रकार के मलिन गर्भवास में आया, वहाँ भी बहुत बार रहा।** गर्भ में भी बहुत बार रहा, अनन्त बार रहा। तिर्यंच और मनुष्यरूप से जब अवतार धारण किया, तब गर्भ में अनन्त बार तू रहा है। आहाहा! यह तेरा इतिहास है। आहाहा! एक सम्यग्दर्शन और जिनभावना बिना कुछ भी गहरे... गहरे... गहरे... राग का प्रेम और राग का रस (रह गया)। आहाहा! राग में कुछ ठीक है और उससे मुझे कल्याण होगा, ऐसी जो मिथ्यात्व रुचि, उसके कारण मुनिपना लिया तो भी चार गति के दुःख रहे। 'मलिन गर्भवास में आया, वहाँ भी बहुत बार रहा।' आहाहा!

गाथा-१८

आगे फिर कहते हैं कि इस प्रकार के गर्भवास से निकलकर जन्म लेकर अनेक माताओं का दूध पिया –

पीओ सि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं।
अण्णाण्णाण महाजस सायरसलिलादु अहिययरं।।१८।।

पीतोऽसि स्तनक्षीरं अनंतजन्मांतराणि जननीनाम्।
अन्यासामन्यासां महायश! सागरसलिलात् अधिकतरम्।।१८।।

हे महाशय! निस्सीम जन्मांतरों में अन्यान्य माँ।
के स्तनों का दूध सागर-सलिल से भी बहु पिया।।१८।।

अर्थ – हे महायश ! उस पूर्वोक्त गर्भवास में अन्य-अन्य जन्म में, अन्य-अन्य माता के स्तन का दूध तूने समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिक पिया है।

भावार्थ – जन्म-जन्म में, अन्य-अन्य माता के स्तन का दूध इतना पिया कि उसको एकत्र करें तो समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिक हो जावे। यहाँ अतिशय का अर्थ अनन्त गुणा जानना, क्योंकि अनन्त काल का एकत्र किया हुआ दूध अनन्त गुणा हो जाता है।।१८।।

गाथा-१८ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं कि इस प्रकार के गर्भवास से निकलकर जन्म लेकर अनेक माताओं का दूध पिया – लो! आहाहा!

पीओ सि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं।
अण्णाण्णाण महाजस सायरसलिलादु अहिययरं।।१८।।

अर्थ – हे महायश ! उस पूर्वोक्त गर्भवास में अन्य-अन्य जन्म में, अन्य-अन्य माता के स्तन का दूध तूने समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिक पिया है।

तूने माता का दूध पिया, उसके अनन्त समुद्र भर जायें। आहाहा! ऐसी अनन्त मातायें, (उनके गर्भ में) जन्मकर तूने दूध पिया। आहाहा! भाई! तुझे तेरी खबर नहीं होती। उस दूध के अनन्त समुद्र भर जायें। इतनी बार तूने माता का दूध पिया। आहाहा!

मुमुक्षु : लम्बा काल ऐसा गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : गया न, अनन्त काल गया। अनन्त-अनन्त काल। आहाहा! अनन्त को अनन्तगुणा गुणे वर्ग से ऐसा अनन्त काल गया। अनन्त वर्ष का एक भव गिनो तो भी अनन्त भव होते हैं। अनन्त वर्ष का एक भव गिनो तो ऐसे अनन्त भव। यह तो २५-५० वर्ष और ६० वर्ष। आहाहा! माता के गर्भ में भी तूने इस प्रकार... अर्थात् दूध पीया। उस जननी का-माता का दूध तूने पिया। वह अनन्त समुद्र भर जाये। प्रभु! अब तू बस कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न? अतिशयकर-अधिकतर। समुद्र से भी अधिकतर पिया। आहाहा!

भावार्थ - जन्म-जन्म में, अन्य-अन्य माता के स्तन का दूध इतना पिया कि उसको एकत्र करें तो समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिक हो जावे। यहाँ अतिशय का अर्थ अनन्त गुणा जानना,... देखो! यह तो अतिशय शब्द (कहा है, बाकी तो) अनन्त गुणा-अनन्त गुणा, बापू! आहाहा! माता का एक समय का दूध पिया, ऐसे-ऐसे अनन्त भव के दूध, अनन्त समुद्र भर जायें। आहाहा! **अनन्त काल का एकत्र किया हुआ दूध अनन्त गुणा हो जाता है।** लो! ऐसा तेरा इतिहास है। प्रभु! अब तो मुड़ जा न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब तो तेरे घर में आ। बाहर घर तो ऐसे अनन्त बार फिरा दुःखी होकर। शुद्ध भावना की प्रतीति और रुचि और अनुभव कराने के लिये यह बात की है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१९

आगे फिर कहते हैं कि जन्म लेकर मरण किया तब माता के रोने के अश्रुपात का जल भी इतना हुआ –

तुह मरणे दुक्खेण अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं।
रुण्णाण णयणणीर सायरसलिलादु अहिययरं।।१९।।

तव मरणे दुःखेन अन्यासामन्यासां अनेकजननीनाम्।
रुदितानां नयननीरं सागरसलितात् अधिकतरम्।।१९।।

तेरे मरण के दुःख से अन्यान्य रोती अनेकों।
जननी–नयन का सकल जल सागर–सलिल से अधिक हो।।१९।।

अर्थ – हे मुने ! तूने माता के गर्भ में रहकर जन्म लेकर मरण किया, वह तेरे मरण से अन्य–अन्य जन्म में अन्य–अन्य माता के रुदन के नयनों का नीर एकत्र करें, तब समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिकगुणा हो जावे अर्थात् अनन्तगुणा हो जावे।

प्रवचन-११०, गाथा-१९ से २७, बुधवार, पोष कृष्ण ९, दिनांक १६-०१-१९७४

यह अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। १९वीं गाथा है न? आचार्य महाराज अनन्त संसार में अभी तक ऐसा दुःखी (हुआ) और किस प्रकार यह भवभ्रमण किया, इसे समझाते हैं। भाई! तू अनन्त काल का है। तू तेरी चीज़ की यादगिरी और स्मरण बिना अनन्त ऐसे भव तूने किये, उनका पार नहीं, ...

तुह मरणे दुक्खेण अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं।
रुण्णाण णयणणीर सायरसलिलादु अहिययरं।।१९।।

अर्थ – हे मुने! यहाँ मुनि कहा है। मुनि को सम्बोधकर है न। द्रव्यलिंगी साधु हुआ तो भी आत्मा क्या चीज़ है, उस पर इसने दृष्टि नहीं की। तो कहते हैं, **हे मुने! तूने**

माता के गर्भ में रहकर... माता के पेट में-गर्भ में रहकर **जन्म लेकर...** और जन्म लिया। तथा **मरण किया, वह तेरे मरण से अन्य-अन्य जन्म में...** तेरे मरण से अन्य-अन्य जन्म में **अन्य-अन्य माता के रुदन के...** अन्य-अन्य माता के रुदन हुए। आहाहा! पाँच-पाँच वर्ष, आठ-आठ, दस-दस वर्ष का लड़का होकर मर गया। अन्य-अन्य माता के ... भाई! तेरी माता के रुदन इतने हुए कि वह नीर इकट्ठा करे, उस **रुदन के नयनों का नीर एकत्र करें, तब समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिकगुणा हो जावे...** अनन्त जन्म-मरण में भूल गया। युवा २५-२५ वर्ष का लड़का विवाह कर मरे। फिर जन्मे और मरे। उस अन्य-अन्य माता के रुदन-रुदन... आहाहा! आँख में (आँसू की) धारा बहे। उस नीर के अनन्त समुद्र भर जायें, इतना तो रुदन के आँसू का नीर हुआ। आहाहा! किसमें तुझे पर में होश और उत्साह आता है? ऐसे अनन्त बार जन्म-मरण कर चुका है। और उसकी आँख के पानी से अनन्त समुद्र भर जायें, इतने (आँसू बहाये)। आहाहा!

तूने यह सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मदर्शन। अभेद सत्यार्थ वस्तु। अपनी अपेक्षा से तो यह सब—बाह्य चीज़ें असत्य है। और अपनी त्रिकाल अपेक्षा से तो पर्याय भी अभूतार्थ और असत्यार्थ है। अपने त्रिकाल अभेद अपेक्षा से तो उसमें गुण का भेद भी असत्यार्थ है। आहाहा! ऐसे सत्यार्थ भगवान आत्मा में तू दृष्टि दे। ऐसे जन्म-मरण करके दुःखी-दुःखी (हो गया)। किसका तुझे हर्ष आता है? भाई! ... अनुकूलता में सुख और हर्ष आता है। प्रतिकूलता में किसका तुझे द्वेष आता है? भगवान आत्मा सत्यार्थ प्रभु, चैतन्य सत्यसाहेब पूर्णानन्द प्रभु, उसे तो तूने नजर में किया नहीं, दृष्टि में लिया नहीं, आश्रय किया नहीं, मेरेरूप से उसे सत्यार्थ माना नहीं। समझ में आया? और जो चीज़ उसकी नहीं, उसे मेरेरूप से मानकर भटका है।

गाथा-२०

आगे फिर कहते हैं कि जितने संसार में जन्म लिए उनके केश, नख, नाल कटे और उनका पुंज करें तो मेरु से अधिक राशि हो जाय –

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणहरणालट्ठी।
पुञ्जइ जइ को वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी।।२०।।

भवसागरे अनन्ते छिन्नोज्झितानि केशनखरनालास्थीनि।
पुञ्जयति यदि कोऽपि देवः भवति च गिरिसमाधिकः राशिः।।२०।।

नित कटे छोड़े केश नख अस्थि नला भवदधि अमित।
में के करे सुर यदी संचित हों सुमेरु से अधिक।।२०।।

अर्थ – हे मुने ! इस अनन्त संसार सागर में तूने जन्म लिये, उनमें केश, नख, नाल और अस्थि कटे, टूटे उनका यदि कोई देव पुंज करे तो मेरु पर्वत से भी अधिक राशि हो जावे, अनन्तगुणा हो जावे।।२०।।

गाथा-२० पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं कि जितने संसार में जन्म लिए... प्रभु! तूने इतने शरीररूप से जन्म लिये और **उनके केश, नख, नाल...** नाल-नाल। नाभि में नाल काटते हैं न? **नाल कटे...** उसका टुकड़ा करके एक-एक नाल का, केश का, नख का **उनका पुंज करें तो मेरु से अधिक राशि हो जाय –**

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणहरणालट्ठी।
पुञ्जइ जइ को वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी।।२०।।

अर्थ – हे मुने ! इस अनन्त संसार सागर में तूने जन्म लिये,... ऐसे जन्म धारण किये, नाथ! मुनि को सम्बोधकर कहते हैं, देखो न! आहाहा! **उनमें केश, नख, नाल...** जन्मे तब यह नाभि और नाल काटते हैं न अन्दर? उसका एक टुकड़ा करके

करे तो अनन्त मेरु भर जायें, भाई! आहाहा! इतने तो तूने जन्म-मरण किये। उसमें एक शरीर कुछ ठीक मिले तो उसी और उसी में पूरा दिन रचा रहे। आहाहा! शरीर की सम्हाल करते-करते तेरी अनन्त जिन्दगियाँ चली गयीं, भाई! यह ऐसा कहते हैं। ऐसे अनन्त भव किये। अपना भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, वह अस्ति, शाश्वत चैतन्य विराजता है, उस पर नजर करने का अवसर भी नहीं लिया। आहाहा! ऐसा कहते हैं। ऐसे-ऐसे अवतार प्रभु! तूने किये हैं।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव देखो! भावपाहुड़ में (कहते हैं), अशुद्ध भाव पुण्य और पाप करके उनके फलरूप से तूने अनन्त जन्म-मरण किये। तूने तेरी दया नहीं की। जितना और जैसा आता है, वैसा उसे श्रद्धा में लेना, तब उसे दया कहा जाता है। पूर्ण आनन्द और अभेद सत्यार्थ प्रभु, वह सत्यार्थ वस्तु त्रिकाल, उसे श्रद्धा में-ज्ञान में ले, तब उसे जो जीवन जीव पूर्ण था, उसकी उसे श्रद्धा और स्वीकार हुआ, तब उसने अपनी दया पालन की। यह इतना है, ऐसा उसने माना। इसके अतिरिक्त रागवाला, पुण्यवाला, शरीरवाला... आहाहा! इस शरीर के अवयव जरा ठीक हों तो उसे ऐसा माने कि हमारे (सब ठीक है)। अरे! भगवान! तू यह क्या करता है? आहाहा! यह असंख्य प्रदेश अवयव में तो अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति तेरे धाम में पड़ी है न! उसके सामने देखने को, उसे मानने को, ऐसी महाप्रभु तेरी चीज़, उसे अनुभव करने का तुझे समय नहीं मिलता? ऐसा कहना चाहते हैं। ऐसा सब समय तूने व्यतीत किया है, नाथ! परन्तु तुझे तेरी दया नहीं आयी। आहाहा! पर की दया करने निकल गया। विकल्प है।

मुमुक्षु : पालन तो नहीं कर सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर की दया कहाँ पाल सकता है? आहाहा! आचार्य तो देखो न! वर्णन करते हैं भावपाहुड़ में!

तेरे एक-एक जन्म-मरण का एक-एक टुकड़ा लें, इतना तो अनन्त मेरु भर जायें इतने ढ़ेर हुए, प्रभु! किसमें तुझे प्रसन्नता आती है? किस चीज़ में तेरा वीर्य उल्लसित होता है? यह पर में तेरा वीर्य उल्लसित होता है, उसमें प्रभु! तूने ऐसे अनन्त भव किये हैं न! आहाहा! एक का छोटी उम्र का लड़का मर गया। पैर में.... गया था। पैर की वह क्या कहलाती है? पैर की नाळ। उसमें क्षय हुआ, क्षय। पैर की होती है न

हड्डी ऊपर की ? पैर में ऊपर नहीं यह ? उसमें क्षय हुआ, क्षय। समझे या नहीं ? 'सास' जैसा है, नजर से देखा है। आहार लेने गये थे। जवान लड़का। उसके पिता का पिता था। उसका पिता मर गया। आहाहा! दामनगर में है। वह लड़का मर गया और मुर्दा निकाला बाहर। उसके पीछे उसकी माँ (रोवे)। हम उपाश्रय में बैठे हुए थे। उपाश्रया था उस ओर। धड़ाक... धड़ाक... फिर गिरे। आहाहा! छाती कूटे। अरे! भाई! थोड़े दो कदम उठे ऐसे चले, वहाँ वापस गिरे... धड़ाक। ऐसे मरण भी अनन्त बार किये, भाई! आहाहा! तेरी माँ ऐसे पछाड़ खाकर मरी। आहाहा! दामोदर सेठ का पुत्र। जवान लड़का था। पैसेवाले व्यक्ति। तब दस लाख इसलिए पैसेवाले। अब तुम्हारे पाँच-दस-लाख की, बीस लाख की कुछ कीमत नहीं। तब तो... ऐई! चिमनभाई! तुम्हारे सगे की कीमत थी तब। पैसेवाले। दस लाख।

जवान लड़का, छह महीने के विवाह में मर गया। छह महीने का विवाह। पंजादार लड़का। पूना में पढ़ा हुआ। गृहस्थ व्यक्ति, इसलिए पैसा तो महीने के खर्च के दे। पुस्तकें दे। देते थे बेचारे। महीने में जेब खर्च कुछ कम देते थे। इसलिए एक बार... बहुत होशियार लड़का था। बापूजी! महीने में दो सौ रुपये तो मुझे खर्च के चाहिए। हम गृहस्थ के घर में अवतरित हुए हैं, हों! महीने में दो सौ रुपय जेबखर्च के चाहिए। काका को चले तो दो, नहीं तो तुम्हारे नाम से लिखो। दिये दो सौ-दो सौ खर्च के। परन्तु विवाह किया। दो महीने से तैयारी। उसका मकान, उसका पलंग, उसके ... नयी बनायी। दो-दो महीने। यह नहीं अपने कलकत्ता लाड का लाडु करते हैं ? यह बातें चलते हैं। वह सब वहाँ किया।

मुमुक्षु : सीधुं...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ! ... सुना था। दो-दो महीने की तैयारी थी, भाई! विवाह किया। पैसा... आसोज महीने में उड़ गया। आहाहा! दामोदर सेठ कहते बेचारे, मर गया तब हमें बहुत नहीं लगता था परन्तु फिर उसके ननिहालवाले आये गृहस्थ लींबड़ी से। कैसे ? कोठारी ? चन्दुलाल दीवान थे। वे .... लेकर आये। महिलायें... की। रुलावे। ओहोहो! और बाजार में कुकर्म में निकली और ऐसे पुकार लावे। दामोदर सेठ तब मुझे... थे। ... मर गया। परन्तु वह बाई ऐसी सेवा करे। आहाहा! अरे! बापू!

किसका मरण? भाई! ऐसे मरण तो तूने अनन्त बार किये। उसकी माँ, भाई! रात्रि में रोती... रोती...। एक तो वीर्यवाला व्यक्ति था। रात्रि में जरा बाहर ... देखे। पलंग में रोती हो। पैसा, हों! दस लाख। तब साठ वर्ष पहले। मर गयी। झूर-झूरकर मरी बेचारी। बापू! किसका तुझे चैन है? आहाहा! यह तो नजर से देखी हुई बातें हैं। (संवत्) १९७५ की बात है, लो! ७५, १९७५ के वैशाख में विवाह, १९७५ के आसोज महीने में आयुष्य पूरा। एकदम जवान पंजादार। उसे महीने के दो सौ रुपये तो जेब का खर्च। बाबूभाई! पुस्तक के और अन्य के अलग, वे नहीं। आहाहा! ऐसे मरण के पीछे उसकी... मोदी की लड़की। तुम्हारा सुखलाल नहीं? तुम्हारे रिश्तेदार के भाई सुखलाल। उसका घर पास में था। पहला सुखलालभाई का था। ... खबर है।

मुमुक्षु : उस समय विवाह हुआ तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विधवा बाई अभी जीवित है।

अरे! तूने ऐसे दुःख सहन किये, प्रभु! मनुष्यपना पाकर भी तेरे ऐसे अनन्त अवतार हुए, नाथ! आहाहा! परन्तु तेरे स्वभाव की रक्षा करने को निवृत्त नहीं हुआ। आहाहा! वह यहाँ आचार्य महाराज कहना चाहते हैं। भाई! तेरे ऐसे अवतार में ऐसे अनन्त हुए। अनन्त मेरु भर जायें। आहाहा!

गाथा-२१

आगे कहते हैं कि हे आत्मन्! तू जल थल आदि स्थानों में सब जगह रहा है –

जलथलसिहिपवणंवरगिरिसरिदरितरुवणाइ* सव्वत्थ।
वसिओ सि चिरं कालं तिहुवणमज्झे अणप्पवसो।।२१।।

जलस्थलशिखिपवनांवरगिरिसरिद्दरीतरुवनादिषु सर्वत्र।
उचितोऽपि चिरं कालं त्रिभुवनमध्ये अनात्मवशः।।२१।।

* पाठान्तर 'वणाइ', 'वणाई'।

अनात्म-वश हो भू अनल जल अनिल नभ गिरि नदी वन।
तरु गुफा आदि सब जगह जग में रहा चिर-काल तक।।२१।।

अर्थ **– हे जीव ! तू जल में, थल अर्थात् भूमि में, शिखि अर्थात् अग्नि में, पवन में, अम्बर अर्थात् आकाश में, गिरि अर्थात् पर्वत में, सरित् अर्थात् नदी में, दरी अर्थात् पर्वत की गुफा में, तरु अर्थात् वृक्षों में, वनों में और अधिक क्या कहें सब ही स्थानों में, तीनलोक में अनात्मवश अर्थात् पराधीनवश होकर बहुत काल तक रहा अर्थात् निवास किया।**

भावार्थ **– निज शुद्धात्मा की भावना बिना कर्म के आधीन होकर तीन लोक में सर्व दु:खसहित सर्वत्र निवास किया।।२१।।**

गाथा-२१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि हे आत्मन्! तू जल थल आदि स्थानों में सब जगह रहा है – आहाहा! भाई! तूने कोई स्थान बाकी नहीं रखा। कहीं जन्मा न हो और कहीं मरा न हो, ऐसा कोई स्थान चौदह ब्रह्माण्ड में नहीं है, भाई! चौदह ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजन में है। एक-एक क्षेत्र में तू अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार मरा। आहाहा! यह उसका इतिहास बताते हैं।

जलथलसिहिपवणंवरगिरिसरिदरितरुवणाइ सव्वत्थ।
वसिओ सि चिरं कालं तिहुवणमज्झे अणप्पवसो।।२१।।

अर्थ – हे जीव ! तू जल में,... अनन्त बार रहा। आहाहा! उस जल में जल के जीव होकर अनन्त बार रहा। उस नदी का पानी, समुद्र का पानी, पीने का पानी, वर्षा का पानी ऊपर से गिरे। उसमें जीव है। वह एकेन्द्रिय जीव है। आहाहा! ऐसे जल में अनन्त बार जन्मा। आहाहा! **थल अर्थात् भूमि में,...** पृथ्वी में। यह सचेत कण यह पत्थर निकालते हैं न चिनने के लिये? उस एक-एक कण में असंख्य जीव हैं। एक कुदाली ऐसे मारे और चूरा (हो जाये)। आहाहा! उसमें जन्मा। **शिखि अर्थात् अग्नि में,...** यह दियासलाई ऐसे घिसे और उसमें जो आग हो, उसमें असंख्य जीव हैं।

एकेन्द्रिय असंख्य जीव। भाई! उसमें मर गया। अनन्त बार जन्मा वहाँ जाकर। आहाहा!

और **पवन में,...** यह वायु है, वह जीव है। उसमें अनन्त बार तूने जन्म धारण किये। **अम्बर अर्थात् आकाश में, गिरि अर्थात् पर्वत में, सरित् अर्थात् नदी में, दरी अर्थात् पर्वत की गुफा में, तरु अर्थात् वृक्षों में, वनों में और अधिक क्या कहें सब ही स्थानों में,...** प्रभु! तूने अनन्त बार जन्म और मरण किये हैं, भाई! आहाहा! पहले मरण होता था न तो अपने ऐसा रिवाज था। अब किसी को नहीं है। शाम को महिलाएँ रोने के लिये इकट्ठी हों। चार बजे। पकाने से पहले... हमारे घर में यह सब हुआ था न। हमारे दीपचन्दभाई बड़े भाई गुजर गये थे। छोटी उम्र में, हों! आठ वर्ष के विवाहित। एक ही लड़का। बहुत रूपवान थे। बहुत होशियार थे। खुशालभाई से बड़े। गुजर गये। हम लड़के छोटे। तब तो ग्यारह वर्ष की उम्र। निकाल दिया, यहाँ बैठना नहीं। ... चार बजे पकाने से पहले। और दोपहर में फुरसत हो, तब सब सगे-सम्बन्धी इकट्ठे हों।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तिथि अमुक न हो तब तक। अब तो सब घट गया। तब था। सात-सात, दस-दस, बारह-बारह दिन तक सब इकट्ठे हों और रोवे... रोवे... रोवे। आहाहा! मैं बैठा होऊँ। हमारी उम्र छोटी न। ग्यारह वर्ष की उम्र। १९५७ के वर्ष की बात है। ५७, संवत् १९५७। सब सुना हुआ हों, भाई! घर के लोग हों, वे पीछे से रोवे। सब रोते-रोते बन्द होते जायें। अन्त में उसकी माँ हो या उसकी बहू हो, वह अन्त में बन्द करे। भगवानजीभाई! तुम्हारे गाँव में रिवाज होगा ऐसा। था, यह तो सब नजरों से देखा हुआ है। गाँवों में अधिक है। उस समय के वे रुदन। ऐसे सब आवे बहुत। कहा, यह क्या करते हैं?

ऐसे मरण के पीछे, तेरे पीछे ऐसे मो अनन्त बार वाळया भाई! परन्तु तूने सन्मुख नहीं देखा। तेरा मुँह उसके सन्मुख नहीं किया। आहाहा! जहाँ प्रभु विराजता है। पूर्ण आनन्द का नाथ (विराजता है), वहाँ उसके सामने तूने नहीं देखा। आहाहा! ऐसे सब अवतार कर-करके ..... पाँच-पचास लाख रुपये हों, इज्जत हो, लड़के हों तो आहाहा! देखो यह तुम्हारे। आहाहा! उसकी चाल और उसके कपड़े के पहनावे में... ओहोहो! क्या है? भाई! कहाँ जाना है तुझे? आहाहा! ऐसा कहकर चैतन्य में उन्मुख करना

चाहते हैं, हों! बाद में यह है। यहाँ जा। प्रभु! तू यहाँ जा। ऐसे-ऐसे अवतार ... सामने देखकर बहिरात्मपने तूने ऐसे अवस्तार किये हैं न, नाथ! वह तुझे शोभा देता है? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे भव में **तीन लोक में अनात्मवश अर्थात् पराधीनवश होकर...** आहाहा! कर्म के आधीन होकर। स्वयं आधीन होता है, हों! आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन का नाथ प्रभु स्वयं को भूलकर राग के, कर्म के वश होता है और चार गति में भटकता है। आहाहा! **पराधीनवश होकर बहुत काल तक रहा अर्थात् निवास किया।** बहुत निवास किया तूने नाथ! ऐसे-ऐसे भवों में निवास किया। छोटी-छोटी उम्र के लड़के मरते हैं न। एक दिन का जन्मकर मरे, दो दिन का जन्मकर मरे। आहाहा! गर्भ में निकालते हुए मरकर निकाले। काटकर निकाले। आहाहा! भाई! क्या तेरे अवतार। 'चार भव के दुःख से डरी...' ऐसा आता है न? चार गति के दुःख से डरकर, प्रभु! अब अन्दर जा। चारों गति के दुःख, हों! देव में भी दुःख है, भाई! आहाहा! उसमें भी मानवपने में कुछ दो-पाँच लाख की आमदनी हो, उसे ऐसी की ऐसी अच्छी चली जाती हो। आहाहा! घर में और कुटुम्ब की आमदनी अच्छी चलती हो, मकान अच्छा हो और कपड़े-गहने अच्छे हों। ऐई! मजा मानता हो। दुःख का कीड़ा दुःख में दुःखी होकर होंश करता है। आहाहा! भाई! तुझे तेरी खबर नहीं है।

अतीन्द्रिय आनन्द का चौसला प्रभु तू है। आहाहा! और ऐसे भव में भटकना, वह तेरी चीज़ है, प्रभु? ऐसा कहते हैं। वह तेरा स्वभाव कहलाये? भाई! शर्मजनक भव, नहीं आता? शर्मजनक जन्मों टले, पीवे न जननी क्षीर। आहाहा! ...भव करना वह तो कलंक और शर्म है, शर्म है। और वह कलंक टाले, तब उसे जन्म का दुःख, जननी का... अथवा जननी के गर्भ में अवतरित नहीं होना पड़े।

भावार्थ - निज शुद्धात्मा की... देखो! लेखन देखा! **निज शुद्धात्मा की भावना बिना...** मेरा भगवान निज स्वरूप शुद्ध चैतन्य। अकेला आनन्द का नाथ पूर्ण परमात्मस्वरूप मेरा स्वरूप है। ऐसे **निज शुद्धात्मा की भावना बिना...** उसकी ओर की एकाग्रता नहीं, लक्ष्य नहीं, सन्मुखता नहीं। आहाहा! **कर्म के आधीन होकर...** जड़कर्म के आधीन तू हुआ है। उसने तुझे आधीन नहीं किया। आहाहा! क्योंकि यहाँ स्वभाव के साधन में स्वभाव में आधीन नहीं हुआ। यहाँ आधीन हो गया।

कर्म के आधीन होकर तीन लोक में सर्व दु:खसहित सर्वत्र निवास किया। सर्व दु:खसहित निवास किया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सर्व दु:खसहित सर्वत्र...** सर्व दु:ख और सर्वत्र। सर्व दु:ख और सर्वत्र। आहाहा! समझ में आया?

गाथा-२२

आगे फिर कहते हैं कि हे जीव! तूने इस लोक में सर्व पुद्गल भक्षण किये तो भी तृप्त नहीं हुआ –

गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं।
पत्तो सि तो ण तित्तिं [१]पुणरुत्तं ताइं भुञ्जंतो।।२२।।

ग्रसिताः पुद्गलाः भुवनोदरवर्तिनः सर्वे।
प्राप्तोऽसि तन्न तृप्तिं पुनरुक्तान् तान् भुंजानः।।२२।।

त्रैलोक्य-स्थित सभी पुद्गल किए भक्षण बहुविधि।
फिर बार-बार उन्हें हि खाया पर नहीं तृप्ति कभी।।२२।।

अर्थ – हे जीव ! तूने इस लोक के उदर में वर्तते जो पुद्गल स्कन्ध, उन सबको ग्रसे अर्थात् भक्षण किये और उन ही को पुनरुक्त अर्थात् बारबार भोगता हुआ भी तृप्ति को प्राप्त न हुआ।

गाथा-२२ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं कि हे जीव! तूने इस लोक में सर्व पुद्गल भक्षण किये तो भी तृप्त नहीं हुआ – आहाहा!

गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं।
पत्तो सि तो ण तित्तिं पुणरुत्तं ताइं भुञ्जंतो।।२२।।

१. मुद्रित संस्कृत प्रति में 'पुणरुवं' पाठ है जिसकी संस्कृत में 'पुनरूपं' छाया है।

अर्थ – हे जीव ! तूने इस लोक के उदर में वर्तते... लोक के उदर।... चौदह ब्रह्माण्ड में अन्दर वर्तता हुआ। जैसे माता के पेट में-गर्भ में वर्ते न? उसी प्रकार यह तीन लोक के गर्भ में अन्दर में वर्तता है। आहाहा! तीन लोक के उदर में **वर्तते जो पुद्गल स्कन्ध, उन सबको ग्रसे अर्थात् भक्षण किये...** आहाहा! दुनिया के पुद्गल बाकी नहीं रखे। ऐसे तो कितने ही बाकी हैं, परन्तु इसकी शक्ति में अनन्त बार ग्रहण किये, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? **उन सबको ग्रसे अर्थात् भक्षण किये और उन ही को पुनरुक्त अर्थात् बारबार भोगता हुआ...** आहाहा! दाल, भात, सब्जी, मौसम्बी का पानी, ऐसे पुद्गल प्रभु! तुझमें नहीं है। उस चीज़ के संयोग में तू अनन्त बार आ गया है, ऐसा कहते हैं। उन्हें भक्षण किया परन्तु तृप्ति नहीं हुई। आहाहा! **बारबार भोगता हुआ भी तृप्ति को प्राप्त न हुआ।** किसकी तृप्ति हो? बाहर के कारण अग्नि की लकड़ियाँ डाले तो तृप्ति हो अग्नि को? आहाहा!

गाथा-२३

फिर कहते हैं –

तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाए पीडिएण तुमे।
तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चिंतेह भवमहणं।।२३।।

त्रिभुवनसलिलं सकलं पीतं तृष्णाया पीडितेन त्वया।
तदपि न तृष्णाछेदः जातः चिन्तय भवमथनम्।।२३।।

हो प्यास से पीड़ित तुम्हीं ने त्रिजग का सब जल पिया।
पर नहीं तृष्णा मिटी यों भव-मथन को चिन्तन कहा।।२३।।

अर्थ – हे जीव ! तूने इस लोक में तृष्णा से पीड़ित होकर तीन लोक का समस्त जल पिया तो भी तृषा का व्युच्छेद न हुआ अर्थात् प्यास न बुझी, इसलिए तू इस संसार का मंथन अर्थात् तेरे संसार का नाश हो, इस प्रकार निश्चय रत्नत्रय का चिन्तन कर।

भावार्थ – संसार में किसी भी तरह तृप्ति नहीं है, जैसे अपने संसार का अभाव

हो वैसे चिन्तन करना अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण करना, सेवन करना यह उपदेश है।।२३।।

गाथा-२३ पर प्रवचन

फिर कहते हैं –

तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाए पीडिएण तुमे।
तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चिंतेह भवमहणं।।२३।।

यह पुद्गल का था, अब पानी का कहते हैं। आहाहा!

अर्थ – हे जीव ! तूने इस लोक में तृष्णा से पीड़ित होकर तीन लोक का समस्त जल पिया... तृषा-तृषा। इतनी तृषा। आहाहा! नरक में, सातवें नरक में तृषा... पहले नरक में जल का बिन्दु मिलता नहीं और अनन्त समुद्र पानी के दे तो तृप्ति हो नहीं, ऐसी तृषा, भाई! आहाहा! यहाँ जरा गला सूखे और जरा पानी लाने में देरी लगे वहाँ भाई शोर मचाते हैं। पानी लाओ! देर क्यों लगती है? कोई मरा है या नहीं? मर गया है? मर गया अर्थात्? .... ऐसा कि कोई है घर में या मर गया? आहाहा! प्याला फटता है न। मर गया है या नहीं? क्यों नहीं लाते? सुन, सुन, बापू!

ऐसी तृषा... ऐसी तृषा... **तीन लोक का समस्त जल पिया तो भी तृषा का व्युच्छेद न हुआ...** आहाहा! ... अनन्त... अनन्त... नरक की पीड़ा में तृषा। आहाहा! ३३-३३ सागर तक, हों! एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं और एक पल्योपम में असंख्य अरब वर्ष असंख्यवें भाग में जाते हैं। भगवान! तूने वहाँ अनन्त बार ऐसी तृषा सहन की है। परन्तु तूने आत्मा का निर्विकल्प जल पीया नहीं। आहाहा! चैतन्य भगवान निर्विकल्प आनन्द का रस है। 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे।' आत्मा आनन्द का नाथ निर्विकल्परस से भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसका पेय पीये बिना, ऐसा पेय तूने अनन्त बार लिया, परन्तु तृप्ति नहीं हुई। आहाहा!

इसलिए तू इस संसार का मंथन अर्थात् तेरे संसार का नाश हो,... देखो!

प्यास न बुझी, इसलिए तू इस संसार का... निश्चयरत्नत्रय का चिन्तवन कर। आहाहा! **'चिंतेह'** आया न? क्या चिन्तवन करना? **'भवमहणं'** जिससे भव का नाश हो। आहाहा! ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा, उसके रत्नत्रय दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना कर। आहाहा! ऐसा तो मार डाले। आहाहा! एक तो निवृत्त (हो नहीं)। बालक हो तब पढ़े, पढ़ने के पश्चात् नौकरी खोजे। उसमें डॉक्टर हो या वकील, वकील और डॉक्टर का चला कुछ। उसमें और कुछ आमदनी-बामदनी ठीक से हो और लड़का अच्छा पका हो, वह वापस दो-दो हजार की नौकरी में लगा हो। नवलचन्दभाई! यह कहा था, उस डॉक्टर का, नहीं? वह डॉक्टर। बड़ा डॉक्टर था। परसों। उसके एक लड़की और चार लड़के। एक लड़का २९ वर्ष की उम्र का। केंसर, केंसर में मर गया। वह तो डॉक्टर है। लड़का स्वयं डॉक्टर है। डॉक्टर क्या करे? आहाहा! वह लड़का डॉक्टर था। २९ वर्ष का। केंसर हुआ। बहुत आघात लगा। शान्तिभाई कहते थे। उस समय हम देखने गये थे। कुण्डलावाले। ... है न ... ऊपर। प्रेम है, आते हैं। अरेरे!

कहते हैं कि भाई! ऐसे पानी अनन्त बार पीये, तो भी तृप्ति नहीं हुई। अब जलनिधि भगवान निर्विकल्प आनन्दरस, उसकी चिन्तवना कर न, नाथ! आहाहा! चिन्तवना अर्थात्? उसकी एकाग्रता। आनन्दस्वरूप भगवान की एकाग्रता कर। करने का तो यह है। बाकी सब बिना एक के शून्य रण में चिल्लाने जैसा है। आहाहा! **'चिंतेह भवमहणं'** ऐसा कहते हैं न? भव का नाश हो और भव का मन्थन हो, ऐसा कर, नाथ! ऐसा कहते हैं। जिसमें भव का अभाव हो, ऐसा कर। ऐसे भव तो तूने अनन्त बार किये, भाई! आहाहा! महिलायें गाती हैं न? विवाह करे तब गाती हैं न? वर के पिता या वर का भाई सामने देखता नहीं। ऐसा नहीं गाते? ऐसा कुछ गाते हैं।

मुमुक्षु : लळी, लळी...

पूज्य गुरुदेवश्री : लळी, लळी सामने देखे। विवाह करे तब महिलायें गाती हैं। फुरसत में होवे न! उससे बड़े भाई लळी लळी सामने देखे और उसका ऐसा और... आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! यह तो सब देखा है न। आहाहा! बापू! किसके सामने देखे? भाई! सामने तो अन्दर चैतन्य है, उसके सामने देख न। लळी लळी कर वहाँ देख। आहाहा! देखो न! आचार्य। **'चिंतेह भवमहणं'** ऐसे भव अनन्त बार किये। अब उस

भव के नाश के लिये प्रभु! तू तेरी चीज़ को चिन्तवन कर। आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव नहीं, ऐसा तीन लोक का नाथ तू परमात्मा स्वयं। आहाहा! उसका माहात्म्य लाकर प्रभु! तू वहाँ एकाग्र हो। तो भव का नाश होगा। बाकी कोई दूसरा उपाय नहीं है। आहाहा!

भावार्थ – संसार में किसी भी तरह तृप्ति नहीं है, जैसे अपने संसार का अभाव हो, वैसे चिन्तन करना... आहाहा! देखो! यहाँ तो यह निश्चय डाला, देखा? निश्चयरत्नत्रय। व्यवहाररत्नत्रय भव मन्थन का-नाश का कारण नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय स्वयं संसार है। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे कि व्यवहार से ऐसा होता है और व्यवहार से ऐसा होता है। भाई! स्वरूप आनन्द का नाथ निर्विकल्प रस से भरपूर है न, भाई! जिसके एक क्षण के आनन्द के समक्ष दुनिया के इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तृणवत् लगते हैं, ऐसा तू ऐसा आत्मा! उसकी चिन्तवना कर न! उसका कुछ कर न, उसका कुछ कर न! आहाहा!

संसार का अभाव हो, वैसे चिन्तन करना... अर्थात् कि चैतन्य भगवान का **निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय ज्ञान,...** अन्तर आत्मा का। और आत्मा का वेदन स्थिरता, वह कर। करनेयोग्य होवे तो यह है। निश्चय चिन्तवन कर। **निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण करना, सेवन करना यह उपदेश है।** भगवान का। कुन्दकुन्दाचार्य का यह उपदेश जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं।

गाथा-२४

आगे फिर कहते हैं –

गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं।
ताणं णत्थि पमाणं अणंतभवसायरे धीर।।२४।।

गृहीतोज्झितानि मुनिवर कलेवराणि त्वया अनेकानि।
तेषां नास्ति प्रमाणं अनन्तभवसागरे धीर!।।२४।।

हे धीर मुनिवर! असीमित भव-जलधि में छोड़े ग्रहे।
बहु-विध कलेवर तुम्हीं ने सीमा नहीं उनकी कहें।।२४।।

अर्थ – हे मुनिवर ! हे धीर ! तूने इस अनन्त भवसागर में कलेवर अर्थात् शरीर अनेक ग्रहण किये और छोड़े, उनका परिमाण नहीं है।

भावार्थ ह्न– हे मुनिप्रधान ! तू इस शरीर से कुछ स्नेह करना चाहता है तो इस संसार में इतने शरीर छोड़े और ग्रहण किये कि उनका कुछ परिमाण भी नहीं किया जा सकता है।

गाथा-२४ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं –

गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं।
ताणं णत्थि पमाणं अणंतभवसायरे धीर।।२४।।

अर्थ – हे धीर! हे मुनिवर! आहाहा! धीर कहा न? और मुनिवर दोनों (शब्द) डाले। मुनिवर शब्द भी है। **'गहिउज्झियाइं मुणिवर'** आहाहा! और **'धीर'** तू नग्न दिगम्बर मुनि हुआ, इससे तुझे धीर कहते हैं। हे मुनिवर! आहाहा! भाई! अब तू तेरे आत्मा की सम्हाल कर। यह पाँच महाव्रत को पालते हैं, ऐसा करते हैं, (ईर्या) समिति—देखकर चलते हैं। बापू! यह तो सब राग है, सुन! आहाहा!

हे मुनिवर! और **हे धीर!** दो लिये हैं न? **तूने इस अनन्त भवसागर में कलेवर अर्थात् शरीर अनेक ग्रहण किये...** यह हड्डियों के शरीर अनन्त ग्रहण किये। और अनन्त बार ऐसे शरीर ग्रहण किये **और छोड़े,...** नाथ! परन्तु तूने तेरा नाथ नहीं किया तुझे। आहाहा! **और छोड़े, उनका परिमाण नहीं है।** माप नहीं, माप नहीं। अनन्त बार शरीर धारण करके अनन्त बार शरीर छोड़े। आहाहा!

भावार्थ – हे मुनिप्रधान ! तू इस शरीर से कुछ स्नेह करना चाहता है... इस शरीर की सम्हाल, यह करो... यह करो... खाने के समय यह और पीने के समय यह, अमुक के समय ऐसा। साधु को तो तेल चोपड़े, यह करे, वह करे। यह सर्दी होती है

न। वस्त्र न रखे तो तेल चोपड़े। अब वह तो वस्त्र का बाप हुआ। तेल लगावे। वे अन्यमति के बाबा रख लपेटते हैं। साधु होकर तेल चिकना चोपड़े। कितने प्रकार के तेल आते हैं, ऐसा सुना है। अपने को तो कहाँ चोपड़ा हैं। तीन प्रकार के तेल हैं, उनके पास। सवेरे यह चोपड़े, दोपहर में यह चोपड़े, शाम को यह चोपड़े, अरे रे! तो वस्त्र किसलिए छोड़े तूने? आहाहा! मूल चीज़ दृष्टि में आये बिना उसका माहात्म्य आता नहीं और पर का माहात्म्य हटता नहीं। आहाहा!

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का नाथ अन्दर स्वयं विराजता है। उसकी इसे खबर नहीं होती। आहाहा! और बाहर में मोहित होकर उलझा है। आहाहा! इतने शरीर लिये कि जिसका माप नहीं। आहाहा! ऐसे शरीर में अनन्त बार अवतरित हुआ। अब तो कलेवर न मिले, ऐसा कर न!—ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस शरीर में स्नेह करना (रहने दे) भाई! यह तो माँस, हड्डियाँ, चमड़ा है। तू इसका प्रेम करके शाम-सवेरे चौबीस घण्टे ध्यान रखता है। सवेरे चाय (पीवे)। साधु होकर दो-दो, चार-चार बार (पीवे)। दिगम्बर को तो ... होता नहीं। श्वेताम्बर में तो सवेरे उठकर चाय, दस बजे आहार, दोपहर में और कुछ ऐसे काजू-द्राक्ष हो (तो) नाश्ता, शाम को फिर खिचड़ी, कढ़ी और पापड़। अरे रे! कितनी सम्हाल, बापू! तेरी।

अभी एक साधु गुजर गये न? अमृतविजय गुजर गये न। आठ दिन असाध्य। आठ दिन असाध्य नहीं, क्या कहा? सन्निपात। आठ दिन सन्निपात और तीन दिन असाध्य। बोटाद के थे। आहाहा! क्या यह योगफल प्रभु तेरा। सन्निपात। यह शरीर की दशा, भाई! तूने शरीर की सम्हाल बहुत की। अन्त में निकली पोल। आहाहा! हाथ न रहे, इसलिए सन्निपात हो। लवारो करे। यह लाओ... यह करो... यह करो... भान भूल जाये। आहाहा! कहते हैं कि ऐसे कलेवर इतने किये कि जिसका माप नहीं। आहाहा!

गाथा-२५ से २७

आगे कहते हैं कि जो पर्याय स्थिर नहीं है, आयुकर्म के आधीन है, वह अनेक प्रकार से क्षीण हो जाती है –

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेणं ।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ ।।२५।।
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं ।
रसविज्जजोयधारण अणयपसंगेहिं विविहेहिं ।।२६।।
इय तिरियमणुयजम्मे सुइरं उववज्झिऊण बहुवारं ।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तो सि तं मित्त ।।२७।।

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंक्लेशैः ।
आहारोच्छ्वासानां निरोधनात् क्षीयते आयु ।।२५।।
हिमज्वलनसलिलगुरुतरपर्वततरुरोहणपतनभङ्गैः ।
रसविद्यायोगधारणानयप्रसंगैः विविधैः ।।२६।।
इति तिर्यग्मनुष्यजन्मनि सुचिरं उत्पद्य बहुवारम् ।
अपमृत्युमहादुःखं तीव्र प्राप्तोऽसि त्वं मित्र ! ।।२७।।

विष वेदना भय रक्त-क्षय संक्लेश शस्त्राघात से।
आहार श्वासोच्छ्वास के अवरोध से आयु छिदे।।२५।।
हिम अनल जल बहु उच्च गिरि तरु चढ़ पतन तन भंग से।
रस आदि विद्या योग बहु-विधि अनीति संयोग से।।२६।।
यों मनुज तिर्यग् जन्म में बहुबार लंबे काल तक।
तन-धार पाए महा-दुख अपमृत्यु के हे मित्र! तुम।।२७।।

अर्थ – विषभक्षण से, वेदना की पीड़ा के निमित्त से, रक्त अर्थात् रुधिर के क्षय से, भय से, शस्त्र के घात से, संक्लेश परिणाम से, आहार तथा श्वास के निरोध से इन कारणों से आयु का क्षय होता है।

हिम अर्थात् शीत पाले से, अग्नि से, जल से, बड़े पर्वत पर चढ़कर पड़ने से, बड़े वृक्ष पर चढ़कर गिरने से, शरीर का भंग होने से, रस अर्थात् पारा आदि की विद्या उसके संयोग से धारण करके भक्षण करे, इससे और अन्याय कार्य, चोरी, व्यभिचार आदि के निमित्त से इस प्रकार अनेकप्रकार के कारणों का आयु का व्युच्छेद (नाश) होकर कुमरण होता है।

इसलिए कहते हैं कि हे मित्र! इस प्रकार तिर्यंच, मनुष्य जन्म में बहुत काल बहुत बार उत्पन्न होकर अपमृत्यु अर्थात् कुमरण सम्बन्धी तीव्र महादु:ख को प्राप्त हुआ।

***भावार्थ* – इस लोक में प्राणी की आयु (जहाँ सोपक्रम आयु बँधी है, उसी नियम के अनुसार) तिर्यंच-मनुष्य पर्याय में अनेक कारणों से छिदती है, इससे कुमरण होता है। इससे मरते समय तीव्र दु:ख होता है तथा खोटे परिणामों से मरण कर फिर दुर्गति ही में पड़ता है, इस प्रकार यह जीव संसार में महादु:ख पाता है। इसलिए आचार्य दयालु होकर उन दु:खों को बारबार दिखाते हैं और संसार से मुक्त होने का उपदेश करते हैं, इस प्रकार जानना चाहिए।।२५-२६-२७।।**

गाथा-२५ से २७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो पर्याय स्थिर नहीं है,... यह शरीर कहीं स्थिर नहीं है। नित्य तो प्रभु आत्मा है। **आयुकर्म के आधीन है, वह अनेक प्रकार से क्षीण हो जाती है** – शरीर तो नाश हो जायेगा अनेक प्रकार के ... भगवान अविनाशी है, उसकी सम्हाल कर न। इसकी लाख सम्हाल करेगा तो भी छूटेगा ही। आहाहा! दवायें रखेगा, यह करे, अवसर-अवसर में दवायें, अलमारी तैयार दवा की। बिच्छू काटे तो यह, अमुक काटे तो यह। ऐसा सुना है... फोनोग्राम* नहीं आता फोनोग्राम? खाली फोनोग्राम। उसके टुकड़े रखते हैं। ... ऐसा सुना है। अपने को कहाँ खबर है? वह सब रखते हैं अलमारी में। यह सम्हाल करना रहने दे। मर जायेगा। वहाँ टुकड़े काम नहीं आयेंगे। आहाहा! अनन्त का चैतन्य नाथ भगवान सच्चिदानन्द प्रभु तू है न, नाथ! उसकी सम्हाल कर न। सत्यार्थ को देख न, भूतार्थ को देख न! आहाहा! ११वीं गाथा कही है न?

* फोनोग्राम – पुराने जमाने में एक अभी की सी.डी. जैसी एक वस्तु जो मशीन पर बजती थी।

'भूदत्थम' 'ववहारोऽभूदत्थो' व्यवहार अभूतार्थ है। आहाहा! परवस्तु तो अभूतार्थ है, अपनी अपेक्षा से वह परवस्तु है ही नहीं। वापस निर्मल पर्याय अपेक्षा से राग पर्याय भी है नहीं। असद्भूत में जाती है। अपनी अपेक्षा से दूसरे द्रव्य असद्भूत हैं और अपनी निर्मल पर्याय की अपेक्षा से राग असद्भूत है। आहाहा! और त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय का भेद है, वह त्रिकाल में नहीं, इस अपेक्षा से असद्भूत में जाता है। आहाहा! सद्भूत में तो एक नाथ आत्मा रहता है।

जिसकी नजर करने से संसार का नाश हो, जिसके सामने देखने से संसार का अभाव हो। ऐसा तेरा प्रभु अन्दर है, उसके सामने देख न, भाई! आहाहा! यह तो दुनिया हमें कैसे गिनती है? दुनिया में कुछ गिनती में आये या नहीं? दुनिया हमें कुछ बड़े में खतौनी करती है या नहीं? मर जायेगा अब, सुन न। आहाहा! दुनिया में बाहर तो प्रसिद्ध हुए। बाहर प्रसिद्ध हुआ वह तो दुनिया में।

मुमुक्षु : पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पड़ा कूदकर। आहाहा! यहाँ तेरा नाथ अन्दर पूर्णानन्द प्रभु, वह तेरी पूँजी और वह तेरी मूडी है। ऐसे सत्यार्थ को लक्ष्य में और दृष्टि में ले न। आहाहा! कि जिससे ऐसे शरीर धारण न करना पड़े। अब इस शरीर की अस्थिरता बतलाते हैं।

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेणं।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ।।२५।।
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं।
रसविज्जजोयधारण अणयपसंगेहिं विविहेहिं।।२६।।
इय तिरियमणुयजम्मे सुइरं उववज्झिऊण बहुवारं।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तो सि तं मित्त।।२७।।

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य मुनि को मित्ररूप से बुलाते हैं। द्रव्यलिंगी साधु। हे मित्र! आहाहा! हमारी जाति के नग्नपने में तो तू आया परन्तु हमारा अन्दर स्वरूप जो निर्विकल्प नग्नदशा है, उसमें तू नहीं आया। आहाहा! हे मित्र! है न? यह जहर खाने

से शरीर का नाश हुआ। आयुष्य का नाश हुआ, कहते हैं। जहर-जहर। वेदना की पीड़ा के निमित्त थे। ऐसी वेदना... ऐसी वेदना... कि देह छूट जाये, आयुष्य समाप्त हो जाये।

मुमुक्षु : ऐसा पहले कभी सुना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना अनन्त बार परन्तु अन्दर मेरा करके सुना नहीं। एक वेशरूप से सुनना चाहिए अपने। आहाहा!

रक्त अर्थात् रुधिर के क्षय से, भय से,... रुधिर का क्षय हो जाये। यह रक्त। देह छूट जाये। रक्त सूख जाये। यह क्या कहलाता है तुम्हारे? शरीर पीला पड़ जाये? पीलिया-पीलिया रोग। उसे पानी नहीं पीने दे। नहीं? ऐसा रोग होता है। ध्रांगध्रा में एक जवान लड़का। गोपाणी का दामाद। (संवत्) १९७६ की बात है। ५४ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : जलन्धर।

पूज्य गुरुदेवश्री : जलन्धर नहीं। शरीर का पानी... पूरा शरीर पीला। गोपाणी के दामाद थे। हरगोविन्द गोपाणी, नहीं वह? हरगोविन्द के पिता उजमशी। ... यह तो १९७६ की बात है। एकदम जवान, जवान लड़का था। ध्रांगध्रा में। पीला हो गया और पानी के लिये चिल्लाहट करे। पानी दे नहीं। जंगल (दस्त) का पानी उसे न दे। उसे ... होवे ऐसा। हम वहाँ थे। मर गया। १९७६ की बात है, ७६। जवान लड़का था। खून का पानी हो गया। और तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा... ध्रांगध्रा... ध्रांगध्रा, कोई ध्रांगध्रावाले नहीं? दरवाजा है, उस ओर बाहर और... आहाहा! पूरा सब परिवार आया था। काणे आये थे तब हम वहाँ थे। आहाहा! विशाश्रीमाली। यह रक्त क्षय हो जाये। ... आवे एकदम। देह छूट जाये।

शस्त्र के घात से,... तलवार। **संक्लेश परिणाम से,...** देह छूट जाये। ऐसे परिणाम ... नाश हो जाये। **आहार...** रोकने से नाश हो जाये। **श्वास के निरोध से इन कारणों से आयु का क्षय होता है।** लो! आयु का क्षय का अर्थ? कि उस समय वह... होना है। ऐसा नहीं कि यह हुआ, इसलिए हुआ। आहाहा! **हिम अर्थात् शीत पाले से,...** बर्फ गिरे बर्फ? उसमें आकर देह छूट जाये। बर्फ में। आहाहा! शरीर पिघले पूरा सब। **अग्नि से,...** जलकर मरे अग्नि में। ओहोहो! लींबडी में नहीं हुआ था? बड़ी

आग लगी थी। गाँठे बड़ी गाँठें रुई की। उस दरवाजे में जाया जाये नहीं। फिर बेचारे भागे। चारों ओर अग्नि सुलगी। कितने लोग मर गये, एकसाथ अर्थी निकाली थी। ३८-३९। एक मनुष्य बेचारा जवान निकलने गया। यह गाँठ है न, उसके ऊपर पैर रखकर बाहर निकलूँ। वहाँ गाँठ में अन्दर अग्नि थी। जहाँ पैर रखा वहाँ अन्दर गिर गया। गाँठ, बड़ी गाँठ। धोकड़ा समझ में आता है न? रुई के सुलगे थे। लींबडी की बात है। जिन में। खबर है? जेठाभाई! ऐसे बेचारा बाहर निकलने जाता है, वहाँ गाँठ के ऊपर, रुई अन्दर सुलगती होगी। ऊपर पैर रखे तो गिर गया अन्दर। वहाँ जल गया। आहाहा! आयुष्य की पूर्णता इस प्रकार से भी तेरी हुई, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जल से,... पानी में बहा। पानी में गिरते हैं न? हिरण, कीड़े हो, पानी की बरसात बहुत खिंचे और मर जाये। इस प्रकार से भी तेरा आयुष्य अनन्त बार पूरा हुआ। **पर्वत पर चढ़कर पड़ने से, बड़े वृक्ष पर चढ़कर गिरने से,...** बड़े-बड़े वृक्ष पर चढ़कर गिरा। **शरीर का भंग होने से,...** शरीर के टुकड़े हुए। **पारा आदि की विद्या उसके संयोग से धारण करके भक्षण करे,...** ऐसा पारा आदि मरने के लिये पीया। पारा आता है न, पारा? पीवे तो मर जाये। आहाहा! यह चैतन्य रसायन कर अब। ऐसे पारा करके मर गया अनन्त बार। आहाहा!

इससे और अन्याय कार्य, चोरी, व्यभिचार आदि के निमित्त से इस प्रकार अनेकप्रकार के कारणों का आयु का व्युच्छेद (नाश)... हुआ, लो! अन्याय के कारण जलकर मर जाये, चोरी करके मर जाये, व्यभिचार करके मार डाले। आहाहा! वह ऐसा कुमरण तुझे हुआ। **इसलिए कहते हैं कि हे मित्र! इस प्रकार तिर्यंच, मनुष्य जन्म में...** इसकी बात है न? **बहुत काल बहुत बार उत्पन्न होकर अपमृत्यु अर्थात् कुमरण सम्बन्धी तीव्र महादुःख को प्राप्त हुआ।** आहाहा! २५-२६-२७। ऐसे मरण अनन्त बार तेरे हुए। उसमें कितने ही कहते हैं कि देखो! इसमें कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि आयुष्य का इस कारण से नाश होता है। पाठ है सही न वह। **'खिज्जए आऊ'** आयुष्य वहाँ पूर्ण होता है, ऐसा कहते हैं। उससे आयुष्य छूट जाये, नहीं तो नहीं छूटता और रहता। उसकी बात है ही नहीं। ऐसे-ऐसे मरण में तेरा आयुष्य पूर्ण हुआ, प्रभु अब तू चेत। यह करने के लिये यह बात है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१११, गाथा-२५ से ३१, गुरुवार, पोष कृष्ण १०, दिनांक १७-०१-१९७४

२५ हुई। २७ का भावार्थ है।

भावार्थ – इस लोक में प्राणी की आयु (जहाँ सोपक्रम आयु बँधी है, उसी नियम के अनुसार)... यह अपने यहाँ से लिया। **तिर्यंच-मनुष्य पर्याय में अनेक कारणों से छिदती है,..** इसके अर्थ में डाला है, देखो! कितने ही कहते हैं कि केवलज्ञानी ... अकाल मरण है।... अर्थात् आयुष्य है, वह इस प्रकार से बँधा हुआ था। इस प्रकार से उस काल में ही छूटता है। इससे उसे अकाल कहा जाता है। बाकी उसका समय है, वह बदलता है, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! यहाँ की टीका (आलोचना) की है।

मनुष्य पर्याय में अनेक कारणों से छिदती है,... छिदे अर्थात् क्षय होती है। **इससे कुमरण होता है। इससे मरते समय तीव्र दुःख होता है तथा खोटे परिणामों से मरण कर फिर दुर्गति ही में पड़ता है, इस प्रकार यह जीव संसार में महादुःख पाता है। इसलिए आचार्य दयालु होकर उन दुःखों को बारबार दिखाते हैं और संसार से मुक्त होने का उपदेश करते हैं,...** भाई! संसार से छूट, संसार में दुःख ही है। कुछ थोड़ी सी सुविधा देखकर माने कि हम सुखी हैं, वह दुःख के अंगारों में सुलग रहा है। भगवान आत्मा का शान्तरस, वीतरागरस, आनन्दरस के वेदन बिना अर्थात् कि सम्यग्दर्शन बिना इसने ऐसे अनन्त जन्म-मरण किये। आचार्य बारम्बार ... कहकर उपदेश करते हैं। 'इस प्रकार जानना चाहिए।'

गाथा-२८

आगे निगोद के दुःख को कहते हैं –

छत्तीस तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तो सि निगोयवासम्मि।।२८।।

षट्त्रिंशत् त्रीणि शतानि षट्षष्टिसहस्रबारमरणानि।
अन्तर्मुहूर्तमध्ये प्राप्तोऽसि निकोतवासे।।२८।।

छ्यासठ सहस अरु तीन सौ छत्तीस बार जनम मरण।
अन्तर्मुहूरत में किए हैं क्षुद्रभव में जिन-कथित।।२८।।

अर्थ - हे आत्मन् ! तू निगोद के वास में एक अन्तर्मुहूर्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार मरण को प्राप्त हुआ।

भावार्थ - निगोद में एक श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण आयु पाता है। वहाँ एक मुहूर्त्त के सैंतीससौ तिहत्तर श्वासोच्छ्वास गिनते हैं। उनमें छत्तीससौ पिच्यासी श्वासोच्छ्वास और एक श्वास के तीसरे भाग के छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार निगोद में जन्म मरण होता है। इसका दु:ख यह प्राणी सम्यग्दर्शनभाव पाये बिना मिथ्यात्व के उदय के वशीभूत होकर सहता है।

भावार्थ - अन्तर्मुहूर्त्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्म-मरण कहा, वह अठ्यासी श्वास कम मुहूर्त इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में जानना चाहिए।।२८।।

(विशेषार्थ -ह्वगाथा में आये हुए 'निगोद वासम्मि' शब्द की संस्कृत छाया में 'निगोत वासे' है। निगोद शब्द एकेन्द्रिय वनस्पति कायिक जीवों के साधारण भेद में रूढ़ है, जबकि निगोत शब्द पाँचों इन्द्रियों के सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न होनेवाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के लिए प्रयुक्त होता है। अत: यहाँ जो ६६३३६ बार मरण की संख्या है, वह पाँचों इन्द्रियों को सम्मिलित समझना चाहिए।।२८।।)

गाथा-२८ पर प्रवचन

आगे निगोद के दु:ख को कहते हैं - निगोद के दु:ख कहते हैं।

छत्तीस तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तो सि निगोयवासम्मि।।२८।।

अर्थ - हे आत्मन् ! तू निगोद के वास में एक अन्तर्मुहूर्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार मरण को प्राप्त हुआ।

भावार्थ - निगोद में एक श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण आयु पाता है। एक श्वास के अठारहवें भाग का आयुष्य। आहाहा! एक श्वास में तो अठारह भव करे।

भूल गया सब। अपना आनन्द भूलकर, स्वयं आनन्दस्वरूप परमानन्द की मूर्ति प्रभु है, उसे भूलकर मिथ्यात्वभाव का सेवन किया, उसके फल में एक श्वास में अठारह-अठारह भव करता है। आहाहा! यहाँ थोड़ा आयुष्य लम्बा मिले, पच्चीस-पचास-सौ वर्ष, वहाँ ऐसा हो जाये... ओहोहो!

वहाँ एक मुहूर्त्त के सैंतीससौ तिहत्तर श्वासोच्छ्वास गिनते हैं। ३६८५ श्वासोच्छ्वास और **एक श्वास के तीसरे भाग के छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार निगोद में जन्म मरण होता है।** भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने इसके परिभ्रमण के दुःख देखे हैं। यह आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना अर्थात् कि आत्मा की जो सम्पत्ति, ऋद्धि पूर्ण आनन्द, उसकी दृष्टि नहीं, उसकी ऋद्धि नहीं, उसका पोषाण नहीं और राग वह मैं, पुण्य वह मैं। आहाहा! पुण्य के फल बाहर आवे, वह मैं, ऐसे मिथ्यात्वभाव में यह कुचला गया। इसके दुःख वहाँ इसे नहीं लगे। परन्तु है तो दुःख।

इसका दुःख यह प्राणी सम्यग्दर्शनभाव पाये बिना... लो! ओहोहो! चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप की सन्मुख की दृष्टि बिना, उससे विमुख के भाव को सेवन कर ऐसे जन्म-मरण में दुःखी हुआ, प्रभु! आहाहा! आचार्य करुणा से जगत को सम्बोधन करते हैं। भाई! तेरे प्रसन्नता का स्थान तो अन्तर आनन्द है। तेरी प्रसन्नता, हर्ष और हर्ष के स्थान तो प्रभु स्वयं है। अरे! तुझे बाहर में किसका हर्ष और प्रसन्नता आती है। आहाहा! मिथ्यात्वभाव के कारण स्वस्वरूप में वास की दृष्टि छोड़कर पर के वास का भाव किया।

सम्यग्दर्शनभाव पाये बिना... पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान निवासस्थान अपना है, ऐसी दृष्टि के अभाव में **मिथ्यात्व के उदय के वशीभूत होकर...** विपरीत मान्यता। राग, वह मैं; शरीर, वह मैं; वाणी, वह मैं। बाहर की अनेक चीजें, वे मेरी और अल्पज्ञपना, उतना मैं—ऐसे मिथ्यात्व के वश होकर.... आहाहा! ऐसे दुःख सहन किये। **अन्तर्मुहूर्त्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्म-मरण कहा, वह अठ्यासी श्वास कम मुहूर्त इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में जानना चाहिए।** लो! एक अन्तर्मुहूर्त में इतने भव। आहाहा! देखो न! यहाँ लड़का खो जाये तो हाथ नहीं आता। और यह दूसरा लड़का खो गया। अनूपचन्द का। दूसरा लड़का इंजीनियर है। दोनों को उठा ले गये कोई। ...

मुमुक्षु : दूसरा एक लड़का...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ऐसे अनन्त बार... आहाहा! जीते जी गाड़ दिये, जीवित निकाले। आत्मा की जो दृष्टि चाहिए, उसके अभाव में, उसे दृष्टि करने का अवसर भी नहीं मिलता। आहाहा! २५-२५ वर्ष के जवान मनुष्य २२-२२ दिन से हाथ नहीं आते। लोगों... को बहुत रोते। क्या हो? यह तो अनन्त बार... आहाहा!

'धन्धुका' में नहीं हुआ था एक बार? मुसलमान ने एक गाय को पकड़कर शृंगार कराकर गाँव में घुमाया। पूरे गाँव में। गाय को घुमाकर लड़के ऐसे ले गये उसकी मस्जिद में। फिर उसे बाँधा और गाय के बारीक-बारीक टुकड़े किये। यह धन्धुका में हुआ। आहाहा! हिन्दुओं को दुःख कराने के लिये। यह तुम्हारी गाय, देखो! गाँव में घुमाकर फिर काट दी। टुकड़े बारीक... बारीक... बारीक और अपनी जाति में बाँट दिये। अरे! यह क्या करता है तू? आहाहा! ... नरक में जाने की तैयारी, भाई! तुझे कठोर दुःख पड़ेगा और उत्साह-उत्साह से ऐसे भाव करता है, भाई! तुझे कठोर दुःख पड़ेगा। आहाहा! परन्तु कौन सुने? वर्तमान में कुछ पाँच इन्द्रिय और कुछ... आयुष्य और निरोगता और परिवार और उसमें यह बात करे। ...बापू! ऐसे दुःख तूने अनन्त बार सहन किये, भाई! अभी भी उस ओर के झुकाववाले दुःख भाव से तू दुःखी है। परन्तु प्रतिकूल संयोग आवे, तब वह दुःखी है, ऐसा यह मानता है। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु का स्वरूप, उससे विरुद्ध भाव, वही प्रतिकूल है, वही दुःख है और वही आकुलता है। आहाहा! बीस वर्ष का लड़का मर गया हो और रात्रि के आठ बज गये हों, घर में मुर्दा हो, सवेरे निकालना हो। नींद आती है इसे? आहाहा! यह तृषा, पानी पीने के भाव भूल जाये, सब भूल जाये। आहाहा! आठ-नौ बजे मर जाये तो उस समय तो निकाला नहीं जाता। सवेरे तक जगे उसके माँ और बाप झूरे। भाई! किसके लिये यह? क्या है यह? तेरी दृष्टि में प्रभु! तुझे तेरा तत्त्व नहीं आया। यह तत्त्व तो इस रीति से संयोग आवे और वियोग से जाये, ऐसा तो अनन्त बार हुआ है। असंयोगी चीज़ ऐसा आत्मा, उसे राग का भी संयोग सम्बन्ध नहीं है। यह पर के सम्बन्ध की तो बात भी क्या करना? चैतन्यमूर्ति को राग के साथ सम्बन्ध, सं-बन्ध। संसर्गरूप से वह वस्तु नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान को ऐसे मिथ्या

भ्रम सेवन कर-करके ऐसे दु:ख किये। अवसर आवे तब कहे, नहीं हम ऐसे हैं, हम ऐसे हैं।

गाथा में आये हुए 'निगोद वासम्मि' शब्द की संस्कृत छाया में 'निगोत वासे' है। निगोद शब्द एकेन्द्रिय वनस्पति कायिक जीवों के साधारण भेद में रूढ़ है,... यह निगोद तो, **जबकि निगोत शब्द पाँचों इन्द्रियों के सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न होनेवाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के लिए प्रयुक्त होता है।** दूसरे प्रकार से भी वहाँ निगोद कहा जाता है। **अत: यहाँ जो ६६३३६ बार मरण की संख्या है, वह पाँचों इन्द्रियों को सम्मिलित समझना चाहिए।** पाँचों इन्द्रिय की सब होकर इतनी। आहाहा! जिसे भव प्रिय है, इसलिए बारम्बार भव किया ही करता है। महिलाओं की साड़ियाँ होती हैं न पच्चीस प्रकार की, तो सवेरे से शाम तक उन्हें बदला ही करती है। दिशा को जाये तब दूसरी, महिलाओं के साथ बैठने और बात करने के समय दूसरी, रास्ते में चलते समय दूसरी। बदला-बदली। क्योंकि उनके प्रति प्रेम हैं। ऐसी जो यह विविध प्रकार भिन्न-भिन्न साड़ियाँ होती हैं न? साडला समझते हैं? साड़ी। आहाहा! बदला-बदल करे। आदमी क्या? दरबार थे न भावनगर? उनके मर जाने के बाद तीन सौ जोड़ी जूते निकले। तीन सौ जोड़ी जूते।

मुमुक्षु : धोती जोड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जूते। राजा धोती नहीं पहनता। बनिया हो, वह ढीलाढब जैसी धोतियाँ पहनता है। तीन सौ जूते निकले। रात्रि को घूमने जाए तब दूसरे, दिन में दूसरे, शाम को दूसरे। इतने-इतने। बहुत प्रेम हो, वह वस्तु भिन्न-भिन्न में जाता है। इसी प्रकार जिसे भव का प्रेम है, वह भव बदला ही करता है। आहाहा! तीव्र प्रेम हैं।

यह भगवान आत्मा का प्रेम भूल गया। 'प्रति...' वहाँ रात्रि में आया था न? २०६। प्रभु! तू आत्मा में प्रेम कर न, नाथ! आहाहा! तेरी प्रेमी चीज़ तो यह है। उसमें रति कर, उसमें सन्तोष पा और उसमें तृप्त रह, भाई! यह तेरी चीज़ है। आहाहा! उसे भूलकर भगवान को भूला। आहाहा! यह राग हुआ शुभ और पुण्य (हो), वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। पूर्व के कोई पुण्य के बाहर गंज दिखायी दे। एकदम करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ की आमदनी दिखायी दे, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। क्या है, भगवान!

तुझे ? आहाहा! तेरा निधान खो गया और बाहर के निधान में प्रसन्न! ऐसे भव के प्रेमी भव बदला ही करते हैं, कहते हैं।

जिसे आत्मा का प्रेम लगा, उसे निर्मल परिणति बदला करती है। आहाहा! क्योंकि यह दरकार नहीं की। अवसर आया तब कुछ न कुछ... कुछ न कुछ... कुछ न कुछ... ऐसी शल्य रखी। अन्दर जाने के लिये दरकार ही नहीं की। आहाहा! यह पर्दे में भगवान पड़ा है अन्दर। वह ६६३३६ बार मरण किये।

गाथा-२९

इस ही अन्तर्मुहूर्त के जन्म-मरण में क्षुद्रभव का विशेष कहते हैं -

वियलिंदए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स।।२९।।

विकलेंद्रियाणामशीतिं षष्टिं चत्वारिंशतमेव जानीहि।
पंचेन्द्रियाणां चतुर्विंशतिं क्षुद्रभवान् अन्तर्मुहूर्तस्य।।२९।।

अन्तर्मुहूरत में कहे हैं क्षुद्रभव विकलत्रयी।
के अस्सी साठ चालीस पंचेन्द्रिय कहे चौबीस ही।।२९।।

अर्थ - इस अन्तर्मुहूर्त के भवों में दो इन्द्रिय के क्षुद्रभव अस्सी, तेइन्द्रिय के साठ, चौइन्द्रिय के चालीस और पंचेन्द्रिय के चौबीस, इस प्रकार हे आत्मन्! तू क्षुद्रभव जान।

भावार्थ - क्षुद्रभव अन्य शास्त्रों में इस प्रकार गिने हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और साधारण निगोद के सूक्ष्म बादर से दस और सप्रतिष्ठित वनस्पति एक, इस प्रकार ग्यारह स्थानों के भव तो एक-एक के छह हजार बार, उसके छयासठ हजार एक सौ बत्तीस हुए और इस गाथा में कहे वे भव दो इन्द्रिय आदि के दो सौ चार, ऐसे ६६३३६ एक अन्तर्मुहूर्त में क्षुद्रभव कहे हैं।।२९।।

गाथा-२९ पर प्रवचन

इस ही अन्तर्मुहूर्त के जन्म-मरण में क्षुद्रभव का विशेष कहते हैं – अब दूसरी इन्द्रिय। दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय।

वियलिंदए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स।।२९।।

अर्थ – इस अन्तर्मुहूर्त के भवों में दो इन्द्रिय के क्षुद्रभव अस्सी,... यह ईयल आदि के अन्तर्मुहूर्त में ८० भव। आहाहा! वह मरे, उसकी काण कौन मांडे? आहाहा! इसने मांडी अपनी काण दु:ख में। कहते हैं कि ८० भव तो दो इन्द्रिय के करे, एक अन्तर्मुहूर्त में। **तेइन्द्रिय के साठ,...** भव करे। चींटी, मकोड़ा यह तीन इन्द्रिय है। अन्तर्मुहूर्त में ६० भव करते हैं। आहाहा! **चौइन्द्रिय के चालीस और पंचेन्द्रिय के चौबीस,...** पंचेन्द्रिय के एक अन्तर्मुहूर्त में चौबीस भव करे। **इस प्रकार हे आत्मन्! तू क्षुद्रभव जान।** आहाहा! **'जाणेह'** है न? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? **'जाणेह'** दूसरे पद का अन्तिम शब्द है। उसे भाई! तू जान। तूने ऐसे-ऐसे भव किये। भव के अभाव का स्वभाव क्या है, उसे तूने नहीं जाना। आहाहा! 'तो भी अरे! भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला।' बहुत अपूर्व बात है अन्दर में, बापू! यह अपूर्व स्वभाव सन्मुख देखा नहीं और पूर्वापर जो अनन्त बार वर्तन... इस भाव को तूने सेवन किया। सेवनयोग्य चीज़ थी, उसे सेवन नहीं किया। आहाहा!

भावार्थ – क्षुद्रभव अन्य शास्त्रों में इस प्रकार गिने हैं। पृथ्वी,... काय। एकेन्द्रिय पृथ्वी। **अप्,...** अर्थात् पानी। **तेज (अग्नि), वायु और साधारण निगोद के सूक्ष्म बादर से दस और सप्रतिष्ठित वनस्पति एक, इस प्रकार ग्यारह स्थानों के भव तो एक-एक के छह हजार बार, उसके छयासठ हजार एक सौ बत्तीस हुए और इस गाथा में कहे वे भव दो इन्द्रिय आदि के दो सौ चार, ऐसे ६६३३६ एक अन्तर्मुहूर्त में क्षुद्रभव कहे हैं।** इतने भव किये। भगवान केवलज्ञान के अतिरिक्त यह कौन जाने? आहाहा!

गाथा-३०

आगे कहते हैं कि हे आत्मन्! तूने इस दीर्घसंसार में पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्राप्ति बिना भ्रमण किया, इसलिए अब रत्नत्रय धारण कर –

रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओ सि दीहसंसारे।
इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तय समायरह।।३०।।

रत्नत्रये अलब्धे एवं भ्रमितोऽपि दीर्घसंसारे।
इति जिनवरैर्भणितं तत् रत्नत्रयं समाचर।।३०।।

सम्यक्रतनत्रय विना यों चिर-काल से भव में भ्रमा।
अब आचरो यह रतनत्रय यों जिनवरेंद्रों ने कहा।।३०।।

अर्थ – हे जीव ! तूने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय को नहीं पाया, इसलिए इस दीर्घकाल से-अनादि संसार में पहिले कहे अनुसार भ्रमण किया, इस प्रकार जानकर अब तू उस रत्नत्रय का आचरण कर, इस प्रकार जिनेश्वरदेव ने कहा है।

भावार्थ – निश्चय रत्नत्रय पाये बिना यह जीव मिथ्यात्व के उदय से संसार में भ्रमण करता है, इसलिए रत्नत्रय के आचरण का उपदेश है।।३०।।

गाथा-३० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि हे आत्मन्! तूने इस दीर्घसंसार में... दीर्घ संसार। आहाहा! चौरासी की अटवी अनन्त-अनन्त भव का संसार... पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्राप्ति बिना भ्रमण किया, इसलिए अब रत्नत्रय धारण कर – लो, आहाहा!

रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओ सि दीहसंसारे।
इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तय समायरह।।३०।।

अर्थ – हे जीव ! तूने सम्यग्दर्शन... आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मरमणता,

इस **रत्नत्रय को नहीं पाया,...** आहाहा! तुझे भगवान पूर्णानन्द का विश्वास नहीं आया, भाई! अनन्त गुण का निधान, उसका तूने ज्ञान नहीं किया। पर की सब लगायी और अपना घर पड़ा रहा। पूर्णानन्द स्वरूप भगवान की तुझे रमणता नहीं हुई। दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं तो फिर रमणता कहाँ से हो? करने योग्य हो तो यह था, वह तो तूने नहीं किया। आहाहा!

इसलिए इस दीर्घकाल से-अनादि संसार में पहिले कहे अनुसार भ्रमण किया,... भव, यह कहे न सब भव? **इस प्रकार जानकर अब तू उस रत्नत्रय का आचरण कर,...** लो, यह बात की। आहाहा! निश्चयरत्नत्रय की बात है, हों! व्यवहाररत्नत्रय तो ऐसे भाव भी अनन्त बार किये। आहाहा! यहाँ अर्थ में भी ऐसा लिखा है। परन्तु इसमें गड़बड़ की। व्यवहाररत्नत्रय के भाव, वे तो शुभभाव हैं। वह तो अनन्त बार किया है। जो कहनेमात्र रत्नत्रय, ऐसे तो व्यवहार अनन्त बार किये। नियमसार में आता है। आहाहा! यह तो आत्मा अखण्ड पूर्ण आनन्द, उसकी रुचि का परिणमन जो निश्चय सम्यग्दर्शन, वह नहीं किया - यह कहते हैं। वह नहीं भाया, उसे भा। आहाहा!

उस रत्नत्रय का आचरण कर,... यह भी आचरण है। ठीक! **'रयणत्तय समायरह'** है न? **'समायरह'** आहाहा! परमात्मा अनन्त गुण का नाथ प्रभु स्वयं अनन्त शान्ति से विराजमान बादशाह है। यह उसका सम्यग्दर्शन का आचरण कर, ऐसा कहते हैं। यह आचरण नहीं? बाहर के आचरण, वे तो जड़ के हैं। राग की क्रिया के आचरण, वे तो विभाव के हैं। आहाहा! जगत को बहुत कठिन। बाह्य नग्नपना अनन्त बार लिया और पंच महाव्रत के भाव भी अनन्त बार लिये। वह कोई नयी चीज़ नहीं।

पूर्ण अनाकुल शान्तरस का कन्द प्रभु, दल है, आनन्द का दल है, वह चैतन्य का अकेला कन्द है। उसका सम्यग्दर्शन, उसकी अन्तर की रुचि और दृष्टि का होना, वह आचरण कर। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत को करुणा करके कहते हैं, भाई! तू यह कर न! आहाहा! यह वन में चल निकले राजकुमार। जिनके आहार के समय सीधी गर्म रोटी तवे में से सीधी उनकी थाली में पड़ती और उन्हें खाने-पीने की सामग्री का तो पार न हो। चक्रवर्ती लो न, चक्रवर्ती। आहाहा! जिसके बत्तीस ग्रास का एक ग्रास छियानवें करोड़ (सैनिक) पचा नहीं सकते। आहाहा! ऐसी भस्मों से बनाया हुआ

अनाज होता है। हीरा, माणेक, मोती की भस्में। आहाहा! घी में हीरा से तले और ऐसी औषधि उसमें डाले कि हीरा उसमें गल जाये। उस घी में तले हुए गेहूँ, उसमें आटे से बनायी हुई रोटी। आहाहा! और ताजी-ताजी गर्म जो (खाते थे), वे चक्रवर्ती चल निकले। आहाहा! यह स्व का आचरण करने चल निकले। आहाहा!

'रयणत्तय समायरह' आहाहा! **'जिणवरेहिं भणियं'** त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव, सौ इन्द्रों के पूजनिकता यह पुकार है। शरीर की जरा अनुकूलता देखे, वहाँ पूरा अरखाई गया, मर गया। आहाहा! मानो क्या करूँ इस शरीर का। आहाहा! श्मशान की राख होकर उड़ जायेगा, भाई! चैतन्य नित्यानन्द प्रभु है, उसका आचरण कर न। आहाहा! यह... यह घड़ी-पल चले जाते हैं। ऐसे पल और घड़ियाँ फिर से मिलना मुश्किल है। 'समय वर्ते सावधान' नहीं कहते तुम्हारे? विवाह करे, तब विवाह के समय बोलते हैं। है न तुम्हारे वहाँ लिखा होगा न? समय हो गया। लाओ कन्या को। समय वर्ते सावधान। धूल में भी नहीं कुछ। ... आहाहा! ... घुसने जाये तो नीचे सर्प डसा और वहीं का वहीं मर जाये। यह हुआ है न। ऐसा अनन्त बार होता है। अनन्त बार हुआ है। आहाहा! उत्साह हर्ष में नीचे पैर और हाथ में ... नीचे बड़ा नाग आया तो एकदम डसा। ऐसे घड़ीक में... क्या हुआ? उड़ गया शरीर। आहाहा! जिनेश्वरदेव कहते हैं कि तूने ऐसे संसार में ऐसे भव किये, प्रभु! आहाहा! अब तो यह रत्नत्रय का आचरण कर, ऐसा कहते हैं। ऐसा जिनेश्वरदेव ने कहा है। आहाहा!

भावार्थ – निश्चयरत्नत्रय पाये बिना... देखा! स्पष्टीकरण किया है। **यह जीव मिथ्यात्व के उदय से संसार में भ्रमण करता है, इसलिए रत्नत्रय के आचरण का उपदेश है।** यह रत्नत्रय यह निश्चय, हों! यहाँ व्यवहार की बात नहीं है। आहाहा! **'जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तय समायरह' इसलिए रत्नत्रय के आचरण का उपदेश है।** देखा! ... आहाहा! पूर्ण अनाकुल शान्तरस का कन्द-दल प्रभु चैतन्य। आहाहा! उसके सन्मुख की दृष्टि, उसके सन्मुख का ज्ञान, उसकी सन्मुख में रमणता-ऐसे **'रयणत्तय'** को आचर न! उसे आचरण में ले न, ऐसा कहते हैं। दूसरे आचरण तो अनन्त बार किये हैं।

छोटी उम्र में 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या।' जवान शरीर लट्ठ

जैसा। स्त्री जरा सुन्दर और रूपवान हो। हो गया। मर गया उसमें। 'वृद्धपन देखकर रोया।' वृद्धापन आवे तब हाय... हाय... बैठा नहीं जाता। सहारे बिना बैठा नहीं जाता, शरीर में ऐसा होता है। पैर काँपते हैं, पैर में दु:ख होता है, सुन्न चढ़ जाती है, चला नहीं जाता। चले वहाँ अन्दर चिल्लाहट मचाता है। ऐसे में अनादि से लगा है। परन्तु प्रभु! तेरी चीज़ निधान है, वहाँ तू आया नहीं। आहाहा! तेरी सम्पदा की सम्हाल करने तो आ अब। **इसलिए रत्नत्रय के आचरण का उपदेश है।** लो!

गाथा-३१

आगे शिष्य पूछता है कि वह रत्नत्रय कैसा है? उसका समाधान करते हैं कि रत्नत्रय इस प्रकार है –

अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिहं चारित्त मग्गो त्ति।।३१।।

आत्मा आत्मनि रतः सम्यग्दृष्टिः भवति स्फुटं जीवः।
जानाति तत् संज्ञानं चरतीह चारित्रं मार्ग इति।।३१।।

जब आतमा में आतमा रत प्रगट सम्यग्दृष्टि है।
वह जानना सद्ज्ञान चारित्र चरण मुक्ति-मार्ग है।।३१।।

अर्थ – जो आत्मा आत्मा में रत होकर यथार्थरूप का अनुभव कर तद्रूप होकर श्रद्धान करे वह प्रगट सम्यग्दृष्टि होता है, उस आत्मा को जानना सम्यग्ज्ञान है, उस आत्मा में आचरण करके रागद्वेषरूप न परिणमना सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार यह निश्चयरत्नत्रय है, मोक्षमार्ग है।

भावार्थ – आत्मा का श्रद्धान ज्ञान आचरण निश्चयरत्नत्रय है और बाह्य में इसका व्यवहार जीव-अजीवादि तत्त्वों का श्रद्धान तथा जानना और परद्रव्य-परभाव का त्याग करना, इस प्रकार निश्चय-व्यवहारस्वरूप रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। वहाँ

निश्चय तो प्रधान है, इसके बिना व्यवहार संसारस्वरूप ही है। *व्यवहार है वह निश्चय का साधनस्वरूप है, इसके बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं है और निश्चय की प्राप्ति हो जाने के बाद व्यवहार कुछ नहीं है, इस प्रकार जानना चाहिए।।३१।।

गाथा-३१ पर प्रवचन

आगे शिष्य पूछता है कि वह रत्नत्रय कैसा है? उसका समाधान करते हैं कि रत्नत्रय इस प्रकार है – यहाँ तो रत्नत्रय आचरण किया न? परन्तु रत्नत्रय क्या चीज़ है। आहाहा!

अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिहं चारित्त मग्गो त्ति।।३१।।

अर्थ – जो आत्मा आत्मा में रत होकर... भगवान आत्मा जो अनादि से राग में रत है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। राग में रंगे हुए जीव को देखकर उसमें लीन हो वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! **आत्मा आत्मा में रत होकर...** आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप है। ऐसे आत्मा में, निर्मल स्वभाव में रत हो। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की व्याख्या की। कोई और ऐसा कहता है कि इसमें रत्नत्रय आचरण व्यवहार कहा होगा तो? वह व्यवहार तो अनन्त बार किया, उसकी यह बात है नहीं। आहाहा! **'अप्पा अप्पम्मि रओ' यथार्थ (स्व) रूप का अनुभव कर...** भगवान पूर्ण गुण का नाथ, उसका प्रेम करके, उसमें लीन हो। तेरी प्रिय चीज़ तो वह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कल आया था, नहीं? विद्यमान। भाव में विद्यमान अवस्थारूप। आहाहा! प्रभु! तेरे गुण तुझे प्रिय लगे। उस प्रिय के वियोग और विरह अब तुझे नहीं रहेगा। आहाहा! उसकी विद्यमान अवस्था आनन्द की कायम हुआ ही करेगी तुझे। आहाहा! भाव नाम

१. नोंध ह्न * यहाँ ऐसा नहीं समझना कि प्रथम व्यवहार हो और पश्चात् निश्चय हो, किन्तु भूमिकानुसार प्रारम्भ से ही निश्चय-व्यवहार साथ में होता है। निमित्त के बिना अर्थ शास्त्र में जो कहा है, उससे विरुद्ध निमित्त नहीं होता ऐसा समझना।

का गुण है न ? उस गुण का धारक गुणी प्रभु है न ? ऐसे आत्मा के प्रति प्रेम और प्रियता यदि तूने की... आहाहा ! भगवान ! तुझे उस प्रियता का विरह नहीं रहेगा। तूने अनादि काल का उसका विरह सेवन किया। उसकी प्रियता को प्रियतारूप से जाना नहीं।

भावशक्ति। भावशक्ति आयी थी न ? उसके कारण निर्मल अवस्था विद्यमान-विद्यमान होती ही है। आहाहा ! जिसने ऐसा आत्मा भावसम्पन्न शक्तिवाला अनन्त, उसे जिसने लीन करके सेवन किया... आहाहा ! उसे उसकी आनन्द की दशा की अवस्था कभी मिटे, ऐसा नहीं है। आहाहा ! उसकी आनन्द और शान्ति की अवस्था भाव की, विद्यमान पर्याय में हमेशा हुआ करेगी। आहाहा ! यह जिनेश्वरदेव ने कहा हुआ आत्मा ऐसा है। ऐसा आत्मा अन्यत्र कहीं हुआ नहीं, जाना नहीं। आहाहा !

जिसकी प्रियता की, उस प्रिय की निर्मल दशा, उसका विरह और दुःख तुझे अब नहीं रहेगा। आहाहा ! उसकी सेवा कर न, कहते हैं। एक राजा की सेवा करे तो कुछ दे। ... प्रसन्न हो। यह तो भगवान तीन लोक का नाथ, इसकी सेवा करने से तुझे क्या नहीं मिलेगा ? आहाहा ! बात ऐसी है। यह अन्तर की बातें बाहर से कुछ दिखायी नहीं देती, मिलती नहीं। अब उसे ऐसे निरालम्ब तत्त्व की बातें (करना)। आहाहा ! भगवान ! परन्तु यह ही करने से छुटकारा है, हों ! ऐई ! ...भाई ! पृथक् वस्तु को दृष्टि में, अनुभव में लिये बिना तेरा छुटकारा हो, ऐसा नहीं है, भाई ! देखो ! आहाहा !

यथार्थरूप का अनुभव कर... यह पूर्ण गुण का नाथ, इसका अनुभव कर, इसे अनुसरकर अनुभव कर। राग और पुण्य के परिणाम को अनुसरकर ऐसे तो अनन्त बार वेदन किये। वह सब दुःख के समुद्र में डुबकी मारी। अब यह आनन्द का नाथ सरोवर, उसमें तो डुबकी मार एकबार। आहाहा ! भाई ! तुझे उसमें आनन्द आयेगा। उसमें आता है न ? फिर दूसरे को नहीं पूछना पड़ेगा। निर्जरा (अधिकार)। यह २०६ में है। (गाथा) २०६ में। तृप्त हो... तृप्त हो। आहाहा ! यह तृप्ति वहाँ होगी। बाहर के विषय, भोग और धूल में कहीं तृप्ति नहीं होगी। आहाहा ! विषय सेवन कर लें फिर तृप्ति होगी। बापू ! वहाँ कहाँ तृप्ति थी। आहाहा ! तृप्ति हुआ नाथ तो प्रभु तेरा स्वरूप है। उसका अनुभव कर।

तद्रूप होकर श्रद्धान करे... भाषा देखी ! भगवान आत्मा जैसा है, वैसी अन्तर्दृष्टि करके, तद्रूप होकर श्रद्धा कर। आहाहा ! समझ में आया ? इस मार्ग को सुननेवाले ही

थोड़े होते हैं, हों! आहाहा! 'विरला जाणे तत्त्व को विरला सुने कोई...' नहीं आता? स्वामी कार्तिक। 'विरला श्रद्धे कोई, विरला धारे कोई।' आहाहा! बाहर में उसका कोई दिखाव नहीं होता, बाहर का पुण्य न हो, इसलिए लोग कहे, यह क्या? यहाँ तो वीतराग परमेश्वर की बातें, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! ... इनकार करे? **'जिणवरेहिं भणिय'** जिनवरदेव कहते हैं, भाई! अब रत्नत्रय को आचर न।!आहाहा!

वह प्रगट सम्यग्दृष्टि होता है,... आहाहा! चैतन्य परमात्मा स्वयं भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, पूर्ण ज्ञानस्वरूप, पूर्ण शान्तस्वरूप, पूर्ण स्वच्छस्वरूप, पूर्ण प्रभुत्वस्वरूप में तद्रूप होने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा। यह करनेयोग्य है, इसकी हाँ तो कर। डॉक्टर गये? आहाहा! लोगों को ऐसा लगे... ऐसा करो, यह व्रत करो, तप करो। यह करो। यह तो बापू! राग है। अनन्त बार किया। जन्म के, मरण के चक्र मिटे, वह तो यह एक चीज़ आत्मा है। आहाहा! देखो! है न?

'अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु' ऐसा है न पाठ? **'अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।'** जीव प्रगट है। आहाहा! यह सब दु:ख का वर्णन किया। अभी भी कितना ही करेंगे। परन्तु उनका कहने का आशय इसमें तो (यह है कि) इस आत्मा में एकाग्र हो। इसके लिये यह सब कहते हैं। समझ में आया? इसका सार क्या? आहाहा! जगत को भूल जा और भगवान में मिल जा। आहाहा! रागादि, भगवान यह सब तो जगत है। विकल्प पुण्य, दया, दान, व्रतादि वह सब जगत है। जगत को भूल जा। आहाहा! और भगवान में मिल जा। चाहे जिस शरीर में हो, वह उसके कारण से हो। बाहर के संयोग प्रतिकूल हो, अनुकूल हो। दुनिया प्रशंसा करे, निन्दा करे, उसके साथ तुझे क्या काम है। पर के सम्बन्ध बिना की चीज़ और स्वभाव के सम्बन्धवाली चीज़... आहाहा! उसमें मिल जा। ऐसा कहा न? एकाग्र-तद्रूप हो। आहाहा! तद्रूप हो। यह रागरूप है, वह तद्रूप हो। वह तेरा स्वरूप है। आहाहा!

यह वे रोजा के दिन होते हैं न? रोजा के नहीं? लोटियावोरा बहुत रोती हैं उनकी महिलायें। राणपुर में उपाश्रय साथ में है न? मैंने कहा कि रोती क्यों हैं? लोटिया की सामने है। सामने है न? वे उसके .... अन्दर वांचे तो रोवे। वहाँ तो सामने का घर... उस ओर बैठे थे। ... दरवाजा बन्द कर दिया। विरह में रोवे। रोजा के दिन।

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! तूने दुःख के आँसू नहीं डाले। अरे रे! मैंने ऐसे दुःख सहन किये। अब मुझे नहीं चाहिए। मेरा भगवान भूलकर, मैं बाहर में भटका। बहिरात्मा-बहिरचला। यह भगवान भी दे, ऐसा नहीं और कोई गुरु भी दे, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। तेरा भगवान तेरे पास पड़ा है न, नाथ। उसकी रक्षा कर न, भाई! आहाहा! **'सम्माइट्ठी हवेइ'** प्रगट। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन, हों! वह। व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह सम्यग्दर्शन ही कहाँ है, बापू! नहीं। दो नय का कथन है। दोनों नय सच्चे हैं। सच्चे हैं अर्थात् वे हैं, उस रूप से सच्चे। परन्तु सम्यग्दर्शन व्यवहार, वह सच्चा है? आहाहा!

देखो न! कितनी अधिक बात (की है)! **'अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो। जाणइ तं सण्णाणं' उस आत्मा को जानना सम्यग्ज्ञान है,...** भाषा देखो! जो भगवान पूर्णानन्द ज्ञानस्वरूपी वस्तु, उसका ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञानी ऐसा आत्मा, उसका ज्ञान। संयोग और राग और उसका ज्ञान नहीं। समझ में आया? **उस आत्मा को जानना... 'तं'** है न? **'जाणइ तं सण्णाणं'** भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, भाई! तुझे तेरे भरोसे तुझे दिखता नहीं। भरोसा अन्यत्र ढल गया है। आहाहा! ऐसा जो भगवान चैतन्यमूर्ति, उसका ज्ञान। ऐसा कहा न? **आत्मा को जानना... 'तं सण्णाणं'** वह ज्ञान। यह निश्चयरत्नत्रय की व्याख्या करते हैं।

उस आत्मा में आचरण करके... 'चरदिहं चारित्त मग्गो त्ति' उस आत्मा में अन्दर चरना। आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं, उसमें स्थिर होना, रमना, जमना। ऐसी चीज़ में जम जाना। आहाहा! **उस आत्मा में आचरण करके रागद्वेषरूप न परिणमना सम्यक्चारित्र है।** पाँच महाव्रत के भाव और बापू! वह तो राग है, भाई! वह चारित्र नहीं। परन्तु लोगों को ऐसा लगे, निश्चय और व्यवहार दोनों लाभदायक हैं। लाभदायक क्या, ज्ञान करने के लिये है। यह कहाँ लिखा है? उसमें। (समयसार) बारहवीं गाथा में आया? व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आाहा! और फिर ऐसे देखा, '...' जवाब दिया था। व्यवहार को बीच में जानने के लिये कहा है। है, ऐसा जान। ऐसा कहाँ लिखा है? आहाहा! निमित्त है और व्यवहार है, वह जानने के लिये उसका ज्ञान कराया। परन्तु तू स्व-परप्रकाशक चैतन्य है और स्व को प्रकाशे, वह तो निश्चय परन्तु व्यवहार को जाने, वह व्यवहार। उसे जाने। इसका नाम स्व-परप्रकाशक का ज्ञान

और उसका नाम पर को जाने, ऐसा बतलाने के लिये बात की है। उसमें यह राग कहाँ है?

रागद्वेषरूप न परिणमना... न परिणमना, न होना। यहाँ तो यह बात है न? पुण्य और पाप के भावरूप, व्रत के भावरूप तो न होना, वह **सम्यक्चारित्र है। 'चारित्त मग्गो त्ति'** चारित्र मार्ग है। चारित्र मार्ग है। आहाहा! मार्ग है। आहाहा! बाहर से समेटकर अन्दर में समा, ऐसा कहते हैं। यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय की बातें। भगवान! निश्चय अर्थात् सच्चा, सत्यस्वरूपी है। ऐसा चैतन्यघन भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, पूर्ण ज्ञानस्वरूप, पूर्ण बलस्वरूप, पूर्ण प्रभुतास्वरूप। उस प्रभुता में एकाग्र होना, वह चारित्र है। आहाहा! तब वे कहे कि परन्तु उसका कुछ साधन होगा या नहीं? अगास में मारवाड़ी रात्रि में आया। व्याख्यान सुना। हम लोग यह भक्ति करते हैं, वह सब साधन। अगास गये थे न एक बार, अगास। ... सुनने, सब बैठे हुए। एक मारवाड़ी रात्रि में आया। बात बराबर है, परन्तु उसका कोई साधन होगा या नहीं? कहो, यह दिक्कत थी। तेरा स्वरूप साधना, वही साधन है। आहाहा! प्रज्ञा द्वारा एकाग्र होना, आनन्द द्वारा एकाग्र होना, वही उसका साधन है। यह भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, वह साधन होगा। वह साधन ही कहाँ है? आता है, होता है (यह) अलग बात है। परन्तु वह कोई अन्तर में जाने की एकाग्रता के मददगार हैं, ऐसा नहीं। यह भक्तिवाले के यह सब विवाद। शिवलालभाई!

मुमुक्षु : साधक और बाधक...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाधक ही है। आहाहा!

भगवान स्वयं यहाँ तो कहते हैं कि तू तेरी श्रद्धा-ज्ञान और तुझमें रमणता कर। हमारे सामने देखना रहने दे, वे तो ऐसा कहते हैं। स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! भाई! तुझे तेरे सामने देखने का कहते हैं, और वह तुझे रुचता नहीं? यहाँ कुछ बाहर सामने देखे तो ठीक पड़े, यह तेरी क्या बात है? सबका दिन बदला। आहाहा! तुझे अन्तर में जाने का जब कहते हैं, तब तुझे रुचता नहीं और उसके साधनरूप से बाहर में जाता है, वे उसके साधन। बापू! तुझे ... वस्तु में वास करना, उसका लक्ष्य नहीं किया। वाद-विवाद से पार नहीं पड़ता, बापू! यह साधन कहे हैं, व्यवहार साधन और निश्चय

साध्य। द्रव्यसंग्रह में आता है। द्रव्यसंग्रह में कहा है न? एक बार कहीं डाला था। आहाहा! वे कहे, नहीं। ऐसा है। इसका अर्थ ऐसा है, भूल है न ऐसी....

इस प्रकार यह निश्चयरत्नत्रय है, मोक्षमार्ग है। लो! बहुत अच्छी बात है।

भावार्थ – आत्मा का श्रद्धान ज्ञान आचरण... आत्मा का श्रद्धान, आत्मा का ज्ञान, आत्मा का आचरण, यह **निश्चयरत्नत्रय है और बाह्य में इसका व्यवहार जीव-अजीवादि तत्त्वों का श्रद्धान...** ठीक! बाह्य में। **तथा जानना और परद्रव्य-परभाव का त्याग करना, इस प्रकार निश्चय-व्यवहारस्वरूप रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। वहाँ निश्चय तो प्रधान है,...** मुख्य यह है। **इसके बिना व्यवहार संसारस्वरूप ही है।** देखो! व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान, वह सब संसारस्वरूप है। **व्यवहार है, वह निश्चय का साधनस्वरूप है,...** यह देखा वापस? **यहाँ ऐसा नहीं समझना कि प्रथम व्यवहार हो और पश्चात् निश्चय हो, किन्तु भूमिकानुसार प्रारम्भ से ही निश्चय-व्यवहार साथ में होता है। निमित्त के बिना अर्थ शास्त्र में जो कहा है, उससे विरुद्ध निमित्त नहीं होता ऐसा समझना।** यह बताने के लिये कहा है। ऐसा उसे निमित्त हो, यह बताने के लिये (कहा है)। इससे दूसरा विरुद्ध निमित्त नहीं होता। इसलिए हमने व्यवहार कहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र में व्यवहार ऐसा होता है, यह क्यों कहा? कि उस समय उस प्रकार का ही व्यवहार होता है, ऐसा ही उसका निमित्त, उस प्रकार का निमित्त होता है। यह बतलाने के लिये उसे व्यवहार कहा है। आहाहा! **इसके बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं है...** वापस डाला। **और निश्चय की प्राप्ति हो जाने के बाद व्यवहार कुछ नहीं है,...** अर्थात् व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : इसका अर्थ व्यवहार का अभाव हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव करते हैं। ... भाषा आती है। 'व्यवहार, वह निश्चय को साधनस्वरूप' आता है न शास्त्र में? व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। यह तो वहाँ होता है, उसे उस प्रकार का साधन कहा जाता है। आरोप से कहा जाता है। वास्तविक तो वह साधन-फाधन है ही नहीं। आहाहा! लोगों को यह एकान्त लगता है, हों!

व्यवहार मिथ्यात्व नहीं। व्यवहार, वह कहीं मिथ्यात्व नहीं। राग की मन्दता से ऐसा रागभाव (आवे), उसे व्यवहार कहते हैं। उसे व्यवहार से साधन कहा जाता है। वास्तव में वह साधन है नहीं। वह व्यवहार कहीं मिथ्यात्व नहीं। मिथ्यात्व नहीं। उस व्यवहार को धर्म मानना, परमार्थ धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : मिथ्यादर्शन की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि की यहाँ कहाँ बात है? अभी तो निश्चयवाले का व्यवहार, उसकी बात चलती है।

निश्चय की प्राप्ति हो जाने के बाद व्यवहार कुछ नहीं है,... पहले होता है, उसका ज्ञान कराया। हो गया, फिर व्यवहार रहता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-३२

आगे इस संसार में इस जीव ने जन्म-मरण किये हैं, वे कुमरण किये, अब सुमरण का उपदेश करते हैं -

अण्णे कुमरणमरणं अणेयजम्मंतराइं मरिओ सि।
भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव! ।।३२।।

अन्यस्मिन् कुमरणमरणं अनेकजन्मान्तरेषु मृतः असि।
भावय सुमरणमरणं जन्ममरणविनाशनं जीवः ।।३२।।

हे जीव कुमरण मरण से बहु नेक जन्मों में मरा।
जर-मरण-नाशक सूमरण से मरण की कर भावना।।३२।।

अर्थ **- हे जीव ! इस संसार में अनेक जन्मान्तरों में अन्य कुमरण मरण जैसे होते हैं, वैसे तू मरा। अब तू जिस मरण से जन्म-मरण का नाश हो जाय, इस प्रकार सुमरण भा अर्थात् समाधिमरण की भावना कर।**

भावार्थ – मरण संक्षेप से अन्य शास्त्रों में सत्तरह प्रकार के कहे हैं। वे इस प्रकार हैं – १. आवीचिकामरण, २. तद्भवमरण, ३. अवधिमरण, ४. आद्यान्तमरण, ५.बालमरण, ६. पण्डितमरण, ७. आसन्नमरण, ८. बालपण्डितमरण, ९. सशल्यमरण, १०. पलायमरण, ११. वशार्त्तमरण, १२. विप्राणसमरण, १३. गृध्रपृष्ठमरण, १४. भक्तप्रत्याख्यानमरण, १५. इंगिनीमरण, १६. प्रायोपगमनमरण और १७. केवलिमरण इस प्रकार सत्तरह हैं।

इनका स्वरूप इस प्रकार है – आयुकर्म का उदय समय–समय में घटता है, वह समय–समय मरण है, वह आवीचिकामरण है।।१।।

वर्तमान पर्याय का अभाव तद्भवमरण है।।२।।

जैसा मरण वर्तमान पर्याय का हो, वैसा ही अगली पर्याय का होगा वह अवधिमरण है। इसके दो भेद हैं – जैसा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग वर्तमान का उदय आया, वैसा ही अगली का उदय आवे वह (१) सर्वावधिमरण है और एकदेश बंध–उदय हो तो (२) देशावधि मरण कहलाता है।।३।।

वर्तमान पर्याय का स्थिति आदि जैसा उदय था, वैसा अगली का सर्वतो वा देशतो बन्ध–उदय न हो वह आद्यन्तमरण है।।४।।

पाँचवाँ बालमरण है, यह पाँच प्रकार का है ह्न १. अव्यक्तबाल, २. व्यवहारबाल, ३. ज्ञानबाल, ४. दर्शनबाल, ५. चारित्रबाल। जो धर्म, अर्थ, काम इन कामों को न जाने, जिसका शरीर इनके आचरण के लिए समर्थ न हो वह 'अव्यक्तबाल' है। जो लोक के और शास्त्र के व्यवहार को न जाने तथा बालक अवस्था हो वह 'व्यवहारबाल' है। वस्तु के यथार्थ ज्ञानरहित 'ज्ञानबाल' है। तत्त्वश्रद्धानरहित मिथ्यादृष्टि 'दर्शनबाल' है। चारित्ररहित प्राणी 'चारित्रबाल' है। इनका मरना सो बालमरण है। यहाँ प्रधानरूप से दर्शनबाल का ही ग्रहण है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिको अन्य बालपना होते हुए भी दर्शन पंडितता के सद्भाव से पण्डित मरण में ही गिनते हैं। दर्शनज्ञान का मरण संक्षेप से दो प्रकार का कहा है – इच्छाप्रवृत्त और अनिच्छाप्रवृत्त। अग्नि से, धूम से, शस्त्र से, विष से, जल से, पर्वत के किनारे पर से गिरने से, अति शीत ऊष्ण की बाधा से, बन्धन से, क्षुधा तृषा के रोकने से, जीभ उखाड़ने से और विरुद्ध आहार करने से बाल (अज्ञानी) इच्छा–पूर्वक मरे सो 'इच्छाप्रवृत्त' है तथा जीने का इच्छुक हो और मर जावे सो 'अनिच्छाप्रवृत्त'है।।५।।

पण्डितमरण चार प्रकार का है – १. व्यवहारपण्डित, २. सम्यक्त्वपण्डित, ३. ज्ञानपण्डित, ४. चारित्रपण्डित। लोकशास्त्र के व्यवहार में प्रवीण हो वह 'व्यवहारपण्डित' है। सम्यक्त्व सहित हो 'सम्यक्त्वपण्डित' है। सम्यग्ज्ञान सहित हो 'ज्ञानपण्डित' है। सम्यक्चारित्रसहित हो 'चारित्रपण्डित' है। यहाँ दर्शन–ज्ञान–चारित्र सहित पण्डित का ग्रहण है, क्योंकि व्यवहारपण्डित मिथ्यादृष्टि बालमरण में आ गया ।।६।।

मोक्षमार्ग में प्रवर्तनेवाला साधु संघ से छूटा उसको 'आसन्न' कहते हैं। इसमें पार्श्वस्थ, स्वच्छन्द, कुशील, संसक्त भी लेने, इस प्रकार के पंच प्रकार भ्रष्ट साधुओं का मरण 'आसन्नमरण' है ।।७।।

सम्यग्दृष्टि श्रावक का मरण 'बालपण्डितमरण' है ।।८।।

सशल्यमरण दो प्रकार का है – मिथ्यादर्शन, माया, निदान ये तीन शल्य तो 'भावशल्य' हैं और पंच स्थावर तथा त्रस में असैनी ये 'द्रव्यशल्य' सहित हैं, इस प्रकार 'सशल्यमरण' है ।।९।।

जो प्रशस्तक्रिया में आलसी हो, व्रतादिक में शक्ति को छिपावे, ध्यानादिक से दूर भागे इस प्रकार का मरण 'पलायमरण' है ।।१०।।

वशार्त्तमरण चार प्रकार का है – वह आर्तरौद्र ध्यानसहित मरण है, पाँच इन्द्रियों के विषयों में रागद्वेष सहित मरण 'इन्द्रियवशार्त्तमरण' है। साता असाता की वेदनासहित मरे 'वेदनावशार्त्तमरण' है। क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय के वश से मरे 'कषायवशार्त्तमरण' है। हास्य विनोद कषाय के वश से मरे 'नोकषायवशार्त्तमरण' है ।।११ ।।

जो अपने व्रत क्रिया चारित्र में उपसर्ग आवे वह सहा भी न जावे और भ्रष्ट होने का भय आवे तब अशक्त होकर अन्नपानी का त्यागकर मरे 'विप्राणसमरण' है ।।१२।।

शस्त्र ग्रहण कर मरण हो 'गृधपृष्ठमरण' है ।।१३।।

अनुक्रम से अन्नपानी का यथाविधि त्याग कर मरे 'भक्तप्रत्याख्यानमरण' है ।।१४।।

संन्यास करे और अन्य से वैयावृत्त्य करावे 'इंगिनीमरण' है ।।१५।।

प्रायोपगमन संन्यास करे और किसी से वैयावृत्त्य न करावे तथा अपने आप भी न करे, प्रतिमायोग रहे 'प्रायोपगमनमरण' है ।।१६।।

केवली मुक्तिप्राप्त हो 'केवलीमरण' है।।१७।।

इस प्रकार सत्तरह प्रकार कहे। इनका संक्षेप इस प्रकार है – मरण पाँच प्रकार के हैं – १. पण्डित–पण्डित, २. पण्डित, ३. बालपण्डित, ४. बाल, ५. बालबाल। जो दर्शन ज्ञान चारित्र के अतिशय सहित हो वह पण्डितपण्डित है और इनकी प्रकर्षता जिसके न हो पण्डित है, सम्यग्दृष्टि श्रावक वह बालपण्डित और पहिले चार प्रकार के पण्डित कहे उनमें से एक भी भाव जिसके नहीं हो वह बाल है तथा जो सबसे न्यून हो वह बालबाल है। इनमें पण्डितपण्डितमरण, पण्डितमरण और बालपण्डितमरण – ये तीन प्रशस्त सुमरण कहे हैं, अन्यरीति होवे कुमरण है। इस प्रकार जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र एकदेश सहित मरे वह 'सुमरण' है, इस प्रकार सुमरण करने का उपदेश है।।३२।।

प्रवचन-११२, गाथा-३२ से ३४, शुक्रवार, पोष कृष्ण ११, दिनांक १८-०१-१९७४

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ३२वीं गाथा है।

आगे इस संसार में इस जीव ने जन्म–मरण किये हैं, वे कुमरण किये, अब सुमरण का उपदेश करते हैं –

अण्णे कुमरणमरणं अणेयजम्मंतराइं मरिओ सि।
भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव!।।३२।।

अर्थ – हे जीव ! इस संसार में अनेक जन्मान्तरों में... अनेक भवों में, जन्मान्तरों में अन्य-अन्य जन्म में अन्य कुमरण मरण जैसे होते हैं, वैसे तू मरा। अनेक बार। अब तू जिस मरण से जन्म–मरण का नाश हो जाय,... आहाहा! जिसमें से आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इनसहित मृत्यु हो, वह जन्म-मरण के अन्त लाने की मृत्यु है। आहाहा! जिस मरण से जन्म–मरण का नाश हो जाय,... सम्यग्दर्शन मरण, सम्यग्ज्ञान मरण, सम्यक्चारित्र मरण, उससे जन्म-मरण का नाश है।

इस प्रकार सुमरण भा अर्थात् समाधिमरण की भावना कर। आत्मा की शान्ति। पुण्य-पाप के राग के वश होकर देह छूटे, वह तो सब कुमरण है। अपना

स्वभाव जो वीतराग चैतन्यज्योत, उसका भान और प्रतीति और रमणता से देह छूटे, वह सुमरण है, वह जन्म-मरण के नाश का वह मरण है। आहाहा! ऐसी व्याख्या करेंगे। मरण के कितने प्रकार वर्णन किये हैं। जाननेयोग्य बात है। सत्रह नाम... नाम हैं। अब उनका स्वरूप।

इनका स्वरूप इस प्रकार है - आयुकर्म का उदय समय-समय में घटता है,... जो आयुष्य लेकर आया, वह समय-समय में घटता है। **वह समय-समय मरण है,...** वह समय-समय में मृत्यु ... **आवीचि...** कल्लोल। पानी के कल्लोल जैसे उठे, वैसे समय-समय में उसके आयुष्य के परमाणु छूट जाते हैं। उसे आवीचि मरण कहा जाता है। **वर्तमान पर्याय का अभाव तद्भवमरण है।** इस भव का अभाव, इतना। वह तद्भवमरण। **जैसा मरण वर्तमान पर्याय का हो, वैसा ही अगली पर्याय का होगा, वह अवधिमरण है।** यह तो वस्तु की स्थिति बतलाते हैं कि ऐसे जिस भाव से देह छूटे, ऐसे और उस भाव में भविष्य में देह छूटे, वह अवधिमरण। **इसके दो भेद हैं - जैसा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग वर्तमान का उदय आया,...** कर्म की प्रकृति, ... रस, वर्तमान में आया, मान, माया **वैसा ही अगली का उदय आवे वह (१) सर्वावधिमरण है और एकदेश बंध-उदय हो तो (२) देशावधि मरण कहलाता है।** यह वर्णन किया है।

वर्तमान पर्याय का स्थिति आदि जैसा उदय था, वैसा अगली का सर्वतो वा देशतो... उसमें आया था न सर्वावधिदेश? ऐसे यह स्थितिमरण है। **देशतो बन्ध-उदय न हो, वह आद्यन्तमरण है।** यह तो एक जानने की बात है। **पाँचवाँ बालमरण है, यह पाँच प्रकार का है - १. अव्यक्तबाल, २. व्यवहारबाल, ३. ज्ञानबाल, ४. दर्शनबाल, ५. चारित्रबाल। जो धर्म, अर्थ, काम इन कामों को न जाने,...** न जाने पुण्य, न जाने लक्ष्मी, न जाने भोग। **जिसका शरीर इनके आचरण के लिए समर्थ न हो...** पुण्य, लक्ष्मी और भोग के लिये जिसका शरीर आचरण के योग्य न हो, उसे अव्यक्तबाल बालकमरण (कहते हैं)। मरते हैं न बालक बेचारे। पुण्य की खबर नहीं होती, लक्ष्मी की खबर नहीं होती। काम-भोग की खबर नहीं होती। ऐसे बालक मरे। आहाहा! उसे यहाँ अव्यक्तबाल अर्थात् भान बिना के।

जो लोक के और शास्त्र के व्यवहार को न जाने... लोक का व्यवहार और शास्त्र का... **तथा बालक अवस्था हो...** और बालक की अवस्था हो। **वह 'व्यवहारबाल' है। वस्तु के यथार्थ ज्ञानरहित 'ज्ञानबाल' है।** तत्त्वज्ञान का भान न हो, वह बाल, ज्ञानबाल है। **तत्त्वश्रद्धानरहित मिथ्यादृष्टि 'दर्शनबाल' है।** मिथ्यादर्शनसहित मरना, वह दर्शनबाल। आहाहा! **चारित्ररहित प्राणी 'चारित्रबाल' है।** दर्शन-ज्ञान हो परन्तु चारित्र न हो, इस अपेक्षा से भी चारित्रबाल (कहलाता है)। समकित होने पर भी। समकित की अपेक्षा से पण्डित है। परन्तु चारित्र न हो, इस अपेक्षा से वह बाल है। आहा! ऐसे अनन्त-अनन्त आत्मज्ञान बिना, आत्म-अनुभव बिना, आत्मा के आचरण बिना ऐसे अनन्त कुमरण किये। अब तो छोड़ न, ऐसा कहते हैं। ऐसा मरण कर कि जिससे भविष्य में भव न रहे। देह तो छोड़ेगी परन्तु तू उसे—राग को छोड़। आहाहा! वीतरागमूर्ति प्रभु चैतन्य का-उसका आदर कर। उसे ज्ञान पण्डितमरण, समकित पण्डितमरण कहते हैं।

इनका मरना सो बालमरण है। है न? **यहाँ प्रधानरूप से दर्शनबाल का ही ग्रहण है,...** मिथ्यादृष्टि। आहाहा! जिसे आत्मा आनन्दघन के साथ... राग की एकता से देह छूटे, वह बालमरण है। चाहे तो बाह्य से संथारा किया हो। दो-दो महीने के। बाहर की... परन्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसे दृष्टि में नहीं आया, और उससे विरुद्ध राग की एकता छूटी नहीं, वे सब मरनेवाले बालमरण हैं। आहाहा!

क्योंकि सम्यग्दृष्टि को अन्य बालपना होते हुए भी... आत्मदर्शन-अनुभव होने पर भी, **अन्य बालपना होते हुए भी दर्शन पण्डितता के सद्भाव से पण्डितमरण में ही गिनते हैं।** कहते हैं कि चारित्र न हो। सम्यग्दर्शन अकेला हो, चारित्र न हो तो इस अपेक्षा से उसे बाल कहा जाता है। परन्तु समकितसहित को दर्शनपण्डित कहा जाता है। वह ... भाव से पण्डितमरण में गिनने में आता है। आहाहा! श्रेणिक राजा। वैसे तो देह छोड़ा हीरा चूसकर। इस अपेक्षा से तो बाल है। परन्तु सम्यग्दर्शन होता है, इस अपेक्षा से वे पण्डित हैं। आहाहा! और अज्ञानी ऐसे दो-दो महीने का संथारा करे और शुभभाव और शुक्ललेश्या करे, परन्तु जिसे उस लेश्यारहित भगवान दृष्टि में नहीं आया, उसके सब मरण बालमरण हैं। आहाहा! सब णमो अरिहन्ताणं ऐसा करते हुए देह

छोड़े। भगवान का स्मरण करते हुए देह छोड़े परन्तु है बालमरण। क्योंकि 'एकत्वनिश्चयगतो' स्वभाव से एकत्व है और राग से पृथक् है, उसका अन्तर में भान नहीं, वे सब बालमरण से मरनेवाले हैं। साधु-दिगम्बर हो। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।' वह बालमरण था। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ऐसे मुनिपने के पंच महाव्रत लेकर देह छोड़े, वह भी बालमरण है। आहाहा! जहाँ आत्मदर्शन, आत्मज्ञान नहीं, वहाँ उस सब क्रियाकाण्ड में देह छोड़े, वह सब बालमरण है।

दर्शनज्ञान का मरण संक्षेप से दो प्रकार का कहा है - इच्छाप्रवृत्त और अनिच्छाप्रवृत्त। मिथ्यादृष्टि। **अग्नि से, धूम से, शस्त्र से, विष से, जल से, पर्वत के किनारे पर से गिरने से,...** पर्वत के ऊपर से गिरना। **अति शीत-ऊष्ण की बाधा से,...** ऐसी सर्दी होती है न? वह क्या कहलाता है ये? सीर-सीर। सीर नहीं निकालते? बाहर खेत में जाये तब। सीर में बैठा बैठा एक ...ठण्ड में मर जाये ऐसे। और वह भी इतनी सर्दी पड़ी कि दरवाजे तक आया। दरवाजा बन्द। उसमें, हों! सान्ती में। ऐसे मरण। गाँव को ... कठोर गर्मी में मरे। ... और भावनगर के बीच बहुत कठोर गर्मी का समय। एक साधु उसमें मर गये। ऐसी गर्मी, पानी साथ में नहीं और चला नहीं जाये। ... एक जगह बैठ गये। ... भावनगर से चमारडी। ... अधिक है वहाँ। ... भावनगर से... (संवत्) २०१७ के वर्ष। भावनगर चातुर्मास... ... ऐकला वृक्ष नहीं, पान नहीं, समुद्र इस ओर। खारी जमीन और धूप। गला सूख गया। पानी नहीं मिलता... वह बालमरण है।

शीत ऊष्ण की बाधा से,... शीत-उष्ण की क्रिया। **बन्धन से,...** ऐसा कोई बन्धन बाँधे। गले में फाँसी (खाये), उसमें उलझकर मरते हैं। **क्षुधा तृषा के रोकने से,...** क्षुधा-तृषा रोकने से देह छूट जाये। **जीभ उखाड़ने से...** जीभ खेंचे। **और विरुद्ध आहार करने से...** जहर आदि या आहार विरुद्ध हो। यह दूधपाक ... हों और उसमें पड़ा हो न वह, क्या कहलाता है? जहर-जहर। दूधपाक हो और उसमें ... आकर जहर डाल दे, किसी को खबर न हो। वे सब बालमरण। आहाहा! **(अज्ञानी) इच्छा-पूर्वक मरे...** इस प्रकार इच्छा करके मरे। सो **'इच्छाप्रवृत्त' है तथा जीने का**

इच्छुक... परन्तु वह मर जाये, उसे अनिच्छाप्रवृत्त कहते हैं। है दोनों बालमरण।

पण्डितमरण चार प्रकार का है – १. व्यवहारपण्डित, २. सम्यक्त्वपण्डित, ३. ज्ञानपण्डित, ४. चारित्रपण्डित। लोकशास्त्र के व्यवहार में प्रवीण हो, वह 'व्यवहारपण्डित' है। दुनिया के चतुर। भगवानजीभाई! दुनिया के चतुर मरे जब....

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लौकिक लाईन। ... यह सब बाहर का आवे। मकान का आवे, घोड़े को परखने की जानकारी और पशु को परखने की जानकारी और... होते हैं न ऐसे बहुत होशियार? हमारे दामोदर सेठ बहुत होशियार थे। घोड़े की परख में... ... घोड़ा खड़ा हो और बाजार में देखे तो... वे होते हैं संसार के चतुर होते हैं न, प्रत्येक बात में। चिमनभाई! आहाहा!

लोकशास्त्र के व्यवहार में प्रवीण... दुनिया की जो सब कलायें, उसमें जाननेवाले होशियार, वे व्यवहारपण्डित। परमार्थ से अज्ञानी हैं, मूढ़ है। **सम्यक्त्वसहित हो 'सम्यक्त्वपण्डित' है।** यह सही। जिसे भगवान आत्मा राग के विकल्प से भिन्न तत्त्व जहाँ प्राप्त हुआ है, ऐसे जीव को समकितमरण होता है। आहाहा! वह मरण अनन्त काल में कभी किया नहीं। इसलिए यह कहते हैं। मरण तो आयेगा ही। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित देह छूटे, वह सम्यक्त्व पण्डितमरण गिनने में आया है। **सम्यग्ज्ञान सहित हो 'ज्ञानपण्डित' है।** वह दर्शन की प्रधानता से बात थी। यह ज्ञान—सम्यग्ज्ञान—स्वसंवेदन। ज्ञान का अन्तर वेदनसहित मरण। आहाहा! राग और द्वेष का वेदन नहीं। आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसका स्वसंवेदन। यह देह छूटे, उसे ज्ञान पण्डितमरण कहा जाता है। लोक का व्यवहारपण्डित है, यह अज्ञानपण्डित है। आहाहा! संसार में होते हैं न ऐसे? पंचों में पूछे जाते हैं। भाई क्या कहते हैं उसके लिये? मकान हो कोई, ... करे सब। क्या कहा जाता है उसे? ... होवे न? ... है। ... मूढ़ है। आहाहा! भगवान! तेरा आत्मा कौन है? कहाँ है? कैसे है उसे जाना, उसका ज्ञान पण्डितमरण है। दूसरा भले न आता हो, ऐसा कहते हैं। लौकिकशास्त्र और लौकिक के ज्ञान न हो।

सम्यक्चारित्रसहित हो 'चारित्रपण्डित' है। सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप की अन्तर

रमणता में लवलीन (हो), उसे देह छूटे, वह चारित्रपण्डित है। आहाहा! **यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित पण्डित का ग्रहण है,...** सब में इस मरण को गिनने में आया है। **क्योंकि व्यवहारपण्डित मिथ्यादृष्टि बालमरण में आ गया।** ऊपर आया था न? **लोकशास्त्र के व्यवहार में प्रवीण...** वे तो सब (बालमरण में गये)।

मोक्षमार्ग में प्रवर्तनेवाला साधु संघ से छूटा उसको 'आसन्न' कहते हैं। साधु कहलाये। आसन्न ... कहा। **इसमें पार्श्वस्थ...** पार्श्वतता हो। मुनि के निकट रहे परन्तु ठिकाने बिना की श्रद्धा और ज्ञान आदि हो। **स्वच्छन्द,...** हो। वे सब बालमरण। **कुशील,...** हो। अकेला कषाय का सेवन है—कुशील। कषाय का सेवन, वह कुशील। कषायरहित भगवान आत्मा का सेवन न हो। **संसक्त भी लेने,...** आसक्त हो। बड़े राजा करोड़ोंपति, अरबोंपति में परिचय धारण करता हो, उसमें अर्पित हो गया हो, उसके मान में, उसकी महत्ता में। वे सब भ्रष्ट साधु हैं। आहाहा! जिन्हें अपने आनन्द का स्वरूप साधना है, उसमें ऐसे राजा बड़े अरबोंपति (हों), उसमें वह दब जाये। कहते हैं कि वह साधु नहीं है। वह संसक्त-भ्रष्ट है। आया न? **इस प्रकार के पंच प्रकार भ्रष्ट साधुओं का मरण 'आसन्नमरण' है। सम्यग्दृष्टि श्रावक का मरण 'बालपण्डितमरण' है।** क्योंकि चारित्र नहीं है इस अपेक्षा से बाल, परन्तु सम्यग्दर्शन है, इस अपेक्षा से पण्डित। आहाहा!

सशल्यमरण दो प्रकार का है - मिथ्यादर्शन, माया, निदान ये तीन शल्य तो 'भावशल्य' हैं और पंच स्थावर तथा त्रस में असैनी ये 'द्रव्यशल्य'... क्योंकि उसे तो कुछ भान है नहीं, ऐसा कहते हैं। **पंच स्थावर तथा त्रस में असैनी ये 'द्रव्यशल्य' सहित हैं, इस प्रकार 'सशल्यमरण' है।** असंज्ञी, मनरहित प्राणी मरे, वह सब सशल्यमरण है। द्रव्यसशल्य है, भावशल्य तो पड़ा ही है।

जो प्रशस्तक्रिया में आलसी हो, व्रतादिक में शक्ति को छिपावे, ध्यानादिक से दूर भागे... अन्तर के आनन्दस्वरूप में ध्यान करना हो, तो वह मेरा काम नहीं, वह मेरा काम नहीं। मेरा काम तो यह सब बाहर के। आहाहा! वह पलायमरण। स्वरूप से पलायन हो गया। आहाहा! अपना भगवान शुद्ध आनन्द का नाथ, वहाँ से पलायन हो गया। राग में रुक गया, ऐसा कहते हैं। **वशार्त्तमरण चार प्रकार का है - वह आर्त-**

रौद्र ध्यानसहित मरण है,... लो! आर्तध्यान और रौद्रध्यानसहित देह छूटे। **पाँच इन्द्रियों के विषयों में राग-द्वेषसहित मरण 'इन्द्रियवशार्त्तमरण' है।** इन्द्रिय के वश होकर। आहाहा! **साता-असाता की वेदनासहित मरे 'वेदनावशार्त्तमरण' है।** साता के अनुकूल साता का (वेदन) हो। ऐसे बराबर चाय पीते-पीते मरे। कहीं दुःख नहीं, वहाँ देह छूटे। इससे कोई ऐसा माने कि यह समाधिमरण है। आहाहा! कहीं और मरने में देरी लगी? देखो न! आहाहा! संसार में नहीं कहा जाता? रात्रि में वृद्ध इस प्रकार से मरा हो ... शाम का भोजन न किया हो, दोपहर का आहार न किया हो, अवसर में इस प्रकार मरा कि... सेठियाओ! वृद्ध जीवित गये नहीं और मरते गये नहीं। उसे तकलीफ नहीं दी न! आहार-पानी करने के बाद मरे तो फिर शाम से पहले ... पहले निवृत्त हो जाये नहाकर वापस। आहाहा! कहते हैं कि ऐसी बाते, हों! एक पावडु (थोड़ा) पानी भी माँगा नहीं, ऐसा कहे। हमसे कुछ सेवा भी नहीं माँगी। आँख बन्द हो गयी। परन्तु उसमें क्या हुआ? आहाहा! वह तो इन्द्रियवशार्तमरण। ऐसा साता-असाता के वश होकर मरे। महारोग के वश तड़पते हुए मरे और एक साता की अनुकूलता में मरे। ऐसी अनुकूलता कि जिसे सिर पर सोंठ चुपड़ने की भी आवश्यकता न पड़ी हो। ऐसी निरोगता। परन्तु उसमें क्या हुआ? आत्मा की निरोगता को सम्हाला नहीं और बाहर की निरोगता कुछ... आहाहा! कहते हैं न कि भाई! यह अस्सी वर्ष हुए परन्तु कभी सोंठ चुपड़ी नहीं। सिर का दर्द आया नहीं। परन्तु उसमें क्या हुआ अब?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन बिना खाली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब थोथे थोथा। यहाँ वश होकर मरा, भगवान के वश होकर मरा नहीं। ऐसी साता... ऐसी साता कि मरते हुए भी एक जरा पानी का बूँद ऐसी गयी, वहाँ देह छूट गयी। उससे क्या? मरकर नरक में जाये वहाँ। ऐसी स्थिति में मरकर सातवें नरक में जाये। असाता का उदय न हो तो क्या हुआ उसमें?

धर्मात्मा मुनि को सियाल खाता हो, टुकड़े करता हो, तथापि आनन्द के मरण में देह छूट जाती है, वह पण्डितमरण। आहाहा! साता-असाता के वश हुआ नहीं। आहाहा! आरोग्य बोधि लाभम्। अपनी निरोगदशा के लाभ में वह तो पड़ा है। आहाहा! लो, यह पैसे की कमाई यह। **क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय के वश से मरे...** ऐसा क्रोध

हो... मर जाये, देह छूट जाये। मान में-ऐसे मान में चढ़े... मान के रस में मर जाये। माया के रस में मर जाये। कपट, कुटिलता। और लोभ के उसमें मरे। वह कषायवशातमरण। कुमरण है। आहाहा!

हास्य विनोद कषाय के वश से मरे... विनोद करते-करते देह छूट जाये। कितने ही ऐसे होते हैं न कि दाँत निकाले (हँसे) और विनोद करे और देह छूट जाये। कुमरण है, बालमरण है। अनन्त जन्म-मरण में भटकेगा, ऐसा वह मरण है। वह **'नोकषायवशार्त्तमरण' है।**

जो अपने व्रत क्रिया चारित्र में उपसर्ग आवे, वह सहा भी न जावे और भ्रष्ट होने का भय आवे, तब अशक्त होकर अन्नपानी का त्यागकर मरे 'विप्राणसमरण' है। झेला जाये नहीं और भ्रष्ट होने का भय हो, अशक्त हो और फिर पानी और आहार छोड़ दिया हो। आहार-पानी लिये नहीं जायेंगे, छोड़ दे। वह तो पराधीनमरण है। **शस्त्र ग्रहण कर मरण हो...** तलवार से मरे, ... से मरे। **'गृधपृष्ठमरण' है।**

अनुक्रम से अन्न-पानी का यथाविधि त्याग कर मरे वह समकितमरण **'भक्तप्रत्याख्यानमरण' है।** भक्त—आहार और पानी का त्यागकरके आत्मा की शान्ति से छेह छोड़े। **संन्यास करे और अन्य से वैयावृत्त्य करावे 'इंगिनीमरण' है।** यह पण्डितमरण में जाता है, हों! यह। **प्रायोपगमन संन्यास करे और किसी से वैयावृत्त्य न करावे तथा अपने आप भी न करे, प्रतिमायोग रहे 'प्रायोपगमनमरण' है।** वृक्ष की डाली पड़े, वैसे पड़े रहें, अन्दर आनन्दस्वरूप में। **केवली मुक्तिप्राप्त हो 'केवलीमरण' है।** लो! केवलज्ञानी भगवान का देह छूटे, वह केवलीमरण।

इस प्रकार सत्तरह प्रकार कहे। इनका संक्षेप इस प्रकार है - मरण पाँच प्रकार के हैं - १. पण्डित-पण्डित, २. पण्डित, ३. बालपण्डित, ४. बाल, ५. बालबाल। जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अतिशयसहित हो... जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र सहित हो, वह तो पण्डितपण्डित है। **इनकी प्रकर्षता जिसके न हो पण्डित है,** चारित्रादि न हो। **सम्यग्दृष्टि श्रावक, वह बालपण्डित और पहिले चार प्रकार के पण्डित कहे उनमें से एक भी भाव जिसके नहीं हो, वह बाल**

है तथा जो सबसे न्यून हो वह बालबाल है। इनमें पण्डितपण्डितमरण, पण्डितमरण और बालपण्डितमरण – ये तीन प्रशस्त सुमरण कहे हैं, अन्यरीति होवे कुमरण है। इस प्रकार जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र एकदेश सहित मरे... एकदेश आंशिक, पूर्ण हो तो केवल हो जाये। वह 'सुमरण' है, इस प्रकार सुमरण करने का उपदेश है। लो!

गाथा-३३

आगे यह जीव संसार में भ्रमण करता है, उस भ्रमण के परावर्तन का स्वरूप मन में धारण कर निरूपण करते हैं। प्रथम ही सामान्यरूप से लोक के प्रदेशों की अपेक्षा से कहते हैं –

सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो ।।३३।।

सः नास्ति द्रव्यश्रमणः परमाणुप्रमाणमात्रो निलयः।
यत्र न जातः न मृतः त्रिलोकप्रमाणकः सर्वः ।।३३।।

त्रय–लोक में परमाणु मात्र स्थान ऐसा शेष नहिं।
है द्रव्य मुनि होते हुए भी जहाँ जन्मा मरा नहिं।।३३।।

अर्थ – यह जीव द्रव्यलिंग का धारक मुनिपना होते हुए भी जो तीन लोक प्रमाण सर्वस्थान हैं, उनमें एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है कि जहाँ जन्म–मरण न किया हो।

भावार्थ – द्रव्यलिंग धारण करके भी इस जीव ने सर्व लोक में अनन्त बार जन्म और मरण किये, किन्तु ऐसा कोई प्रदेश शेष न रहा कि जिसमें जन्म और मरण न किये हों। इस प्रकार भावलिंग के बिना द्रव्यलिंग से मोक्ष की (निज परमात्मदशा की) प्राप्ति नहीं हुई –ह्नऐसा जानना।।३३।।

गाथा-३३ पर प्रवचन

आगे यह जीव संसार में भ्रमण करता है, उस भ्रमण के परावर्तन का स्वरूप मन में धारण कर निरूपण करते हैं। प्रथम ही सामान्यरूप से लोक के प्रदेशों की अपेक्षा से कहते हैं –

सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो ।।३३।।

अर्थ – यह जीव द्रव्यलिंग का धारक मुनिपना होते हुए... सम्यग्दर्शन बिना, सम्यग्ज्ञान बिना जिसमें दिगम्बर द्रव्यलिंग को अनन्त बार धारण किया। **तीन लोक प्रमाण सर्वस्थान हैं, उनमें एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है...** आहाहा! दूसरे प्रकार से तो भले जन्म-मरण किये और मरा, परन्तु जैन का साधु होकर इतनी बार मरा। आहाहा! दिगम्बर मुनि होकर। **तीन लोक प्रमाण सर्वस्थान हैं, उनमें एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है कि जहाँ जन्म-मरण न किया हो।** पाँच महाव्रतधारी साधु हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु कहते हैं कि सम्यग्दर्शन बिना ऐसे जो मरण (किये), उसके प्रदेश का एक प्रदेश भी खाली नहीं कि जहाँ वह जन्मा न हो और जहाँ मरा न हो। ओहोहो! एक तो ऐसा साधु और वह वापस ऐसे कुमरण से लोक के ३४३ राजू के प्रदेश खाली नहीं कि जहाँ अनन्त बार जन्मा-मरा न हो। ओहोहो!

दूसरे प्रकार से मरा एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अज्ञानपर्याय से, वह अलग वस्तु है। यह तो द्रव्यसाधु होकर ३४३ राजू में एक प्रदेश खाली नहीं, जिसमें अनन्त बार यह जन्मा और मरा न हो। आहाहा! आत्मा के सम्यक् भान बिना, अनुभव बिना ऐसा द्रव्यलिंगीपना धारण किया। ३४३ राजू... है न? आहाहा! **तीन लोक प्रमाण...** एक प्रदेश खाली नहीं कि जिसमें अनन्त बार जन्मा और मरा न हो। ओहोहो! यह सुमरण करने के लिये बात करते हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य जगत को करुणा से कहते हैं, भाई!

सर्व लोक में अनन्त बार जन्म और मरण किये, किन्तु ऐसा कोई प्रदेश शेष

न रहा... इसने कोई प्रदेश बाकी नहीं रखा। **जिसमें जन्म और मरण न किये हों। इस प्रकार भावलिंग के बिना...** अहो! आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह भावलिंग है। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव, उसका ज्ञान और उसकी रमणता के बिना इसने द्रव्यलिंग में... यह तो द्रव्यलिंगी पंच महाव्रत पालन करे, अट्ठाईस मूलगुण पाले, तो भी ऐसे मरण उसने तो अनन्त बार किये है, भाई! **(निज परमात्मदशा की) प्राप्ति नहीं हुई...** द्रव्यलिंग से कोई मोक्ष नहीं मिलता। परन्तु पालन करे तो द्रव्यलिंग, वे महिमा करे। परन्तु अब अभव्य द्रव्यलिंग पालन करे तो भी नौवें ग्रैवेयक में सुख तो पावे। लो! आहाहा! ... ... अरे! भाई! यह नौवें ग्रैवेयक सुख कहाँ था? बापू! आत्मा के आनन्द के स्वाद की तो खबर नहीं होती। आहाहा! आनन्द का रसीला तो हुआ नहीं, और राग के रसीला में मरण (हो), वह दु:ख है। नौवें ग्रैवेयक जाये तो वह तो वहाँ दु:खी है। ऐसा नहीं कहा, नौवे ग्रैवेयक? 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' वहाँ सुखी नहीं है। जिसमें भगवान आत्मा मिला नहीं, वे सब मरण सब दु:ख के और कुमरण हैं। दुनिया में प्रसिद्धि हो, न हो। दुनिया महिमा करे, न करे ... उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! दुनिया में बाहर में वह गिनने में नहीं आया। परन्तु बाह्य में से निकलकर अन्दर में गया है, वह सामने पड़ गया वह। समझ में आया? आहाहा! वह तो मरण महोत्सव है। आहाहा!

जिसे आत्मा आनन्द के भानवाली मृत्यु (हो)... आहाहा! अतीन्द्रिय सुख का सागर जिसने खोला है, उसके मरण का महोत्सव तो ज्ञानी जिसकी महिमा करे। आहाहा! भले वह जंगल में पड़ा हो और कोई साधु ऐसा हो। गिरिगुफा में जाकर ध्यान में रहकर देह छोड़े। मरते कोई पीछे न हो जाननेवाला। आहाहा! परन्तु वह पण्डितमरण से मरता है। आहाहा! बाद की देह को सियाल खाते हों और यहाँ बड़ा अरबोंपति या साधु बाहर का द्रव्यलिंगी हो, पालकी में निकाले। बड़ी। धमधमाट। पाँच-पाँच हजार लोग, हजार-हजार लोगों के बीच एक-एक बैण्ड।

मुमुक्षु : वह सब बाहर की धमाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की धमाल। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसी बाते हैं। बापू! तुझे तेरा स्पर्श नहीं हुआ। तेरा तुझे स्पर्श नहीं हुआ और ऐसे द्रव्यलिंग के स्पर्श

में अनन्त बार आया और दुनिया ने कदाचित् महिमा की... ओहो! ऐसे पुरुष पके, कोई सिद्धपुरुष हैं। उसमें क्या हुआ?

कहते हैं, जिसमें भावलिंग बिना जिन परमात्मा दशा की प्राप्ति न हुई... आहाहा! बाहर में प्रत्याख्यान करे कि मुझे खाने का त्याग है, निकलने का त्याग है, चलने का त्याग है परन्तु अन्दर में राग में एकता में पड़ा। सब तेरे पास है। आहाहा! मिथ्यात्व है।

गाथा-३४

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए भावलिंग को प्रधान कर कहते हैं –

कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं।
जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण।।३४।।

कालमनंतं जीवः जन्मजरामरणपीडितः दुःखम्।
जिनलिंगेन अपि प्राप्तः परम्पराभावरहितेन।।३४।।

परम्परा से भाव बिन जिन-लिंग से इस जीव ने।
नित जन्म जर मृत्यु से पीड़ित दुःख भोगा सदा से।।३४।।

अर्थ – यह जीव इस संसार में जिसमें परम्परा भावलिंग न होने से अनन्त कालपर्यन्त जन्म-जरा-मरण से पीड़ित दुःख को ही प्राप्त हुआ।

भावार्थ – द्रव्यलिंग धारण किया और उसमें परम्परा से भी भावलिंग की प्राप्ति न हुई, इसलिए द्रव्यलिंग निष्फल गया, मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई, संसार में ही भ्रमण किया।

यहाँ आशय इस प्रकार है कि द्रव्यलिंग है, वह भावलिंग का साधन है, परन्तु [१]काललब्धि बिना द्रव्यलिंग धारण करने पर भी भावलिंग की प्राप्ति नहीं होती है

१. (१) काललब्धि =स्व समय-निजस्वरूप परिणाम की प्राप्ति; (आत्मावलोकन गा. ९)। (२) काललब्धि का अर्थ स्वकाल की प्राप्ति है। (३) "यदायं जीवः आगमभाषया कालादि लब्धिरूपमध्यात्मभाषया शुद्धात्माभिमुखं परिणामरूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते.....अर्थ ह्न जब यह जीव आगमभाषा से कालादि लब्धि को प्राप्त करता है तथा अध्यात्मभाषा से शुद्धात्मा के सन्मुख परिणाम स्वसंवेदन ज्ञान को प्राप्त करता है।" (पंचास्तिकाय गा. १५०-५१ जयसेनाचार्य टीका) (४) विशेष देखो मोक्षमार्गप्रकाशक, अ. ९।।

इसलिए द्रव्यलिंग निष्फल जाता है। इस प्रकार मोक्षमार्ग में प्रधान भावलिंग ही है।

यहाँ कोई कहे कि इस प्रकार है तो द्रव्यलिंग पहिले क्यों धारण करें ? उसको कहते हैं कि इस प्रकार माने तो व्यवहार का लोप होता है, इसलिए इस प्रकार मानना जो द्रव्यलिंग पहिले धारण करना, इस प्रकार न जानना कि इसी से सिद्धि है। भावलिंग को प्रधान मानकर उसके सन्मुख उपयोग रखना, द्रव्यलिंग को यत्नपूर्वक साधना, इस प्रकार का श्रद्धान भला है।।३४।।

गाथा-३४ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए भावलिंग को प्रधान कर कहते हैं –

कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं।
जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण।।३४।।

देखो! यहाँ तो अभी आचार्य यह कहते हैं, जिनलिंग धारण किया परन्तु जिनभाव प्रतीति में आया नहीं। आहाहा!

अर्थ – यह जीव इस संसार में जिसमें परम्परा भावलिंग न होने से... जिसमें भावलिंग प्रगट ही नहीं किया। ऐसे द्रव्यलिंग धारण किये। आहाहा! इसलिए कहते हैं न, भाई! पहला द्रव्यलिंग आवे। पंच महाव्रत ले, यह करे, यह करे। उसमें फिर यह ले, आया उसमें तूने किया क्या? ऐसा कहते हैं। ऐसा कि पहले द्रव्यलिंग ही आता है। नहीं तो पहले भावलिंग आवे सातवाँ (गुणस्थान) और फिर वस्त्रादि छूटे। ऐसा तर्क करे। देखो! उसमें पहले द्रव्यलिंग आया या नहीं? वस्त्र छोड़े... ध्यान में आत्मा आया नहीं।

कहते हैं, परम्परा से बात करते हैं न? इसका अर्थ यह कि द्रव्यलिंग ऐसा धारण किया, उसके पश्चात् जो भावलिंग आना चाहिए, वह आया नहीं। आहाहा! जिनलिंग धारण किया, तथापि **'परंपराभावरहिएण' अनन्त कालपर्यन्त जन्म-जरा-मरण से पीड़ित दुःख को ही प्राप्त हुआ।** ओहोहो! भगवान आत्मा निर्विकल्प चैतन्यबिम्ब

प्रभु, उसका स्पर्श और आदर बिना ऐसे द्रव्यलिंग में परम्परा से भी वस्तु तो तूने प्राप्त नहीं की। यह सब तेरे द्रव्यलिंग निरर्थक गये, भव के अभाव के लिये (निरर्थक)। भव में भटकने के लिये सार्थक हुए। आहाहा! देखो! आचार्य महाराज जिनलिंग को डालकर... ऐसे जिनलिंग धारण किये। जिनलिंग अर्थात् द्रव्यलिंग, मुनिपना, हों! नग्नपना, पंच महाव्रत वह सब द्रव्यलिंग। आहाहा! तथापि उससे रहित अन्तर आनन्दस्वरूप को स्पर्शा नहीं। द्रव्यलिंग ग्रहण किये और पश्चात् यह आया नहीं तो तेरा सब व्यर्थ गया। आहाहा!

भावार्थ – द्रव्यलिंग धारण किया और उसमें परम्परा से भी भावलिंग की प्राप्ति न हुई... अब ऐसी बात करते हैं। परम्परा अर्थात् महाव्रत आदि धारण किये परन्तु फिर उन्हें छोड़कर आत्मा के आनन्द में आना चाहिए, वह तो आया नहीं। परम्परा शब्द रखा है न यहाँ? ऐसा कि पहले द्रव्यलिंग आवे, पश्चात् भावलिंग आवे। परन्तु यह द्रव्यलिंग आया और फिर भावलिंग ग्रहण नहीं किया, अन्तर आनन्द में आया नहीं तो तेरे द्रव्यलिंग का थोथा निकला। आहाहा! परम्परा शब्द प्रयोग किया है न? **इसलिए द्रव्यलिंग निष्फल गया, मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई, संसार में ही भ्रमण किया।** लो!

यहाँ आशय इस प्रकार है कि–द्रव्यलिंग है, वह भावलिंग का साधन है,... द्रव्यलिंग पहले आता है, ऐसा कहते हैं। **परन्तु काललब्धि बिना द्रव्यलिंग धारण करने पर भी भावलिंग की प्राप्ति नहीं होती है...** अन्तर के स्वभाव के पुरुषार्थ की जागृति बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान भावलिंग प्रगट नहीं किया। नीचे कहा है न काललब्धि का? **काललब्धि =स्व समय–निजस्वरूप परिणाम की प्राप्ति...** यह काललब्धि की व्याख्या। काल अर्थात् स्वसमय स्वयं आत्मा। ऐसे निज स्वरूप के परिणमन की प्राप्ति, वह काललब्धि। आत्मावलोकन में गाथा दी है।

क्या कहा यह? पंच महाव्रत द्रव्यलिंग धारण किये परन्तु उसमें निज समय की लब्धि प्राप्त नहीं की तो उसकी काललब्धि नहीं पकी। नहीं पकी अर्थात् निज स्वरूप की प्राप्ति में नहीं आया। **काललब्धि का अर्थ स्वकाल की प्राप्ति है। (३) ''यदायं**

जीवः आगमभाषया कालादि लब्धिरूपमध्यात्मभाषया शुद्धात्माभिमुखं परिणामरूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते... अर्थ – जब यह जीव आगमभाषा से कालादि लब्धि को प्राप्त करता है तथा अध्यात्मभाषा से शुद्धात्मा के सन्मुख परिणामरूप... पूरी दिशा को गुलांट खा गया। जो पर्याय के ऊपर लक्ष्य राग के ऊपर निमित्त था, उस लक्ष्य से सब बदल गया। शुद्धात्म भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके सन्मुख परिणाम अर्थात् 'स्वसंवेदन ज्ञान को प्राप्त करता है।' यह काललब्धि है।

... राणपुर में चातुर्मास था न ... राणपुर। (संवत्) १९८४ का वर्ष। १९८४ के ज्येष्ठ महीने में दामनगर में। उनके साथ बात हुई थी दामनगर। देखो! यह काललब्धि ऐसी है। उस समय मेरा 'द्रव्यसंग्रह' पढ़ता था बराबर। उसमें यह आया। काल कोई वस्तु निमित्त है, वह हेय है। आता है न? भाई! द्रव्यसंग्रह में। काल हेय है। आहाहा! तब वह बराबर था। १९८४ की बात है। ४३ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : अपनी आराधना से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आराधना से होता है। निमित्त काल को आराधना है? काल हेय है, ऐसा वहाँ लिया है। आवे, वह कालरूप से, परन्तु है हेयपना। उपादेयपना तो भगवान आत्मा आनन्द के स्वकाल को प्राप्त करे, वह प्राप्ति है। आहाहा! भले दूसरे प्रकार से कहें कि काललब्धि भले है परन्तु उसका ज्ञान कब होगा? इस चैतन्य के आनन्द के अनुभव को पकड़े, तब यह पर्याय हुई, उसका ज्ञान होता है। तब ज्ञान होता है। इसके बिना काललब्धि का ज्ञान कहाँ से था? आहाहा! श्रीमद् में भी कहा है न? 'भवस्थिति आदि नाम ले छेदो नहीं आत्मार्थ।' आता है न? पहले क्या आया?

मुमुक्षु : 'जो इच्छो परमार्थ तो...'

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। 'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ। भवस्थिति आदि नाम ले, छेदो नहीं आत्मार्थ।' आहाहा!

मुमुक्षु : काललब्धि...

पूज्य गुरुदेवश्री : काललब्धि-आत्मा के अनुभव की पर्याय प्राप्त करना, वह काललब्धि।

मुमुक्षु : क्रमबद्ध...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध ही आया इसमें। काललब्धि में ही क्रमबद्ध आया। स्वकाल में उसकी प्राप्ति होती है, दूसरी पर्याय के स्वकाल में, तीसरी पर्याय के स्वकाल में (उसकी प्राप्ति होती है)। यह क्रमबद्ध हो गया। इसमें ही क्रमबद्ध सिद्ध हुआ। आहाहा! पंचास्तिकाय की १५० गाथा है न?

भावलिंग की प्राप्ति नहीं होती है, इसलिए द्रव्यलिंग निष्फल जाता है। इस प्रकार मोक्षमार्ग में प्रधान भावलिंग ही है। पंच महाव्रत पालन किये और नग्न हुआ, वह क्या हुआ? ऐसा तो अनन्त बार किया है। आहाहा! **यहाँ कोई कहे कि इस प्रकार है तो द्रव्यलिंग पहिले क्यों धारण करें?** यह परम्परा सिद्ध करते हैं न? तो पहले क्यों पंच महाव्रत लेना? भावलिंग आने के बाद लेंगे। **उसको कहते हैं कि इस प्रकार माने तो व्यवहार का लोप होता है,...** सम्यग्दृष्टि आत्मा का अनुभव होने पर भी उसे प्रथम तो भावलिंग चारित्र नहीं होता। तथापि पंच महाव्रत आदि तो पहले अंगीकार करे। चौथे गुणस्थान में है, पाँचवें गुणस्थान में है और मुनिव्रत धारण करे तो पहले तो पंच महाव्रत धारण करे, ... उस समय तो छठा गुणस्थान है नहीं, चारित्र है नहीं। इसलिए वह आवे पहला।

इसलिए इस प्रकार मानना जो द्रव्यलिंग पहिले धारण करना,... इसका अर्थ कि पहले महाव्रत के परिणाम आवे। भारी अटपटी बात। मुनिपना अंगीकार करे, तब चारित्र अन्दर प्रगट नहीं हुआ और पंच महाव्रत आदि द्रव्यलिंग पहले धारण करे। **इस प्रकार न जानना कि इसी से सिद्धि है।** उसे छोड़कर अन्दर में आत्मा के ध्यान में जाना चाहिए। **भावलिंग को प्रधान मानकर...** देखा! मुझे तो अन्तर के अनुभव में जाना है। उसमें यह पंच महाव्रत द्रव्यलिंग की क्रियाएँ पहले आयेंगी। **उसके सन्मुख उपयोग रखना,...** आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान के प्रति उपयोग रखना। अरे! ऐसी बातें! कोई ऐसा कहे कि भावलिंग पहले आवे, पश्चात् द्रव्यलिंग। ऐसा कभी नहीं होता। भावलिंग सातवाँ (गुणस्थान) आया और फिर छठवें वस्त्र, पात्र उतारे और पंच महाव्रत ले, ऐसा होगा? समझ में आया? पहले वह छूट जाते हैं। नौ-नौ कोटि से।

अभी उसे व्यवहार कहने के योग्य निश्चय आया नहीं परन्तु द्रव्यलिंग ऐसा आवे, किन्तु उससे ऐसा नहीं मानना कि इससे लाभ होगा। ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार न जानना कि इसी से सिद्धि है। इतनी बात है। आहाहा! पंच महाव्रत, नग्नपना पहले आवे, परन्तु उससे सिद्धि है, ऐसा मानना नहीं। आहाहा! **भावलिंग को प्रधान मानकर उसके सन्मुख उपयोग रखना, द्रव्यलिंग को यत्नपूर्वक साधना,...** लो! तब उसे पंच महाव्रत आदि होते हैं। उसे यत्नपूर्वक व्यवहार होता है। **इस प्रकार का श्रद्धान भला है।** समझ में आया? इसमें ऐसा सिद्ध हुआ कि द्रव्यलिंग पहले नहीं होता और सीधे भावलिंग हो, ऐसा नहीं होता। परन्तु द्रव्यलिंग धारण किया, इसलिए उससे सिद्धि होगी, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! गजब बातें, भाई! श्वेताम्बर में तो भले समकित धारते हो, जाओ। ऐसा है न? क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आरोपण करना द्रव्यलिंग का। वह पढ़ा है। आहाहा! भारी मार्ग, बापू! अनेकान्त मार्ग।

सम्यग्दृष्टि को भी पहले सातवाँ (गुणस्थान) भावलिंग आवे और फिर द्रव्यलिंग हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसे भी पहले तो द्रव्यलिंग आता है, परन्तु आवे उसमें ऐसा नहीं मानना कि यह आया, इसलिए मुझे भावलिंग इसके कारण से होगा। यह आता है, होता है परन्तु उपयोग वहाँ रखने की बात है। अन्दर जाने के लिये मैंने यह तो बाहर का व्यवहार धारण किया है। आहाहा! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' आहाहा! पूरा संसार जहाँ उथेल डालना है। आहाहा!

यहाँ तो परम्परा शब्द पड़ा है न, इसलिए स्पष्टीकरण करते हैं। अर्थात् कि द्रव्यलिंग आया तथापि यदि भावलिंग न आया तो वह सब निष्फल है। इससे कोई ऐसा माने कि द्रव्यलिंग पहले धारण नहीं करना, ऐसा भी नहीं है।

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण बहुत आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। ध्यान रखते हो समझने में तो भी ... कहो, समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि को भी स्थिरता उसे होती है। यह वापस तुम बोल-बोल करो, उसमें कुछ माल नहीं है। सम्यग्दृष्टि भी द्रव्यलिंग धारण करता है और यदि भावलिंग न आवे तो वह द्रव्यलिंगी कहलाता है। और क्या कहा? सम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यलिंग पहले धारण करे और फिर ध्यान में यदि भावलिंग न आवे तो उसे द्रव्यलिंगी कहा जाता है। ऐसी गजब बातें, भाई! विशेष पुद्गल की व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-३७

आगे यह जीव शरीरसहित उत्पन्न होता है और मरता है, उस शरीर में रोग होते हैं, उनकी संख्या दिखाते हैं –

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया।।३७।।

एकैकांगुलौ व्याधयः पण्णवतिः भवंति जानीहि मनुष्यानां।
अवशेषे च शरीरे रोगाः भण कियन्तः भणिताः।।३७।।

है छ्यानवै व्याधि मनुज तन-एक अंगुल में कहीं।
तब कहो कितने रोग होंगे सकल तन सोचो सही?।।३७।।

***अर्थ* – इस मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छयानवे-छयानवे रोग होते हैं, तब कहो अवशेष समस्त शरीर में कितने रोग कहें।।३७।।**

प्रवचन-११३, गाथा-३७ से ४४, मंगलवार, आसोज शुक्ल १४, दिनांक १३-१०-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की ३७वीं गाथा। **आगे यह जीव शरीरसहित उत्पन्न होता है और मरता है, उस शरीर में रोग होते हैं, उनकी संख्या दिखाते हैं –**

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया।।३७।।

अर्थ – इस मनुष्य के शरीर में... मनुष्य की व्याख्या है, हों! अभी। मनुष्य के शरीर में **एक-एक अंगुल में छयानवे-छयानवे रोग होते हैं,...** छियानवें-छियानवें। भगवती आराधना में एक आँख में छियानवें कहा है परन्तु आँख का प्रमाण नहीं न, किसी को छोटी आँख होती है, किसी को बड़ी आँख होती है। यह कुन्दकुन्दाचार्य का प्रमाणसर है। एक अंगुल में ९६ रोग होते हैं। **छयानवे रोग होते हैं, तब कहो अवशेष समस्त शरीर में कितने रोग कहें।** ऐसे रोग शरीर में भरे हैं। यह रोग की मूर्ति है। श्रीमद् ने कहा है, वेदना की मूर्ति। आत्मा आनन्द की मूर्ति, यह मिट्टी रोग की-वेदना की मूर्ति है।

मुमुक्षु : शरीरं व्याधि मंदिरं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याधि मंदिरं। संस्कृत के प्रोफेसर हैं न। व्याधि मंदिरं, सत्य है, ऐसा है। श्रीमद् में ऐसा है। पहले तो वेदना की मूर्ति है, जड़-मिट्टी-धूल।

एक-एक अंगुल में छयानवे-छयानवे रोग... पूरे शरीर में कितने? भगवती आराधना में एक आँख में छियानवें रोग गिने हैं। परन्तु आँख तो किसी की छोटी हो, किसी की बड़ी हो। ... बड़ी हो। इसलिए यह सच्चा प्रमाण कुन्दकुन्दाचार्य, एक-एक अंगुल अर्थात् यह। छियानवें रोग हैं।

गाथा-३८

आगे कहते हैं कि जीव! उन रोगों का दुःख तूने सहा –

ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं।।३८।।

ते रोगा अपि च सकलाः सोढास्त्वया परवशेण पूर्वभवे।
एवं सहसे महायशः ! किं वा बहुभिः लपितैः।।३८।।

हे महायश! परतन्त्रता से वे सभी तुमने सहे।
पहले तथा आगे सहोगे लाभ क्या बहु-कथन से?।।३८।।

अर्थ – **हे महायश! हे मुने! तूने पूर्वोक्त सब रोगों को पूर्वभवों में तो परवश सहे, इस प्रकार ही फिर सहेगा, बहुत कहने से क्या?**

भावार्थ – **यह जीव पराधीन होकर सब दुःख सहता है। यदि ज्ञान भावना करे और दुःख आने पर उससे चलायन न हो, इस तरह स्ववश होकर सहे तो कर्म का नाशकर मुक्त हो जावे, इस प्रकार जानना चाहिए।।३८।।**

गाथा-३८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जीव! उन रोगों का दुःख तूने सहा –

ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं।।३८।।

अर्थ – हे महायश! मुनि को कहते हैं। **हे मुने! तूने पूर्वोक्त सब रोगों को पूर्वभवों में तो परवश सहे,...** अनन्त बार स्वरूप के अनुभव की दृष्टि बिना (ऐसे रोग सहन किये)। समझ में आया? **फिर सहेगा,...** वापस यह लिया है। अभी भी यदि सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्यमूर्ति का आश्रय करके अनुभव, सम्यग्दर्शन नहीं किया (तो) भविष्य में भी इसी प्रकार सहन करना पड़ेगा। समझ में आया? **बहुत कहने से क्या?** पाठ है न? **'बहुएहिं लविएहिं'** बहुत कहने से क्या कहना तुझे? संक्षेप में समझ जा। मनुष्य के शरीर में कितने रोग आते हैं, फटे तो कहीं....

भावार्थ – यह जीव पराधीन होकर सब दुःख सहता है। यदि ज्ञान भावना करे... देखो! आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। वह ज्ञान की भावना करे, विकल्प रागादि की भावना छोड़े, वह भावना तो अनन्त बार की है। ज्ञानस्वरूप चैतन्यप्रभु, जानन-देखन अनन्त-अनन्त ज्ञान का बल जिसमें पड़ा है। अनन्त आनन्द का बल जिसमें है, ऐसा सामर्थ्यवाला तत्त्व अनन्त ज्ञान के स्वभाववाला, उसकी ज्ञान की भावना

कर। **ज्ञान भावना करे और दुःख आने पर उससे चलायन न हो,...** ज्ञाता-दृष्टारूप से, शरीर में रोग होने पर भी और राग होने पर भी ज्ञान की भावना में ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट हो, उसे जन्म-मरण नहीं रहते। **इस तरह स्ववश होकर सहे तो कर्म का नाशकर मुक्त हो जावे,...** आनन्दमूर्ति भगवान, वह ज्ञान में, आनन्द में रहे और आनन्द से राग और परचीज़ में आते रोगादि, राग और रोग दोनों को अपना नहीं जानता हुआ ज्ञान की भावना करे तो कर्म से मुक्त होता है। लो! यह मुक्ति का उपाय।

भगवान चैतन्य तो ज्ञानस्वरूप है। कल आया था, नहीं? अतुल अवलोकन। क्या (आया था)? अतुल अवलोकन। छह बोल आये थे। उपमारहित जिसका ज्ञान है, नित्य उद्योतमय है, अखण्ड है, एक है। ज्ञान के प्रवाह से भरपूर भगवान है और अमर है। वह पुण्य-पाप के राग से रहित है। आहाहा! ऐसा ज्ञानस्वभाव का प्रेम करके उसकी रुचि कर और उसका अनुभव कर तो कर्म से छूटेगा, बाकी कर्म से छूटने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! **इस तरह स्ववश होकर सहे तो कर्म का नाशकर मुक्त हो जावे, इस प्रकार जानना चाहिए।**

गाथा-३९

आगे कहते हैं कि अपवित्र गर्भवास में भी रहा –

पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले।
उयरे वसिओ सि चिरं णवदसमासेहिं पत्तेहिं।।३९।।

पित्तांत्रमूत्रफेफसयकृद्रुधिरखरिसकृमिजाले।
उदरे उषितोऽसि चिरं नवदशमासैः प्राप्तैः।।३९।।

मल मूत्र शोणित पित्त यकृत आन्त्र कालिज कृमीगण।
वाले उदर में बहु बसा नौ मास या दश प्राप्त कर।।३९।।

अर्थ – हे मुने ! तूने इस प्रकार के मलिन अपवित्र उदर में नव मास तथा दस मास प्राप्त कर रहा। कैसा है उदर? जिसमें पित्त और आंतों से वेष्टित, मूत्र का स्रवण,

फेफस अर्थात् जो रुधिर बिना मेद फूल जावे, कलिज्ज अर्थात् कलेजा, खून, खरिस अर्थात् अपक्व मल से मिला हुआ रुधिर श्लेष्म और कृमिजाल अर्थात् लट आदि जीवों के समूह ये सब पाये जाते हैं, इस प्रकार स्त्री के उदर में बहुत बार रहा।।३९।।

गाथा-३९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि अपवित्र गर्भवास में भी रहा – आहाहा! माता के पेट में-गर्भ में नौ-नौ, सवा नौ महीने बसा।

पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले।
उयरे वसिओ सि चिरं णवदसमासेहिं पत्तेहिं।।३९।।

अर्थ – हे मुने ! तूने इस प्रकार के मलिन अपवित्र उदर में नव मास तथा दस मास प्राप्त कर रहा। सवा नौ महीने जो होवे वह। **कैसा है उदर? जिसमें पित्त और आंतों से वेष्टित, मूत्र का स्रवण, फेफस अर्थात् जो रुधिर बिना मेद फूल जावे, कलिज्ज...** माँस-पिण्ड की थैली, माँस का विकार कालिज्ज। **खून, खरिस अर्थात् अपक्व मल से मिला हुआ रुधिर श्लेष्म और कृमिजाल अर्थात् लट आदि जीवों के समूह ये सब पाये जाते हैं, इस प्रकार स्त्री के उदर में बहुत बार रहा।** आहाहा! उसका निवास पेट में सवा नौ महीने रहा। ऐसा अनन्त बार। एक आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना। बाकी द्रव्यलिंग तो अनन्त बार (लिया)। इसके लिये तो द्रव्यलिंगी को ही कहते हैं। एक-एक गाथा उसके लिये है, भाई! ऐसे तो व्यवहार के रागादि विकल्प तो अनन्त बार अभव्य ने भी किये और तूने भी किये। उसमें कुछ जन्म-मरण मिटे, ऐसा उपाय नहीं है। आहाहा!

गाथा-४०

फिर इसी को कहते हैं –

दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णांते।
छद्दिखरिसाण मज्झे जढरे वसिओ सि जणणीए।।४०।।

द्विजसंगस्थितमशनं आहृत्य मातृभुक्तमन्नान्ते।
छर्दिखरिसयोर्मध्ये जठरे उषितोऽसि जनन्याः।।४०।।

द्विज संग स्थित मात खाए अशन से आहार ले।
छर्दि खरिस के मध्य माता के उदर में नित बसे।।४०।।

अर्थ – हे जीव! तू जननी (माता) के उदर (गर्भ) में रहा, वहाँ माता के और पिता के भोग के अन्त छर्दि (वमन) का अन्न, खरिस (रुधिर से मिल हुआ अपक्व मल) के बीच में रहा, कैसा रहा? माता के दाँतों से चबाया हुआ और उन दाँतों के लगा हुआ (रुका हुआ) झूठा भोजन माता के खाने के पीछे जो उदर में गया उसके रसरूपी आहार से रहा।।४०।।

गाथा-४० पर प्रवचन

फिर इसी को कहते हैं –

दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णांते।
छद्दिखरिसाण मज्झे जढरे वसिओ सि जणणीए।।४०।।

अर्थ – हे जीव! तू जननी (माता) के उदर (गर्भ) में रहा, वहाँ माता के और पिता के भोग के अन्त छर्दि (वमन) का अन्न, खरिस (रुधिर से मिल हुआ अपक्व मल) के बीच में रहा,... उसमें अन्दर बसा। आहाहा! यह इसके दुःख का इतिहास कहते हैं। ऐसे दुःख, भाई! तूने सहन किये, तुझे खबर नहीं। भूल गया, भूल गया। कैसा रहा? माता के दाँतों से चबाया हुआ और उन दाँतों के लगा हुआ (रुका हुआ) झूठा भोजन माता के खाने के पीछे जो उदर में गया, उसके रसरूपी आहार से रहा। आहाहा!

गाथा-४१

आगे कहते हैं कि गर्भ से निकलकर, इस प्रकार बालकपन भोगा –

सिसुकाले च अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओ सि तुमं।
असुई असिया बहुसो मुणिवर बालत्तपत्तेण।।४१।।

शिशुकाले च अज्ञाने अशुचिमध्ये लोलितोऽसि त्वम्।
अशुचिः अशिता बहुशः मुनिवर ! बालत्वप्राप्तेन।।४१।।

हे मुनीवर! शिशु-समय में अज्ञान-वश अशुची भखा।
अशुची में लोटा अशुचि रह बालत्व की बहु चेष्टा।।४१।।

अर्थ – हे मुनिवर ! तू बचपन के समय में अज्ञान अवस्था में अशुचि (अपवित्र) स्थानों में अशुचि के बीच लेटा और बहुत बार अशुचि वस्तु ही खाई, बचपन को पाकर, इस प्रकार चेष्टायें कीं।

भावार्थ – यहाँ 'मुनिवर' इस प्रकार सम्बोधन है, वह पहिले के समान जानना, बाह्य आचरण सहित मुनि हो उसी को यहाँ प्रधानरूप से उपदेश है कि बाह्य आचरण किया वह तो बड़ा कार्य किया, परन्तु भावों के बिना यह निष्फल है, इसलिए भाव के सन्मुख रहना, भावों के बिना ही ये अपवित्र स्थान मिले हैं।।४१।।

गाथा-४१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि गर्भ से निकलकर, इस प्रकार बालकपन भोगा – अब बाहर की बात आयी। आहाहा!

सिसुकाले च अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओ सि तुमं।
असुई असिया बहुसो मुणिवर बालत्तपत्तेण।।४१।।

बालतप तो तूने बहुत किये, अनन्त बार। आहाहा! महीने-महीने के अपवास, छह-छह महीने के अपवास। दो-दो महीने की सल्लेखना, ऐसा अनन्त बार किया, वह

बालतप किये। परन्तु आत्मा का ज्ञान और अनुभव दर्शन किया नहीं।

अर्थ – हे मुनिवर! द्रव्यलिंगी को ही बारम्बार कहते हैं। अनन्त बार तेरे व्यवहार हुआ परन्तु निश्चय के भान बिना जन्म-मरण कभी मिटे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! **'बालत्तपत्तेण'**-ऐसा है न? **तू बचपन के समय में अज्ञान अवस्था में अशुचि (अपवित्र) स्थानों में अशुचि के बीच लेटा और बहुत बार अशुचि वस्तु ही खाई, बचपन को पाकर, इस प्रकार चेष्टायें कीं।** लो! यहाँ तो बालपने की बात है। बालपने। 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देख के रोया।' ऐसा हम वहाँ गाते थे। वह मुसलमान निकले न रोजा में? पालेज में मुसलमान वोरा बहुत है न? रोजा का दिन हो न रोजा? रोजा समझते हो न? तब फकीर सवेरे ऐसा गाये। चार बजे उठावे न खाने (के लिये)? 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, बुढ़ापा देख के रोया।' आहाहा! परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसका अनुभव-दृष्टि की नहीं। आहाहा! **बहुत बार अशुचि वस्तु ही खाई, बचपन को पाकर, इस प्रकार चेष्टायें कीं।** लो!

भावार्थ – यहाँ 'मुनिवर' इस प्रकार सम्बोधन है, वह पहिले के समान जानना, बाह्य आचरण सहित मुनि हो, उसी को यहाँ प्रधानरूप से उपदेश है... देखो! जिसके पंच महाव्रत चुस्त हैं, अट्ठाईस मूलगुण बराबर पालता है, हजारों रानी आदि का त्याग करके वैराग्यसहित जिसने मुनिपना लिया है, परन्तु **बाह्य आचरण किया वह तो बड़ा कार्य किया,...** ठीक है, पुण्य है, स्वर्ग में जायेगा। **परन्तु भावों के बिना यह निष्फल है,...** आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना उसका फल संसार है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : बड़े कार्य का फल संसार?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लोक की अपेक्षा से बात की। स्त्री, पुत्र में पड़े हैं, उसकी अपेक्षा छोड़ा है तो पुण्य बाँधेगा। किंचित् पुण्य बाँधेगा। बाकी जायेगा स्वर्गादि में, भूतडा-बूतड़ा में। परन्तु इस भाव बिना निष्फल-निष्फल है। उसका कुछ भी फल आत्मा को लाभदायक नहीं है।

इसलिए भाव के सन्मुख रहना, भावों के बिना ही ये अपवित्र स्थान मिले हैं। लो! शुद्ध स्वभाव के सन्मुख दृष्टि करना। भगवान आत्मा पवित्र, उसकी दृष्टि रखना, बाकी इसके अतिरिक्त **अपवित्र स्थान मिले हैं।** लो!

गाथा-४२

आगे कहते हैं कि यह देह इस प्रकार है, उसका विचार करो –

मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्तंतसवत्तकुणिमदुग्गंधं ।
खरिसवसापूय [1]खिब्भिस भरियं चित्तेहि देहउडं ।।४२।।

मांसास्थिशुक्रश्रोणितपित्तांत्रस्रवत्कुणिमदुर्गन्धम् ।
खरिसवसापूयकिल्विषभरितं चिन्तय देहकुटम् ।।४२।।

पल पित्त शोणित आन्त्र की दुर्गन्ध शव-सम नित रहे।
तू चिन्त तन-घट को भरा अस्थि वसा राधादि से।।४२।।

अर्थ – हे मुने! तू देहरूप घट को इस प्रकार विचार, कैसा है देहघट? माँस, हाड, शुक्र (वीर्य), श्रोणित (रुधिर), पित्त (उष्ण विकार) और अंत्र (आंतड़िया) आदि द्वारा तत्काल मृतक की तरह दुर्गन्ध है तथा खरिस (रुधिर से मिला अपक्वमल), वसा (मेद), पूय (खराब खून) और राध इन सब मलिन वस्तुओं से पूरा भरा है, इस प्रकार देहरूप घट का विचार करो।

भावार्थ – यह जीव तो पवित्र है, शुद्धज्ञानमयी है और देह इस प्रकार है, इसमें रहना अयोग्य है, ऐसा बताया है।।४२।।

गाथा-४२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यह देह इस प्रकार है, उसका विचार करो – ओहोहो! आचार्य ने भी कितनी वैराग्य की बात जंगल में रहकर की है!

मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्तंतसवत्तकुणिमदुग्गंधं ।
खरिसवसापूय खिब्भिस भरियं चित्तेहि देहउडं ।।४२।।

अर्थ – हे मुने! तू देहरूप घट को इस प्रकार विचार, कैसा है देहघट?

१. पाठान्तर – "खिब्भिस"

माँस, हाड, शुक्र (वीर्य), श्रोणित (रुधिर), पित्त (उष्ण विकार) और अंत्र (आंतड़िया) आदि द्वारा तत्काल मृतक की तरह दुर्गन्ध है जैसे मरा हुआ हो, वैसे दुर्गन्धसहित है यह। आहाहा! जवानी हो, शरीर-बरीर ठीक हो सांढ़ जैसा। हो गया, भूल गया कि मैं कौन हूँ और यह क्या है? यह तो जड़-मिट्टी-धूल है। वह लकड़ी का दृष्टान्त दिया है न? अनुभवप्रकाश में। वह राजा था। लकड़ी की रानी थी तो उसकी पूरी रात सम्हाल करे। सवेरे देखे तो कहे, अरे! यह तो लकड़ी की है। अनुभवप्रकाश में है। लकड़ी समझते हैं? लकड़ी की रानी थी इसकी। किसी ने बनायी थी। उसको लगा कि यह हमारी स्त्री है। सारी रात सम्हाल की। सवेरे जहाँ देखे तो कहे, अरे! यह तो लकड़ी। इसी प्रकार अनादि इस जड़ की सम्हाल की, देखे वहाँ तो कहे, अरे! यह तो जड़-मिट्टी है। आहाहा! इसकी सम्हाल में भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी सम्हाल भूल गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अपक्व मल। **कैसा है देहघट? माँस, हाड, शुक्र (वीर्य), श्रोणित (रुधिर), पित्त (उष्ण विकार) और अंत्र (आंतड़िया) आदि द्वारा तत्काल मृतक की तरह दुर्गन्ध है तथा खरिस (रुधिर से मिला अपक्वमल), वसा (मेद), पूय (खराब खून) और राध...** परु कहते हैं न हमारे। **इन सब मलिन वस्तुओं से पूरा भरा है, इस प्रकार देहरूप घट का विचार करो।** आहाहा! **वस्तुओं से पूरा भरा है, इस प्रकार देहरूप घट का विचार करो।** उसके पाँच भाग करके यदि तपेला में रखे—एक में अंतड़ियाँ, एक में माँस, एक में रक्त। पाँच भाग करके पाँच पतेले में रखे तो सूंगने भी न जाये। यह ऊपर लपेट है वह गार है। चमड़ी की गार ऊपर। अन्दर हड्डियाँ, माँस में गारा, ऊपर गार। आहाहा! भाई! तेरा स्वरूप अनन्त आनन्द का बल का तू धनी है। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का बल तुझमें सामर्थ्य अनन्त है। यह भूलकर तू यह कहाँ इसमें लगा? कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ – यह जीव तो पवित्र है,... महा आनन्द-ज्ञान का धनी, अनन्त ज्ञानबल, अनन्त बल है। आत्मा में तो ज्ञान का अनन्त बल है। आनन्द का अनन्त बल है। शान्ति अर्थात् वीतरागता-चारित्र। स्वभाव में अनन्त चारित्र का बल है। आहाहा! ऐसे सामर्थ्यवान को छोड़कर, छोड़कर इस पामर हड्डियों में सम्हाल करने रह गया।

इसमें रहना अयोग्य है,... अरे! भगवान! तू तो शुद्ध ज्ञानमय पवित्र आनन्द का धाम और यह मलिन शरीर में रहना, शर्मजनक अवतार। आता है न? योगसार में आता है। भाई! इस शरीर में रहना (शर्मजनक है)। आहाहा! विष्टा में कोई शराब पीकर सो रहा हो तो उसे कहते हैं यहाँ से हट, यह तेरा स्थान नहीं है। उस शराब से भी यह तो महा माँस की हड्डियाँ, चमड़ा, रक्त, विष्टा, भाई! उसमें तू पवित्र का नाथ, तुझमें इसमें बसना! **ऐसा बताया है।** आहाहा!

गाथा-४३

आगे कहते हैं कि जो कुटुम्ब से छूटा वह नहीं छूटा, भाव से छूटे हुए को ही छूटा कहते हैं –

भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण।
इय भाविऊण उज्झसु गंधं अब्भंतरं धीर।।४३।।

भावविमुक्तः मुक्तः न च मुक्तः बांधवादिमित्रेण।
इति भावयित्वा उज्झय गन्धमाभ्यन्तरं धीर!।।४३।।

है भाव-मुक्त विमुक्त केवल स्वजन त्यागी मुक्त नहिं।
यों भावना कर छोड़ अंतर्ग्रन्थ को हे साहसी!।।४३।।

अर्थ **– जो मुनि भावों से मुक्त हुआ उसी को मुक्त कहते हैं और बांधव आदि कुटुम्ब तथा मित्र आदि से मुक्त हुआ, उसको मुक्त नहीं कहते हैं, इसलिए हे धीर मुनि! तू इस प्रकार जानकर अभ्यन्तर की वासना को छोड़।**

भावार्थ **– जो बाह्य बांधव, कुटुम्ब तथा मित्र इनको छोड़कर निर्ग्रन्थ हुआ और अभ्यन्तर का ममत्व भावरूप वासना तथा इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष वासना न छूटी तो उसको निर्ग्रन्थ नहीं कहते हैं। अभ्यन्तर वासना छूटने पर निर्ग्रन्थ होता है, इसलिए यह उपदेश है कि अभ्यन्तर मिथ्यात्व कषाय छोड़कर भावमुनि बनना चाहिए।।४३।।**

गाथा-४३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो कुटुम्ब से छूटा वह नहीं छूटा, भाव से छूटे हुए को ही छूटा कहते हैं – स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़कर सब छोड़ा, दुकान छोड़कर, धन्धा छोड़कर दिगम्बर साधु हुआ। परन्तु भाव अन्दर राग की भावना नहीं छोड़ी और राग की गन्ध रही, राग की गन्ध-गन्ध कहते हैं। आहाहा! **भाव से छूटे हुए को ही छूटा कहते हैं –**

भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण।
इय भाविऊण उज्झसु गंधं अब्भंतरं धीर।।४३।।

आहाहा! कितनी बात की है, देखो तो सही! हे धीर! धीर! बुद्धि में प्रेरे आत्मा की ओर, उसे धीर कहते हैं। शुद्ध आनन्द के प्रति धी / बुद्धि को प्रेरे। राग-पुण्य-पाप में नहीं, देह में नहीं, व्यवहार में नहीं। इसका अर्थ धीर है। धीर। बुद्धि को स्वरूप आनन्द में प्रेरे, उसे धीर और बुद्धिवन्त कहते हैं। समझ में आया?

अर्थ – जो मुनि भावों से मुक्त हुआ, उसी को मुक्त कहते हैं... राग की गन्ध, प्रेम छूटे और स्वभाव की दृष्टि हो, उसे मुक्त कहते हैं। समकित होने से मुक्त हुआ द्रव्य से। आहाहा! विकल्प से मुक्त हुआ। **भावों से मुक्त हुआ, उसी को मुक्त कहते हैं...** रागादि विकल्प से छूटा और निर्विकल्प भगवान आत्मा के अनुभव में आया, उसे यहाँ मुक्त कहते हैं। **और बांधव आदि कुटुम्ब तथा मित्र आदि से मुक्त हुआ, उसको मुक्त नहीं कहते हैं, इसलिए हे धीर मुनि! तू इस प्रकार जानकर अभ्यन्तर की वासना को छोड़।** गन्ध छोड़। यह अभ्यन्तर की गन्ध-गन्ध है। पाठ में गन्ध है न? शुभ और अशुभ राग का प्रेम है, वह मिथ्यात्व की गन्ध है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि अन्दर की गन्ध छोड़। समझ में आया? उसका अर्थ यहाँ किया वासना। पाठ में गन्ध है। आहाहा! कहते हैं कि तुझे राग की गन्ध बैठी है, हों! पुण्य-पाप अधिकार में कहा है न? कि जो कुशील है पुण्यभाव, शुभभाव संसार में प्रवेश कराता है, उसे तू भला किस प्रकार मानता है? उसे तू अच्छा किस प्रकार कहता है? पुण्य-पाप के अधिकार में शुरुआत में लिया है। यह शुभभाव, यह पुण्यभाव, वह कुशील है, आत्मा

के स्वभाव से विरुद्ध भाव है। आहाहा! उसे तू सुशील मानकर, संसार में प्रवेश करावे उसे सुशील कैसे कहता है? भला कैसे कहता है? आहाहा! समझ में आया?

भावलिंगी मुनि होते हैं, उन्हें ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प तो आते हैं, होते हैं। हो, हो, परन्तु वे आदरणीय नहीं। वे स्वभाव से विरुद्ध भाव, जहरभाव है। भगवान अमृतस्वरूप है, उसके अमृत के अनुभव के समक्ष यह राग की वृत्तियाँ जितनी पंच महाव्रत, व्यवहाररत्नत्रय है, वह सब जहर है। अमृत और जहर का विरोध है। आहाहा! भारी बात पूरी। समझ में आया? कहते हैं कि गन्ध को छोड़ न, भाई! तुझे गन्ध बैठी है। यह शीशा होवे न घासतेल का शीशा? शीशा समझते हैं? बोतल। अन्दर हो... घासतेल हो, उसे निकाले तो भी अन्दर गन्ध रह जाती है। ऐसी गहरी गन्ध रहे, उसे तो पानी और तेजाब डाले बराबर, तब साफ होती है। उसी प्रकार (यहाँ) कहते हैं, तुझे अनादि विकल्प, दया, दान, व्रत, और रागादि की गन्ध ऐसी बैठी है, ऐसी गन्ध बैठी है कि उस गन्ध में मिथ्यात्वभाव का सेवन है। अब तो छोड़ गन्ध, ऐसा कहते हैं। शुद्धभाव बतलाना चाहते हैं न? शुद्धभाव दर्शनशुद्धि, शुद्धभाव। यह शुभभाव की गन्ध तुझे बैठी है, ऐसा कहते हैं। द्रव्यलिंगी मुनि हुआ है न?

हे धीर मुनि! तू इस प्रकार जानकर अभ्यन्तर की वासना को छोड़। है न? पाठ में है न? **'गंधं अब्भंतरं धीर उज्झसु'** ऐसा है। **'गंधं अब्भंतरं धीर उज्झसु'** छोड़-छोड़। आहाहा! तूने स्त्री, पुत्र अनन्त बार छोड़े। वह तो संयोगी चीज़ है। परन्तु वह संयोगीभाव जो है, वह वास्तव में संयोगी उपाधिभाव है, पुण्य-पाप का कुशीलभाव है, उसकी तुझे गन्ध बैठी है। यह कुछ न कुछ लाभदायक है, किंचित् लाभदायक है, किंचित् लाभदायक है। अब छोड़ गन्ध, भाई! आहाहा! समझ में आया? वह तो बन्ध का कारण है। मुनि को भी विकल्पादि राग होता है, परन्तु वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? परन्तु साथ में होता है, इससे उसे व्यवहार है, ऐसा बतलाया है। बस इतना होता है। परन्तु वह लाभदायक है, धर्म का कारण है, ऐसा नहीं। आहाहा! भारी कठिन बात। समझ में आया?

भावार्थ - जो बाह्य बांधव, कुटुम्ब तथा मित्र इनको छोड़कर निर्ग्रन्थ हुआ... नग्न-दिगम्बर मुनि हुआ। उसकी बात है, हों! **अभ्यन्तर का ममत्वभावरूप**

वासना... अभ्यन्तर की ममत्वभावरूप वासना। ममत्व अर्थात् अहं राग वह मैं। वह मुझे लाभ करेगा, वह मेरी चीज़ है। आहाहा! **इष्ट-अनिष्ट में रागद्वेष वासना न छूटी...** यह ठीक है और अठीक है। शरीर की अनुकूलता क्रिया ठीक है और प्रतिकूलता अठीक है। **उसको निर्ग्रन्थ नहीं कहते हैं।** आहाहा! ग्रन्थ है न? ग्रन्थ है न? राग की गाँठ। राग की गाँठ छूटे तो निर्ग्रन्थ कहते हैं। राग की एकताबुद्धि की गन्ध हो, वह निर्ग्रन्थ नहीं, अनिर्ग्रन्थ है—सग्रन्थ है। आहाहा! निर्ग्रन्थो। भगवान तो निर्ग्रन्थस्वरूप है। आता है न? नियमसार। नियमसार में शुद्धभाव अधिकार में आता है। निदंडो-निगंथो। बहुत बोल आते हैं। वहाँ निर्ग्रन्थ लिया है। आत्मा तो निर्ग्रन्थस्वरूप है। शुद्धभाव अधिकार में। राग, व्यवहार, निश्चय के जो विकल्प बाह्य पर्याय के, उन सब से रहित निर्ग्रन्थ है। आहाहा! यह बाह्य से छोड़ा, वह निर्ग्रन्थ नहीं।

निर्ग्रन्थ हुआ और अभ्यन्तर का ममत्वभावरूप वासना तथा इष्ट-अनिष्ट में रागद्वेष वासना न छूटी तो उसको निर्ग्रन्थ नहीं कहते हैं। लो! **अभ्यन्तर वासना छूटने पर निर्ग्रन्थ होता है,...** आहाहा! शुद्ध चैतन्य आनन्द की दृष्टि होने से, उसका अनुभव होने से निर्ग्रन्थ कहते हैं। **इसलिए यह उपदेश है कि अभ्यन्तर मिथ्यात्व कषाय छोड़कर...** ऐसी बात है, लो, ठीक! बहुत अच्छा अर्थ किया है। पण्डित जयचन्द्र भी... **मिथ्यात्व कषाय छोड़कर भावमुनि बनना चाहिए।** सम्यग्दर्शन और अकषाय परिणमन बिना भावमुनि होता नहीं। कहो, समझ में आया? पाठ में लिया है न? **'इय भाविऊण उज्झसु गंधं अब्भंतरं धीर'** अभ्यन्तर में गहरे... गहरे... गहरे तुझे राग का रुचि का प्रेम है। वह गन्ध तुझे गहरी बैठी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : खबर नहीं पड़ती होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर पड़े तो छोड़े नहीं?

मुमुक्षु : ... छूटे या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। अन्दर घुस गयी है अन्दर में गहरी। दूसरा कहे तो निकलती होगी?

मुमुक्षु : ... भाव बैठ जाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु बैठना चाहिए न इसे ? कहाँ बैठाता है ? गहरे... गहरे... गहरे... गहरे... कुछ राग से लाभ होगा, निमित्त से लाभ होगा, यह राग का-रुचि का प्रेम है, मिथ्यात्व है। कितना सुने अनन्त बार ग्यारह अंग किये तो भी। ऐसा हो गया है यह।

देखो न! यह तो साधु हुआ, उससे कहते हैं। सब छोड़ा। क्या छोड़ा ? कुछ छोड़ा नहीं। राग-पुण्य के परिणाम का प्रेम और रुचि रही है, वहाँ तक मिथ्यात्व और कषाय का पोषण है, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहाहा! यह लाख बात सुने तो भी वह गन्ध अन्दर बैठी हो न, उसमें से इसे निकलना कठिन पड़ता है। परन्तु वह कुछ है... कुछ है... कुछ राग की मन्दता में कुछ है। जहर है। उसके बदले कुछ उसमें से है... कुछ लाभ है... कुछ है... कुछ है... कुछ है।

मुमुक्षु : ऐसे करते-करते होगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही बात है। यही कहते हैं। करते-करते होगा, यही जहर है, कहते हैं। यह तो मिथ्यात्व का जहर है। आहाहा! यह बात कठिन है। व्यवहार, राग परन्तु अपेक्षा, व्यवहार धर्म और राग की अपेक्षा बिना का तत्त्व है। ऐसा तत्त्व है। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा निज तत्त्व है। वह राग से ज्ञात हो या पर से ज्ञात हो, ऐसा वह तत्त्व नहीं है। हो, राग हो तो जहर है। शास्त्र में आता है। अर्थात् शास्त्र में व्यवहार होता है। यदि व्यवहार न हो, तब तो वीतराग हो जाये। परन्तु व्यवहार होता है, इसलिए लाभदायक है, (ऐसा नहीं है)। वह तो राग है। समझ में आया ? कठिन बात है, भाई! अभी तो इसे श्रद्धा में (बात) बैठना, व्यवहार श्रद्धा, हों! हाँ करना कि इस राग का लाभ जरा भी नहीं है। लाभ तो स्वभाव की दृष्टि होने से, निर्ग्रन्थ होने से लाभ है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी राग की एकता टूटी, इस अपेक्षा से निर्ग्रन्थ है। यहाँ तो मुनि की बात है। तीन कषाय का अभाव होकर जिसने वीतरागता प्रगट की है, वह निर्ग्रन्थ मुनि कहलाता है। क्या हो ? समझ में आया ?

यहाँ तो अभी व्यवहार से धर्म होता है, लाभ होता है—ऐसी प्ररूपणा करते हैं। और साधक कहता है कि हमने तो वीतरागभाव से लाभ होता है, ऐसी बात की है और तू यह नया कहाँ से लाया तेरे घर का ? समझ में आया ? आत्मावलोकन में दीपचन्दजी

ने कहा है न ? गृहस्थाश्रम में। धर्मात्मा तो वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग धर्म की बात करते हैं। मूहू... मूहू। बारम्बार वीतराग स्वरूप से आत्मलाभ। राग से लाभ, यह बात मुनि नहीं करते, धर्मात्मा समकिती नहीं करते। समझ में आया ? गाथा बतायी या नहीं ? आत्मावलोकन। भाई साधर्मी दीपचन्दजी (कृत) मूहू... मूहू वीतराग-वीतराग। मूहू अर्थात् ? ऐई ! पण्डितजी ! मूहू-मूहू अर्थात् ? बारम्बार। बारम्बार, ऐसा पाठ है, हों ! आत्मावलोकन में। वीतराग-वीतराग। क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप ही त्रिकाल है। उसकी वीतराग दृष्टि द्वारा ही उसका भान होता है। राग द्वारा बिल्कुल आत्मा का लाभ नहीं होता। हेय है, उसे उपादेय माने, लाभदायक माने, यह गन्ध तुझे बैठी है। अभ्यन्तर में गन्ध बैठी है। गहरी-गहरी बैठी हुई नहीं निकलती। और यह निकले बिना तू राग का त्यागी नहीं होता, तब तक समकिती नहीं है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। निमित्त से लाभ मानता है, तब तक भी वह मिथ्यात्वभाव है। तो राग, वह निमित्त है। छूटे कैसे अब वह ? परन्तु कहा नहीं ? उसे छोड़े तो छूटता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश दे तो उपदेश... उपदेश वाणी पर है। सुनने का विकल्प उठे, वह पर है।

यहाँ तो राग के लक्ष्य से जो जानपना हो न स्वयं से, वह भी पर है। वह आत्मा का कहाँ है ? वह तो परावलम्बी ज्ञान है। वह आत्मा का ज्ञान नहीं। सूक्ष्म बात है। अमरचन्दभाई ! आहाहा ! राग जो है, वह उसका जीव ज्ञान करे, परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान, वह ज्ञान आत्मा का नहीं। आहाहा ! गजब बातें, भाई ! ऐसा राग का ज्ञान तो अनन्त बार किया। नौवें ग्रैवेयक गया तो कितनी क्रिया जिसकी। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के, तो क्रोध न करे। परन्तु उससे क्या ? उससे क्या ? आता है न उसमें ? भाई ! कर्ता-कर्म (अधिकार) में। हम शुद्ध हैं, अबद्ध हैं, ऐसे हैं, ऐसे हैं - उससे क्या ? वह विकल्प है। १४२ गाथा में है। उससे क्या ? यहाँ तक आया। हम अबद्ध हैं, अविकारी हैं, शुद्ध हैं परन्तु यह भी विकल्प है।

मुमुक्षु : अन्दर ध्रुव को...

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ा ही नहीं। पकड़ा हो तो हम अबद्ध हैं, ऐसा विकल्प उठे नहीं। समझ में आया? है या नहीं उसमें? १४२ (गाथा) है। यह तो समयसार तो सैकड़ों बार वाँचन हो गया है। व्याख्यान में सत्रहवीं बार वाँचन होता है। एक-एक श्लोक और गाथा पद-पद के टुकड़े हो गये सब। कितना कहा? क्या कहा? १४२। देखो!

परन्तु उससे क्या? जो आत्मा उन दोनों नयपक्षों को उल्लंघ गया है, वही समयसार है,... निश्चय से मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ, निर्मल हूँ, अभेद हूँ, एकरूप है, वह भी विकल्प है। और विकल्प है, उसका कर्ता होता है, तब तक मिथ्यात्व है। सूक्ष्म बात है। वस्तुस्थिति ऐसी है। विकल्प क्या? यह क्या? देखो! 'उससे क्या?' है न? देखो! **जीव के और पुद्गलकर्म के अनेक द्रव्यपने से देखने पर उन्हें अत्यन्त भिन्नता होने से जीव में कर्म अबद्धस्पृष्ट है, ऐसा निश्चयनय का पक्ष है।** जीव में कर्म अबद्धस्पृष्ट है। कर्म बद्धस्पृष्ट है ही नहीं। राग आत्मा में है ही नहीं। **ऐसा निश्चय का पक्ष है। परन्तु उससे क्या?** आहाहा! ऐई! अमरचन्दभाई! संस्कृत है, हों! मोहनभाई! यह तो चिल्लाहट मचावे ऐसा है। चिल्लाहट करता नहीं, ऐसा का ऐसा अपनी पकड़ कुछ रखकर और शास्त्र में खोजकर अपनी वांक निकाले। दृष्टिफेर है न।

यहाँ तो कहते हैं कि अबद्धस्पृष्ट हूँ, यह भी एक विकल्प है, राग है, वह कर्ता है। कर्ता अज्ञानी, राग का कर्ता और विकल्प, वह कर्म। तब तक वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! ऐई! यहाँ तो भाई 'रण चढ़ा रजपूत छुपे नहीं।' यह बात है। यह वीतराग का मार्ग ऐसा है कि इससे सुना नहीं गया। सुने तो अन्दर में गहरे... गहरे... गहरे... गहरे... ठीक बराबर है। परन्तु यह तो होता है, ऐसा तो होता है।

यहाँ तो यह कहते हैं कि देखो! निश्चयनय का पक्ष किया। अबद्धस्पृष्ट है, शुद्ध है, एक है, अखण्ड है। उससे क्या? उस विकल्प के पार होकर आत्मा का अनुभव करे, तब इसे धर्म की पहली दृष्टि, सम्यग्दर्शन कहा जाता है। दूसरे को समझाना आया, उससे क्या? कौन समझावे? कौन समझावे? धूल, वह वाणी तो जड़ की है। विकल्प हुआ, वह राग है। आहाहा! समझ में आया? वह समझाना आवे, वह तो और व्यवहार में गया। यह तो राग ही हम नहीं। मैं तो वीतराग मेरा स्वरूप है। ऐसा भी विकल्प जो

है, उससे क्या ? उससे तुझे लाभ क्या ? आहाहा ! ऐई ! पण्डितजी ! कर्ता-कर्म अधिकार।

अभ्यन्तर वासना छूटने पर निर्ग्रन्थ होता है, इसलिए यह उपदेश है कि अभ्यन्तर मिथ्यात्व कषाय छोड़कर भावमुनि बनना चाहिए। मिथ्यात्व पहला, पश्चात् कषाय छोड़ने का। पहला तो कषाय और मैं एक हूँ, ऐसा मिथ्यात्वभाव छोड़। इस राग से और विकल्प से अत्यन्त भिन्न चीज़ है। ऐसी चीज़ की श्रद्धा-ज्ञान कर और कषाय छोड़ और स्थिर हो, मुनि हो। **भावमुनि बनना चाहिए।** लो!

गाथा-४४

आगे कहते हैं कि जो पहिले मुनि हुए उन्होंने भावशुद्धि बिना सिद्धि नहीं पाई है। उनका उदाहरणमात्र नाम कहते हैं। प्रथम ही बाहुबली का उदाहरण कहते हैं –

देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर!।
अत्तावणेण जादो बाहुबली कित्तियं[1] कालं।।४४।।

देहादित्यक्तसंगः मानकषायेन कलुषितः धीर!।
आतापनेन जातः बाहुबली कियन्तं कालम्।।४४।।

देहादि परिग्रह छोड़ बाहूबली मान कषाय से।
कलुषित रहे कुछ काल आतापन से भी शिव नहिं गए।।४४।।

अर्थ – देखो, बाहुबली श्री ऋषभदेव का पुत्र देहादिक परिग्रह को छोड़कर निर्ग्रन्थ मुनि बन गया तो भी मानकषाय से कलुष परिणामरूप होकर कुछ समय तक आतापन योग धारणकर स्थित हो गया, फिर भी सिद्धि नहीं पाई।

भावार्थ – बाहुबली से भरतचक्रवर्ती ने विरोध कर युद्ध आरंभ किया, भरत का अपमान हुआ। उसके बाद बाहुबली विरक्त होकर निर्ग्रन्थ मुनि बन गए, परन्तु कुछ मानकषाय की कलुषता रही कि भरत की भूमि पर मैं कैसे रहूँ? तब कायोत्सर्ग योग से एक वर्ष तक खड़े रहे, परन्तु केवलज्ञान नहीं पाया। पीछे कलुषता मिटी तब केवलज्ञान

१. 'कित्तियं' पाठान्तर 'कितियं'

उत्पन्न हुआ। इसलिए कहते हैं कि ऐसे महान पुरुष बड़ी शक्ति के धारक ने भी भावशुद्धि के बिना सिद्धि नहीं पाई तब अन्य की क्या बात? इसलिए भावों को शुद्ध करना चाहिए, यह उपदेश है।।४४।।

गाथा-४४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो पहिले मुनि हुए उन्होंने भावशुद्धि बिना सिद्धि नहीं पाई है। देखो! दृष्टान्त कैसा देते हैं, देखो! बाहुबली मुनि थे, भावलिंगी सन्त थे। परन्तु वह जरा संज्वलन का कषाय अंश रह गया, बारह-बारह महीने तक सूखे खड़े-खड़े परन्तु केवल (ज्ञान) नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया? **बाहुबली का उदाहरण कहते हैं –**

देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर!।
अत्तावणेण जादो बाहुबली कित्तियं कालं।।४४।।

अर्थ – देखो, बाहुबली श्री ऋषभदेव का पुत्र देहादिक परिग्रह को छोड़कर निर्ग्रन्थ मुनि बन गया... निर्ग्रन्थ मुनि, भावलिंगी सन्त छठवें गुणस्थान में। आहाहा! दृष्टान्त उत्कृष्ट लिया। **तो भी मानकषाय से कलुष परिणामरूप होकर...** अरे! यह भरत की भूमि है। मैं यहाँ खड़ा हूँ, इतना संज्वलन का गहरा मान रह गया। केवलज्ञान नहीं हुआ। बारह-बारह महीने तक वेलड़ियाँ लिपटीं। समझ में आया? **तो भी मानकषाय से कलुष परिणामरूप होकर...** मुनि, हों! भावलिंगी सन्त हैं परन्तु संज्वलन का लोभ जरा (रह गया)। **कुछ समय तक आतापन योग धारणकर स्थित हो गया,...** देखो! बारह महीने तक ऐसे (खड़े रहे)। **फिर भी सिद्धि नहीं पाई।** केवलज्ञान नहीं मिला। आहाहा! इतनी खटक रह गयी थोड़ी।

भावार्थ – बाहुबली से भरतचक्रवर्ती ने विरोध कर युद्ध आरंभ किया,... विरोध किया। **बाहुबली से भरतचक्रवर्ती ने विरोध कर युद्ध आरंभ किया, भरत का अपमान हुआ। उसके बाद बाहुबली विरक्त होकर निर्ग्रन्थ मुनि बन गए, परन्तु कुछ मानकषाय की कलुषता रही...** संज्वलन की, हों! संज्वलन। चौथी कषाय। आहाहा!

यह देखो न! **भरत की भूमि पर मैं कैसे रहूँ? तब कायोत्सर्ग योग से एक वर्ष तक खड़े रहे, परन्तु केवलज्ञान नहीं पाया।** किसकी भूमि? भाई को जरा बुरा लगा होगा। ... यह नहीं बने। समझ में आया? यहाँ यह दृष्टान्त इसमें डाला है। बाहुबली ध्यान में रहे। ऐसा कि मैं यदि भगवान के पास जाऊँ तो मुझसे छोटे ९८ भाई हैं, उन्हें वन्दन करना पड़ेगा। ऐसा नहीं है। ऐसा श्रीमद् में आता है न, इसलिए इसमें अर्थ में डाला है। अगासवालों ने। यह है न? ... पाठ में है। बाहुबल का पाठ है न? मोक्षमाला, उसमें यह लिखा है। ऐसा कि मैंने दीक्षा ली है परन्तु मुझसे दूसरे छोटे हैं। मुझे उन्हें वन्दन कैसे किया जाये? ऐसा नहीं। यहाँ तो मात्र चक्र मारा था बाहुबली के ऊपर और वह चक्र वापस गया, इसलिए वैराग्य (आया)। आहाहा! यह संसार! समकिती तो थे। आत्मभानवाले तो थे। दोनों समकिती हैं। भरत चक्रवर्ती ने चक्र मारा, वे भी समकिती हैं। वापस आया भरत चक्रवर्ती के हाथ में। आहाहा! वैराग्य हुआ। यह संसार! सगे भाई को मारने! अरे! यह तो चरमशरीरी और एक कुल के मनुष्य को मार नहीं सकता। फिर ध्यान में खड़े रहे ऐसा है वहाँ श्वेताम्बर में। ब्राह्मी, सुन्दरी है न उनकी पुत्रियाँ? उन्होंने कहा कि जा भाई! समझा। ऐसी बात आती है। परन्तु यह बात नहीं है। यह बात पहले मैंने की थी, तब उन लोगों को अच्छी नहीं लगी। (संवत्) १९९९ में। भाई! यह बात नहीं है। मात्र यह भरत चक्रवर्ती का राज है, इसमें खड़े (हैं), इतना राग रह गया, बस। उसकी जमीन में। उन्हें बुरा लगा होगा? यह बात नहीं। जाऊँगा तो ९८ को नमन करना पड़ेगा। छोटे साधु हैं। ऐसा नहीं होता। फिर ब्राह्मी, सुन्दरी को भगवान ने वहाँ भेजा, ऐसा कहते हैं। ऐसे ध्यान में खड़े हैं न, बाहुबली?

'वीरा मोरा गज थकी उतरो।' मानरूपी हाथी में चढ़े हैं न? ब्राह्मी-सुन्दरी कहती हैं। 'वीरा मोरा गज थकी उतरो, ए गज चढ़े केवल न होय रे, गज चढ़े केवल न होय रे। वीरा मोरा गज थकी उतरो।' यह क्या कहते हैं? मैं तो कोई गज-हाथी पर चढ़ा नहीं। और यह क्या कहती हैं? उन्हें ... ओहोहो! कुछ कषाय के अंश पर मैं चढ़ा हूँ। ऐसा करके छोड़ते हैं और एक अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान। आहाहा!

मुमुक्षु : भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मी-सुन्दरी को कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ऋषभदेव ने कहा। ऋषभदेव भगवान ने ब्राह्मी-सुन्दरी को कहा कि तुम वहाँ बाहुबली के पास जाओ। यह बात श्वेताम्बर में आती है। परन्तु यह बात प्रमाणवाली नहीं है। बात यह सुसंगतवाली है। क्योंकि ब्राह्मी-सुन्दरी स्त्री वहाँ जाये और यह सब बात भगवान भेजे... परन्तु उन लोगों में ऐसी बात आती है। लोगों को अच्छी लगती है न ऐसे झट। 'वीरा मोरा गज थकी उतरो।' उनको तो ऐसा लगे कि आहाहा! बहिनें भाई को समझाने जाती हैं, तुम गज से उतरो। लोगों को ठीक लगता है अन्दर। विचार आता है, आहाहा! मैं कहाँ हूँ? क्या कहती है बहिन? बात यह है। यह दिगम्बर सम्प्रदाय में जो है, वह बात मैंने बहुत वर्ष पहले की थी, बहुत वर्ष पहले। श्रीमद् में पाठ ऐसा है। और उसमें अर्थ यह भरा, देखो! उसमें। यह है न? ४४। बाहुबली है न? ४४ गाथा। उसमें यह भरा है। यह गाथा है न वह? उसमें गुजराती अर्थ किया है। कल गुजराती दिखाया था न? कल नहीं दिखाया था?

'ऋषभदेव भगवान के पुत्र बाहुबली और भरत को युद्ध हुआ। भरत उसमें पराजित हुए, इसलिए उन्होंने बाहुबली को मारने के लिये चक्र भेजा। परन्तु चक्र एक पिता के पुत्र पर नहीं चल सका। निष्फल गया। बाहुबली ने भरत को मारने के लिये मुट्ठी उठायी। परन्तु विचार आया कि किसलिए भरत का घात करना? उठायी हुई मुट्ठी वापस नहीं आयी। फिर लोंच किया।' नहीं मारते। 'ऐसा विचारकर पंच मुट्ठी लोंच करके नग्न दिगम्बर चर्या ग्रहण की। भगवान के पास जाने का विचार किया। वहाँ मान बीच में आया? मुझसे छोटे ९८ भाईयों ने मुझसे पहले दीक्षा ली है, उनको मुझे वन्दन करना पड़ेगा।' यह श्वेताम्बर की शैली है। वस्तु ऐसी नहीं है। मात्र उन्हें रहा कि भाई को बुरा लगा होगा? बस! वे जहाँ आकर पैर छूते हैं... ओहोहो! एकदम केवलज्ञान। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान।

'ऐसा करके आतापन योग में एकाग्र ध्यान में रहे। सर्दी-वर्षा में बारह-बारह महीने आहार बिना किये। अडोल खड़े रहे। अन्दर मान था। केवलज्ञान हुआ नहीं। यह दोष भगवान के निकट जानकर अपनी ब्राह्मी-सुन्दरी नाम की कन्या हुई, बहिनों ने उन्हें मान तज देने की प्रेरणा की। इसलिए वन्दन करने पैर उठाये और मान छोड़ा।' ऐसा कहते हैं। पैर छूने के लिये कदम उठाया।

मुमुक्षु : फिर श्रेणी रहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो ध्यान में थे। ऐसे भरत चक्रवर्ती आते हैं। अपने प्रवचन मण्डप में है। भरत आते हैं और पूजा करते हैं। उन्हें कुछ नहीं। एकदम ध्यान में आकर केवलज्ञान। बात ऐसी है। मूल तो हो, वह बात हो न। उसमें डाला है, इस गाथा के अर्थ में। बहुत ऐसा सब डाल दिया है। दिगम्बर की शैली में श्वेताम्बर की शैली डाल दी, मेल बिना की। मेल नहीं खाता।

मुमुक्षु : पैर उठता नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर उठाया। पैर उठाया क्या, मान छोड़ा। ऐसा।

यहाँ तो **केवलज्ञान नहीं पाया। पीछे कलुषता मिटी, तब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।** बस। मुनि तो थे। भावलिंगी आत्मा के स्वादिष्ट थे। प्रचुर स्वसंवेदन। परन्तु जरा संज्वलन का। है उसमें। संस्कृत में संज्वलन। संस्कृत में शब्द है। ईषत् कषाय... संज्वलन-मान। है न? संस्कृत में है। संज्वलन मान उसमें भी है। उसमें भी संज्वलन मान है। संज्वलन—चौथी कषाय का जरा अंश रह गया, बस। श्रेणी नहीं हुई। आहाहा! जहाँ अन्दर से हट गया, अरे! भरत तो इस प्रकार वन्दन करते हैं। इन्हें तो कुछ बुरा लगा नहीं लगता। लो! एकदम अन्दर समाधान हो गया। उत्तम पुरुष थे, चरमशरीरी थे। दोनों चरमशरीरी। आहाहा!

कहते हैं, **इसलिए कहते हैं कि ऐसे महान पुरुष बड़ी शक्ति के धारक ने...** महापुरुष, महाशक्ति के धारक। वर्ष-वर्ष तक वेलड़ियाँ लिपटीं भगवान बाहुबली। नीचे सर्प ने बिल बनाये। अंश रह गया अन्दर। नहीं तो अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान ले, एकदम। तो कहते हैं कि ऐसे तीन कषाय के नाशवाले सन्तों को भी संज्वलन की जरा-सी कषाय के कारण केवलज्ञान अटक गया तो दूसरों को जो राग के प्रेमी और रागी की रुचिवाले हैं, वह अनादि गन्ध पड़ी है, उन्हें समकित अटका है। समझ में आया? आहाहा! वह समकित क्यों नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो न! कल बात सुनी न? भाई की। नवनीतभाई का साला ४२ वर्ष की उम्र। बीस दिन। कितने दिन रहे? असाध्य। युवा शरीर, छोटी उम्र। अब यह तो देह की होने की (दशा) उसमें कौन

रोके ? आहाहा ! शरीर बड़ा मजबूत था। ४२ वर्ष अर्थात् वे तो छोटे बालक कहलाये न हमारे ८०-८१ के समक्ष तो। आहाहा ! वह बहिन चली गयी, देखो न ! बेचारी रमाबेन। सपना हो गया। था, ऐसा हो गया। यह तो देह की स्थिति हो, उसमें थोड़ा फेरफार कुछ होता है ? आहाहा ! जीते जी असाध्य। गजब है न ? भाई की बात बेचरभाई, नानालालभाई के भाई। २२ दिन असाध्य। करोड़पति थे। रुपया क्या करे वहाँ ? धूल करे ? आहाहा ! हो गया।

इसी प्रकार अज्ञानी अनादि से मिथ्यात्व से असाध्य है। समझ में आया ? उसे यह साध्य लाने की बात है। भाई ! तुझे तेरे साध्य की खबर नहीं। वह तो चैतन्यस्वभाव भगवान पवित्र आनन्द अनन्त ज्ञान का बल जिसमें है, अनन्त वीर्य का बल है। भाई ! वह तैयार हुआ एक क्षण में विकार छेदकर केवलज्ञान ले, ऐसा ही बलवन्त आत्मा है, ऐसा ही बलवन्त प्रभु है। उसे तूने पामररूप से माना। तेरी पामरता मिथ्यात्व के कारण जाती नहीं। आहाहा ! मिथ्यात्व जाने पर आत्मा को प्रभु मानता है आत्मा। आहाहा ! मैं तो अनन्त ईश्वर का धनी हूँ। मेरी ईश्वरता के समक्ष जगत की कोई ईश्वरता दूसरी है ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

पर्याय का जो अंश है, राग तो दूसरा रहा, परन्तु पर्याय का अंश है, वह रुचि भी पामर है। आहाहा ! भगवान अनन्त बलवन्त और यह तुझे शोभा नहीं देता। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया ? आहाहा ! अनन्त-अनन्त ज्ञान का बलिया। आहाहा ! उसमें विवाह करने आवे तब नहीं कहते हैं न ? 'वापस नहीं फिरे नाणा का बळिया...' ऐसा कुछ गाते थे। महिलायें गाती थीं। अपने काठियावाड़ में गाते हैं। विवाह में गाते हैं। विवाह होता है न, लगन ? उसमें महिलायें गाती हैं। ऐसा कि लगन होता है न ? हमारा वर है वह धन का बलवान है। नाणुं अर्थात् पैसा। पैसे का बलवान, वह वापस नहीं मुड़े। विवाह करके आयेगा, ऐसा। यह महिलायें गातीं, अपने। ऐई ! सुना है या नहीं तुमने ? तुमने तो कितने वर्ष मुंडाये ? ८५ हुए। ऐसा कहते हैं न बनिया ?

ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की बलिया वापस नहीं मुड़ता। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! तेरा पैसा धूल अब वहाँ कहीं रह गये। यह ज्ञान का धनी अनन्त। पहले अपने आ गया, नहीं ? ज्ञान की भावना की नहीं। यह आया न ? ज्ञान का बलिया अनन्त धनी प्रभु है।

आहाहा! उसके स्वभाव की सामर्थ्य में जहाँ चढ़ा, कौन जगत की चीज़, रागादि चीज़ कौन है? समझ में आया? आहाहा! वह वापस नहीं मुड़ता। वह ज्ञान का बलिया वापस नहीं मुड़ता। केवलज्ञान लेकर ही रहता है। ऐसा यहाँ कहते हैं। भाई! तूने क्या किया अभी तक? द्रव्यलिंग धारण करके क्या किया तूने यह? जो छोड़ने का था, उसे छोड़ा नहीं और नहीं छोड़ने (जैसा था), वह तो छूटा हुआ था, उसे छोड़ा, ऐसा तूने माना। तो तेरी कल्पना खोटी है। छूटे हुए ही थे। कहाँ घुस गये थे तुझमें? तूने माना है कि राग मैं हूँ, वह तुझमें प्रविष्ट है पर्याय में। समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। खड़ा करे एक बार ऊँचा हो! यह तुझे कुछ शोभा देता है? मुनि हुआ द्रव्यलिंगी, तथापि वासना की गन्ध नहीं छोड़ी? आहाहा! समझ में आया?

तेरा ज्ञान का बल इतना प्रभु! कि लोकालोक को तीन काल से अनन्तगुने लोकालोक क्षेत्र और काल हो तो एक समय में जाने, ऐसी तो तुझमें ज्ञानबल की सामर्थ्य-शक्ति है। उसकी तुझे अनुभव में प्रतीति नहीं आती और राग, वह मैं, यह गन्ध तुझे बैठी, बाहुबली को जरा मान की गन्ध रह गयी, यह (तुझे) तो मिथ्यात्व की गन्ध है। समझ में आया? आहाहा! देखो न!

ऐसे महान पुरुष बड़ी शक्ति के धारक ने भी भावशुद्धि के बिना सिद्धि नहीं पाई... भावशुद्धि तो थी, समकित की शुद्धि थी, चारित्र की शुद्धि थी। परन्तु संज्वलन का जरा मान का एक अंश रह गया। **तब अन्य की क्या बात?** ऐसा जहाँ हाथी गोते खाये वहाँ पामर की, गाडर की क्या हैसियत? गाडर समझते हो? भेड़-भेड़। बकरा-भेड़िया। जहाँ गज गोते खाये, हाथी गोते खाये। वहाँ भेड़ की क्या हैसियत? गाडर की क्या हैसियत? ऐसा कहते हैं। गगा है न? 'गज गोते खाये वहाँ गाडरना क्यां गजा?' वे ग-गा है न चार। यह कहते हैं, देखो न!

बड़ी शक्ति के धारक ने भी भावशुद्धि के बिना... ऐसे किनारे आये हुए जैसे केवलज्ञान को लेने परन्तु अटका राग जरा एक लोभ का अंश मन का (संज्वलन का) तो दूसरे पामर की क्या बात? **इसलिए भावों को शुद्ध करना चाहिए, यह उपदेश है।** लो! इसलिए भाव शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान करना और फिर स्वरूप में रमणता करना, ऐसा उपदेश है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-४५

आगे मधुपिंगल मुनि का उदाहरण कहते हैं –

महुपिंगो णाम मुणी देहाहारादिचित्तवावारो।
सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय।।४५।।

मधुपिंगो नाम मुनिः देहाहारादित्यक्तव्यापारः।
श्रमणत्वं न प्राप्तः निदानमात्रेण भव्यनुत!।।४५।।

सब तन अशन आदि प्रवृत्ति त्यागि मुनि मधुपिंगल।
वश हो निदान नहीं सु पाई भ्रमणता सुविचार कर।।४५।।

अर्थ – मधुपिंगल नाम का मुनि कैसा हुआ? देह आहारादि में व्यापार छोड़कर भी निदानमात्र से भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुआ उसको भव्यजीवों से नमने योग्य मुनि तू देख।

भावार्थ – मधुपिंगल नाम के मुनि की कथा पुराण में है, उसका संक्षेप ऐसे है – इस भरतक्षेत्र के सुरम्यदेश में पोदनापुर का राजा तृणपिंगल का पुत्र मधुपिंगल था। वह चारणयुगलनगर के राजा सुयोधन की पुत्री सुलसा के स्वयंवर में आया था। वहीं साकेतापुरी राजा सगर आया था। सगर के मंत्री ने मधु पिंगल को कपट से नया सामुद्रिक शास्त्र बनाकर दोषी बताया कि इसके नेत्र पिंगल हैं (माँजरा है) जो कन्या इसको वरे सो मरण को प्राप्त हो। तब कन्या ने सगर के गले में वरमाला पहिना दी। मधुपिंगल का वरण नहीं किया, तब मधुपिंगल ने विरक्त होकर दीक्षा ले ली।

फिर कारण पाकर सगर के मंत्री के कपट को जानकर क्रोध से निदान किया कि मेरे तप का फल यह हो ''अगले जन्म में सगर के कुल को निर्मूल करूँ'' उसके पीछे मधुपिंगल मरकर महाकालासुर नाम का असुर देव हुआ तब सगर को मंत्री सहित मारने का उपाय सोचने लगा। इसको क्षीरकदम्ब ब्राह्मण का पुत्र पापी पर्वत मिला, तब उसको पशुओं की हिंसारूप यज्ञ का सहायक बन ऐसा कहा। सगर राजा को यज्ञ का उपदेश करके यज्ञ करा, तेरे यज्ञ का मैं सहायक बनूँगा। तब पर्वत ने सगर से यज्ञ कराया, पशु होमे। उस पाप से सगर सातवें नरक गया और कालासुर सहायक बना सो यज्ञ

करनेवालों को स्वर्ग जाते दिखाये। ऐसे मधुपिंगल नामक मुनि ने निदान से महाकालासुर बनकर महापाप कमाया, इसलिए आचार्य कहते हैं कि मुनि बन जाने पर भी भाव बिगड़ जावे तो सिद्धि को नहीं पाता है। इसकी कथा पुराणों से विस्तार से जानो।

प्रवचन-११४, गाथा-४५ से ५१, गुरुवार, असोज कृष्ण १, दिनांक १५-१०-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। उसकी ४५वीं गाथा। ४४वीं चली। क्या कहते हैं? भावपाहुड़ में शुद्धभाव जो आत्मा, शुद्धभाव अर्थात् आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वभाव परम पवित्र, उसकी श्रद्धा-सम्यग्दर्शन, जिसको जिनभावना कहते हैं, ऐसी जिनभावना अर्थात् आत्मा वीतरागी स्वभाव, उसका अनुभव करके प्रतीत करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन बिना जितने क्रियाकाण्ड करे, व्यवहार, दया आदि, वह सब मिथ्याभाव है। उसमें कुछ आत्मा का लाभ है नहीं। यह चलता है।

अपना निज स्वभाव जो शुद्ध आनन्द और ज्ञान, उसकी श्रद्धा-दर्शनशुद्धि; दर्शनशुद्धि का अर्थ शुद्धभाव प्रगट करना। पुण्य-पाप का भाव तो अशुद्ध है, बन्ध का कारण है, वह कोई धर्म की चीज़ नहीं। अपना चैतन्यस्वभाव शुद्ध ज्ञानानन्द, उसकी श्रद्धा शुद्ध पर्याय, शुद्ध परिणाम प्रगट करना, वही धर्म और वही मोक्ष का मार्ग है। उसके बिना बाहुबली आदि ... बाहुबली का उदाहरण तो समकित प्राप्त है। बाहुबली को थोड़ा कषाय का अंश रह गया। बारह-बारह महीने तक 'शरीर में वेलडिया लिपटी, केवलज्ञान न पाये।'

अब मधुपिंगल नाम के मुनि का दृष्टान्त देते हैं। आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना मुनिपना बाह्य क्रियाकाण्ड करे, फिर भी उसमें आत्मा का लाभ बिल्कुल होता नहीं। उसका दृष्टान्त देते हैं।

महुपिंगो णाम मुणी देहाहारादिचित्तवावारो।
सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय।।४५।।

अर्थ – मधुपिंगल नाम का मुनि कैसा हुआ? देह आहारादि में व्यापार

छोड़कर... देह और आहार की ममता छोड़कर रहते हैं। देह और आहार दोनों छोड़े हैं। आहाहा! (तो) **भी निदानमात्र से...** निदान करणी का फल, निदान किया उसने। **भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुआ,...** अन्तर अनुभव आत्मा का आनन्द, उसका स्वाद न लिया। **भावश्रमणपने को...** समकिती को भी सम्यग्दर्शन में आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनरहित और भाव साधुपना जो विशेष आनन्द उससे रहित। **भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुआ, उसको भव्यजीवों से नमने योग्य मुनि,...** आचार्य सम्बोधन करते हैं। **भव्यजीवों से नमने योग्य मुनि, तू देख। 'भवियणुय'** भव्य जीव से नमन करने लायक ऐसे जो मुनि, देख। आत्मा के भान बिना, आत्मा के सम्यग्दर्शन अनुभव बिना पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण क्रियाकाण्ड करे तो भी सब निरर्थक हैं। उससे कोई जन्म-मरण मिटते नहीं। समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण ले, पंच महाव्रत पाले, सामायिक, चोविसन्त, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, पच्चखाण सब करे। वह सब तो विकल्प राग है। परन्तु आत्मा अन्तर रागरहित शुद्ध चिदानन्द आत्मा, उसकी दृष्टि-अनुभव, उसके बिना सारा क्रियाकाण्ड निरर्थक है। द्रव्यलिंगपना उसके आत्मा को लाभ का कारण नहीं।

भव्यजीवों से नमने योग्य मुनि,... ऐसे सम्बोधन करते हैं। **'भवियणुय'** नमन करनेयोग्य। भव्यजीव को नमन करनेयोग्य। आत्मा का वीतरागभाव ज्ञानानन्द की प्रतीति-ज्ञान-रमणता जो वीतरागी दशा, ऐसे जो मुनि भव्य जीवों से नमन करनेयोग्य हैं। ऐसे मुनि भव्य जीवों से नमन करनेयोग्य हैं। समझ में आया?

***भावार्थ* – मधुपिंगल नाम के मुनि की कथा पुराण में है, उसका संक्षेप ऐसे है – इस भरतक्षेत्र के सुरम्यदेश में पोदनापुर का राजा तृणपिंगल का पुत्र मधुपिंगल था।** कथा कहते हैं। **वह चारणयुगलनगर के राजा सुयोधन की पुत्री सुलसा के स्वयंवर में आया था।** सुलसा का स्वयंवर था। **वहीं साकेतापुरी राजा सगर आया था। सगर के मंत्री ने मधुपिंगल को कपट से नया सामुद्रिक शास्त्र बनाकर दोषी बताया...** कन्या उससे विवाह न करे, उस कारण से नया सामुद्रिक शास्त्र बनाया। नया बनाया।

इसके नेत्र पिंगल हैं (माँजरा है) जो कन्या इसको वरे, सो मरण को प्राप्त

हो। ऐसा लिखा। **तब कन्या ने सगर के गले में वरमाला पहिना दी।** सागर आया था, उसके गले में डाली। और मधुपिंगल रह गया। **मधुपिंगल का वरण नहीं किया, तब मधुपिंगल ने विरक्त होकर दीक्षा ले ली।** अरे! मेरे साथ कन्या ने शादी नहीं की। **फिर कारण पाकर सगर के मंत्री के कपट को जानकर...** बहु मुनि हुआ उसके बाद पता चला कि वह तो कपट था। **क्रोध से निदान किया कि मेरे तप का फल यह हो 'अगले जन्म में सगर के कुल को निर्मूल करूँ'...** लो! अन्दर आत्मभान बिना सम्यग्दर्शन हो वहाँ ऐसे बड़बड़ाहट निदान हुए बिना रहे नहीं। चीज़ का पता नहीं कि अहो! मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द-सुखस्वरूप सुख का सागर मैं हूँ, मेरे में सुख है। पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-महाव्रत के परिणाम में भी सुख नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी अन्तर्दृष्टि हुए बिना मिथ्यात्व टले नहीं। मिथ्यात्व टले बिना ऐसा निदान आदि किये बिना रहे नहीं।

मधुपिंगल मरकर महाकालासुर नाम का असुर देव हुआ, तब सगर को मंत्री सहित मारने का उपाय सोचने लगा। इसको क्षीरकदम्ब ब्राह्मण का पुत्र पापी पर्वत मिला, तब उसको पशुओं की हिंसारूप यज्ञ का सहायक बन ऐसा कहा। यज्ञ में सहायक हुआ। **सगर राजा को यज्ञ का उपदेश करके यज्ञ करा, तेरे यज्ञ का मैं सहायक बनूँगा। तब पर्वत ने सगर से यज्ञ कराया, पशु होमे। उस पाप से सगर सातवें नरक गया और कालासुर सहायक बना सो यज्ञ करनेवालों को स्वर्ग जाते दिखाये।** देखो! यज्ञ करनेवाले ... देव था न देव? बताया ऐसा।

ऐसे मधुपिंगल नामक मुनि ने निदान से महाकालासुर बनकर महापाप कमाया, इसलिए आचार्य कहते हैं कि मुनि बन जाने पर भी भाव बिगड़ जावे तो सिद्धि को नहीं पाता है। द्रव्यलिंगी मुनि हो फिर भी भाव बिगड़े। अपना शुद्ध चैतन्य सहजानन्द की मूर्ति आत्मा, उसका अनुभव सम्यग्दर्शन, उसके बिना भाव बिगड़े बिना रहते नहीं। **सिद्धि को नहीं पाता है। इसकी कथा पुराणों से विस्तार से जानो।**

गाथा-४६

आगे वशिष्ठ मुनि का उदाहरण कहते हैं –

अण्णं च वसिट्ठमुणी पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।।४६।।

अन्यश्च वसिष्ठमुनिः प्राप्तः दुःखं निदानदोषेण।
तन्नास्ति वासस्थानं यत्र न भ्रमितः जीव!।।४६।।

हैं अन्य मुनी वशिष्ट ने भि निदान से ही दुख सहे।
कोई नहीं स्थान ऐसा जहाँ जीव नहीं भ्रमे।।४६।।

अर्थ – अन्य और एक वशिष्ठ नामक मुनि ने निदान के दोष से दुःख को प्राप्त हुआ इसलिए लोक में ऐसा वासस्थान नहीं है जिसमें यह जीव जन्ममरणसहित भ्रमण को प्राप्त नहीं हुआ।

भावार्थ – वशिष्ठ मुनि की कथा ऐसे है – गंगा और गन्धवती दोनों नदियों का जहाँ संगम हुआ है, वहाँ जठरकौशिक नाम की तापसी की पल्ली थी। वहाँ एक वशिष्ट नाम का तपस्वी पंचाग्नि से तप करता था। वहाँ गुणभद्र वीरभद्र नाम के दो चारणमुनि आये। उस वशिष्ठ तपस्वी को कहा जो तू अज्ञानतप करता है, इसमें जीवों की हिंसा होती है, तब तपस्वी ने प्रत्यक्ष हिंसा देख और विरक्त होकर जैनदीक्षा ले ली, मासोपवाससहित आतापनयोग स्थापित किया, उस तप के माहात्म्य से सात व्यन्तरदेवों ने आकर कहा, हमको आज्ञा दो सो ही करें, तब वशिष्ठ ने कहा, 'अभी तो मेरे कुछ प्रयोजन नहीं है, जन्मान्तर में तुम्हें याद करूँगा।' फिर वशिष्ठ ने मथुरापुरी में आकर मासोपवाससहित आतापन योग स्थापित किया।

उसको मथुरापुरी के राजा उग्रसेन ने देखकर भक्तिवश यह विचार किया कि मैं इनको पारणा कराऊँगा। नगर में घोषणा करा दी कि मुनि को और कोई आहार न दे। पीछे पारणा के दिन नगर में आये वहाँ अग्नि का उपद्रव देख अन्तराय जानकर वापिस चले गये। फिर मासोपवास किया, फिर पारणा के दिन नगर में आये, तब हाथी का क्षोभ देख अन्तराय जानकर वापिस चले गये। फिर मासोपवास किया, पीछे पारणा के

दिन फिर नगर में आये। तब राजा जरासिंघ का पत्र आया, उसके निमित्त से राजा का चित्त व्यग्र था इसलिए मुनि को पड़गाहा नहीं, तब अन्तराय मान वापिस वन में जाते हुए लोगों के वचन सुने – 'राजा मुनि को आहार दे नहीं और अन्य देनेवालों को मना कर दिया' ऐसे लोगों के वचन सुन राजा पर क्रोध कर निदान किया कि – इस राजा का पुत्र होकर राजा का निग्रह कर मैं राज करूँ, इस तप का मेरे यह फल हो, इस प्रकार निदान से मरा।

राजा उग्रसेन की रानी पद्मावती के गर्भ में आया, मास पूरे होने पर जन्म लिया तब इसको क्रूरदृष्टि देखकर कांसी के सन्दूक में रक्खा और वृत्तान्त के लेख सहित यमुना नदी में बहा दिया। कौशाम्बीपुर में मन्दोदरी नाम की कलाली ने उसको लेकर पुत्रबुद्धि से पालन किया, कंस नाम रक्खा। जब वह बड़ा हुआ तो बालकों के साथ खेलते समय सबको दु:ख देने लगा, तब मन्दोदरी ने उलाहनों के दु:ख से इसको निकाल दिया।

फिर यह कंस शौर्यपुर गया, वहाँ वसुदेव राजा के पयादा (सेवक) बनकर रहा। पीछे जरासिंघ प्रतिनारायण का पत्र आया कि जो पोदनापुर के राजा सिंहरथ को बांध लावे, उसको आधे राज्यसहित पुत्री विवाहित कर दूँ। तब वसुदेव वहाँ कंससहित जाकर युद्ध करके उस सिंहरथ को बांध लाया, जरासिंध को सौंप दिया। फिर जरासिंध ने जीवंयशा पुत्रीसहित आधा राज्य दिया, तब वसुदेव ने कहा – सिंहरथ को कंस बांधकर लाया है, इसको दो। फिर जरासिंध ने इसका कुल जानने के लिए मन्दोदरी को बुलाकर कुल का निश्चय करके इसको जीवयंशा पुत्री ब्याह दी, तब कंस ने मथुरा का राज लेकर पिता उग्रसेन राजा को और पद्मावती माता को बन्दीखाने में डाल दिया, पीछे कृष्ण नारायण से मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसकी कथा विस्तारपूर्वक उत्तरपुराण से जानिये। इस प्रकार वशिष्ठमुनि ने निदान से सिद्धि को नहीं पाई, इसलिए भावलिंग ही से सिद्धि है।।४६।।

गाथा-४६ पर प्रवचन

आगे वशिष्ठ मुनि का उदाहरण कहते हैं –

अण्णं च वसिट्ठमुणी पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो।।४६।।

वह भी निदान से। सम्यग्दर्शन बिना, आत्म अनुभव बिना। जिसको आत्मा का स्वाद आया हो सम्यक्त्व में, दूसरी क्रिया में उसको तुच्छता लगती है। पूरा स्वर्ग का भव और फल, वह सब तुच्छ (लगता है)। आनन्द का धाम भगवान आत्मा, उसमें जिसकी अन्तर्दृष्टि सम्यक् हुई, उसके पास तीन लोक का राजा भी सड़े हुए तीन के जैसा लगता है। इन्द्र और इन्द्राणी के भोग भी महा पशु के भोग जैसा भोग है। ऐसा भोग जैसा भव दिखे। समझ में आया? भगवान आत्मा अपनी भावशुद्धि बिना... भावशुद्धि अर्थात् दर्शनबुद्धि।

अर्थ–अन्य और एक वशिष्ठ नामक मुनि ने निदान के दोष से दुःख को प्राप्त हुआ इसलिए लोक में ऐसा वासस्थान नहीं है... जगत में ऐसा कोई स्थान नहीं है कि **जिसमें यह जीव जन्ममरणसहित भ्रमण को प्राप्त नहीं हुआ।** सम्यग्दर्शन बिना द्रव्यलिंग धारण करके भी मुनि हुआ, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले, वह कोई मुनिपना है नहीं, वह कोई धर्म-बर्म है नहीं। समझ में आया? ऐसी क्रिया करके सम्यग्दर्शन बिना चौरासी के अवतार में भटका। **ऐसा वासस्थान (कोई) नहीं है...** ऐसा कहते हैं। **जिसमें यह जीव जन्ममरणसहित भ्रमण को प्राप्त नहीं हुआ।** बड़ी लम्बी कथा है।

भावार्थ – वशिष्ठ मुनि की कथा ऐसे है – गंगा और गन्धवती दोनों नदियों का जहाँ संगम हुआ है, वहाँ जठरकौशिक नाम की तापसी की पल्ली थी। तापसी की पल्ली। **वहाँ एक वशिष्ठ नाम का तपस्वी पंचाग्नि से तप करता था। वहाँ गुणभद्र, वीरभद्र नाम के दो चारणमुनि आये। उस वशिष्ठ तपस्वी को कहा जो तू अज्ञानतप करता है, इसमें जीवों की हिंसा होती है, तब तपस्वी ने प्रत्यक्ष हिंसा देख और विरक्त होकर जैनदीक्षा ले ली, मासोपवाससहित आतापनयोग स्थापित किया,...** एक महीने के उपवास ...

उस तप के माहात्म्य से सात व्यन्तरदेवों ने आकर कहा,... उस तप के माहात्म्य से सात व्यन्तर देव आये। **हमको आज्ञा दो सो ही करें, तब वशिष्ठ ने कहा, 'अभी तो मेरे कुछ प्रयोजन नहीं है, जन्मान्तर में तुम्हें याद करूँगा।'** ऐसा उसे उक्त ऐसा कहा। **फिर वशिष्ठ ने मथुरापुरी में आकर मासोपवाससहित आतापन योग स्थापित किया। उसको मथुरापुरी के राजा उग्रसेन ने देखकर भक्तिवश यह**

विचार किया कि मैं इनको पारणा कराऊँगा। नगर में घोषणा करा दी कि मुनि को और कोई आहार न दे। पीछे पारणा के दिन नगर में आये, वहाँ अग्नि का उपद्रव देख अन्तराय जानकर वापिस चले गये। फिर मासोपवास किया, फिर पारणा के दिन नगर में आये, तब हाथी का क्षोभ देख अन्तराय जानकर वापिस चले गये। फिर मासोपवास किया, पीछे पारणा के दिन फिर नगर में आये। तब राजा जरासिंघ का पत्र आया, उसके निमित्त से राजा का चित्त व्यग्र था... उग्रसेन। कंस के पिता।

इसलिए मुनि को पड़गाहा नहीं, तब अन्तराय मान वापिस वन में जाते हुए लोगों के वचन सुने – 'राजा मुनि को आहार दे नहीं और अन्य देनेवालों को मना कर दिया' ऐसे लोगों के वचन सुन राजा पर क्रोध कर निदान किया कि – इस राजा का पुत्र होकर राजा का निग्रह कर मैं राज करूँ, इस तप का मेरे यह फल हो, इस प्रकार निदान से मरा। आत्मा के भान बिना क्या करे? सम्यग्दर्शन बिना गहरे-गहरे इच्छा-वृत्ति रह जाती है। आत्मा का सम्यग्दर्शन स्वरूप का साक्षात्कार, ज्ञान में आत्मा का भानसहित अनुभव, ऐसे सम्यग्दर्शन बिना ऐसी क्रिया की तो निदान कर दिया। वहाँ से निदान करके मरा।

राजा उग्रसेन की रानी पद्मावती के गर्भ में आया, मास पूरे होने पर जन्म लिया, तब इसको क्रूरदृष्टि देखकर कांसी के सन्दूक में रक्खा और वृत्तान्त के लेख सहित यमुना नदी में बहा दिया। कौशाम्बीपुर में मन्दोदरी नाम की कलाली ने उसको लेकर पुत्रबुद्धि से पालन किया, कंस नाम रक्खा। जब वह बड़ा हुआ तो बालकों के साथ खेलते समय सबको दु:ख देने लगा, तब मन्दोदरी ने उलाहनों के दु:ख से इसको निकाल दिया। फिर यह कंस शौर्यपुर गया, वहाँ वसुदेव राजा के पयादा (सेवक) बनकर रहा। पीछे जरासिंघ प्रतिनारायण का पत्र आया कि जो पोदनापुर के राजा सिंहरथ को बांध लावे, उसको आधे राज्यसहित पुत्री विवाहित कर दूँ। तब वसुदेव वहाँ कंससहित जाकर युद्ध करके उस सिंहरथ को बांध लाया, जरासिंध को सौंप दिया। फिर जरासिंध ने जीवंयशा पुत्रीसहित आधा राज्य दिया, तब वसुदेव ने कहा – सिंहरथ को कंस बांधकर लाया है, इसको दो। फिर जरासिंध ने इसका कुल जानने के लिए मन्दोदरी को बुलाकर कुल का निश्चय करके इसको

जीवयंशा पुत्री ब्याह दी, तब कंस ने मथुरा का राज लेकर पिता उग्रसेन राजा को और पद्मावती माता को बन्दीखाने में डाल दिया, पीछे कृष्ण नारायण से मृत्यु को प्राप्त हुआ। कृष्ण ने कंस को मार दिया। कंस को ले जा रहे थे, तब उग्रसेन जेल में थे न? ... दरवाजा। श्रीकृष्ण को ले जाते थे। उग्रसेन ने कहा, क्या है? कंस को मारने के लिये कृष्ण का जन्म हुआ है।

इसकी कथा विस्तारपूर्वक उत्तरपुराण से जानिये। इस प्रकार वशिष्ठमुनि ने निदान से सिद्धि को नहीं पाई, इसलिए भावलिंग ही से सिद्धि है। भावलिंग अर्थात् सम्यग्दर्शन। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों भटकनेवाले, दोनों भटकनेवाले।

आत्म ज्ञान बिना... यहाँ तो यह सिद्ध करना है। बात जो भी हो। यह भावपाहुड़ है। चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव, उसका स्पर्श करके, अनुभव करके सम्यग्दर्शन बिना जितना क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण करे... अभी तो अट्ठाईस मूलगुण का भी ठिकाना नहीं है। अभी तो चौका करवाकर लेते हैं, उसके लिये आहार बनाते हैं, वह तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। परन्तु निर्दोष आहार आदि ले, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार पाले, लेकिन सम्यग्दर्शन बिना जन्म-मरण का अन्त उसको आता नहीं। वह यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा!

भावपाहुड़ है न? शुभ-अशुभभाव और शुद्धभाव। तीन भाव। शुभ-अशुभभाव, यह दोनों तो संसार में भटकानेवाले हैं। शुद्धभाव जन्म-मरण का नाश करने का उपाय है। समझ में आया? चाहे तो अशुभभाव हो या शुभभाव दया, दान, व्रत, तप आदि हो, सब संसार में भटकने का कारण है। सम्यग्दर्शन बिना, आत्मानुभव बिना यह सब निरर्थक है। आत्म-अनुभव हो और बाद में आये, फिर भी वह पुण्यबन्ध का कारण है। बन्ध का कारण है, मोक्ष का कारण है नहीं। यह सिद्ध करना है। समझ में आया? लम्बी कथा है। छोटी-छोटी कथा है। संस्कृत में बड़ी।

गाथा-४७

आगे कहते हैं कि भावरहित चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है –

सो णत्थि तप्पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो जत्थ णं दुरुदुल्लिओ [1]जीव ।।४७।।

सः नास्ति तं प्रदेशः चतुरशीतिलक्षयोनिवासे।
भावविरतः अपि श्रमणः यत्र न भ्रमितः जीवः ।।४७।।

चौरासि लाख निवास-योनि में नहीं स्थान यों।
जहँ भाव-विरहित श्रमणता से नहीं भटका जीव हो।।४७।।

अर्थ – इस संसार में चौरासीलाख योनि उनके निवास में ऐसा कोई प्रदेश नहीं है, जिसमें इस जीव ने द्रव्यलिंगी मुनि होकर भी भावरहित होता हुआ भ्रमण न किया हो।

भावार्थ – द्रव्यलिंग धारणकर, निर्ग्रन्थ मुनि बनकर शुद्ध स्वरूप के अनुभवरूप भाव बिना यह जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण ही करता रहा, ऐसा स्थान नहीं रहा, जिसमें मरण नहीं हुआ हो।

आगे चौरासी लाख योनि के भेद कहते हैं – पृथ्वी, तप, तेज, आयु, नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये तो सात-सात लाख हैं, सब बयालीस लाख हुए, वनस्पति दस लाख हैं, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय दो-दो लाख हैं, पंचेन्द्रिय तिर्यंच चार लाख, देव चार लाख, नारकी चार लाख, मनुष्य चौदह लाख। इस प्रकार चौरासी लाख हैं। ये जीवों के उत्पन्न होने के स्थान हैं।।४७।।

गाथा-४७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि भावरहित चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है-

१. पाठान्तरः – जीवो।

भाव क्या? भाव तो नहीं था? यहाँ तो भावरहित कहते हैं। शुद्धभाव बिना। चैतन्य भगवान आनन्द और ज्ञान का समुद्र प्रभु आत्मा है। **'सच्चिदानन्द सिद्ध समान सदा पद मेरो।'** सिद्धस्वरूप अन्तर में अपना आनन्द का कन्द, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट करना, ऐसे भाव बिना चौरासी लाख योनि में भ्रमण किया। शुभाशुभ परिणाम करने से तो नरक और स्वर्ग मिला। चार गति मिली। उसमें कोई जन्म-मरण का अन्त आता नहीं।

सो णत्थि तप्पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो जत्थ णं दुरुद्धुल्लिओ जीव।।४७।।

अर्थ – इस संसार में चौरासीलाख योनि उनके निवास में... चौरासी लाख उत्पन्न स्थान है जगत में। जीव को संसार में उपजने का स्थान चौरासी लाख है। समझ में आया? **उनके निवास में ऐसा कोई प्रदेश नहीं है, जिसमें इस जीव ने द्रव्यलिंगी मुनि होकर भी...** द्रव्यलिंग धारण करके, हों! अनन्त बार पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण की क्रिया अनन्त... अनन्त... अनन्त बार **द्रव्यलिंगी मुनि होकर भी भावरहित होता हुआ भ्रमण न किया हो।** चौरासी में कोई योनि बाकी नहीं, इतना भ्रमण किया। समझ में आया?

भावार्थ – द्रव्यलिंग धारणकर, निर्ग्रन्थ मुनि बनकर शुद्ध स्वरूप के अनुभवरूप भाव बिना... आहाहा! पुण्य-पाप का विकल्प जो शुभ-अशुभराग, उससे मेरी चीज़ आनन्दधाम भिन्न है, ऐसी शुद्धस्वरूप की श्रद्धा के अनुभव बिना। **शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप भाव बिना...** यह भाव। **यह जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण ही करता रहा, ऐसा स्थान नहीं रहा, जिसमें (जन्म) मरण नहीं हुआ हो।** ऐसा स्थान नहीं है कि जहाँ द्रव्यलिंग धारण करके भी अनन्त जन्म-मरण (नहीं किये हो)। ऐसा कोई स्थान नहीं कि जन्म-मरण किये बिना रहा हो। समझ में आया? लोगों को सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी कोई कीमत ही नहीं। बात ऐसी हो गयी है अभी। यह खाना, यह पीना, यह लेना, यह करना, यह करना। इस क्रियाकाण्ड में कोई राग की मन्दता हो तो मिथ्यात्व साथ में है। मैं राग का कर्ता हूँ, वह क्रिया मेरी है, उससे मुझे लाभ होगा,

ऐसे मिथ्यात्वभाव का कितना पाप है, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? हिन्दी है, इसलिए हिन्दी चलता है। हिन्दी की माँग थी। ... हिन्दी में ... नहीं हो। ...

आगे चौरासी लाख योनि के भेद कहते हैं – पृथ्वी, तप,... यह एकेन्द्रिय पृथ्वी के जीव है। पत्थर, नमक, ... आदि एक शरीर में असंख्य एकेन्द्रिय जीव है। **पानी,...** जल। जल-जल के एक बिन्दु में असंख्य जीव हैं। जल का एक बिन्दु। **तेज,...** अग्नि। अग्नि एक कण में असंख्य जीव हैं। **वायु,...** इतने में वायु होता है, उसमें असंख्य जीव हैं। **नित्यनिगोद...** अनादि निगोद, एक कण में निगोद के अनन्त जीव हैं। पूरे लोक में इतने स्थान में अंगुल के असंख्य भाग में नित्यनिगोद अनन्त जीव है। पूरे लोक में।

इतरनिगोद... नित्य (निगोद से) बाहर निकले हुए। **ये तो सात-सात लाख हैं, सब बयालीस लाख हुए, वनस्पति दस लाख हैं,...** ... आदि। **दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय दो-दो लाख हैं, पंचेन्द्रिय तिर्यंच चार लाख, देव चार लाख, नारकी चार लाख, मनुष्य चौदह लाख।** उपजने के स्थान, हों! गोबर होता है न? गोबर। गोबर को उपजने का स्थान कहने में आता है। गोबर का जैसा रंग-रस फिरे, वैसे योनि स्थान बदल जाये। ऐसे-ऐसे चौरासी लाख उत्पन्न स्थान है। अन्दर में जो जीव ... नहीं। कुल कहते हैं। उत्पत्ति स्थान को योनि और अन्दर भिन्न-भिन्न जाति के जीव कोळा-लील उसको कुल कहते हैं। और उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। यहाँ योनि की बात है।

ये जीवों के उत्पन्न होने के स्थान हैं। चौरासी लाख। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की भिन्न-भिन्न पर्याय होकर उपजते हैं तो उसके चौरासी लाख भाग है। एक-एक योनि में अनन्त बार जन्मा है। द्रव्यलिंग धारण करके भी। यहाँ सिद्ध यह करना है कि तेरे द्रव्यलिंग (से) एक भव भी (कम नहीं हुआ)। क्या किया तूने? ऐसा बताना है। देखो! द्रव्यलिंग, साधु, पंच महाव्रत, नग्नमुनि, अट्ठाईस मूलगुण (पालकर) वनवास में रहा। चौका करे नहीं, हों! उसके लिये बनाया गया आहार-पानी प्राण जाये फिर भी ले नहीं। ऐसी क्रिया। शुक्ललेश्या, शुक्ललेश्या। वह कोई जन्म-मरण का अन्त करने की चीज़ नहीं। भाव है शुभ। समझ में आया? आहाहा!

जन्म-मरण का अन्त करने की चीज़ तो शुभ-अशुभभाव, उससे मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा आत्मा का शुद्ध का अनुभव होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम शुद्धभाव। यह शुद्धभाव जन्म-मरण का अन्त करनेवाला है। समझ में आया? यह भगवान की यात्रा-बात्रा सब शुभभाव अशुद्ध है, ऐसा कहते हैं। उससे जन्म-मरण का अन्त नहीं होता। भगवानभाई! 'एक बार वन्दे जो कोई' आता है न? सम्मेदशिखर। 'नरक, पशु न होई।' ऐसे तो अनन्त बार सम्मेदशिखर की वन्दना की है। साक्षात् तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हैं, उनकी—जिनवर की वन्दना भी अनन्त बार की है। उसमें क्या आया? वह तो शुभभाव है। वह कोई धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? पर के आश्रय से उत्पन्न हो, वह तो सब शुभ-अशुभराग है; धर्म नहीं। धर्म तो अपना चैतन्य भगवान ज्ञायकस्वभाव, ऐसा चिद्घन भाव, उसका आश्रय करके शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान की शान्ति निर्विकल्प होती है, उसका नाम भावशुद्धि और धर्म कहते हैं। आहाहा! कठिन काम। समझ में आता है?

गाथा-४८

आगे कहते हैं कि द्रव्यमात्र से लिंगी नहीं होता है, भाव से होता है –

भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण।।४८।।

भावेन भवति लिंगी न हि भवति लिंगी द्रव्यमात्रेण।
तस्मात् कुर्याः भावं किं क्रियते द्रव्यलिंगेन।।४८।।

हो भाव से ही लिंगि केवल द्रव्य से लिंगी नहीं।
अतएव करना भाव क्या द्रव्यलिंग से है सिद्धि ही।।४८।।

अर्थ **– लिंगी होता है सो भावलिंग ही से होता है, द्रव्यलिंग से लिंगी नहीं होता है, यह प्रकट है, इसलिए भावलिंग ही धारण करना, द्रव्यलिंग से क्या सिद्ध होता है ?**

भावार्थ **– आचार्य कहते हैं कि इससे अधिक क्या कहा जावे, भावलिंग बिना**

'लिंगी' नाम ही नहीं होता है, क्योंकि यह प्रगट है कि भाव शुद्ध न देखे तब लोग ही कहें कि काहे का मुनि है? कपटी है। द्रव्यलिंग से कुछ सिद्धि नहीं है, इसलिए भावलिंग ही धारण करने योग्य है।।४८।।

गाथा-४८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि द्रव्यमात्र से लिंगी नहीं होता है, भाव से (लिंगी) होता है – यह तो भावपाहुड़ है न?

भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण।।४८।।

अर्थ – लिंगी होता है, सो भावलिंग ही से होता है,... मुनि होते हैं, वह तो भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होते हैं। कोई बाह्य पंच महाव्रत की क्रियाकाण्ड आदि से मुनि होता नहीं। आहाहा! **लिंगी होता है, सो भावलिंग ही से होता है,...** आत्मा अखण्ड आनन्द प्रभु, उसका अनुभव और उसमें आनन्द की स्थिरता, शुद्धि का भाव, वह भावलिंग हो तो मुनिपना होता है। तो लिंगी भावलिंग कहने में आता है। **द्रव्यलिंग से लिंगी नहीं होता है,...** कितनी बात स्पष्ट की है! द्रव्यलिंग अर्थात्? वस्त्र-पात्र सहित है, वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। और द्रव्यलिंगी उसके लिये आहार-भोजन चौका बनाकर ले, वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। द्रव्यलिंगी उसको कहते हैं कि जिसकी सब व्यवहारक्रिया निरतिचार हो। समझ में आया? शुभभाव की क्रिया वीतराग की आज्ञा व्यवहार की निरतिचार हो। फिर भी वह मुनि द्रव्यलिंग (से लिंगी) नहीं है। **द्रव्यलिंग से लिंगी नहीं होता है,...** ऐसी भाषा है, देखो! **लिंगी होता है, सो भावलिंग ही से होता है,...** मुनि होता है तो आत्मा के आनन्द का अनुभव शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतरागता से होता है। द्रव्यलिंग से लिंगी नहीं होता है। द्रव्यलिंग यथार्थ व्यवहार बराबर हो, फिर भी लिंग नहीं है। मुनि नहीं। आहाहा! **यह प्रकट है,** देखो! **इसलिए भावलिंग ही धारण करना,...** अपना निज शुद्ध चैतन्यस्वभाव, पुण्य-पाप के राग और विकल्प से रहित, ऐसे आत्मा का अनुभव करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान

धारण करना, उससे भावलिंग होता है।

द्रव्यलिंग से क्या सिद्ध होता है? समझ में आया? **द्रव्यलिंग से क्या सिद्ध होता है?** अर्थात् द्रव्यलिंग से क्या होता है? आहाहा! इतनी-इतनी स्पष्ट बात है। बहुत स्पष्ट बात है। लोग पढ़े नहीं, स्वाध्याय करे नहीं, अपना पक्ष छोड़े नहीं। अनादि से मिथ्यात्व शल्य पड़ा है न? उससे कुछ लाभ होगा... कुछ लाभ होगा... कुछ लाभ होगा। बिल्कुल निरर्थक? यहाँ तो कहते हैं कि बिल्कुल निरर्थक है। तेरा द्रव्यलिंग लिंग ही नहीं है, क्या करें? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ लिंग की ही बात है न। द्रव्यलिंग भी नहीं।

भाई! तू द्रव्यलिंगी अनन्त बार हुआ, प्रभु! तूने तेरी प्रभुता जो विकल्प रागरहित है, उस चीज़ को तूने देखी नहीं, मानी नहीं, जानी नहीं। उसके बिना ऐसा द्रव्यलिंग अनन्त बार धारण किया और अनन्त बार द्रव्यलिंग के बाद भी प्रत्येक स्थान में अनन्त बार जन्मा और मरा। यह बात सिद्ध करते हैं। क्योंकि द्रव्यलिंग से अनन्त भव में मोक्ष जायेगा, असंख्य भव में मोक्ष जायेगा। द्रव्यलिंग से पंच महाव्रत बराबर पालते हैं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं तो थोड़ा-थोड़ा होगा की नहीं? तो कहते हैं कि द्रव्यलिंग धारण करने के बाद चौरासी लाख में कोई प्रदेश बाकी नहीं रहा कि जहाँ अनन्त बार जन्मा और मरा नहीं। ले! आहाहा! ऐसी बात है। तेरे शुभभाव ने किया क्या? वह तो संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक के स्थान का यहाँ अपने क्या काम है? जड़ का स्थान है। यहाँ तो चैतन्य के स्थान की बात चलती है। देवलोक में जाये तो देवलोक जड़ है। अचेतन भाव है। वहाँ दु:खी है। देवलोक में स्वर्ग के देव दु:खी हैं। आत्मा के आनन्द के भाव बिना सब प्राणी दु:खी है। चाहे तो स्वर्ग का हो, राजा का हो, सेठ का हो, धूल के धनी। ऐई! भगवानजीभाई! ऐई! मोहनभाई! ऐई! सच्ची बात है? आपको क्या सच्ची बात है? आप दोनों को कहाँ कोई उपाधि है? एक दामोदर थे पालियाद में। दामोदर

सेठ थे। दामोदर सेठ थे। तब तो बारह-तेरह हजार तो बहुत होते थे न? तेरह हजार, उन दिनों में, हों! (संवत्) १९७१-७२ की साल में। तेरह हजार रुपये नगद थे। स्त्रियाँ दो थी। बच्चे नहीं थे। ... शाम को निकले। क्या नाम है उसका? वसूली लेने जाये। उधारी समझते हैं? उधारी नहीं समझते? पैसे दिये हो, उसको वसूल करने जाये। शाम को निकले। तब कहे ऐई! दामाभाई आप यहाँ? लेकिन बापू! आपके बेटे हैं तो वह काम करे। हमारे बेटे नहीं, इसलिए हमें स्वयं काम करना पड़े। हमें तो स्वयं काम करना पड़े। आपके बेटे हैं तो वह काम करे। बराबर है या नहीं? नेमिदासभाई! मकान की वसूली करनी, मकान का किराया देना-लेना यह सब बेटा हो तो करे। यह तो हम खुद करते हैं। आप हमें उलाहना दो कि हम ये करते हैं। तब कौन करे? हमारे बेटे है तो वह करे? ऐसा कहते थे। कहते हैं कि मरते समय, मरने का समय आया आठ हजार नगद पड़े थे। नीचे रहते थे। चाबी। नीचे ताला देकर चाबी रखे। मरने की तैयारी। यहाँ हाथ डाले। मैंने कहा, क्या है? चाबी रखी थी। नीचे चटाई बिछाई हुई थी। तिजोरी को ताला देकर चाबी रखे। रजाई के नीचे रखे। मरने के समय यह क्या करते हैं? मेरी चाबी यहाँ है। चाबी में उसका आत्मा रह जाता है। भगवानजीभाई!

ऐसे अनादि से मुनि राग में लगा है, उसको राग की इतनी रुचि है द्रव्यलिंग की कि उसमें राग से रहित मेरी चीज़ क्या है? यह करते-करते होगा। करते-करते भी धीरे-धीरे कभी तो पार हो जायेंगे। व्यवहार करेंगे तो पार होंगे। व्यवहार नहीं करेंगे तो पार पड़ेंगे? वैसे मूढ और मिथ्याशल्य की दृष्टि गहरी-गहरी रह जाती है। गहरी-गहरी रहती है तो भावलिंग तो प्राप्त करते नहीं। ऐसा कहते हैं, देखो!

भावार्थ - आचार्य कहते हैं कि इससे अधिक क्या कहा जावे, भावलिंग बिना 'लिंगी' नाम ही नहीं होता है,... देखो तो सही! आहाहा! पुण्य-पाप की क्रिया, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम वह कोई आत्मा की क्रिया नहीं, वह तो राग की क्रिया है, आस्रव की क्रिया है, बन्ध की क्रिया है। आहाहा! साधारण जनता को ऐसा लगे कि अर र! दूसरा हमें करना क्या? पाप छोड़कर पुण्य करें, करना क्या है तुझे? .... सबसे बड़ा पाप तो मिथ्यात्व का है। उस पाप की तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

इससे अधिक क्या कहा जावे, भावलिंग बिना 'लिंगी' नाम ही नहीं होता है, क्योंकि यह प्रगट है... 'भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ' ... यह प्रसिद्ध ही है। सिद्ध-प्रसिद्ध ऐसा आता है न? वैसे यह प्रसिद्ध है। भावलिंग बिना द्रव्यलिंगी नाम ही नहीं पावे। भाव नाम नहीं पावे। द्रव्यलिंगी कैसे? वस्तु बिना। वस्तु हो तो द्रव्यलिंगी व्यवहार से नाम कहने में आता है। निश्चय से भावलिंग, व्यवहार से द्रव्यलिंग। **भाव शुद्ध न देखे, तब लोग ही कहें कि काहे का मुनि है? कपटी है।** नाम धरे बड़े, अन्दर में क्रियाकाण्ड का कुछ ठिकाना नहीं। भाव का ठिकाना नहीं। **लोग ही कहें कि काहे का मुनि है? कपटी है। इसिलए द्रव्यलिंग से कुछ सिद्धि नहीं है,...** थोड़ा भी साध्य नहीं, थोड़ा भी साध्य नहीं। आहाहा! कड़क है। अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत (का) विकल्प वह तो द्रव्यलिंग पुण्यबन्ध का कारण है। उससे आत्मा को कुछ साध्य है नहीं। कुछ सिद्धि-बिद्धि है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान के मार्ग में सिद्धि होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना निज वीतराग का मार्ग ऐसा है। आत्मा वीतरागस्वरूप है। आहाहा!

वीतरागस्वभाव पुण्य-पाप के राग से भिन्न अपना स्वभाव पड़ा है। ऐसे स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान के अनुभव बिना भावलिंगी तो क्या द्रव्यलिंगी नाम भी नहीं पाता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सच्चा द्रव्यलिंगी तो कब कहे? कि भावलिंग यदि हो, अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (हो), उसे पंच महाव्रत आदि और नग्नपना हो तो उसको द्रव्यलिंगी व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से भावलिंग और व्यवहार से द्रव्यलिंग। समझ में आया? ऐसा कहते हैं, देखो!

भावलिंग बिना 'लिंगी' नाम ही नहीं होता है,... ऐसा कहते हैं। आहाहा! आचार्य की शैली! पाठ है या नहीं? **'भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ'** लिंग ही नहीं है। है या नहीं उसमें? भीखाभाई! परन्तु उसमें है या नहीं? उसमें क्या है? नाम भी नहीं पाता। लिंगी-फिंगी नहीं। आहाहा! भाव चैतन्य भगवान सहजानन्द सिद्धस्वरूप, उसका अनुभव में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीन, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता। उसके बिना द्रव्यलिंगी भी कहने में आता नहीं। आहाहा! कठिन

बात, भाई! वस्त्र-पात्र रखकर मुनि माने, वह तो द्रव्यलिंगी नाम से कथन करनेयोग्य नहीं। और सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना मात्र द्रव्यलिंगी सच्चा नग्न मुनि, व्यवहारिक क्रियाकाण्ड करे तो उसको भी द्रव्यलिंगी कहने में नहीं आता। यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

भाव शुद्ध न देखे... सम्यग्दर्शन-ज्ञान का ठिकाना नहीं, **तब लोग ही कहें कि काहे का मुनि है? कपटी है।** मायावी है। आहाहा! इसलिए **द्रव्यलिंग से कुछ सिद्धि नहीं है,...** कुछ भी साध्य नहीं। कुछ भी आत्मा की सिद्धि का एक अंश भी नहीं। **इसलिए भावलिंग ही धारण करनेयोग्य है।**

गाथा-४९

आगे इसी को दृढ़ करने के लिए द्रव्यलिंगधारक को उलटा उपद्रव हुआ, उदाहरण कहते हैं –

दंडयणयरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।
जिणलिंगेण वि बाहू पडिओ सो रउरवे णरए।।४९।।

दण्डकनगरं सकलं दग्ध्वा अभ्यन्तरेण दोषेण।
जिनलिंगेनापि बाहुः पतितः सः रौरवे नरके।।४९।।

दण्डक नगर पूरा जलाया दोष अभ्यन्तरी से।
जिन-लिंग-धारक वही बाहू गिरा रौरव नरक में।।४९।।

अर्थ – देखो, बाहु नामक मुनि बाह्य जिनलिंग सहित था तो भी अभ्यन्तर के दोष से समस्त दण्डक नामक नगर को दग्ध किया और सप्तम पृथ्वी के रौरव नामक बिल में गिरा।

भावार्थ – द्रव्यलिंग धारणकर कुछ तप करे, उससे कुछ सामर्थ्य बढ़े, तब कुछ कारण पाकर क्रोध से अपना और दूसरे का उपद्रव करने का कारण बनावे, इसलिए द्रव्यलिंग भावसहित धारण करना ही श्रेष्ठ है और केवल द्रव्यलिंग तो उपद्रव का कारण होता है। इसका उदाहरण बाहु मुनि का बताया। उसकी कथा ऐसे है –

दक्षिणदिशा में कुम्भकारकटक नगर में दण्डक नाम का राजा था। उसके बालक नाम का मन्त्री था। वहाँ अभिनन्दन आदि पाँच सौ मुनि आये, उनमें एक खण्डक नाम के मुनि थे। उन्होंने बालक नाम के मन्त्री को वाद में जीत लिया, तब मन्त्री ने क्रोध करके एक भाँड को मुनि का रूप कराकर राजा की रानी सुव्रता के साथ क्रीडा करते हुए राजा को दिखा दिया और कहा कि देखो! राजा के ऐसी भक्ति है जो अपनी स्त्री भी दिगम्बर को क्रीडा करने के लिए दे दी है। तब राजा ने दिगम्बरों पर क्रोध करके पाँच सौ मुनियों को घानी में पिलवाया। वे मुनि उपसर्ग सहकर परमसमाधि से सिद्धि को प्राप्त हुए।

फिर उस नगर में बाहु नाम के एक मुनि आये। उनको लोगों ने मना किया कि यहाँ का राजा दुष्ट है, इसलिए आप नगर में प्रवेश मत करो। पहिले पाँच सौ मुनियों को घानी में पेल दिया, वह आपका भी वही हाल करेगा। तब लोगों के वचनों से बाहु मुनी को क्रोध उत्पन्न हुआ, अशुभ तैजस समुद्घात से राजा को मन्त्री सहित और सब नगर को भस्म कर दिया। राजा और मन्त्री सातवें नरक रौरव नामक बिल में गिरे, वहीं बाहु मुनि भी मरकर रौरव बिल में गिरे। इस प्रकार द्रव्यलिंग में भाव के दोष से उपद्रव होते हैं, इसलिए भावलिंग का प्रधान उपदेश है।।४९।।

गाथा-४९ पर प्रवचन

आगे इसी को दृढ़ करने के लिए द्रव्यलिंगधारक को उलटा उपद्रव हुआ, उदाहरण कहते हैं – लाभ तो कुछ हुआ नहीं परन्तु नुकसान हुआ। यह दृष्टान्त देते हैं। कठिन बात, भाई! भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना द्रव्यलिंग भी नाम नहीं कहा जाता, (ऐसा) कहते हैं। परन्तु उल्टा उपसर्ग और दु:ख होगा। उलटा उपद्रव हुआ, उदाहरण कहते हैं –

दंडयणयरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।
जिणलिंगेण वि बाहू पडिओ सो रउरवे णरए।।४९।।

रौवरौव नरक, सातवीं नरक। आहाहा! आचार्य भी...

अर्थ – देखो, बाहु नामक मुनि बाह्य जिनलिंगसहित था... बाह्य तो द्रव्यलिंग बराबर था। **तो भी अभ्यन्तर के दोष से...** अभ्यन्तर में मिथ्याश्रद्धा आदि के दोष से **समस्त दण्डक नामक नगर को दग्ध किया...** जला दिया। **और सप्तम पृथ्वी के रौरव नामक बिल में गिरा।** द्रव्यलिंगी मुनि, देखो! आहाहा! भाव बिना अकेला द्रव्य (लिंग)। जाति में फर्क है न? कहाँ गया? **दण्डक नामक नगर को दग्ध किया और सप्तम पृथ्वी के रौरव नामक बिल में गिरा।** तैतीस सागर की स्थिति में। इसलिए भावलिंग धारण करना और भावलिंग प्रथम समझना। समझ में आया? उसके बिना द्रव्यलिंग से कुछ लाभ नहीं। उसकी कथा है। कथा लम्बी है।

भावार्थ – द्रव्यलिंग धारणकर कुछ तप करे,... देखो! यह द्रव्यलिंगधारी मास-मास महीने के उपवास करे तो धूल में भी लाभ नहीं, ऐसा कहते हैं। **उससे कुछ सामर्थ्य बढ़े,...** देखो! बाहर में। **तब कुछ कारण पाकर क्रोध से...** अपना बल बढ़े इसलिए। आहाहा! **अपना और दूसरे का उपद्रव करने का कारण बनावे,...** देखो! अपने को भी दु:ख हो और पर को भी दु:ख हो, ऐसा कारण बनावे। **इसलिए द्रव्यलिंग भावसहित धारण करना ही श्रेष्ठ है...** आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों सहित हो तो द्रव्यलिंग धारण करना। मूल तो द्रव्यलिंग की बात ऐसी आई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित द्रव्यलिंग धारण (करने की) बात है। चारित्र है और द्रव्यलिंग धारण करे ऐसा हो, तब तो प्रथम चारित्र आता नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो तो द्रव्यलिंग धारना। परन्तु चारित्र हो तो द्रव्यलिंग धारण करना ऐसा नहीं होता। क्योंकि प्रथम द्रव्यलिंग सम्यग्दर्शन अनुभव है, बाद में चारित्र अंगीकार करते हैं तो पंच महाव्रत और द्रव्यलिंग की क्रिया प्रथम होती है। फिर उसका लक्ष्य छोड़कर अन्दर में अनुभव करे तो भावचारित्र आता है। मूल तो वजन सम्यग्दर्शन का है। ... टीका में भी है। टीका में भी है। समझ में आया? द्रव्यलिंग अर्थात् आत्मा के अनुभव बिना, सम्यग्दर्शन बिना का द्रव्यलिंगी कपटी है।

केवल द्रव्यलिंग तो उपद्रव का कारण होता है। इसका उदाहरण बाहु मुनि का बताया। उसकी कथा ऐसे है – दक्षिणदिशा में कुम्भकारकटक नगर में दण्डक नाम का राजा था। हमें कथा का कुछ मालूम नहीं। **उसके बालक नाम का मन्त्री**

था। वहाँ अभिनन्दन आदि पाँच सौ मुनि आये, उनमें एक खण्डक नाम के मुनि थे। खण्डक की बात आती है। **उन्होंने बालक नाम के मन्त्री को वाद में जीत लिया, तब मन्त्री ने क्रोध करके एक भाँड को मुनि का रूप कराकर राजा की रानी सुव्रता के साथ क्रीडा करते हुए राजा को दिखा दिया और कहा कि देखो! राजा के ऐसी भक्ति है जो अपनी स्त्री भी दिगम्बर को क्रीडा करने के लिए दे दी है। तब राजा ने दिगम्बरों पर क्रोध करके पाँच सौ मुनियों को घानी में पिलवाया।** यह बात आती है। श्वेताम्बर में भी आती है। **वे मुनि उपसर्ग सहकर परमसमाधि से सिद्धि को प्राप्त हुए।**

फिर उस नगर में बाहु नाम के एक मुनि आये। अब बात तो यह करनी है। **उनको लोगों ने मना किया कि यहाँ का राजा दुष्ट है, इसलिए आप नगर में प्रवेश मत करो। पहिले पाँच सौ मुनियों को घानी में पेल दिया, वह आपका भी वही हाल करेगा। तब लोगों के वचनों से बाहु मुनी को क्रोध उत्पन्न हुआ, अशुभ तैजस समुद्घात से राजा को मन्त्री सहित और सब नगर को भस्म कर दिया।** लो, यह द्रव्यलिंगी। **राजा और मन्त्री सातवें नरक रौरव नामक बिल में गिरे, वहीं बाहु मुनि भी मरकर रौरव बिल में गिरे।** तीनों—राजा, मन्त्री और वह द्रव्यलिंगी बाहु। आहाहा! समझ में आया? पाँच सौ को मार डाला वह अच्छे थे? कुछ पता नहीं। उसे कहाँ मालूम है? वर्तमान में झूठा तर्क करते हैं। पाँच सौ मुनि को जला दिया उस राजा के परिणाम अच्छे थे? राजा ने जला दिया न? क्या सुना? पाँच सौ मुनि को घानी में पेला। उस राजा के परिणाम अच्छे थे? मुनि ने तो मार दिया, पूरे नगर को जला दिया। किसके परिणाम अच्छे थे? यह क्या कहना चाहते हो? दोनों के परिणाम खराब हैं। राजा के परिणाम, मन्त्री के परिणाम और द्रव्यलिंगी मुनि के भी।

मुमुक्षु : मरकर नरक में जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवीं नरक में। आहाहा! ... रौरव नरक में। पाँच सौ मुनि को घानी में पेले। मन्त्री को भस्म कर दिया। दोनों के परिणाम खराब और बाहु के।

मुमुक्षु : रौरव नरक ... राजा नं, मन्त्री... वह दोनों नरक में चले गये न? तो उनको ढूँढ़ने गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह खोजने गया, मरकर कहाँ गये। उसको कहाँ मालूम है। तीनों सातवीं नरक में गये। राजा, मन्त्री और बाहु मुनि।

इस प्रकार द्रव्यलिंग में भाव के दोष से उपद्रव होते हैं, देखो! **इस प्रकार द्रव्यलिंग में...** ऐसा कहा। **भाव के दोष से...** अन्तर दर्शन की खबर नहीं इसलिए **उपद्रव होते हैं, इसलिए भावलिंग का प्रधान उपदेश है।** ... भावलिंग प्रधान है, देखो! ...

गाथा-५०

आगे इस ही अर्थ पर दीपायन मुनि का उदाहरण कहते हैं –

अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।
दीवायणो त्ति णामो अणंतसंसारिओ जाओ।।५०।।

अपरः अपि द्रव्यश्रमणः दर्शनवरज्ञानचरणप्रभ्रष्टः।
दीपायन इति नाम अनन्तसांसारिकः जातः।।५०।।

उत्कृष्ट दर्शन ज्ञान चारित्र भ्रष्ट अन्य भि द्रव्य मुनि।
है नाम द्वीपायन हुए निस्सीम संसारी वहीं।।५०।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि जैसे पहिले बाहु मुनि कहा, वैसे ही और भी दीपायन नाम का द्रव्यश्रमण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र से भ्रष्ट होकर अनन्त संसारी हुआ है।

भावार्थ – पहिले की तरह इसकी कथा संक्षेप से इस प्रकार है – नौंवे बलभद्र ने श्रीनेमिनाथ–तीर्थंकर से पूछा कि हे स्वामिन्! यह द्वारकापुरी समुद्र में है, इसकी स्थिति कितने समय तक है? तब भगवान ने कहा कि रोहिणी का भाई दीपायन तेरा मामा बारह वर्ष पीछे मद्य के निमित्त से क्रोध करके इस पुरी को दग्ध करेगा। इस प्रकार भगवान के वचन सुन निश्चय कर, दीपायन दीक्षा लेकर पूर्वदेश में चला गया। बारह वर्ष व्यतीत करने के लिए तप करना शुरू किया और बलभद्र नारायण ने द्वारिका में मद्यनिषेध की घोषणा करा दी। मद्य के बर्तन तथा उसकी सामग्री मद्य बनानेवालों ने बाहर पर्वतादि

में फेंक दी। तब बर्तनों की मदिरा तथा मद्य की सामग्री जल के गर्तों में फैल गयी।

फिर बारह वर्ष बीते जानकर दीपायन द्वारिका आकर, नगर के बाहर आतापन योग धारण कर स्थित हुए। भगवान के वचन की प्रतीति न रखी। पीछे शम्भवकुमारादि क्रीड़ा करते हुए प्यासे होकर कुण्डों में जल जानकर पी गये। उस मद्य के निमित्त से कुमार उन्मत्त हो गये। वहाँ दीपायन मुनि को खड़ा देखकर कहने लगे – 'यह द्वारिका को भस्म करनेवाला दीपायन है' इस प्रकार कहकर उसको पाषाणादिक से मारने लगे। तब दीपायन भूमि पर गिर पड़ा, उसको क्रोध उत्पन्न हो गया, उसके निमित्त से द्वारिका जलकर भस्म हो गयी। इस प्रकार दीपायन भावशुद्धि के बिना अनन्त संसारी हुआ।।५०।।

गाथा-५० पर प्रवचन

आगे इस ही अर्थ पर दीपायन मुनि का उदाहरण कहते हैं –

अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।
दीवायणो त्ति णामो अणंतसंसारिओ जाओ।।५०।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि जैसे पहिले बाहु मुनि कहा, वैसे ही और भी दीपायन नाम का द्रव्यश्रमण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र से भ्रष्ट होकर अनन्त संसारी हुआ है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं था, नग्न मुनि था।

नौंवे बलभद्र ने श्रीनेमिनाथ–तीर्थंकर से पूछा कि हे स्वामिन्! यह द्वारकापुरी समुद्र में है, इसकी स्थिति कितने समय तक है? भगवान नेमिनाथ को बलभद्र ने पूछा। समुद्र में थी। कितने काल रहेगी? इसकी स्थिति कितने काल है? श्वेताम्बर में दूसरी बात आती है। श्वेताम्बर में गजसुकुमाल को वन में जलाया न? श्मशान में। तो पूछा, महाराज! आपकी यहाँ अस्ति श्रीकृष्ण बलदेव यहाँ है, उसका श्मशान में गजसुकुमाल को अग्नि लगायी, महाराज! यह नगरी किधर है, कितने काल नगरी रहेगी? दोनों बातों में फेर है। गजसुकुमाल ... और यह कहता है, समुद्र में है, इसलिए कितने काल रहेगी? यह तो समुद्र में है।

तब भगवान ने कहा कि रोहिणी का भाई दीपायन तेरा मामा... बलभद्र के

मामा। **बारह वर्ष पीछे मद्य के निमित्त से क्रोध करके इस पुरी को दग्ध करेगा। इस प्रकार भगवान के वचन सुन निश्चय कर, दीपायन दीक्षा लेकर पूर्वदेश में चला गया। बारह वर्ष व्यतीत करने के लिए तप करना शुरू किया...** ऐसा नहीं बने (इसलिए)। भगवान के वचन फिरे? आहाहा! **भगवान के वचन सुन निश्चय कर, दीपायन दीक्षा लेकर पूर्वदेश में चला गया। बारह वर्ष व्यतीत करने के लिए तप करना शुरू किया और बलभद्र नारायण ने द्वारिका में मद्यनिषेध की घोषणा करा दी।** द्वारिका में किसी को मद्य पीना नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा विकल्प आया। बाकी भगवान का वचन निष्फल जाये ऐसा है क्या? केवली का वचन फिरे नहीं। तो उसकी श्रद्धा कहाँ गयी? उसको श्रद्धा नहीं है, इसको श्रद्धा है, तो उसको ऐसा नहीं करना चाहिए।

बलभद्र नारायण ने... अर्थात् बलभद्र, नारायण-श्रीकृष्ण दोनों। **द्वारिका में मद्यनिषेध की घोषणा करा दी। मद्य के बर्तन तथा उसकी सामग्री मद्य बनानेवालों ने बाहर पर्वतादि में फेंक दी। तब बर्तनों की मदिरा तथा मद्य की सामग्री जल के गर्तों में फैल गयी। फिर बारह वर्ष बीते जानकर दीपायन द्वारिका आकर,...** बारह वर्ष हो गये। ऐसा जानकर दीपायन वापस आया। **नगर के बाहर आतापन योग धारण कर स्थित हुए। भगवान के वचन की प्रतीति न रखी। पीछे शम्भवकुमारादि क्रीड़ा करते हुए प्यासे होकर...** राजकुमार क्रीड़ा कर रहे थे। उसमें तृषा लगी और पानी पीया। **कुण्डों में जल जानकर पी गये। उस मद्य के निमित्त से कुमार उन्मत्त हो गये। वहाँ दीपायन मुनि को खड़ा देखकर कहने लगे – 'यह द्वारिका को भस्म करनेवाला दीपायन है' इस प्रकार कहकर उसको पाषाणादिक से मारने लगे।** पत्थर, मारे पत्थर।

तब दीपायन भूमि पर गिर पड़ा,... छरा अर्थात् छरा, पत्थर, राजकुमार थे न। शराब को पानी समझकर पीने लगे। **उसको क्रोध उत्पन्न हो गया, उसके निमित्त से द्वारिका जलकर भस्म हो गयी।** लो, उसके निमित्त से। **इस प्रकार दीपायन भावशुद्धि के बिना अनन्त संसारी हुआ।** भावशुद्धि बिना अनन्त संसार। आहाहा! दीपायन की यह बड़ी कथा प्रसिद्ध है...

गाथा-५१

आगे भावशुद्धिसहित मुनि हुए और उन्होंने सिद्धि पाई, उसका उदाहरण कहते हैं–

भावसमणो य धीरो जुवईजणबेढियो विसुद्धमई।
णामेण सिवकुमारो परीत्तसंसारिओ जादो।।५१।।

भावश्रमणश्च धीरः युवतिजनवेष्टितः विशुद्धमतिः।
नाम्ना शिवकुमारः परित्यक्तसांसारिकः जातः।।५१।।

बहु युवतियों से घिरे भाव–श्रमण सुधीर विशुद्ध–मति।
धारी हुए संसार–विरहित शिवकुमार प्रसिद्ध मुनि।।५१।।

अर्थ – शिवकुमार नामक भावश्रमण स्त्रीजनों से वेष्टित हुए भी विशुद्ध बुद्धि का धारक धीर संसार को त्यागनेवाला हुआ।

भावार्थ – शिवकुमार ने भाव की शुद्धता से ब्रह्मस्वर्ग में विद्युन्माली देव होकर वहाँ से चयकर जम्बूस्वामी केवली होकर मोक्ष प्राप्त किया। उसकी कथा इस प्रकार है–

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश के वीतशोकपुर में महापद्म राजा की वनमाला रानी के शिवकुमार नामक पुत्र हुआ। वह एक दिन मित्र सहित वनक्रीड़ा करके नगर में आ रहा था। उसने मार्ग में लोगों को पूजा की सामग्री ले जाते हुए देखा। तब मित्र को पूछा – ये कहाँ जा रहे हैं? मित्र ने कहा, ये सगरदत्त नामक ऋद्धिधारी मुनि को पूजने के लिए वन में जा रहे हैं। तब शिवकुमार ने मुनि के पास जाकर अपना पूर्वभव सुन संसार से विरक्त हो दीक्षा ले ली और दृढ़धर नामक श्रावक के घर प्रासुक आहार लिया। उसके बाद स्त्रियों के निकट असिधाराव्रत परम ब्रह्मचर्य पालते हुए बारह वर्ष तक तप कर अन्त में संन्यास मरण करके ब्रह्मकल्प में विद्युन्माली देव हुआ। वहाँ से चयकर जम्बूकुमार हुआ, सो दीक्षा ले, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया। इस प्रकार शिवकुमार भावमुनि ने मोक्ष प्राप्त किया। इसकी विस्तार सहित कथा जम्बूचरित्र में है, वहाँ से जानिये। इस प्रकार भावलिंग प्रधान है।।५१।।

गाथा-५१ पर प्रवचन

आगे भावशुद्धिसहित मुनि हुए और उन्होंने सिद्धि पाई, उसका उदाहरण कहते हैं-

भावसमणो य धीरो जुवईजणबेढियो विसुद्धमई।
णामेण सिवकुमारो परीत्तसंसारिओ जादो।।५१।।

अर्थ - शिवकुमार नामक भावश्रमण स्त्रीजनों से वेष्टित हुए भी... चारों ओर स्त्रियाँ रहती थीं। विशुद्ध बुद्धि का धारक धीर संसार को त्यागनेवाला हुआ। जम्बूस्वामी के शिष्य। जम्बूस्वामी के शिष्य। !

भावार्थ - शिवकुमार ने भाव की शुद्धता से ब्रह्मस्वर्ग में विद्युन्माली देव होकर वहाँ से चयकर जम्बूस्वामी केवली होकर मोक्ष प्राप्त किया। इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश के वीतशोकपुर में महापद्म राजा की वनमाला रानी के शिवकुमार नामक पुत्र हुआ। वह एक दिन मित्र सहित वनक्रीड़ा करके नगर में आ रहा था। उसने मार्ग में लोगों को पूजा की सामग्री ले जाते हुए देखा। तब मित्र को पूछा-ये कहाँ जा रहे हैं? मित्र ने कहा, ये सगरदत्त नामक ऋद्धिधारी मुनि को पूजने के लिए वन में जा रहे हैं। तब शिवकुमार ने मुनि के पास जाकर अपना पूर्वभव सुन संसार से विरक्त हो दीक्षा ले ली और दृढ़धर नामक श्रावक के घर प्रासुक आहार लिया।

उसके बाद स्त्रियों के निकट असिधाराव्रत परम ब्रह्मचर्य पालते हुए बारह वर्ष तक तप कर अन्त में संन्यास मरण करके ब्रह्मकल्प में विद्युन्माली देव हुआ। वहाँ से चयकर जम्बूकुमार हुआ, सो दीक्षा ले, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया। इस प्रकार शिवकुमार भावमुनि ने मोक्ष प्राप्त किया। इसकी विस्तार सहित कथा जम्बूचरित्र में है, वहाँ से जानिये। इस प्रकार भावलिंग प्रधान है। भावलिंग की मुख्यता है। देखो! भावलिंग का यह सुलटा दृष्टान्त दिया। स्त्री के संग में रहे थे। ... बहुत-सी स्त्रियों के परिचय में (रहे)। ऐसा भाव नहीं परन्तु ... हुए। निर्दोष आहार लिया और फिर जम्बूस्वामी हुए। जम्बूस्वामी केवलज्ञान पाकर मोक्ष गये।

भावलिंग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ऐसी महिमा है। द्रव्यलिंग की कोई महिमा है नहीं। ऐसी यहाँ भावशुद्धि की बात कुन्दकुन्दाचार्य विशेष करके दृढ़ करते हैं।

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-५२

आगे शास्त्र भी पढ़े और सम्यग्दर्शनादिरूप भाव विशुद्ध न हो तो सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता, उसका उदाहरण अभव्यसेन का कहते हैं –

केवलिजिणपण्णत्तं[१] एयादसअंग सयलसुयणाणं।
पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो।।५२।।

केवलिजिनप्रज्ञप्तं एकादशांगं सकलश्रुतज्ञानम्।
पठितः अभव्यसेनः न भावश्रमणत्वं प्राप्तः।।५२।।

जिन-केवली उपदिष्ट ग्यारह अंग सब श्रुतज्ञान को।
पढ़ भी मुनि अभव्यसेन पाए नहीं भावत्व को।।५२।।

अर्थ – अभव्यसेन नाम के द्रव्यलिंगी मुनि ने केवली भगवान से उपदिष्ट ग्यारह अंग पढ़े और ग्यारह अंग को 'पूर्ण श्रुतज्ञान' भी कहते हैं, क्योंकि इतने पढ़े हुए को अर्थ अपेक्षा 'पूर्ण श्रुतज्ञान' भी हो जाता है। अभव्यसेन इतना पढ़ा तो भी भावश्रमणपने को प्राप्त न हुआ।

भावार्थ – यहाँ ऐसा आशय है कि कोई जानेगा बाह्यक्रिया मात्र से तो सिद्धि नहीं है और शास्त्र के पढ़ने से सिद्धि है तो इस प्रकार जानना भी सत्य नहीं है, क्योंकि

---

१. मुद्रित संस्कृत सटीक प्रति में यह गाथा इस प्रकार है –

अंगाइं दस य दुण्णि च चउदसपुव्वाइं सयलसुयणाणं।
पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो।।५२।।
अंगानि दश च द्वे च चतुर्दशपूर्वाणि सकलश्रुतज्ञानम्।
पठितश्च अभव्यसेनः न भावश्रमणत्वं प्राप्तः।।५२।।

शास्त्र पढ़ने मात्र से भी सिद्धि नहीं है, अभव्यसेन द्रव्यमुनि भी हुआ और ग्यारह अंग भी पढ़े तो भी जिनवचन की प्रतीति न हुई, इसलिए भावलिंग नहीं पाया। अभव्यसेन की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है, वहाँ से जानिये।।५२।।

प्रवचन-११५, गाथा-५२ से ५५, शुक्रवार, आसोज कृष्ण २, दिनांक १६-१०-१९७०

अष्टपाहुड़, उसमें भावपाहुड़। ५२वीं गाथा। **आगे शास्त्र भी पढ़े और सम्यग्दर्शनादिरूप भाव विशुद्ध न हो तो सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता, उसका उदाहरण अभव्यसेन का कहते हैं –**

केवलिजिणपण्णत्तं एयादसअंग सयलसुयणाणं।
पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो।।५२।।

अर्थ – अभव्यसेन नाम के द्रव्यलिंगी मुनि ने... अभव्यसेन नाम के द्रव्यलिंगी मुनि थे। **केवली भगवान से उपदिष्ट ग्यारह अंग पढ़े...** ग्यारह अंग शास्त्र भी पढ़े। **और ग्यारह अंग को 'पूर्ण श्रुतज्ञान' भी कहते हैं,...** इस अपेक्षा से। पूर्ण श्रुतज्ञान हो, उसे तो समकित होता ही है। परन्तु यहाँ तो ग्यारह अंग के पठन में... उसे ख्याल आ जाये, ऐसी अपेक्षा यहाँ बात ली है। **क्योंकि इतने पढ़े हुए को अर्थ अपेक्षा 'पूर्ण श्रुतज्ञान' भी हो जाता है।** लो! ग्यारह अंग हैं। एक आचारांग (में) अठारह हजार पद। एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक। ऐसे सूयगडांग में ३६ हजार पद। ७२ हजार पद... ऐसे ग्यारह अंग, इतना पढ़ा। **अर्थ अपेक्षा 'पूर्ण श्रुतज्ञान' भी हो जाता है। अभव्यसेन इतना पढ़ा तो भी भावश्रमणपने को प्राप्त न हुआ।** परन्तु सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हुआ। समझ में आया?

भावार्थ – यहाँ ऐसा आशय है कि कोई जानेगा बाह्यक्रिया मात्र से तो सिद्धि नहीं है... व्रत, तप, क्रियाकाण्ड, तप से तो सिद्धि नहीं। **और शास्त्र के पढ़ने से सिद्धि है...** या नहीं? कहते हैं, वह भी सिद्धि नहीं। आत्मा ज्ञान सच्चिदानन्द शुद्ध स्वरूप, यह शास्त्र का ज्ञान और राग का क्रियाकाण्ड, उससे भिन्न है। उसका सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना उसे कुछ भी ग्यारह अंग के पठन से भी लाभ नहीं है। ऐसे क्रियाकाण्ड

से लाभ नहीं। कोई कहे कि पठन से लाभ होगा। पठन से भी ग्यारह अंग पढ़े तो भी कहीं आत्मा को लाभ है नहीं। आत्मा तो चिदानन्द ग्यारह अंग के पठन से भी भिन्न है। वह बाह्य ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा होने पर भी **शास्त्र के पढ़ने से सिद्धि है तो इस प्रकार जानना भी सत्य नहीं है,...** यह भी सत्य बात नहीं है। जैसे पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, समिति, गुप्ति पाले तो भी सम्यग्दर्शन बिना मुक्ति नहीं है, सम्यग्दर्शनसहित हो तो भले हो, निमित्त हो। निमित्त हो। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन का भान नहीं, उसे उस क्रिया से जैसे मुक्ति नहीं, वैसे ग्यारह अंग के पढ़ने से भी मुक्ति नहीं। मोक्ष नहीं। कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : जी प्रभु! कुछ करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : करना क्या अब यह? है या नहीं अन्दर आत्मा? तो यह कहते हैं यहाँ। आत्मा अन्दर शुद्ध सच्चिदानन्द आनन्द अनाकुल शान्तरस का कन्द है। उसमें अन्तर एकाग्र होना, ऐसी दृष्टि किये बिना ग्यारह अंग के पठन भी कुछ कार्यकारी नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

अभव्यसेन द्रव्यमुनि भी हुआ... अभव्यसेन नाम का कोई जीव होगा। वह द्रव्य मुनि, साधु हुआ, पंच महाव्रत लिये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये। **ग्यारह अंग भी पढ़े तो भी जिनवचन की प्रतीति न हुई,...** इसका अर्थ (कि) जिनवचन वीतरागभाव बतलाते हैं। जिनवचन की प्रतीति कहीं वाणी की प्रतीति नहीं है। वाणी तो पर है। जिनवचन में कहा हुआ आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप, ऐसा जो वीतरागभाव, उस वीतरागभाव की उसे प्रतीति नहीं। समझ में आया? परन्तु कुछ भी अन्दर क्रियाकाण्ड या पठन का विकल्प राग, उससे कल्याण होगा, ऐसी दृष्टि रह गयी। आहाहा! समझ में आया?

जिनवचन की प्रतीति न हुई, इसलिए भावलिंग नहीं पाया। वीतरागी दृष्टि अन्तर (में) नहीं हुई। चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा अविकारी अकषाय वीतरागस्वरूप आत्मा है। उसकी श्रद्धा इसने नहीं की। बाकी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, ग्यारह अंग

का ज्ञान, पंच महाव्रत का पालन किया, वह कहीं वस्तु नहीं है। समझ में आया? हाँ, अनुभव भावसहित वह निमित्त हो, हो वह निमित्त तो होता ही है। कोई कहे, अकेला भावलिंग हुआ और फिर उसे द्रव्यलिंग-नग्नपना न हो और पंच महाव्रत के विकल्प न हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? तथापि सफलपना तो उसे भाव के कारण कहा जाता है। आहाहा!

अभव्यसेन की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है, वहाँ से जानिये। लो! ग्यारह अंग पढ़े, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा अनन्त बार करे तो भी उसमें धर्म नहीं है। समझ में आया? क्योंकि दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, वह शुभराग है, वह कोई धर्म नहीं है। ऐसा ग्यारह अंग का ज्ञान भी परज्ञान है, विकल्पवाला ज्ञान, वह रागवाला ज्ञान है। वह आत्मा का ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? वीतरागी शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आत्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु अनादि-अनन्त सच्चिदानन्द ध्रुव सिद्ध समान आत्मा का स्वरूप है। उसका अन्तर में स्वसन्मुख होकर दृष्टि-अनुभव करो, यह दशा हुए बिना सब निरर्थक है। आहाहा! समझ में आया?

गाथा-५३

आगे शास्त्र पढ़े बिना शिवभूति मुनि ने तुषमाष को घोखते ही भाव की विशुद्धि को पाकर मोक्ष प्राप्त किया। उसका उदाहरण कहते हैं -

तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ।।५३।।

तुषमाषं घोषयन् भावविशुद्धः महानुभावश्च।
नाम्ना च शिवभूतिः केवलज्ञानी स्फुटं जातः।।५३।।

तुष-माष घोषक भाव शुद्धि-सहित शिवभूति मुनी।
हो गए हैं स्पष्ट आतम अनुभवी सर्वज्ञ भी।।५३।।

अर्थ **- आचार्य कहते हैं कि शिवभूति मुनि ने शास्त्र नहीं पढ़े थे, परन्तु तुषमाष**

ऐसे शब्द को रटते हुए भावों की विशुद्धता से महानुभाव होकर केवलज्ञान पाया, यह प्रकट है।

भावार्थ – कोई जानेगा कि शास्त्र पढ़ने से ही सिद्धि है तो इस प्रकार भी नहीं है। शिवभूति मुनि ने तुषमाष ऐसा शब्दमात्र रटने से ही भावों की विशुद्धता से केवलज्ञान पाया। इसकी कथा इस प्रकार है – कोई शिवभूति नामक मुनि था। उसने गुरु के पास शास्त्र पढ़े, परन्तु धारणा नहीं हुई। तब गुरु ने यह शब्द पढ़ाया कि 'मा रुष मा तुष' सो इस शब्द को घोखने लगा। इसका अर्थ यह है कि रोष मत करो और तोष मत करे अर्थात् राग–द्वेष मत करो, इससे सर्वसिद्धि है।

फिर यह भी शुद्ध याद न रहा तब 'तुषमास' ऐसा पाठ घोखने लगा, दोनों पदों के 'रुकार और[1] तुकार' भूल गये और 'तुष माष' इस प्रकार याद रह गया। उसको घोखते हुए विचरने लगे। तब कोई एक स्त्री उड़द की दाल धो रही थी उसको किसी ने पूछा, तू क्या कर रही है ? उसने कहा – तुष और माष भिन्न–भिन्न कर रही हूँ। तब यह सुनकर मुनि ने 'तुष माष' शब्द का भावार्थ यह जाना कि यह शरीर तो तुष है और यह आत्मा माष है, दोनों भिन्न–भिन्न हैं। इस प्रकार भाव जानकर आत्मा का अनुभव करने लगा। चिन्मात्र शुद्ध आत्मा को जानकर उसमें लीन हुआ, तब घाति कर्म का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार भावों की विशुद्धता से सिद्धि हुई यह जानकर भाव शुद्ध करना, यह उपदेश है।।५३।।

गाथा-५३ पर प्रवचन

५३ वीं गाथा। **आगे शास्त्र पढ़े बिना शिवभूति मुनि ने...** शिवभूति मुनि थे। शास्त्र नहीं पढ़े थे, आता नहीं था, धारणा भी नहीं थी। बहुत सरस बात है। बड़ी शास्त्र की बातें करे, पढ़े, उससे कहीं सम्यग्दर्शन हो जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? और शास्त्र का पठन कुछ न हो तो भी सम्यग्दर्शन हो जाता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : गुरु की कृपा हो।

१. माकार, ऐसा पाठ सुसंगत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा की कृपा हो तब। आहाहा! कहो, समझ में आया?

शिवभूति मुनि ने तुषमाष को घोखते... तुषमाष... तुषमाष... तुषमाष... बस। शब्द की धारणा नहीं हुई थी। बहुत ज्ञानावरणी का क्षयोपशम बहुत थोड़ा, बहुत थोड़ा। हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : ... मार्ग का प्रवेश ही नहीं बनता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ठीक है। वह तो बराबर होगा, परन्तु यहाँ शब्द बराबर नहीं। भावज्ञान।

मुमुक्षु : अपवाद मार्ग है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवाद नहीं, ऐसा होता है, अनन्त हो गये, उसमें क्या है? उसमें क्या है? ऐसे तो अनन्त हो गये।

आत्मा अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यद्रव्य है, उसका भावज्ञान हुआ। यह सब भले धारणा न रहे। शास्त्र की धारणा न रहे, समझाने की शक्ति भी न हो। उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी बात है, भाई! पण्डितजी! पण्डित के ऊपर तो यहाँ पानी डालते हैं। संस्कृत के प्रोफेसर हैं। संस्कृत के प्रोफेसर का ज्ञान-फान यहाँ काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। शास्त्र का ज्ञान काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान! तू कौन है? आहाहा!

कल वह भाई! भगवती (आराधना) का पढ़ा न, तब से हुआ। आहाहा! यह ... ऐसा भजन में कहीं आता है, हों! 'तमे जो जो ... उत्पत्ति...' अपनी उत्पत्ति। अपनी अर्थात् शरीर की। परन्तु उसमें शब्द आत्मा... आत्मा है। अपनी उत्पत्ति तू देख, यह शरीर मिट्टी का पिण्ड... आहाहा! बहुत लिखा है, भाई! इतना लिखा है। माता के गर्भ में... भाई! एक माता के रुधिर का बिन्दु और पिता के वीर्य का बिन्दु दो ... आहाहा! दस दिन तक तो वह ऐसा का ऐसा रहे। फिर दस दिन में तो कुछ कठिन हो। ऐसा है। भगवती आराधना में है। उसमें है न? तुझे शरीर का राग कितना? कौन है परन्तु यह शरीर? धूल... धूल है। आहाहा! यह रहा, लो!

गर्भ में तिष्ठा मिला हुआ माता का रुधिर, पिता का वीर्य,... श्लोक है,

ऐसा श्लोक। सो दस रात्रि पर्यन्त तो हिलता हुआ अन्दर तिष्ठता है। और दस दिन होने के बाद काला होय। दस रात्रि के बाद बीस दिन के बाद दस दिन स्थिर हो। हलन-चलन नहीं करे। एक मास तो ऐसा होता है। यह हड्डियाँ वहाँ से उत्पन्न हुई, यहाँ लगे अच्छा। धूल भी नहीं, कहते हैं, सुन न, भाई! यह तो अशुचि का भण्डार है। पवित्रता का भण्डार तो भगवान है।

कहते हैं... आहाहा! गजब बात। 'दूजे मास विषे बुंदबुंदारूप होय' दूसरे महीने बूँद-बूँद अन्दर जरा कठिन हो। तीसरे मास में बूँद-बूँद घन हो। कठोरता को प्राप्त हो। 'चौथे मास में माँस की पेशी, माँस की डली।' हो। यह शिवकोटि आचार्य राजा थे। मुनि हुए न? पश्चात् वे मुनि हो गये। उन्होंने यह (भगवती आराधना बनाया है)। उन्हें तो अनुभव बहुत हो। बड़े राजा थे। पाँचवें महीने में पाँच पुलक। पाँचवें महीने में पेट में पाँच अंकुर फूटे। 'माँस की डली में निकसे हैं।' माँस की डली में पाँच अंकुर फूटे। क्या? एक मस्तक का आकार, दो हाथ के और दो पैर के। पाँच अंकुर फूटे। आहाहा! उत्पत्ति देखो! भगवान अन्दर है, हों! आत्मा। अमरचन्दभाई! आत्मा तो अन्दर है। उसके बिना महीना-दो महीना कहाँ से हुए? इस शरीर के रजकण ऐसे होने लगे, भाई! उसमें से दो पैर ऐसे फूटे। वनस्पति में से अंकुर फूटते हैं न? इसी प्रकार रक्त के दल में से जरा सिर जैसा आकार, पैर और हाथ। 'छठे मास में मनुष्य के अंग-उपांग प्रगटे।' हाथ-पैर जरा लम्बे...

मुमुक्षु : अंग उपांग।

पूज्य गुरुदेवश्री : अंग और उपांग दोनों। अंग और उपांग। यहाँ कहते हैं।

'दो पैर, दो बाहु, एक नितम्ब, एक पूंठ, एक हृदय, एक मस्तक यह आठ अंग है। अंजन में नेत्र, नासिका, कर्ण, होठ, अँगुली यह उपांग है।' सब एक-एक बात का विस्तार है। यह तो थोड़ा... यह स्थिति देह की उत्पत्ति। आहाहा! जवान हो, फिर जरा ठीक लगे। भगवान! तेरा आत्मा अन्दर प्रभु है न। यह तो सब कोथली विषय, विष्टा और पेशाब की खड़ी हुई बड़ी। आहाहा! समझ में आया? एक-एक बात कितनी ली, देखो! 'दसवें महीने में अंग-उपांग...'

मुमुक्षु : कौन-सी गाथा में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा है। ६, ७, ८, ९, १०। १०१०, १००६, ७, ८, ९, १०। १००० और (१००६ से १०१०)।

मुमुक्षु : एक हजार?

पूज्य गुरुदेवश्री : १००६, ७, ८, ९, १०। यह शरीर की उत्पत्ति।

भगवान आत्मा तो आनन्दमूर्ति, अनाकुल आनन्द वीतराग का रस है। यह माँस की पेशी में भी आत्मा था, वह तो अन्दर आनन्दकन्द ही है। आहाहा! पामरता—राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ और राग की क्रिया से मुझे कल्याण (होता है), इस मिथ्यात्व की मान्यता से पामरता कर डाली है। समझ में आया? है तो महाप्रभु अन्दर में। प्रगट होगी परमात्मदशा, (वह) कहाँ से आयेगी? वह कहीं बाहर से आनेवाली है? अन्दर में है और आयेगी। उसका स्वभाव तो परमात्मा पूर्ण वीतराग है। बात बैठती नहीं। कहते हैं कि ऐसे पढ़े तो उसे बैठती नहीं, ऐसा कहते हैं। ग्यारह अंग का पठन, उसमें यह सब आ गया होगा या नहीं?

सातवें मास में मनुष्य चमड़ी, नख, रोम, बाल हो। उसकी उत्पत्ति। 'अष्ट मास में गर्भ में किंचित् चलन करे। नौवें, दसवें विषे जन्मे।' यह सब उसकी-देह की उत्पत्ति, इस धूल की। उसे सम्हालने के लिये कितना समय।

मुमुक्षु : पूरा दिन उसमें जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा दिन उसमें जाये? तो करे कब आत्मा का?

मुमुक्षु : उसे ही आत्मा माना है? फिर करने का क्या रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! उसे नींद आ जाये तो अच्छा। जगा और चला, दस्त जाये, यह हो, स्नान करे, कपड़े-बपड़े शृंगारे... आहाहा! बहुत से बाद में तिलक-बिलक करना हो तो ऐसे दर्पण में देखे। बन्दर जैसा लगे। बराबर आया है या नहीं यहाँ? भगवान की भक्ति का करने का वह अलग बात है। यह तो घर में। भगवान! तेरा स्वरूप तो अन्दर, देखो! ऐसा कुछ पठन में शिवभूति मुनि को नहीं था। ऐसा जानपना नहीं था। समझ में आया? तथापि... कहेंगे, देखो!

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि शिवभूति मुनि ने... आहाहा!

तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ।।५३।।

'णामेण य सिवभूई' का अर्थ ही यह किया है उसमें। उनका नाम शिवभूति भी भाव शिवभूति हो गया।—कल्याण की मूर्ति हो गये। आहाहा! मारुष, मातुष इतने दो शब्द गुरु ने कहे। मारुष—किसी के प्रति रोष करना नहीं। तुष—सन्तोष रखना। अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा रहना, इसका अर्थ यह। तेरा स्वरूप ही ज्ञाता-दृष्टा है। यह मारुष और तुष कहा, इतना भी याद नहीं रहा? परन्तु आत्मा याद रह गया अन्दर से। समझ में आया? यह बाहर के पठन का अभिमान होता है न? हम यह पढ़े... हम यह पढ़े... वह इसे अन्दर जाने से अटकाता है। ...भाई! वहाँ रुकता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि यह देहादि तो कहीं बाहर है, परन्तु अन्दर पुण्य-पाप के विकल्प, वे बाह्य हैं, यह शास्त्र का ज्ञान, वह बाह्य है। अन्तर भगवान चैतन्य की मूर्ति आनन्दकन्द, उसका जहाँ अन्तर भान हुआ, भाषा भले न आवे। आहाहा! और यह ग्यारह अंग पढ़कर बड़ी लाखों लोगों में बातें करे, परन्तु वह राग और शरीर की क्रिया और ज्ञान का जानपना आत्मा से भिन्न है। ऐसा भान नहीं तो अंक बिना के कोरे कागज में शून्य है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का यह फरमान है। लोगों को खबर ही नहीं। यह बाहर की क्रिया करे—दया पाले, व्रत किये, तप किये, मुँडाया और बाहर निकले। हो गये साधु। भगवानजीभाई! वहाँ तो तुम्हारे तो वह जति आया तो हो गया कि जय महाराज! वहाँ क्या करते हैं परन्तु वहाँ?

मुमुक्षु : कोई था नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई था नहीं। भगवानजीभाई! कोई नहीं था। नैरोबी, नैरोबी या? जति आया था जति। घर-घर से डेढ़ सौ रुपया रखे। चरण करे, लाखों रुपये हो गये। सेठिया हो, वहाँ चरण करावे। वे मानो कि परन्तु अपने कहाँ है? कोई त्यागी दिखता नहीं। इसकी अपेक्षा बेचारा आया है न। मन्दिर दर्शन करे तो अपने को क्या बाधा? जैन साधु। किसे कहना? बापू! जैन, वह कोई वाड़ा नहीं। जैन तो आत्मा

अखण्डानन्द चिदानन्द वीतरागमूर्ति आत्मा का स्वरूप है। उसकी अन्तर में दृष्टि करना। क्रियाकाण्ड का राग, वह मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो!

शिवभूति मुनि ने... शास्त्र बिना। ऐसा ले। **परन्तु तुषमाष ऐसे शब्द को रटते हुए...** शास्त्र का शब्द नहीं था। ऐसा। कौन? **तुषमाष ऐसे शब्द को रटते हुए भावों की विशुद्धता से...** अन्दर चिदानन्द भगवान पवित्र के धाम में अन्तर्मुख से देखा। जो ज्ञान वर्तमान दशा पर को देखता था, वह अन्तर में जहाँ रखा, (वहाँ) चिदानन्द भगवान आत्मा का भान हो गया। **महानुभाव होकर...** देखो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान पाकर **केवलज्ञान पाया,...** केवलज्ञान पाया, केवलज्ञान। आहाहा! तीन काल, तीन लोक को (जाने)।

भावार्थ – कोई जानेगा कि शास्त्र पढ़ने से ही सिद्धि है तो इस प्रकार भी नहीं है। शिवभूति मुनि ने तुषमाष ऐसा शब्दमात्र रटने से ही भावों की विशुद्धता से केवलज्ञान पाया। लो! **इसकी कथा इस प्रकार है – कोई शिवभूति नामक मुनि था। उसने गुरु के पास शास्त्र पढ़े, परन्तु धारणा नहीं हुई।** धारणा रहे नहीं। आहाहा! यह धारणा न रहे, वह कुछ दोष नहीं है। समझ में आया? वह कोई दोष नहीं है। दोष तो राग, (वह) मैं और यह माने, वह भाव दोष है। अल्पज्ञान, वह दोष नहीं। विरुद्ध श्रद्धा, वह दोष है। समझ में आया?

यह (संवत्) १९७५ में कहा था। '...' १९७५। कितने वर्ष हुए? ५१ हुए। दो थे न हमारे ऐसे। कहा, भाई! अल्पज्ञान वह कोई दोष नहीं परन्तु विरुद्ध श्रद्धा और राग-द्वेष, वह दोष है। धारणा न आवे, इसलिए दोष नहीं है। वह कोई दोष नहीं है। देखो न! दोष हो, तब तो अन्दर आगे जा नहीं सकता। समझ में आया? परन्तु अल्पज्ञान का अभिमान अथवा विशेष उघाड़ का अभिमान या पुण्य-पाप के विकल्प का अभिमान, वह मिथ्यात्व का महा दोष है। आहाहा! समझ में आया? महा मिथ्यात्व का दोष है, वह कसाईखाने के पाप से भी इस मिथ्यात्व का पाप अनन्तगुना है। लोगों को खबर नहीं होती, क्या पाप और क्या? यह तो अन्ध-अन्ध (चलते जाते हैं)। अन्धा चले और अन्धा मार्ग दिखाये।

अरे! ऐसी मनुष्यदेह चली जाती है। एक-एक समय। फिर से ऐसे विचारने का समय और अवसर मिलना मुश्किल है। इसे ऐसा लगता है कि हम बड़े हैं। बड़ा होता

हैं या मरण के सन्मुख जाता है? जो स्थिति लेकर आया, उसके सन्मुख जायेगा। जो स्थिति है न, वह कम होती जाती है। पाठ नहीं आता? वृद्धा कहे, लड़का बड़ा होता है। यहाँ कहते हैं कि मरण के सन्मुख जाता है। जितना आयुष्य लेकर आया है, उतना है। उसमें कुछ बढ़ना नहीं है। उसकी माँ कहे, मेरा पुत्र चालीस वर्ष का हुआ। भगवान कहे, तेरे चालीस वर्ष गये, अब मृत्यु के सन्मुख हो गया। आहाहा! देहस्थिति है। भाई! यह तो हड्डियाँ हैं, यह तो माँस है। और तेरा आत्मा मिथ्या श्रद्धा और मिथ्या ज्ञान में रहा तो परिभ्रमण के रास्ते-पन्थ में चढ़ेगा। आहाहा! कोई वहाँ तेरी मदद में है नहीं। ऐसा द्रव्यलिंगी साधुपना अनन्त बार लिया। समझ में आया? पंच महाव्रत पालन किये, वह तो द्रव्यलिंगी उसे कहते हैं, हों! नग्नमुनि हो, पंच महाव्रत निरतिचार पाले, अट्ठाईस मूलगुण सामायिक चोविसंथो निरतिचार हो तो उसे द्रव्यलिंगी कहते हैं। वस्त्र-पात्र सहितवाला द्रव्यलिंगी भी नहीं है।

मुमुक्षु : भावलिंग हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह द्रव्यलिंगीपना अनन्त बार पालन किया तो भी आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना आत्मा के जन्म-मरण का अन्त नहीं आया। आहाहा!

पढ़े, परन्तु धारणा नहीं हुई। तब गुरु ने यह शब्द पढ़ाया कि 'मा रुष मा तुष'... अर्थात् किसी अनुकूलता में राग नहीं, प्रतिकूलता में द्वेष नहीं। अनुकूल-प्रतिकूल कोई चीज़ है नहीं। तू तो आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब जाननेवाला है। बस। यह ठीक और यह अठीक, ऐसा स्वरूप में है नहीं। चैतन्य, वह तो ज्ञान का प्रवाह है। उतना मा रुष—रोष करना नहीं, भाई! मा तुष—राग करना नहीं। बस, इतनी बात। आहाहा! उसका अर्थ यह कि आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसकी दृष्टि कर। कहो, समझ में आया?

सो इस शब्द को घोखने लगा। मारुष... मातुष... मारुष... **इसका अर्थ यह है कि रोष मत करो और तोष मत करे...** रोष करना नहीं। **अर्थात् राग-द्वेष मत करो, इससे सर्वसिद्धि है।** राग-द्वेष न कर। इसका अर्थ कि वीतरागता आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, उसमें आ जा, ऐसा कहा। **फिर यह भी शुद्ध याद न रहा तब 'तुषमास' ऐसा पाठ घोखने लगा, दोनों पदों के 'रुकार और तुकार' भूल गये...** कहते हैं न मारुष।

यह दोष था न? मारुष, मातुष। आहाहा! **दोनों पदों के 'रुकार और[१] तुकार' भूल गये और 'तुष माष' इस प्रकार याद रह गया।** तुष-माष... तुष-माष... तुष-माष रह गया। मा रुष, मा तुष। अर्थात् मा रु-दोषवाला जो था, वह निकल गया। आहाहा! समझ में आया? इतने शब्द याद नहीं रहे। इसलिए कुछ ऐसा उघाड़ न हो तो ज्ञान आत्मा का नहीं होगा, और सम्यग्दर्शन नहीं होगा - ऐसा है नहीं। आहाहा! ग्यारह अंग पढ़े, जगत में बातें करे, ऐसा होता है और वैसा होता है। तो भी वह सब अज्ञान है। आत्मा के सम्यक् बिना उस ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया?

दोनों पदों के 'रुकार और तुकार' भूल गये और 'तुष माष' इस प्रकार याद रह गया। उसको घोखते हुए विचरने लगे। तुषमाष... तुषमाष... तुषमाष... वैराग्य था। शास्त्र की धारणा छूट गयी। वस्तु के अन्दर में भाव में यह तुष माष में आ गये। **तब कोई एक स्त्री उड़द की दाल धो रही थी...** उड़द-उड़द की। ऊफानते हैं न उड़द की दाल? उसका छिलका-छिलका। ऊफानने के बाद छिलका पृथक् पड़ जाता है न? ऐसे-ऐसे करके छिलके निकाल रही थी। उड़द का वह रह जाये।

उसको किसी ने पूछा, तू क्या कर रही है? मुनि ने पूछा नहीं। किसी ने पूछा। दूसरी किसी महिला ने पूछा। उड़द-उड़द। उड़द की दाल ऊफानी हो, फिर काले छिलके निकलते हैं न? मोगर करने के लिये। छड़ी दाल अपने काठियावाड़ में कहते हैं। सफेद। ऐसे-ऐसे करके वे छिलके निकाल डाले। दूसरी महिला (कहती है), क्या करती हो? बहिन! **उसको किसी ने पूछा, तू क्या कर रही है ? उसने कहा - तुष और माष भिन्न-भिन्न कर रही हूँ।** छिलके और उड़द दोनों को अलग-अलग करती हूँ। आहाहा! लो! इतना शब्द, यह कोई शास्त्र का शब्द नहीं है।

तुष और माष भिन्न-भिन्न कर रही हूँ। तब यह सुनकर मुनि ने 'तुष माष' शब्द का भावार्थ यह जाना कि यह शरीर तो तुष है... शरीर शब्द से राग, पुण्य-पाप, विकल्प सब तुष है। समझ में आया? **'देहादिसंगरहिओ'** आयेगा, देखो! ५६ में आयेगा। **'देहादिसंगरहिओ'** ५६वीं गाथा में पहला। सब राग-बाग विकल्पमात्र। चैतन्यदल, आनन्दकन्द का दल, वह उड़द और पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर शरीरादि सब छिलके। समझ में आया?

भावार्थ यह जाना कि यह शरीर तो तुष है और यह आत्मा माष है,... देखो! इसमें आत्मा माष है। वे रागादि भी नहीं। उड़द-उड़द सफेद दाल। धुली दाल, धुली। हमारे गुजराती में छडी दाल कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं? उड़द की सफेद दाल। **शब्द का भावार्थ यह जाना कि आत्मा माष है, यह शरीर तो तुष है। इस प्रकार भाव जानकर...** आत्मा माष है और शरीर तुष है। आहाहा! शब्दों में बहुत साधारण शब्द थे। परन्तु तुषमाष में उन्हें अन्तर में रह गया कि यह भगवान आत्मा आनन्द का, ज्ञान का धाम है वही उड़द है—माष है। और विकल्प से लेकर व्यवहार ... यह सब छिलके हैं। बस, दो ही चीज़। समझ में आया?

इस प्रकार भाव जानकर... ऐसे भाव जानकर, भाव जानकर। यह ज्ञायक चैतन्यबिम्ब प्रभु वह तो माष उड़द के स्थान पर है। उड़द के स्थान पर है। पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म, शरीर, वाणी, मन सब तुष—ऊपर के काले छिलके हैं। उसे और उड़द को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसे भाव जानकर **आत्मा का अनुभव करने लगा।** लो! अन्तर आनन्द का अनुभव करने लगा। आत्मा माष है—शुद्ध चैतन्य धातु आनन्द का कन्द, ऐसा जहाँ अनुभव करने लगा। **चिन्मात्र शुद्ध आत्मा को जानकर...** लो! आत्मा तो ज्ञानमात्र शुद्ध है। पुण्य, पाप के विकल्प आदि सब आत्मा में नहीं है। आत्मा है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

राजा के कुँवर होंगे। जब वैराग्य होता होगा। मणिरत्न के अन्दर तलिया हो। यह क्या कहलाता है? टाईलस। मणिरत्न की टाईल्स और नवविवाहित ऐसी ३२ वर्ष की जवान कन्यायें राजकुमारी। श्मशान जैसा लगता है। अरे! हम कहाँ हैं और यह क्या है यह? समझ में आया? हम कौन हैं और यह क्या दिखता है? यह शरीर, वह मैं नहीं, वाणी मैं नहीं, स्त्री मैं नहीं। अन्दर दया, दान, व्रत के विकल्प उठे, वह दया, दान, व्रत, भक्ति वह मैं नहीं... वह मैं नहीं। मेरी चीज़ तो अन्दर ज्ञानानन्द का कस वीतरागस्वभाव से भरपूर। आहाहा! समझ में आया? अकेले वैराग्य से स्त्री-पुत्र छोड़कर निकले, इसलिए धर्मी हो जाये, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह स्त्री-पुत्र छोड़े हो गया, वेश बदला, नग्न हुआ, (इसलिए हो गया) साधु। धूल भी साधु नहीं, सुन न! किसे कहना साधु और किसे कहना समकिती, अभी तुझे खबर नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो पुण्य-पाप के विकल्प राग, वह छिलके और आत्मा चिन्मात्र शुद्ध, बस। चिन्मात्र शुद्ध आत्मा भगवान ज्ञानमात्र की अन्तर्दृष्टि करना और अनुभव होना, उसका नाम तो अभी पहला सम्यग्दर्शन की, धर्म की पहली सीढ़ी। अब उसका तो भान नहीं होता और धर्म हो गया। मर जायेगा, चौरासी के अवतार में चला जायेगा। कोई पूछे ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! शरणभूत भगवान चिदानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति। लो! चिन्मूर्ति में और यह याद आ गया तुम्हारा। क्या कहते हैं? सोने की साँकली को क्या कहते हैं? चैन कहते हैं? चैन कहते हैं, नहीं? सोने की सांकली से बात याद आ गयी। इस चैन का। चैन-साँकली नहीं, यह तो चिन्मूर्ति की साँकली है। आहाह! ऐ... वजुभाई! ऐसा कुछ कहते अवश्य हैं। ऐसा सुना हुआ अवश्य है। आहाहा! तू तो चिन्मूर्ति चैन है। ज्ञान का पिण्ड है, चैतन्य का पिण्ड भगवान आत्मा है। उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के विकल्प उसमें है नहीं। वह अलग चीज़ विकार, दोष है। आहाहा! क्या कहा? देखो न!

आत्मा का अनुभव करने लगा। क्या? **चिन्मात्र शुद्ध आत्मा को जानकर उसमें लीन हुआ,...** आहाहा! मेरा प्रभु चिन्मूर्ति है। मैं तो ज्ञान के आनन्द का धाम हूँ। राग-द्वेष विकल्प, वह मेरी चीज़ में नहीं। यह छिलके... छिलके... छिलके... यह उड़द की दाल के काले छिलके। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **चिन्मात्र शुद्ध आत्मा को जानकर उसमें लीन हुआ,...** यह चारित्र हुआ। आहाहा! भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप, उसकी अन्तर नजर करके राग को, विकल्प को भिन्न करके स्वरूप को जानकर स्थिर हुआ, लीन हुआ।

तब घाति कर्म का नाशकर... लो! चार घातिकर्म का नाश करके केवलज्ञान जलहल ... केवलज्ञान प्रगट हुआ। आहाहा! कहो, समझ में आया? **घाति कर्म का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार भावों की विशुद्धता से सिद्धि हुई यह जानकर... सिद्धि हुई जानकर, भाव शुद्ध करना, यह उपदेश है।** समझ में आया? बहुत सरस बात, लो! पहले आयी वह ग्यारह अंग का ज्ञान। दूसरा आया यह। कुछ ज्ञान नहीं था। ग्यारह अंग का ज्ञान सबको जाने, तथापि कुछ नहीं था। इन्हें ग्यारह अंग की कुछ शब्द की धारणा नहीं थी परन्तु वस्तु चिदानन्द... आहाहा! कहो, समझ में आया?

गाथा-५४

आगे इसी अर्थ को सामान्यरूप से कहते हैं –

भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीण णियरं णासइ भावेण दव्वेण।।५४।।

भावेन भवति नग्नः बहिर्लिंगेन किं च नग्नेन।
कर्मप्रकृतीनां निकरं नाशयति भावेन द्रव्येण।।५४।।

हो नग्नता नित भाव से बहि लिंग से क्या नग्न हो?
हों भाव पूर्वक द्रव्य से सब कर्म प्रकृति नष्ट हों।।५४।।

अर्थ – भाव से नग्न होता है, बाह्य नग्नलिंग से क्या कार्य होता है ? अर्थात् नहीं होता है, क्योंकि भावसहित द्रव्यलिंग से कर्मप्रकृति के समूह का नाश होता है।

भावार्थ – आत्मा के कर्मप्रकृति के नाश से निर्जरा तथा मोक्ष होना कार्य है। यह कार्य द्रव्यलिंग से नहीं होता। भावसहित द्रव्यलिंग होने पर कर्म की निर्जरा नामक कार्य होता है। केवल द्रव्यलिंग से तो नहीं होता है, इसलिए भावसहित द्रव्यलिंग धारण करने का यह उपदेश है।।५४।।

गाथा-५४ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को सामान्यरूप से कहते हैं –

भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीण णियरं णासइ भावेण दव्वेण।।५४।।

देखो! वापस दोनों हों, हों! ऐसा। भाव जहाँ ऐसा प्रगटे, वहाँ द्रव्य नग्नपना ही होता है। वापस कोई कहे कि उसे गृहस्थाश्रम का वेश हो और भाव आ गया मुनिपने का, ऐसा नहीं हो सकता। कपड़े-बपड़े रखते हों, पात्र रखते हों और हमें भाव आ गया मुनिपने का। एकदम झूठा, एकदम झूठा मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आहाहा!

देखो! दोनों डाले हैं, हों! 'इंब्पक्षूजञि रुजूर्फै ञणलई धणमज्ञञ डब्मज्ञञ' साथ में वह निमित्त है न? आहाह!

अर्थ – भाव से नग्न होता है,... देखो! अन्दर में विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति के राग से भी भिन्न पड़े, तब उसे सम्यग्दर्शन-अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी होती है। आहाहा! भारी काम जगत को... **बाह्य नग्नलिंग से क्या कार्य होता है?** अकेला नग्नपना-दिगम्बर मुनि होकर वन में बसे, हजारों रानियों का त्याग करे, उससे क्या? आत्मा का कल्याण उसमें कुछ है नहीं। **क्योंकि भावसहित द्रव्यलिंग से...** देखो! भाव जहाँ ऐसा प्रगट हुआ, वहाँ नग्नपना, अट्ठाईस मूलगुण का निमित्तपना वहाँ ऐसा ही होता है। वापस दूसरा निमित्तपना हो, ऐसा नहीं है। जहाँ भाव प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का, वहाँ आगे बाह्य में नग्नदशा हो जाती है। अन्दर में अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प ही होते हैं। भले छिलके हैं, परन्तु वे होते हैं। ऐसा नहीं कि गृहस्थ का वेश हो और मुनिपना आ गया और केवलज्ञान हो गया। ऐसा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? मनसुखभाई! लो, यह नग्नपना तो होवे सही। परन्तु वह भावलिंग हो तो नग्नपना निमित्त कहने में आता है। कहो, समझ में आया? और भावलिंग हो और अनुभव में हो और नग्नपना न हो तथा दूसरा वेश हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता। वीतरागमार्ग में यह बात है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसकी वहाँ कीमत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमत नहीं तो भी होता है। बोरी की कीमत नहीं। चार मण और ढाई सेर चावल तोले, लो। चोखा-चोखा समझते हो न? चावल। चार मण और ढाई सेर। अब चार मण चावल पकते हैं और ढाई सेर नहीं पकते। परन्तु बोरी में रहते हैं न चावल? साथ में तुल जाते हैं, साथ में चार मण और ढाई सेर। चावल हों चार मण, बोरी हो। कोथला समझे न बारदान? वह ढाई सेर हो। बोला तो ऐसा ही जाता है न साथ में?

मुमुक्षु : क्या लाये? तो कहे चावल लाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : चावल लाये। परन्तु वह बारदान साथ में है। चावल कम हो

तो कोई बारदान पकाया जाता होगा? ऐई! मनसुख! यह रखे, वह क्या कहलाता है बड़ा? बड़ा काँटा। हमारे साथ में काँटा (तराजू) था ... उसमें बोलते चार मण और ढाई सेर। वे मजदूर बोले न, मजदूर बोले। एक दुकान साथ में उनकी थी ... यहाँ से... होवे तो वहाँ जाये। कहते हैं कि चावल है वे पकाने में काम आते हैं, कहीं बोरियाँ पकाने में काम आती है? परन्तु बोरियाँ होती अवश्य हैं। बोरी न हो और चावल अकेले चावल किस प्रकार?

इसी प्रकार **भावसहित द्रव्यलिंग से कर्मप्रकृति के समूह का नाश होता है।** देखो! पाठ शास्त्र का। समझ में आया? जिसे अन्तर के शुद्ध चैतन्य का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और वीतरागी चारित्र प्रगट हुआ हो, भाव मुनिदशा (हो), उसे बाह्यलिंग नग्न ही होता है। इसके अतिरिक्त उसका वेश दूसरा नहीं होता। और अट्ठाईस मूलगुण के ही विकल्प-राग होता है। राग होता अवश्य है। उससे बन्धन का कारण है। परन्तु वह होता अवश्य है। ऐसा! आहाहा! वीतराग मार्ग की जगत को खबर नहीं। इसलिए कहीं न कहीं चढ़ गये बेचारे। मनुष्य का अवतार व्यर्थ चला जाएगा। धूल में भी नहीं। कोई दो-पाँच-दस लाख इकट्ठे किये हों, वह तो पुण्य के कारण, अभिमान का पार नहीं होता। हम तो... बापू छोड़कर नहीं गये थे और हमने बाहुबल से कमाये हैं। धूल भी कमाया नहीं, सुन न अब। वह तो पूर्व के पुण्य की नोट पड़ी होगी और फिर यह दिखायी दिया बाहर। ऐसा होगा या नहीं? मनसुख! किसी की मान्यता-बान्यता करे तो होगा या नहीं? सोमवार रहे तो? सोमवार रहे तो पाप बढ़ाये, पुण्य घट जाये। ऐसा भगवान कहते हैं। समझ में आया? किसी के नाम से सोमवार रहे, वह रहे, तिथि रहे। तुम्हारे क्या कहलाता है? पीर। ... वह रहे तो इसे क्या लाभ होगा? कि पूर्व का जो पाप है, उसमें वृद्धि होगी और पूर्व में पुण्य बाँधा हो, उसमें कमी होगी।

मुमुक्षु : धर्म कितना होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप पूरा होगा। धर्म वहाँ कहाँ था धूल भी? समझ में आया? अब अपने एक सोमवार रखो, एक अँगूठी रखो हाथ में-अँगुली में, शनिवार की या अमुक। ऐसे बहुत प्रकार हैं। अपने को बहुत खबर नहीं। मंगल और शनि। ऐसे के ऐसे मूढ़ वे कुछ... यह जाते न वे कहीं। कौन सा गाँव? करोड़पति था। अमरावती।

अमरावती, अमरावती का वह गृहस्थ था न करोड़पति ? बड़ा था। नाथूलाल। नाथू शाह करोड़पति। हम घर में आहार करने गये। बहुत लोग स्वागत में। बहुत लोग और व्याख्यान दिया। बहुत लोग। उसमें वह कुछ शनि-बनि की अँगूठी रखता होगा, वह खो गयी। यह दिगम्बर जैन कहलाये। करोड़पति है। नथु न कौन ? हाँ, वह। छह हजार की कुछ अँगूठी ली। शनि-बनि की होगी। यह धूल के वहम का पार नहीं अज्ञानी को। वह अँगूठी खो गयी। कहे, अरे! आज तो मेरी अँगूठी खो गयी। ऐसे जहाँ पूछा वहाँ कहे, वह सब वहम की अँगूठी थी। पैसा हो तो यह ठीक हो। शनिदेव की अँगूठी पहनी हो न ? धूल भी नहीं होगा, सुन न! तू मर जायेगा अब। पूर्व के पुण्य बिना एक भी पाई नहीं मिलती। ऐई! 'कनु'! वह तुम्हारे कनुभाई को ... ... हसुभाई को अधिक।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मान्यता खोटी खोटी। गप्प के पाप की बड़ी मान्यता है। पूर्व का पुण्य बाँधा हो, वह घट जाये, ऐसा भगवान कहते हैं।

मुमुक्षु : भगवान तो ऐसा ही कहते हैं न, परन्तु ज्योतिष दूसरा कहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्योतिषी तो मूर्ख होओ तो रखे, और उसे पैसा चाहिए हो इसलिए। उसे कमाने का होगा या नहीं ? लाओ, दो रुपये।

हमारे तब हमारी छोटी उम्र। १७ वर्ष की होगी प्राय:। १९ वर्ष की। दुकान में मैं अकेला था। वे लोग शाम का भोजन करने गये। तो उसमें एक आया ज्योतिषी। होशियार, हों! ... लटकाई हुई हो। पगड़ी बाँधते हैं न ? उसकी दुकान लोटिया की थी। हमारी दुकान पहले। वहाँ मुसलमान के यहाँ तो न जाये। हम तो दुकानदारी सेठ ही कहलाये न ? १९ वर्ष के। सेठ! बोलना नहीं कुछ तुम। तुम्हारे लेना हो तो लो।

मुमुक्षु : तुम्हारे से मुहूर्त करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे से मुहूर्त करना है। सामने गुण थी न ? गुण में बैठा। ५५ वर्ष का आयुष्य है। अब यहाँ ८१ तो अभी हुए। सब खोटे-खोटे गप्प मारे, तब १९ वर्ष की छोटी उम्र थी और, आहाहा! ५५ वर्ष इसलिए बहुत लगे। ऐसा बोला था, लो! उस दिन चार आने दिये थे।

मुमुक्षु : बोणी तो करना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा बोला था बोणी करना। न करना नहीं। देना, न देना परन्तु... ठीक, तेरा ले जा। ५५ वर्ष का आयुष्य और बहुत बड़ी दुकान, सेठिया होगा। और नौकर ऐसे और लड़का ऐसा। ओहो! वह तो बातें करने लगा। अच्छा ही बोले न? ऐसी की ऐसी गप्प-गप्प। मूर्ख हो तो उलझ जाए। निश्चित अपने ऐसे होगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न अब। यह ५५ का कहा था और ८१ हुए। कहाँ गया तेरा ज्योतिषी? होशियार था, हों। आहाहा! कुछ नहीं होता ज्योतिष-ब्योतिष में व्यर्थ की गप्पें मारा करते हैं, उसमें प्रसन्न हो।

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं, भावस्वरूप का भान जिसे है। देखो! **भावार्थ - आत्मा के कर्मप्रकृति के नाश से निर्जरा तथा मोक्ष होना कार्य है।** क्या कहते हैं? आत्मा का वास्तविक कार्य कौन सा? कि कर्म की निर्जरा छूटकर मोक्ष हो, वह आत्मा का कार्य है। आत्मा का वह कार्य है। कर्म प्रकृति का नाश करके। व्यवहार से बात करते हैं न। अशुद्धता की... **निर्जरा तथा मोक्ष होना कार्य है। यह कार्य द्रव्यलिंग से नहीं होता।** यह कार्य द्रव्यलिंग और नग्नपना कोई अट्ठाईस मूलगुण से नहीं होता। तथापि हुए बिना नहीं रहता। ऐसी बात। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार का जोर बहुत।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का जोर कहाँ है? वस्तु होती है, इतनी बात है। केसर कहीं बोरियों में भरी जाती है? बोरियों में केसर डाली जाती है? केसर में तो डिब्बी और बरणी चाहिए। ऐसा मुनिपना जहाँ अन्दर प्रगटे, उसे तो नग्न और अट्ठाईस मूलगुण के ही विकल्प की डिब्बी होती है। समझ में आया? यह बोरी में केसर नहीं रहती। कोथला समझते हो? बारदान। बोरी। सुतली की बोली। उसमें केसर रहे? केसर का चूरा होकर निकल जाए केसर। बरणी और डिब्बा हो तो रहे। आहाहा! अन्तर के अनुभव का भान, आनन्दमूर्ति मैं हूँ, क्रियाकाण्ड का विकल्प का राग का मैं कर्ता नहीं। देह की हलन क्रिया का मैं कर्ता नहीं, ऐसा जहाँ भान है और ऐसे भान में अन्दर स्थिर हुआ है, ऐसे भावलिंग से कार्य यह होता है। यह द्रव्यलिंग से नहीं होता। समझ में आया?

भावसहित द्रव्यलिंग होने पर कर्म की निर्जरा नामक कार्य होता है। देखो! पाठ में है न? **'भावेण दव्वेण'** पाठ है। **भावसहित द्रव्यलिंग होने पर कर्म की निर्जरा नामक कार्य होता है। केवल द्रव्यलिंग से तो नहीं होता है,...** परन्तु भावलिंग हो, उसमें द्रव्यलिंग साथ में होता है। बहुत बात... **केवल द्रव्यलिंग से तो नहीं होता है,...** बस, इतनी बात। अकेले द्रव्यलिंग से तो कर्म की निर्जरा नहीं होती। पंच महाव्रत पाले तो भी वह तो राग है। उससे कुछ निर्जरा धर्म-बर्म होता नहीं। आहाहा! यह तो पंच महाव्रत के नाम पाड़े, वहाँ तो उसे धर्म हो गया। यह पंच महाव्रत लिये, दीक्षा ली। धूल भी दीक्षा नहीं। दख्या है। दु:ख में पड़ा है। दक्षा कही दक्षा। पागल मनुष्य पागल जैसा उसका देनेवाला हो। ऐई! किसी को दी है या नहीं किसी को? नहीं दी? ठीक! सेठिया दूसरे को मूंडे। घर में तो हो नहीं तो क्या करे?

मुमुक्षु : घर के लड़के मुंडाये नहीं जाते।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर के लड़के मुंडाये नहीं जाते, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु तो ऐसा पुकारते हैं, भाई! यह अकेला क्रियाकाण्ड और नग्नपने से कहीं कर्म का नाश नहीं होता। मिथ्यात्व का भी नाश नहीं होता। भाव अन्दर में स्वरूप का अनुभव करे, वहाँ मिथ्यात्व का नाश होगा और स्वरूप में स्थिर हो, तब अव्रत का नाश होकर कर्म का नाश होगा। आहाहा!

द्रव्यलिंग से तो नहीं होता है, इसलिए भावसहित द्रव्यलिंग धारण करने का यह उपदेश है। वापस भाव अनुभवसहित नग्नपना और अट्ठाईस मूलगुण का धारण करना होता है। न हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? टीका में बहुत कठोर लिया है, लौका ऊपर। उसमें लिखा था टीका में वह लौका लिखा है न? उस में लाभ। देखो! लौका पापी गृहस्थाश्रम में केवलज्ञान कहते हैं। .... लौका ऊपर ... उस समय निकला हुआ सही न? स्थानकवासी का धर्म उस समय निकला हुआ। फिर यह निकले। साथ-साथ निकले। ५०० वर्ष पहले निकले हुए बाहर, श्वेताम्बर में से निकले हुए। विरोध बहुत किया। द्वेष नहीं होना चाहिए किसी के प्रति। मार्ग तो होगा, वह होगा। न समझे तो क्या? उसे उसमें दोष किसी को जोखिम है नहीं। किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं करना। विरोध-बैर न हो। सब भगवान हैं। भूले तो भी वे भगवान हैं। वह भूल

निकालेगा, तब भगवान होगा। आहाहा! **भावसहित द्रव्यलिंग धारण करने का...** देखा! यह पाठ में है न, **'भावेण दव्वेण'** यह ५४। ५४ है न। अन्तिम ... ५४। **'भावेण दव्वेण'** ५४वीं गाथा में है।

गाथा-५५

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं –

णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।
इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर।।५५।।

नग्नत्वं अकार्यं भावरहितं जिनैः प्रज्ञप्तम्।
इति ज्ञात्वा नित्यं भावयेः आत्मानं धीर!।।५५।।

हो भाव-विरहित नग्नता नहिं कार्यकारी जिन-कथित।
यों जानकर हे धीर! भाओ निजातम को ही सतत।।५५।।

अर्थ – भावरहित नग्नत्व अकार्य है, कुछ कार्यकारी नहीं है। ऐसा जिन भगवान् ने कहा है। इस प्रकार जानकर हे धीर ! हे धैर्यवान् मुने ! निरन्तर नित्य आत्मा की ही भावना कर।

भावार्थ – आत्मा की भावना बिना केवल नग्नत्व कुछ कार्य करने वाला नहीं है, इसलिए चिदानन्दस्वरूप आत्मा की ही भावना निरन्तर करना, आत्मा की भावना सहित नग्नत्व सफल होता है।।५५।।

गाथा-५५ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं –

णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।
इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर।।५५।।

अर्थ – भावरहित नग्नत्व... जैनदर्शन में मुनि तो तीनों काल नग्न ही होते हैं। इसके बिना मुनिपना नहीं हो सकता। परन्तु नग्नरहित अकेले नग्नपने-भावरहित तो **अकार्य है, कुछ कार्यकारी नहीं है।** कुछ कार्यकारी नहीं है। आहाहा! **ऐसा जिन भगवान् ने कहा है।** जिन भगवान तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरों ने यह कहा है। सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वे भी ऐसा कहते हैं। सीमन्धर भगवान तीर्थंकरदेव विहरमान परमात्मा विराजते हैं। महावीर भगवान आदि मोक्ष पधारे। उन सब जिन भगवान ने ऐसा कहा है।

इस प्रकार जानकर... जिन भगवान ने ऐसा कहा है। भगवान ने अर्थात् हिन्दी भाषा में भगवान ने। भगवान को कहा, ऐसा नहीं। हिन्दी भाषा में ऐसा आता है न? भगवान ने ऐसा कहा है। **इस प्रकार जानकर हे धीर! हे धैर्यवान् मुने!** हे धैर्यवान! **मुने! निरन्तर नित्य आत्मा की ही भावना कर।** धीर का अर्थ किया था। धी अर्थात् बुद्धि को ध्येय अर्थात् ध्रुव के प्रति प्रेरे, उसे बुद्धिवन्त धीमन्त कहते हैं। धी अर्थात् बुद्धि। धी का अर्थ बुद्धि होता है, ज्ञान (होता है)। उस बुद्धि को—ज्ञान का ध्येय ध्रुव त्रिकाल आनन्दकन्द में, धी को ध्येय में प्रेरे, उसे धी—बुद्धि कहा जाता है। राग में एकाकार हो, वह बुद्धि नहीं, कुबुद्धि है।

मुमुक्षु : धीर नहीं कहलाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। अधीर है, कायर है। यह टीका में है। धीर का अर्थ इसके पहले किया था। टीका में इसके पहले किया था। धी—बुद्धि। धी अर्थात् यह ज्ञान की पर्याय जो है न? शरीर, वाणी, जड़ पर। दया, दान के विकल्प वह राग। ज्ञान की बुद्धि है, उस बुद्धि को धी कैसे कहना? कि जो बुद्धि ध्येय अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य के प्रति धी झुके, उसे धी और उसे धीरवन्त कहा जाता है। बाकी सब अस्थिर और अधीर है। आहाहा! पुण्य और पाप में एकत्व होता है, वे सब अधीर हैं, अबुद्धिवाले हैं। आहाहा! समझ में आया?

हे धीर! हे धैर्यवान् मुने! निरन्तर नित्य आत्मा की ही भावना कर। आहाहा! है न भाव? **'णिच्चं'** शब्द पड़ा है न? **'णिच्चं'** नि-भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, चैतन्यघन,

उसकी अन्तर्दृष्टि में निरन्तर उसकी भावना कर। आहाहा! समझ में आया? **निरन्तर नित्य आत्मा की ही भावना कर।** लो!

भावार्थ – आत्मा की भावना बिना केवल नग्नत्व कुछ कार्य करनेवाला नहीं है, इसलिए चिदानन्दस्वरूप आत्मा की ही भावना निरन्तर करना,... लो! ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा, आत्मा कैसा है? चिदानन्दस्वरूप आत्मा। अकेला ज्ञान और आनन्दस्वरूप का पिण्ड प्रभु आत्मा। उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता **निरन्तर करना, आत्मा की भावना सहित नग्नत्व सफल होता है।** यह हो तो नग्नपना निमित्त में कहा जाता है। नहीं तो कुछ कार्यकारी नहीं है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-५६

आगे शिष्य पूछता है कि भावलिंग को प्रधान कर निरूपण किया, वह भावलिंग कैसा है ? इसका समाधान करने के लिए भावलिंग का निरूपण करते हैं –

देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचित्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू।।५६।।

देहादिसंगरहितः मानकषायैः सकलपरित्यक्तः।
आत्मा आत्मनि रतः स भावलिंगी भवेत् साधु।।५६।।

देहादि संग-विहीन सकल कषाय मानादि-रहित।
निज आतमा में आत्मा रत भाव लिंगी जिन-कथित।।५६।।

अर्थ – भावलिंगी साधु ऐसा होता है – देहादिक परिग्रह से रहित होता है तथा मान कषाय से रहित होता है और आत्मा में लीन होता है, वही आत्मा भावलिंगी है।

भावार्थ – आत्मा के स्वाभाविक परिणाम को 'भाव' कहते हैं, उस रूप लिंग (चिह्न), लक्षण तथा रूप हो वह भावलिंग है। आत्मा अमूर्तिक चेतनारूप है, उसका

परिणाम दर्शनज्ञान है। उसमें कर्म के निमित्त से (पराश्रय करने से) बाह्य तो शरीरादिक मूर्तिक पदार्थ का सम्बन्ध है और अन्तरंग मिथ्यात्व और रागद्वेष आदि कषायों का भाव है इसलिए कहते हैं –

बाह्य तो देहादिक परिग्रह से रहित और अन्तरंग रागादिक परिणाम में अहंकाररूप मानकषाय, परभावों में अपनापन मानना, इस भाव से रहित हो और अपने दर्शनज्ञानरूप चेतनाभाव में लीन हो वह 'भावलिंग' है, जिसको इस प्रकार के भाव हों, वह भावलिंगी साधु है।।५६।।

प्रवचन-११६, गाथा-५६ से ५८, शनिवार, आसोज कृष्ण ३, दिनांक १७-१०-१९७०

५५वीं गाथा हुई। भावपाहुड़। ५६वीं गाथा। **आगे शिष्य पूछता है कि भावलिंग को प्रधान कर निरूपण किया,...** भावलिंग हो, वही मुनिपना और वही मोक्ष का मार्ग। ऐसा आपने कहा। **वह भावलिंग कैसा है?** भावलिंग किसे कहना? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। **इसका समाधान करने के लिए भावलिंग का निरूपण करते हैं –**

देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचित्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू।।५६।।

साधु किसे कहना और साधु को कैसा भाव होता है, उसका यह वर्णन है।

अर्थ – भावलिंगी साधु ऐसा होता है – देहादिक परिग्रह से रहित होता है... क्या कहते हैं? देह से लेकर राग, दया, दान, व्रत, विकल्प वह सब, उसके परिग्रह से वह रहित होता है। आदि में यह आयेगा अर्थ में। अन्तरंग भावकर्म, रागादि, दया, दान इत्यादि। अर्थ में आयेगा। आदि है न? देहादि। देह तो है परन्तु देह आदि (अर्थात्) अन्दर पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रतादि के विकल्प, भावलिंगी सन्त तो उसकी पकड़ से रहित है। आहाहा! समझ में आया?

तथा मान कषाय से रहित होता है... अर्थात् क्या? कि रागादि विकल्प और शरीरादि वह मेरा है, यह उसकी बुद्धि हो गयी है। उसका भान नहीं कि यह मैं हूँ। ऐसी दृष्टि टल गयी है उसकी। समझ में आया? **रहित होता है तथा मान कषाय से रहित**

होता है... यह मैं हूँ, उससे रहित कहा, परन्तु यह मैं हूँ। ऐसा मान जिसे नहीं होता। क्या कहा, समझ में आया? **देहादिक परिग्रह से रहित...** पर का संग नहीं, विकल्प रागादि का संग नहीं जिसे। आहाहा! यह मुनि। और मानकषाय **'सयलपरिचित्तो'**। उसका संग नहीं, इसलिए वे मेरे हैं, ऐसा मान ही जिसे गल गया है। पर का अहंकार। यह राग मैं, व्यवहार मैं, विकल्प मैं, यह मान जिसका गल गया है। **'परिचित्तो'** है न? 'क्षफि' अर्थात् सर्व प्रकार से छोड़ दिया है। बहुत संक्षिप्त भाषा में (कहा है)। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में पहले तो रागादि पर से भिन्न भगवान आत्मा हूँ, ऐसा अनुभव और भान हुआ हो। परन्तु वह तो बाद की बात है न? पश्चात् तो अस्थिरता के राग से भी रहित हो गये हैं। और वह अस्थिरता जो राग में मैंपना, वह तो पहले से टल गयी है। क्या कहा? समझ में आया?

आत्मा... यह कहते हैं, देखो! **'अप्पा अप्पम्मि रओ' 'अप्पा अप्पम्मि रओ'** आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वभाव वस्तु, वह **'अप्पा अप्पम्मि'** अपना वीतरागी स्वभाव, उसमें लीन है। जहाँ पर्याय में रागादि विकल्प का परिग्रह नहीं, छूट गया है। वह संगरहित है और उसका मैं हूँ, ऐसा विकल्प अहंपने का मान से परिचित है—परिचित है—वह सर्वथा रहित है। समझ में आया? **'अप्पा अप्पम्मि रओ'** अब बाकी रहा क्या तब अब? कि आत्मा, देखो! यह साधुपना, देखो! यह सम्यग्दर्शन। समझ में आया? आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव, शुद्ध चैतन्य प्रभु, वह **'अप्पा अप्पम्मि'** अपनी वीतराग पर्याय में लीन है। उसे भावलिंग कहा जाता है। उसे साधु कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अट्ठाईस मूलगुण के पालन में रत कब है?

पूज्य गुरुदेवश्री : रत होवे कब? वह तो विकल्प से रहित है। अट्ठाईस मूलगुण तो राग है, परिग्रह परवस्तु-परद्रव्य अज्ञानभाव है। अज्ञान अर्थात् आत्मज्ञानभाव वह चीज़ नहीं है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य ने पालन किये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाले-फाले किसी ने नहीं, जाने थे। पाले कौन? वह तो

व्यवहारनय के कथन ऐसे हैं। पाले नहीं परन्तु थे, उन्हें पालन किये कहना, अन्यथा कहना, वह व्यवहारनय का लक्षण है। समझ में आया? वह व्यवहारनय का लखण-लक्षण है। पाले कौन? समझ में आया? भीखाभाई! यह तो अजर-अमर की बातें हैं। आज तो सब गाथायें ऐसी आयेंगी।

संक्षिप्त में सीधा शब्दार्थ कहें तो परसंग से रहित है और रहित है, इसलिए पर का अहंपना जिसमें नहीं, मान नहीं। **'अप्पा अप्पम्मि रओ'** अपने में लीन है। मुनि तो आनन्दस्वरूप में लीन है। **'रओ' 'भावलिंगी हवे साहू'** थोड़ा सा आया था, वह ३१ गाथा में पहले। ३१ है न इसकी? ३१ में आया था। वह बात हो गयी है पहले। ३१ गाथा में यह कहा।

अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिहं चारित्त मग्गो त्ति।।३१।।

इस भावपाहुड़ की ३१ गाथा में आया था... समझ में आया? मूल बात क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और खबर बिना सब गाड़ा हाँकता है। अनादि काल के अज्ञान के हैं यह। यहाँ तो कहते हैं कि भावलिंग तो पहले सम्यग्दर्शन प्रगट हो, वह उसका सम्यग्दर्शन भावलिंग है परन्तु यहाँ चारित्र का वर्णन है। इसलिए यहाँ तो राग की अस्थिरता का जो भाग है, उससे भी रहित, संग से रहित हो गया है। असंग चैतन्य भगवान की लीनता में है। महाप्रभु चैतन्य शुद्ध आनन्द, उसमें **'अप्पा अप्पम्मि रओ'** आत्मा, आत्मा से उसमें लीन है। वह व्यवहार है, उससे तो रहित है। यह मैं करता हूँ, पालता हूँ, यह तो उसमें है नहीं। समझ में आया? भारी सूक्ष्म!

आत्मा में लीन होता है, वही आत्मा भावलिंगी है। उसे भावलिंगी साधु, मुनि, मोक्षमार्ग में रत है, ऐसा कहा जाता है। अब इसका अर्थ करते हैं।

भावार्थ – आत्मा के स्वाभाविक परिणाम को 'भाव' कहते हैं,... क्या अर्थ करते हैं? भावलिंग। भावलिंग। इन दो का अर्थ करते हैं। भाव अर्थात् क्या और लिंग अर्थात् क्या? समझ में आया? **आत्मा के स्वाभाविक परिणाम को 'भाव' कहते हैं,...** समझ में आया? क्या कहा? देखो! यह मोक्ष का मार्ग साधु का, वह साधुपना

कैसा है, उसका ज्ञान और श्रद्धा कराते हैं। आहाहा! अभी साधुपना किसे कहना, इसकी खबर न हो और श्रद्धा सच्ची हो जाये, समझ में आया? ऐसा नहीं होता। भावलिंग, वह सच्चा साधु अर्थात् कि भाव और लिंग दो शब्द क्यों हैं? तो कहते हैं, भाव अर्थात् आत्मा के स्वाभाविक शुद्ध चैतन्यद्रव्य के सम्यग्दर्शनरूपी परिणाम, शुद्ध स्वभाव के सम्यग्ज्ञानरूपी परिणाम, शुद्ध स्वभाव के सम्यक्चारित्ररूपी स्थिरतारूपी परिणाम, उसे भाव कहते हैं। शरीरादि के भाव नहीं, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प, वह भाव नहीं। वह जीव का भाव नहीं। समझ में आया?

आत्मा के स्वाभाविक परिणाम को 'भाव' कहते हैं,... यह पहला अर्थ। **उस रूप लिंग...** ऐसे परिणामरूपी लिंग, ऐसा **(चिह्न), लक्षण तथा रूप हो वह भावलिंग है।** समझ में आया? पण्डित जयचन्द्रजी ने भी अर्थ बहुत अच्छा किया है। भाव-लिंग। भाव अर्थात् आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव चैतन्य आनन्दमूर्ति प्रभु, उसके अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी अरागी वीतरागी परिणाम को यहाँ भाव कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय, अट्ठाईस मूलगुण को भाव यहाँ नहीं कहते। वह जीव का भाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? और उसे **उसरूप लिंग (चिह्न),...** वह भावलिंग, भावमय चिह्न ऐसा। उसका लक्षण। आत्मा भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, शाश्वत् आनन्द के अतीन्द्रिय रस का धाम, उसका अन्तर में लीनपना, उसके परिणाम जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के वीतरागी कल्याणस्वरूप, उसमें लीनता, उसे भावलिंग कहा जाता है। समझ में आया?

आत्मा... अब भाव की व्याख्या करते हैं। **आत्मा अमूर्तिक चेतनारूप है,...** वह तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़ आत्मा है। यह (शरीर) तो जड़-मिट्टी है। पुण्य-पाप के भाव भी आत्मा नहीं। आहाहा! वह अचेतन की गति और जाति है। भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति चेतनारूप उसके परिणाम दर्शन-ज्ञान है। देखो! उसमें ऊपर लिखा था न? **आत्मा के स्वाभाविक परिणाम को 'भाव' कहते हैं,...** वे परिणाम क्या? कि **आत्मा अमूर्तिक चेतनारूप है, उसका परिणाम दर्शनज्ञान है।** सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान।

उसमें कर्म के निमित्त से (पराश्रय करने से) बाह्य तो शरीरादिक मूर्तिक

पदार्थ का सम्बन्ध है... ऐसे परिणाम में, जानने-देखने के परिणाम में कर्म के निमित्त से बाह्य **शरीरादिक मूर्तिक पदार्थ का सम्बन्ध है और अन्तरंग मिथ्यात्व और रागद्वेष आदि कषायों का भाव है...** परिग्रह हुआ। दस बाह्य परिग्रह, चौदह अन्तर परिग्रह। चौदह प्रकार के अन्तर परिग्रह। मिथ्यात्व से लेकर राग-द्वेषादि अन्तर परिग्रह और बाह्य क्षेत्र, वस्तु आदि बाह्य परिग्रह।

अन्तरंग मिथ्यात्व और रागद्वेष आदि कषायों का भाव है, इसलिए कहते हैं – बाह्य तो देहादिक परिग्रह से रहित... लो! परिग्रह। शरीर होने पर भी शरीर की ममता से रहित है। शरीर ही मेरा नहीं। यह तो मिट्टी-जड़ है। समझ में आया? ऐसा तो सम्यग्दर्शन में हुआ है। परन्तु यहाँ तो तदुपरान्त उसमें से जो आसक्ति की अस्थिरता थी, उसका भी संग छूट गया है, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह साधुपना। यह वीतराग के केवली परमात्मा के कहे हुए पन्थ का साधुपना।

अन्तरंग रागादिक... विकल्प व्यवहार आ गया न? **परिणाम में अहंकाररूप मानकषाय, परभावों में...** देखो! वह मानकषाय परिच्यत था न? अहं—वह मैं हूँ, व्यवहार के विकल्प आदि, ऐसा **मानकषाय, परभावों में अपनापन मानना, इस भाव से रहित हो...** आहाहा! समझ में आया? यह रागादि पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प उठते हैं, वह मैं हूँ, ऐसा **मानकषाय, परभावों में अपनापन मानना, इस भाव से रहित हो...** आहाहा! चैतन्य भगवान महाप्रभु है। उसकी इसे खबर नहीं होती (कि) अन्दर आत्मा कौन है? मिट्टी जड़, या अन्दर दया, दान के, व्रत के विकल्प राग। भाई! तू भूल गया है। तुझे भूलकर भगवान भूला स्वयं को। आहाहा! भगवान भूली की दरवाजा है न? इस दरवाजे में रहता है। भगवान भूला की दरवाजे* में रहता है। 'कलोल-कलोल'। उसके दादा होंगे। यह भगवान भूला की खिड़की में चढ़ गया। आहाहा। आनन्दस्वरूप जिसका चैतन्यबिम्ब आत्मा, वह पुण्य-पाप के राग और शरीर मैं, वह भगवान भूला, अन्यत्र चला गया। मूढ़ हो गया, मूढ़। समझ में आया? अपनी जाति की पूँजी क्या है, उसकी खबर नहीं।

भगवान आत्मा यह रजकण-रजकण मिट्टी के, वे तो धूल हैं। समझ में आया?

* खडकी - गुजराती - दो या अधिक मकानों के आगे की एक ही आ दरवाजेवाली गली

उसमें रागादि विकल्प है, वह भी विकार है। उसका—परभाव का त्याग करके **अपनापन मानना, इस भाव से रहित हो...** अपनापन अर्थात्? राग मेरा स्वरूप है, ऐसा छोड़कर। **इस भाव से रहित हो...** आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में—प्रथम धर्म की शुरुआत में पुण्य-पाप के भाव मेरे हैं, यह तो भाव छोड़ दिया है, परन्तु अभी आसक्ति-अस्थिरता रही है। वह भी भाव इसने छोड़ दिया है। समझ में आया?

अपनापन... दर्शन, ज्ञानरूप चेतनाभाव। भगवान आत्मा दर्शन और ज्ञान तो त्रिकाल स्वभाव भरपूर है। उसके परिणाम पाँच ज्ञान के और तीन दर्शन के या चार दर्शन के। समझ में आया? वह **दर्शनज्ञानरूप चेतनाभाव में लीन हो...** वह परिणाम अपने सम्यक् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि और चक्षु, अचक्षु आदि, उसमें लीन हो। समझ में आया? राग में, पुण्य में लीन नहीं। आहाहा! यह पुण्य-पाप के अधिकार में लिया है। महाराज! आप तो व्रत, तप और विकल्प सब उड़ा देते हो, तब मुनि को आधार क्या? मुनि उसके आधार से तो निभते बेचारे। ऐई! पण्डितजी! पुण्य-पाप के अधिकार में है। दया पालना, व्रत करना, तप करना, भगवान का स्मरण करना, भक्ति-पूजा करना, इस बात को तो आपने उड़ा दिया कि यह धर्म नहीं और यह धर्म का कारण नहीं। तब अब उन्हें आधार क्या? ऐसा पूछा है। तब आधार अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, उन्हें आधार आत्मा का है, भाई! अन्दर आत्मा आनन्द का धाम सच्चिदानन्द प्रभु, ज्ञान की मूर्ति चैतन्य, चैतन्य ज्ञान की जवाहरात की (मूर्ति है)। जैसे स्फटिक की मूर्ति (होती है), उसी प्रकार चैतन्य स्फटिक की मूर्ति है। चैतन्य स्फटिक की मूर्ति। आहाहा! पूरे शरीर में भिन्न चैतन्य स्फटिक की मूर्ति, उसका उसे आधार है और उसमें वह सुख को अनुभव करता है। ऐसा कहा। समझ में आया? वर बिना की बारात जोड़ दी। भगवानजीभाई! कहाँ जाये परन्तु यह? आहाहा! भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द का धाम, उसका अवलम्बन लेकर स्थिर होना चाहिए, यह धार्मिक क्रिया है। जगत को कठिन लगे।

चेतनाभाव में लीन हो... जानना, देखना, उसमें यह लीन हो। यह तो चारित्र हुआ। समझ में आया? देखो न! शरीर में कितने... मर जाये बेचारे देह छोड़कर। कोई कैसे मर जाये। अनादि से रंक और भटका। भटकते रंक की तरह—भिखारी की तरह ऐं... करके मर जाये। पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी हो तो घर में पड़ी रहे वहाँ। कुछ

मदद करे ? शरीर तो ऐसे असाध्य। वे दूसरे साथवाले कहें, अब देखो ! भाई ! थोड़ी देर। अब सुई मारो नहीं बहुत। मारे न यह ? क्या कहे इंजेक्शन ? पश्चात् लगे कि इसमें कुछ बचे ऐसा नहीं है। अब देखो थोड़ी देर। अभी निपट जायेगा। स्थिर हो जायेगा। आहाहा ! यह देह के ढंग। उसमें भगवान आत्मा का इसे भान नहीं होता। अरे ! यह वह कहीं मरण कहलाता है ? पिल्ले और केंचुआ मरे, ऐसा मरण कहलाये वह तो। गलुडिया समझते हो ? कुरकुरिया—कुत्ती का बच्चा। पिल्ला... पिल्ला। पिल्ला कहते हैं न ? और अळसिया होता है न चौमासा में ? लम्बा। अळसिया को क्या कहते हैं ? कुछ कहते होंगे नाम ? चौमासा हो तब।

मुमुक्षु : भींगोडा-भींगोडा... तत्काल का जन्मा चिड़िया का बच्चा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह टेटवा। वह मरे और यह मनुष्य मरे, उसमें अन्तर क्या ? आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं, भगवान अन्तर चैतन्यस्वरूप, उसके परिणाम जानना-देखना, उसमें लीन (हो), वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम, वह भावलिंग है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा हो, उसे द्रव्यलिंग भले हो, वह कहीं मोक्ष का कारण या निर्जरा का कारण वह है नहीं। होता अवश्य है। ऐसा हो, उसे द्रव्यलिंग नग्नपना होता अवश्य है। अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प होते अवश्य हैं, परन्तु उनका वह मैं हूँ, ऐसी उसमें ममता नहीं और वह मेरा आचरण है, ऐसा वह मानता नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! भारी काम, बापू ! भावपाहुड़। देखो न ! कुन्दकुन्दाचार्य !

भाई ! तू कुछ खाली है या भरपूर है ? तुझमें कुछ माल है ? या मालरहित तू है ? भाई ! तुझमें आनन्द और ज्ञान और शान्ति का माल भरपूर है। वह बाहर से लाना नहीं है। अन्तर ज्ञान और दर्शन और आनन्द के परिणमनरूपी पर्याय हो, उसे यहाँ भाव और उसका लिंग चिह्न उसे भावलिंग कहा जाता है। ऐसी दशा हो, उसे भावलिंगी साधु कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? और साधु को कुसाधु माने तो भी मिथ्यात्व है और कुसाधु को साधु माने तो भी मिथ्यात्व है। आहाहा ! इसकी खबर नहीं होती, खबर नहीं होती। लो, **वह भावलिंगी साधु है।**

गाथा-५७

आगे इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं –

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे।।५७।।

ममत्वं परिवर्जामि निर्ममत्वमुपस्थितः।
आलंबनं च मे आत्मा अवशेषानि व्युत्सृजामि।।५७।।

मैं तजूँ सर्व ममत्व निर्ममता में ही स्थित रहूँ।
निज आत्मा ही मुझे आश्रय शेष सब ही त्याग दूँ।।५७।।

अर्थ – भावलिंगी मुनि के इस प्रकार के भाव होते हैं – मैं परद्रव्य और परभावों से ममत्व (अपना मानना) को छोड़ता हूँ और मेरा निजभाव ममत्व रहित है, उसको अंगीकार कर स्थित हूँ। अब मुझे आत्मा का ही अवलम्बन है, अन्य सभी को छोड़ता हूँ।

भावार्थ – सब परद्रव्यों का आलम्बन छोड़कर अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो ऐसा 'भावलिंग' है।।५७।।

गाथा-५७ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को स्पष्ट कर कहते हैं – यह ९९ गाथा। नियमसार, नियमसार की यह ९९ गाथा है। यह भावपाहुड़ की। मोक्षमार्ग-नियमसार। ९९वीं गाथा, वह यहाँ ली है। यह कुन्दकुन्दाचार्य की है और वह भी कुन्दकुन्दाचार्य की है।

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे।।५७।।

अर्थ – भावलिंगी मुनि के इस प्रकार के भाव होते हैं – मैं परद्रव्य और परभावों से ममत्व (अपना मानना) को छोड़ता हूँ... शरीर, वाणी, मन तो जड़ है।

उसे तो छोड़ता हूँ। मेरे नहीं। परन्तु अन्दर के पुण्य और पाप के भाव-विकल्प राग उठे, वह भी मेरे नहीं। **परद्रव्य और परभावों से ममत्व (अपना मानना) को छोड़कर मैं...** तब अब अवलम्बन किसका? यह सब छूट जाये। लो! यह तो कहे, व्रत के परिणाम, वह बन्ध का कारण। दया के परिणाम, अहिंसा के परिणाम, भक्ति के परिणाम, देव-गुरु-शास्त्र के विनय के परिणाम वह तो सब पुण्य। और पुण्य, वह धर्म नहीं। तब अब आधार क्या उसे? मुश्किल-मुश्किल से कुछ करते थे बेचारे उसके आधार से, तो कहे, वह नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि **मेरा निजभाव ममत्व रहित है, उसको अंगीकार कर स्थित हूँ।** लो। है न? **'णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो'** भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन, उसमें ममता की गन्ध नहीं, राग की गन्ध नहीं। ऐसा निर्ममत्वस्वरूप, उसमें उपस्थित होता हूँ। आहाहा! यह यहाँ की बाजी रागादि की समेटता हूँ और स्वभाव निर्ममत्व है, उसमें स्थिर होता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मात्र स्त्री-पुत्र छोड़कर बैठा, इसलिए साधु हो गया, ऐसा है नहीं। आहाहा! **'ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।'** अस्ति-नास्ति की। देखो! यह वस्तु पहली यह वस्तु आये बिना इसकी मुक्ति नहीं होगी। हैरान करके मर जाए चार गति में। समझ में आया? यह पैसेवाले कहलायें, वे दु:खी, नारकी के जीव दु:खी, यह अमलदार, अधिकारी पाँच, दस-दस हजार के वेतनवाले दु:खी के सरदार-भिखारी है। भगवानजीभाई! सब समान?

मुमुक्षु : किसी का नम्बर पहला होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नम्बर पहला अधिक पाप करे, उसका नम्बर पहला होगा। भीखाभाई! आहाहा! यह नम्बर आत्मा का चिदानन्द भगवान। मुझे और राग को सम्बन्ध नहीं है। इस शरीर को तो कहाँ सम्बन्ध है? राग भी एक क्षण में आवे और दूसरे क्षण में जाये। वह कहीं मेरी चीज़ होवे तो कायम रहना चाहिए। आहाहा! परन्तु सीधे ऐसा? कुछ सरल कुछ कदम-बदम भरने तो दो। लड़के को नहीं कहते? क्या कहलाता है? पापगी। यह लड़के लकड़ी का नहीं रखते? चलने के लिये हाथ रखकर पा पगे ऐसे-ऐसे चले। ऐसा पहला मार्ग होगा या नहीं कुछ? सीधे चलना? पहले पापगी में सम्यग्दर्शन। राग और विकल्प से भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसा जो अन्तर्दृष्टि का

अनुभव, वह सम्यग्दर्शन के पश्चात् स्वरूप स्थिर होना, वह गति करने लगा, अब चलने लगा। स्वरूप में स्थिर होने लगा। आहाहा! समझ में आया?

मेरा निजभाव ममत्व रहित है,... क्या कहते हैं? **मेरा निजभाव...** अर्थात् आत्मा आनन्द, ज्ञान स्वभाव, वह तो ममत्वरहित भाव है। उसमें उपस्थित होता हूँ अर्थात् **उसको अंगीकार कर स्थित हूँ।** स्थित हूँ अर्थात् रहता हूँ। मेरा भगवान आनन्दस्वभाव, उसमें मैं रहता हूँ और रागादि परिणाम, उन्हें मैं छोड़ता हूँ। अभी यहाँ बँगला छोड़ा जाये नहीं, उसे कहे राग छोड़ना। यह वह बातें! गले चिपटा हो। भले किसी की चलती हो घर में। इसकी चलती न हो। कहो, समझ में आया? यह तो बात है। बात में बात तो होगी या नहीं? आहाहा! एक की कहाँ बात है? सब बहुतों की बात है न यह तो। आहाहा! अरे! कहाँ...? पोपटभाई को ऐसा था न। पोपटभाई को बहुत ममता थी। थोड़े में से पैसे बढ़ गये और बड़ी आमदनी हुई। इसलिए मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... अरे! रहने दे। किया मैंने। दो-दो लाख की आमदनी बारह महीने में। दो रुपये में महीना मुंशी का काम करते। दो रुपये का महीने में। उसमें बारह महीने के दो लाख की आमदनी। मरे तब, हों! मैंने किया यह देखो, मैंने किया यह। धूल भी नहीं किया यह।

मुमुक्षु : आपको ऐसा लगता है। हमें तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी लगता नहीं। मरे हैं नीचे। आहाहा! लड़के, पैसा सब था। मरे, वह पागल मस्तिष्क होकर देह छूट गयी। ले जाओ मुझे दुकान में... ले जाओ मुझे दुकान में। क्या होली है वहाँ? बीज बोया था न। ऐई! भगवानजीभाई! यह तो हमारे घर की बात है। आहाहा! क्या है परन्तु वहाँ? ममता के बीज बोये हों, वह फले। जो बीज बोया हो, वह फले न? आत्मा में आत्मा का भान भूल कर राग और ममता के बीज को बोया और उसे ममता का पोषण दिया कायम। फले वृक्ष।

यहाँ कहते हैं कि हम तो आत्मा हैं। समझ में आया? हमारे तो यह राग हमारा नहीं, भाई! आहाहा! शरीर हमारा नहीं, यह तो साधारण बात हुई, वह तो मिट्टी, जड़ है। राग का भाव, वह हमारा नहीं, हमारे में नहीं, हमें नहीं और उसमें हम नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! तब अब क्या? **अब मुझे आत्मा का ही अवलम्बन है,...** मुझे

तो भगवान आत्मा का आलम्बन है। सीढ़ी पर चढ़ते हुए जैसे रस्सी का आधार लेकर चढ़ते हैं न? उसी प्रकार आत्मा अखण्ड आनन्द का मुझे आधार है। उसे पकड़कर मैं आगे बढ़ता हूँ। आहाहा! ऐसा कहते हैं। राग और पुण्य और निमित्त को तो छोड़ देता हूँ। यह रीति है। पहले श्रद्धा-ज्ञान में तो ले। आहाहा! समझण तो करे कि मार्ग यह है, भाई! बाकी तो सब कौवा और कुत्ता मर जाये, वैसे मर जानेवाले हैं और कौवे-कुत्ते में जानेवाले हैं वापस वहाँ? धूल में भी नहीं वहाँ। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **अब मुझे आत्मा का ही अवलम्बन है,...** नियमसार की गाथा है। मेरा आत्मा मुझे आलम्बन है। आनन्द और ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसका मुझे आधार है, उसका मुझे आधार है, उसका मुझे आलम्बन है। राग-पुण्य व्यवहार और निमित्त का मुझे आधार नहीं, उसका आलम्बन नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग सुनते हुए अज्ञानी को कंपकंपी छूटे ऐसा है। 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' हीजड़े जैसा जिसका वीर्य है, पावैया जैसा (उसे यह प्रतिकूल पड़ता है)। समझ में आया? यह राजा-महाराजा सब सेठिया वह सब पावैया जैसा वीर्य होता है उनका। नपुंसक जैसे होते हैं। राग को अपना माने, वह नपुंसक है, ऐसा कहते हैं। ऐई! जयन्तीभाई! गजब बात, भाई!

वीर्य रचना में आता है न? वीर्य उसे कहते हैं कि जो आनन्द और ज्ञान की शान्ति को रचे, उसे वीर्य कहते हैं। राग को रचे, वह वीर्य कहलाये तेरा? नपुंसक है। आहाहा! कहा है न उसमें। नपुंसक कहा है। समयसार में। हीजड़ा! परन्तु हम पुरुष हैं न? तुझे पुरुष कौन कहे? ऐ... फूलचन्दभाई! यहाँ तो यह है सुनने का। बाहर में जाए तो आहाहा! पचास हजार कमाता है और अमुक ऐसा है और लाख रुपये कमाता है, पाँच लाख कमाता है। भाईसाहब, भाईसाहब। धूल में भी नहीं, सब मरकर नीचे जानेवाले हैं। भगवानजीभाई! वहाँ 'थाणा' में जाए तो कैसा हो वहाँ। सेठ साहेब, सेठ साहेब। वह किसका सेठ? पन्द्रह लाख का मकान है वहाँ। क्या कहलाता है वह? मशीन। पचास-साठ लाख रुपये।

मुमुक्षु : ... मिलने गये थे, मिल गयी जमीन। नहीं तो मुम्बई में जमीन मिलना वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मिले-फिले किसे मिली है? कहाँ इसके पास कहाँ है?

यहाँ की जमीन कहाँ है इसके पास ? इसके पास ममता है। कहो, समझ में आया ? मेरा भगवान मेरे पास है। धर्मी को धर्म अन्तर के स्वभाव के आश्रय से होता है। आहाहा!

'आलंबणं च मे आदा' भाषा तो देखो! मेरा आत्मा मुझे आधार है। मेरी नजर वहाँ जाती है। आहाहा! बारम्बार... समझ में आया ? जहाज में बैठा कौआ, वह समुद्र का किनारा छोड़े और आगे जाए तो जाए कहाँ उड़-उड़कर ? उड़-उड़कर वहाँ आवे वापस बारम्बार। ऐसा कहते हैं, यह मेरी नजर स्थिर हो-होकर वहाँ स्थिर होना चाहती है। आहाहा! जहाँ मैं ज्ञान और आनन्द हूँ, वहाँ मैं अलम्बन लेकर वहाँ स्थिर होना चाहता हूँ। आहाहा! समझ में आया ? अरे! गजब बात। कहते हैं, **आत्मा का ही अवलम्बन है, अन्य सभी को छोड़ता हूँ। सभी को छोड़ता हूँ।** मुनि है न ? आहाहा! एक विकल्पमात्र भी मेरा नहीं, ऐसा मैं दृष्टि में से छोड़कर, अस्थिरता में से भी छोड़कर स्थिरता करता हूँ, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ – सब परद्रव्यों का आलम्बन छोड़कर... वह अवलम्बन लिया यहाँ। अपना अवलम्बन कहा न ? अर्थात् उसका अवलम्बन छोड़कर इसका अवलम्बन लिया। **अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो ऐसा 'भावलिंग' है।** लो! इसका नाम भावलिंग। आत्मस्वरूप **अपने आत्मस्वरूप...** वापस भगवान के आत्मा में नहीं। तीर्थंकर का आत्मा ऐसा और उसमें मैं स्थिर होऊँ, वहाँ कहाँ वह आत्मा तो पर है। वहाँ कहाँ जाता है तू ? **अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो...** रहता है। उसे यहाँ भावलिंग कहा जाता है।

गाथा-५८

आगे कहते हैं कि ज्ञान, दर्शन, संयम, त्याग, संवर और योग ये भाव भावलिंगी मुनि के होते हैं, ये अनेक हैं तो भी आत्मा ही है, इसलिए इनसे भी अभेद का अनुभव करता है –

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे।।५८।।

आत्मा खलु मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चारित्रे च।
आत्मा प्रत्याख्याने आत्मा मे संवरे योगे।।५८।।

मुझ ज्ञान में आतम दरश चारित्र में आतम सदा।
है योग प्रत्याख्यान संवर आदि सबमें आत्मा।।५८।।

अर्थ – भावलिंगी मुनि विचारते हैं कि मेरे ज्ञानभाव प्रकट हैं, उसमें आत्मा की ही भावना है, ज्ञान कोई भिन्न वस्तु नहीं है, ज्ञान है वह आत्मा ही है, इस प्रकार ही दर्शन में भी आत्मा ही है। ज्ञान में स्थिर रहना चारित्र है, इसमें भी आत्मा ही है। प्रत्याख्यान (अर्थात् शुद्धनिश्चयनय के विषयभूत स्वद्रव्य के आलम्बन के बल से) आगामी परद्रव्य का सम्बन्ध छोड़ना है, इस भाव में भी 'संवर' ज्ञानरूप रहना और परद्रव्य के भावरूप न परिणमना है, इस भाव में भी मेरा आत्मा ही है और 'योग' का अर्थ एकाग्रचित्तरूप समाधि–ध्यान है, इस भाव में भी मेरा आत्मा ही है।

भावार्थ – ज्ञानादिक कुछ भिन्न पदार्थ तो हैं नहीं, आत्मा के ही भाव हैं, संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन के भेद से भिन्न कहते हैं, वहाँ अभेददृष्टि से देखें तो ये सब भाव आत्मा ही हैं, इसलिए भावलिंगी मुनि के अभेद अनुभव में विकल्प नहीं है, अत: निर्विकल्प अनुभव से सिद्धि है, यह जानकर इस प्रकार करता है।।५८।।

गाथा-५८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ज्ञान, दर्शन, संयम, त्याग, संवर और योग ये भाव भावलिंगी मुनि के होते हैं, ये अनेक हैं तो भी आत्मा ही है, इसलिए इनसे भी अभेद का अनुभव करता है – गाथा बहुत (सरस है)। यह गाथा नियमसार की १००। समयसार की २७७। यह एक की एक गाथा इस जगह है।

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे।।५८।।

भाव सन्त मुनि धर्मात्मा, धर्म चारित्र ऐसा प्रगट हुआ है जिन्हें, वह **विचारते हैं कि मेरे ज्ञानभाव प्रकट हैं, उसमें आत्मा की ही भावना है,...** मेरे ज्ञानकार्य में मेरा

आत्मा कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **ज्ञानभाव प्रकट हैं, उसमें आत्मा की ही भावना है,...** वह आत्मा आनन्द ज्ञानधाम, वही मेरे ज्ञान की पर्याय के कार्य में कारण वह आत्मा है। आहाहा! देखो, यह ज्ञान के परिणाम। उसे परिणाम कहते हैं। समझ में आया? राग और विकल्प है पुण्य-पाप, वह कहीं आत्मा का कार्य नहीं। वह तो अज्ञानी मानता है अपना, इतना है। अन्तर में भगवान आत्मा ज्ञान का सूर्य, चैतन्यसूर्य... कल कहा था न? एक जैन था, जैन। उससे पूछा कि आयुष्य शरीर का होता है या आत्मा का? कि मुझे कुछ खबर नहीं। यह तो कुछ... आयुष्य हो, वह किसका होता है? कहा। शरीर का होता है या आत्मा का?

मुमुक्षु : मनुष्य का होता है। शरीर का और आत्मा का कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य तो यह जड़ है, धूल है। फिर उसने कहा।... अरे! ऐसे होशियार कहलाये बाहर में। दुकान का काम करता हूँ और पठन का काम करता हूँ। मूर्खता में होशियार हो। अमुलखभाई! ऐसा ही है? आहाहा! परन्तु इतनी खबर नहीं? कहा, जो यह शरीर है। आयुष्य किसका कहलाये? ५० वर्ष, ६० वर्ष, ७० किसका कहलाये? आत्मा का या शरीर का? अरे... अरे...! यह तो कुछ पूरे आत्मा को नोंच डाला है न। यह (शरीर) तो जड़ है। आयुष्य तो उसका होता है। आत्मा को आयुष्य हो? आत्मा तो अक्षय स्थिति में अनादि-अनन्त है। आहाहा! आत्मा तो अनादि-अनन्त है। कुछ खबर नहीं होती। कुत्ते की तरह पेट भरे। बोले, भौंके-भौंके। गधे की तरह भौंके, कुत्ते की तरह पेट भरे, घोड़े की तरह दौड़े। मोहनभाई! यह मुम्बई में ऐसा है न, देखो न! मुम्बई में कहाँ आगे दौड़ादौड़ वह तो एकदम काम। थोड़े में झट करना हो तो मोटर, बस। कितनी डबल बसें होती हैं न? दो मंजिल की खचाखच भरी हो। झट काम करना हो, घोड़े की तरह दौड़ादौड़ करे, ऐई! मोहनभाई! क्या होगा यह सब?

मुमुक्षु : घोड़े की तरह दौड़ा, गधे की तरह भौंकना, कुत्ते की तरह खाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाना। जयन्तीभाई! यह तुम्हारी मुम्बई। आहाहा!

कहते हैं कि **ज्ञानभाव प्रकट हैं, उसमें... 'आदा खु मज्झ णाणे'** है न? मेरा आत्मा मेरे ज्ञान में है। मेरा आत्मा मेरे ज्ञानभाव में मेरा आत्मा है। ज्ञानभाव के परिणाम

होते हैं, उनका कारण आत्मा है। वह ज्ञान कोई शास्त्र से, पृष्ठ से, सुनने से ज्ञान हो, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! इसलिए सुनना नहीं, ऐसा कहा? यहाँ तो **'आदा खु मज्झ णाणे'** आहाहा! मेरा आत्मा, वह मेरे ज्ञान के परिणाम में कारण अथवा ज्ञान के परिणाम में समीपरूप आत्मा वर्तता है। ज्ञान के परिणाम में समीप निकट-नजदीक आत्मा वर्तता है। ज्ञान के परिणाम में निकट राग और निमित्त यह पृष्ठ-पुस्तक नहीं वर्तते। आहाहा! समझ में आया? वह बाहर की व्यवहार की गन्ध घुस गयी होती है न, उसे यह बात जरा बैठना ऐसी लगे। यह क्या कहते हैं परन्तु यह? कहते हैं, यह तेरे जन्म-मरण का उद्धार हो, वह बात यहाँ है। जन्म-मरण कर-करके मर गया चौरासी के अवतार में। समझ में आया?

मेरे ज्ञानभाव प्रकट हैं,... पर्याय। **उसमें आत्मा की ही भावना है,...** अर्थात् आत्मा में एकाग्र हुआ, वह आत्मा ही उसका कारण है। दूसरा कोई कारण है नहीं। आहाहा! देखो! यह वीतराग की वाणी। तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा, परमेश्वर सौ इन्द्र के बीच में समवसरण में भगवान ऐसा फरमाते थे। समझ में आया? महाविदेह में वर्तमान भगवान विराजते हैं। सीमन्धर परमात्मा साक्षात् केवली तीर्थंकरदेव। इस प्रकार ही अभी इन्द्रों में फरमा रहे हैं। आहाहा! समझ में आया?

मेरे ज्ञानभाव प्रकट हैं,... ऐसी भाषा ली है। **'खु'** शब्द यह जो आया न अर्थात् प्रगट परिणाम। मूल तो परिणाम लेना है न? क्या कहते हैं? जो यह ज्ञान के परिणाम प्रगट पर्याय होती है, ज्ञान उसे कहते हैं कि जिस ज्ञान के परिणाम में आत्मा कारण है। आत्मा के ज्ञायक स्वभाव के लक्ष्य से दृष्टि से जो ज्ञान हुआ, उसे ज्ञान कहा जाता है। वह मोक्ष के मार्ग का अवयव है। सिर घूम जाए ऐसा है, परन्तु फिराता नहीं। आहाहा! भाई! यह तो तेरे गीत गाये जाते हैं, तू कितना कौन है भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! मेरे ज्ञान की दशा में मेरा आत्मा है। ऐसा कहते हैं। मेरे ज्ञान के मोक्षमार्ग के सम्यग्ज्ञानरूपी परिणाम प्रगट हैं, उसमें मेरा आत्मा कारण है। इस आत्मा की एकाग्रता, वह मेरे ज्ञान का परिणाम है, ऐसा कहते हैं। उसमें तो अधिक लिखा है। 'यहाँ निश्चय की अपेक्षा से गुणगुणी का अभेद कथन करते हुए कहा गया है। ज्ञानगुण में भी चैतन्यस्वरूप मेरा आत्मा ही विद्यमान है अथवा ज्ञानरूप कार्य की उत्पत्ति में मेरा आत्मा ही निमित्त है। ज्ञान के उपकरण आदि

जो पुस्तक, पट्टी आदि हैं, वे कारण नाहीं।' ऐसा स्पष्टीकरण किया है। सम्यग्ज्ञान के जो भाव होते हैं, वे मेरे आत्मा के कारण से हुए हैं। अन्तर आश्रय से हुए हैं। बाहर के उपकरण ज्ञान की पुस्तकें, पृष्ठ, पुस्तक, पट्टी आदि कारण नहीं है। कहो, समझ में आया? देखो! यह गाथा है। **सम्यक् में मेरा आत्मा ही विद्यमान है।** अब यहाँ आया।

मुमुक्षु : संस्कृत?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह अष्टपाहुड़ का संस्कृत। इसकी टीका।

मुमुक्षु : श्रुतसागरी टीका।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रुतसागरी टीका। 'कछु ज्ञान न्यारा वस्तु नांही। ज्ञान है सो आत्मा ही है।' यह आत्मा का ज्ञान आत्मा के आश्रय से, उसके आधार से उसके अवलम्बन से प्रगट होता है। बाहर की पुस्तक, पृष्ठ और सुनने से प्रगट नहीं होता। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह लड़के-बड़के घूमते हैं न सब छह-छह हजार रुपये खर्च करके, क्या कहलाता है वह सब? देशाटन। बुद्धि बहुत पके। वहाँ देशाटन जाए न। नये-नये देश, नये-नये लड़के लोग...

मुमुक्षु : अलग-अलग लोग मिले, अलग-अलग...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल मिली, उसमें क्या मिले तुझे? बहुत घूम आये, इसलिए सिर घूम जाए। वापस उसमें टोपा-बोपा पहना हो, दस हजार रुपये खर्च करके आया हो। घर में तो मानो समाय नहीं, किस प्रकार भाईसाहब को बुलाना? ऐसा पावर हो गया हो। अज्ञान लेकर आया है तो पावर चढ़ गया है। यह ज्ञान तो अन्तर आत्मा की अन्तर्दृष्टि करे, तब ज्ञान होता है, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : घमण्ड चढ़ जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : घमण्ड चढ़ जाए। हाँ। और उसमें दो-पाँच हजार का, दस हजार का वेतन हो गया हो वहाँ अमेरिका में। अमेरिका में दस हजार का वेतन अर्थात् यहाँ का पाँच सौ और वहाँ दस हजार का। उसमें क्या हुआ? दस हजार का वेतन हो तो ऐसा टोपा पहन ले। ऐसा है, वहाँ अमेरिका में ऐसा है। क्या है? तुझमें क्या है, वह कह न अब। ऐई! चेतनभाई!

मुमुक्षु : चेतनभाई को क्या खबर, इनके लड़के नहीं गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दूसरे किसी के गये हों, उन्हें सुना हो न। सुना हो न।

मुमुक्षु : प्रवीणभाई के।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवीणभाई कौन है ? हाँ, हाँ। ठीक। यहाँ तो बहुत देखे हैं न ऐसे बड़े टोपावाले। दस-दस हजार का वेतन और मस्तिष्क फट गया हो। अरे! भाई! यह तो भटकने का, चार गति में भटकने का तेरा जानपना है। चींटी और कौवे में भटकने का ज्ञान।

यह तो ज्ञान आत्मा, ज्ञान का समुद्र चैतन्यस्वभाव, उसका अन्तर अवलम्बन लेकर, उसके कारण से, उसके आधार से प्रगट हुआ ज्ञान, वह ज्ञान का कार्य उसका कारण आत्मा है। समझ में आया ? वह आत्मा ही है, दूसरा कोई है नहीं। 'दर्शन विषे भी आत्मा ही है।' सम्यग्दर्शन में मेरा आत्मा है। सम्यग्दर्शन की पर्याय में (आत्मा है)। यह देव -गुरु-शास्त्र की श्रद्धा-फ्रद्धा वह सम्यग्दर्शन नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो! इसमें कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो मुनि के दर्शन की बात है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! सब सम्यग्दृष्टियों की बात है। सबकी है। देखो! 'दर्शन समकित में मेरा आत्मा ही विद्यमान है अथवा समकितरूप कार्य की उत्पत्ति में मेरा आत्म ही कारण है।' सम्यग्दर्शन के परिणाम का कारण मेरा भगवान आत्मा है। इसके बिना कोई कारण (है नहीं)। 'अन्य तीर्थयात्रा...' वह समकित में कारण नहीं है। 'जिनप्रतिष्ठा, शास्त्र श्रवण, वन्दना, स्तवन आदि समकित की उत्पत्ति का कारण नहीं है।' स्पष्ट किया। पश्चात् उसका बचाव किया, देखो! कोष्ठक में, भाई ने। पन्नालाल। ऐसा कि 'टीकाकार उपादान कारण की अपेक्षा आत्मा को ज्ञान, दर्शन और चारित्र ... कहा है क्योंकि आत्मा ही ज्ञान आदि ... बाह्य कारणों का सर्वथा निषेध नहीं समझना।' इसमें घर का डाला है। यहाँ तो सर्वथा निषेध किया है। आहाहा! ऐसा है, भाई! मारे डाले पक्षकार। आहाहा! शब्द ऐसे होते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन में... जो 'कार्य की उत्पत्ति से मेरा आत्मा ही कारण है।' दूसरा कोई कारण-फारण सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में नहीं। शास्त्र में व्यवहार

कारण कहे हैं, वे कारण नहीं। उन्हें उपचार से कारण कहा जाता है। वेदना समकिती हो, देवदर्शन से, देवऋद्धि। देव की ऋद्धि देखने से, स्तवन से, वे सब कहते हैं या नहीं है। मेरा आत्मा सम्यग्दर्शन में कारण है। मेरा सम्यग्दर्शनरूपी कार्य, उसके कारण में आत्मा है। कारण में दूसरा कोई कारण-फारण है नहीं। समझ में आया? गजब बातें! एक घण्टे में कितनी बात याद रखना? है तो संक्षिप्त। कहते हैं तेरा स्वरूप पवित्र आनन्दधाम है। उसके कारण से जो कुछ धर्म की पर्याय प्रगटे, उसके कारण से। इतना तेरा। बाकी करने का क्या है? आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वथा...

पूज्य गुरुदेवश्री : न समझो। 'समझना चाहिए। क्योंकि व्यवहारनय से उनको भी उपयोगिता होती है।' यहाँ टीकाकार इनकार करते हैं, यह कहे कि .... लोगों को...

मुमुक्षु : दूसरे से विरोध आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे अलग बात है, परन्तु उसके कारण यहाँ होता है (ऐसा नहीं है।)। यहाँ तो इनकार ही करते हैं। वह है ही नहीं। आहाहा!

सम्यक् **दर्शन में भी आत्मा ही है।** अथवा मेरा सम्यग्दर्शन ऐसी जो श्रद्धा की निर्मल सम्यक् पर्याय-अवस्था में कारण आत्मा है। समझ में आया? और **ज्ञान में स्थिर रहना चारित्र है, इसमें भी आत्मा ही है।** लो! चारित्र उसे कहते हैं कि जो ज्ञानस्वरूप भगवान में स्थिर हो। वीतरागभाव से स्थिर हो, उसे चारित्र कहते हैं। देखो! **ज्ञान में स्थिर रहना चारित्र है, इसमें भी आत्मा ही है।** चारित्र के कारण में मेरा आत्मा है। यह व्यवहार विकल्प आदि है, इस कारण से चारित्र नहीं है। समझ में आया? इसमें स्पष्टीकरण किया है।

चारित्र में भी मेरा आत्मा ही विद्यमान है। अथवा चारित्ररूप कार्य की उत्पत्ति में मेरा आत्मा ही कारण है। अन्य नाना विकल्परूप-अनेक विकल्परूप व्रत, समिति, गुप्ति, दस प्रकार का धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह आदि कारण नहीं है। टीका में है परन्तु लिखे इतना। वापस नीचे बचाव किया है। यह टीका की बात है। टीका में कहा है। संस्कृत में है, उसकी तो बात है।

आदा खु मज्झ णाणं आदा में दंसणं चरितं च।
आदा पच्चक्खाणं आदा में संवरो जोगो।।२७७।।

समझ में आया? यह गाथा तो अपने समयसार में है, नियमसार में है? स्थिरता में भगवान आत्मा अन्तर की स्वरूप की रमणता, ज्ञान में लीनता, ज्ञानस्वभाव में जम जाना, ऐसा चारित्र, उसे चारित्र कहते हैं। इस चारित्र के कार्य में कारण आत्मा है। उसके कारण में दूसरा कोई है नहीं। कहो, समझ में आया? लो! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-११७, गाथा-५८ से ५९, मंगलवार, पौष कृष्ण १४, दिनांक २२-०१-१९७४

इस अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ५८वीं गाथा का भावार्थ है न? इसमें क्या कहा? कि जो आत्मा में सम्यग्ज्ञान होता है, मोक्ष का कारण, ऐसी सम्यग्ज्ञान की पर्याय जो है, उसका आधार—अवलम्बन आत्मा है। यह सम्यग्ज्ञान की पर्याय आत्मा के अवलम्बन से होती है। अथवा इस सम्यग्ज्ञान का कार्य, वह आत्मा का कार्य है। वह कोई शास्त्र पठन करे या पंच महाव्रत आदि पालन करे तो उससे ज्ञान का कार्य होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्योंकि **ज्ञानादिक कुछ भिन्न पदार्थ तो हैं नहीं,...** यह ज्ञान अर्थात् ये पुस्तक-शास्त्र का ज्ञान नहीं। जो ज्ञान की पर्याय—अवस्था, सम्यग्ज्ञान की दर्शनसहित, उस ज्ञान की पर्याय का कार्य वह आत्मा का है। वह कार्य कोई शास्त्र पठन से हुआ है या कोई गुरु की कृपा से हुआ है या शास्त्र और गुरु के कारण से यह ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

आत्मा के ही भाव हैं,... वह सम्यग्ज्ञान की पर्याय, तथा सम्यग्दर्शन की पर्याय वह आत्मा का ही भाव है—आत्मा की ही पर्याय है, वह सम्यग्दर्शन का कार्य आत्मा का है। सम्यग्दर्शन का कार्य कोई व्यवहार रागादि या निमित्त का यह कार्य नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें, भाई! जगत को तत्त्व क्या है, (उसकी खबर नहीं)। यह

गाथा बहुत मर्म की रखी है। आत्मा की सम्यग्दर्शनपर्याय, जो अनन्त काल में हुई नहीं, ऐसी जो सम्यक्पर्याय, उसका कारण अथवा सम्यग्दर्शन में वह आत्मा आया है। सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा आया है। उसकी पर्याय में राग और निमित्त से वह पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार सम्यक्चारित्र। है न सब बोल? चारित्र की जो वीतरागी पर्याय अन्दर में होती है, वह कार्य आत्मा का है। उस चारित्र की पर्याय में आत्मा निर्मल भगवान स्वयं आया हुआ है। आहाहा! वह चारित्र की पर्याय आत्मा का स्वरूप ही है। क्योंकि निर्विकारी दशा आत्मा में होती है, पंच महाव्रत के परिणाम, वे कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! इसी तरह साधु के जो अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हैं, वे चारित्र नहीं हैं, तथा वह चारित्र का कारण नहीं। पंच महाव्रत परिणाम चारित्र का कारण नहीं है।

मुमुक्षु : यह मुनि को चारित्रगुण...

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को चले नहीं। ...

मुमुक्षु : अब तो एक महीना हिन्दी में चलना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक महीना नहीं चले। पंचमी से चलेगा। रविवार से बहुत लोग आवें तो चलेगा। महोत्सव में तो हिन्दी चलेगा। महोत्सव के पहले भी थोड़े हिन्दी आयेंगे तो... हिन्दी है तो हिन्दी चलाओ, ऐसा कहते हैं।

ऐसा कहते हैं कि आत्मा की ज्ञानरूपी जो सम्यक् पर्याय है, वह आत्मा का कार्य है। उस सम्यग्ज्ञान की पर्याय में आत्मा परिणमन करके आया है। कोई शास्त्र परिणमन करके ज्ञान आया है, ऐसा है नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा परिपूर्ण शुद्ध ध्रुव चैतन्यधातु से भरा पड़ा है। वह सम्यग्ज्ञान की पर्याय में या सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप कार्य में या सम्यक्चारित्ररूपी पर्याय-कार्य में आत्मा ही बसा है। वह आत्मा का ही भाव है और आत्मा का वह कार्य है। और उस पर्याय में आत्मा ही आलम्बन है। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म है। दुनिया को बाहर में लगा दिया। पंच महाव्रत पालो, शास्त्र का ज्ञान करो, वह ज्ञान। धूल में भी ज्ञान नहीं है।

मुमुक्षु : मान तो मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान मिले।... पागल पागल की प्रशंसा करे। समझ में आया? पागल के अस्पताल में पागल बड़ा अच्छा हो, उसे अच्छा कहे।

यहाँ तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के कॉलेज की बात है। आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा का यह हुकम है, यह आज्ञा है, यह आदेश है, दिव्यध्वनि में यह कथन है। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। **'आदा खु मज्झ णाणे'** देखो न, भाषा कैसी ली है! आहाहा! शास्त्र का पठन करे और ज्ञान हो, वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! जिस ज्ञान की पर्याय में-कार्य में आत्मा आये, उसे ज्ञानपर्याय कहने में आती है। वैसे सम्यग्दर्शन की पर्याय कोई देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा करना या नव तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा करना वह सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं है। वह सम्यग्दर्शन नहीं और नव तत्त्व के भेदरूप श्रद्धा के कारण सम्यग्दर्शन का कार्य पर्याय हो, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन की धर्म की चौथे गुणस्थान की पर्याय, उस सम्यग्दर्शन की पर्याय का कार्य आत्मा का है। त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ ध्रुव स्वरूप विराजमान है, उसका सम्यग्दर्शन पर्याय कार्य है। अथवा उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा परिणमित हुआ है। आहाहा! ऐ... धन्नालालजी! ऐसी बातें बहुत कठिन। सम्प्रदाय में यह सब ... लगे। सच्चे भगवान, सच्चे देव-गुरु को माने वह सम्यग्दर्शन। तीन काल में वह बात सत्य नहीं है, बिल्कुल झूठी है।

जिसमें भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पुंज ध्रुव राशि, वह जिसकी श्रद्धा में आया नहीं और श्रद्धा के कार्य में आत्मा का अवलम्बन नहीं है, उसे श्रद्धा कहते नहीं। कहो, समझ में आता है?

वैसे चारित्र की पर्याय। चारित्र पर्याय वीतरागी है। तो पर्याय है, वह कार्य है। पर्याय कहो या कार्य कहो। उस कार्य में कारण तो भगवान त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु उस चारित्र के कारण में कार्य है। उस चारित्र का कारण आत्मा, उसका वह कार्य है। पंच महाव्रत के परिणाम हो, उससे चारित्र होता है, ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है। समझ में आया? पंच महाव्रत के विकल्प हैं, वह आस्रव है, वह बन्ध है, भावबन्धरूप भाव है; और चारित्र है, वह अबन्ध परिणाम है।

चारित्र वस्तु ऐसी कोई चीज़ है कि अभी तो महादुर्लभ है। समझ में आया? उसे समझनेवालों में दुर्लभता हो गयी है। आहाहा! वीतरागी परिणति अन्दर हो, आनन्द की लहर उठे। चारित्र तो उसे कहें कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट हो। और उस अतीन्द्रिय आनन्द की दशा का वीतरागता का कारण भगवान आत्मा है। समझ में चारित्र की पर्याय और आत्मा, ऐसे संज्ञाभेद से भेद भले ही कहो। है न? **संख्या, लक्षण और प्रयोजन के भेद से भिन्न कहते हैं, वहाँ अभेददृष्टि से देखें तो ये सब भाव आत्मा ही हैं,...** आत्मा की चारित्र की आनन्ददशा भी आत्मा की है, सम्यग्ज्ञान की पर्याय स्वसंवेदन-ज्ञान का स्वसंवेदन अपना प्रत्यक्ष होना, उसमें आत्मा कारण है। आहाहा! उसमें शास्त्र भणतर-बणतर कारण है नहीं। भगवान की वाणी सुनने से सम्यग्ज्ञान होता है, यह बात सत्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। पाटनीजी! सम्यग्ज्ञान में कारण तो प्रभु आत्मा त्रिकाली ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। वह सम्यग्ज्ञान में कारण होकर कार्य होता है। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! जगत के पास वीतराग क्या कहते हैं, यह बात रखी नहीं है, दूसरी ही (बात रखी है)। अजैन की क्रियायें जैन के नाम से चलायी। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, कि प्रत्याख्यान, पच्चखाण करते हैं न? पच्चखाण। वह पच्चखाण क्या चीज़ है? पच्चखाण किया, लो। ... विकल्प हुआ। वह पच्चखाण है? वह तो राग है। आहाहा! प्रत्याख्यान-पच्चखाण परमात्मा इसको कहते हैं कि जिसमें वीतरागी पर्याय हो और उसका कारण आत्मा हो और वीतरागी पर्याय का कार्य आत्मा का है, उसको पच्चखाण कहने में आता है। आहाहा!

संवर... संवर। संवर करते हैं न? संवर। जामनगर में बहुत संवर होते हैं। ... सब लंघन है। संवर भगवान उसको कहते हैं कि जिस वीतरागी पर्याय में आनन्द (आये) और उस आनन्द की पर्याय का कारण आत्मा है, आत्मा का कारण का यह कार्य है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो जो मोक्ष का मार्ग है न? मोक्ष का मार्ग जो है—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, आत्मा ध्रुव दृष्टि में आया, ज्ञेय बनाया, चारित्र में ध्येय किया तब वह पर्याय प्रगट हुई तो वह आत्मा के कारण से प्रगट हुई है। आहाहा! अभी तो चीज़ किसको कहना यह मालूम नहीं।

अनादि से भटकता आत्मा दु:खी है, वह मिथ्यादृष्टि बेचारा दु:खी है। दु:खी है, दु:खी। ये पैसेवाले अरबोंपति, धूलवाले देव दिखे, वे सब बेचारे भिखारी दु:खी हैं। आहाहा! रांका... रांका... शास्त्र में वरांका कहा है।

जिसे आत्मा चिदानन्दमूर्ति अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, जिसकी दृष्टि में आया नहीं, जिसके ज्ञान में आया नहीं, जिसकी शान्ति में आया नहीं, वह सब जगत के भटकनेवाले प्राणी हैं। वर्तमान में भी दु:खी और भविष्य में भी दु:खी। आहाहा! समझ में आया? क्या है? जगत में ये सब पैसेवाले सुखी कहलाते हैं न? पागल इकट्ठे होकर (कहते हैं)। पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ पैसे हो... बादशाही है। धूल में भी बादशाही नहीं है, सुन न। वह तो विकार की पर्याय है। आहाहा!

मुमुक्षु : भले विकार की पर्याय है, पैसा तो लाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा कौन लाये? धूल लाये। वह तो पूर्व के पुण्य हो तो आये। उसके पास आते हैं? उसके पास कहाँ आते हैं? उसके पास आये तो ममता उसके पास आयी। वह चीज़ तो दूर रह गयी। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु... आहाहा! ऐसे ध्रुव आनन्द की डली। डली कहते हैं न? आहाहा! ऐसा आनन्द का नाथ डली जिसके श्रद्धा-ज्ञान में आया नहीं और दूसरी (चीज) श्रद्धा-ज्ञान में आती है, वह श्रद्धा-ज्ञान नहीं। आहाहा! वीतराग की बातें ऐसी है कि जगत में और कहीं है नहीं, वीतराग में उस जाति की बात मानो बिखर गयी हो।

यहाँ तो कहते हैं, संवर में भी आत्मा है। संवर शब्द से (आशय) आस्रव-पुण्य के पाप जो आस्रव है, उससे रहित जो संवर दशा है उसमें आत्मा आया है। संवर के कार्य में आत्मा कारण है। संवर के कार्य में दया, दान, व्रत आदि का शुभभाव है, वह कारण है और संवर कार्य है, ऐसा है नहीं। मूलचन्दभाई! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : और कारण कौन हो सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी कारण नहीं है। दो कारण, दो करण कहते हैं न? ....

संवर। योग। योग अर्थात् ध्यान। एकाग्र चिन्ता निरोध। चिन्ता का निरोध। आत्मा को ध्येय करके, ज्ञेय करके ज्ञान में ध्यानदशा प्रगट हो, वह ध्यान की दशा आत्मा है।

ध्यान की दशा कोई विकल्प और ऐसा-वैसा... भगवान का ध्यान किया, भगवान ऐसे हैं और परमात्मा ऐसे हैं, वह सब विकल्प है, वह सब राग है, वह ध्यान नहीं। आहाहा! ध्यान में तो भगवान आत्मा शुद्ध कारणपरमात्मा परमस्वभावभाव स्वरूप आत्मा, ध्यान की पर्याय का कारण वह है। और जो ध्यान का कार्य है, ध्यान एक कार्य है, वीतरागी दशा यह ध्यान कार्य है, उस कार्य का कारण आत्मा है। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा है, आनन्द धर्म की जो पर्याय है, उसमें कोई निमित्त कारण नहीं, पूर्व की पर्याय कारण नहीं। वर्तमान सीधा भगवान आत्मा उसका कारण है। आहाहा! अरे! वीतराग की वाणी सुनने मिलनी मुश्किल हो गयी। धर्म तो मुश्किल हो गया, परन्तु वाणी क्या कहती है, यह बात सुननी मुश्किल हो गयी। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पात्रता ऐसी हो तो मिल बिना रहे नहीं। आहाहा! उसकी स्वयं की कमी है। अपनी स्वयं की कमी है। दूसरे की कमी है? आहाहा!

कहते हैं, अभेद दृष्टि से देखने पर सम्यग्ज्ञान निर्मल आनन्द की पर्याय के साथ श्रद्धापर्याय, चारित्रपर्याय, संवरपर्याय, ध्यानपर्याय वह सब अभेददृष्टि देखो तो आत्मा है। भेद से कथन कहो कि यह ध्यान, यह ध्यान करनेवाला, यह ज्ञान और ज्ञान का कारण। वह अभेद है। आहाहा! **ये सब भाव आत्मा ही हैं, इसलिए भावलिंगी मुनि के...** जो सच्चे मुनि होते हैं, (उनके) **अभेद अनुभव में विकल्प नहीं है,...** आनन्द और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के ध्यान में जो ध्येय आत्मा पकड़ा, उसमें अभेद में कोई विकल्प नहीं। पहले भगवान का स्मरण किया, फिर मन स्थिर हुआ, फिर ध्यान हुआ, ऐसा नहीं। कठिन बातें, भाई!

जिसे एक समय की निर्मल वीतरागी पर्याय, जो मोक्ष का मार्ग, मोक्ष के मार्ग का कारण तो द्रव्यस्वरूप है। ध्रुवस्वरूप उसका कारण है। आहाहा! यहाँ तो यह भी कहा, केवलज्ञानरूपी कार्य में भी आत्मा (कारण है)। पर्याय है न वह? उसमें आत्मा कारण है। मोक्षमार्ग की पर्याय भी कारण नहीं। उसका तो व्यय होता है। आहाहा! केवलज्ञान की... यहाँ तो साधक अवस्था की बात है। परन्तु साध्य अवस्था जो केवलज्ञान हुआ,

उस ज्ञान में भी आत्मा कारण है। वह तो सबेरे आया था। भाव, अभाव। कर्म का अभाव हुआ, इसलिए स्वभाव हुआ तो केवलज्ञान पर्याय हुई, ऐसा है नहीं। उस केवलज्ञान की पर्याय के कार्य में परमात्मा—आत्मा स्वयं अन्दर आता है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! ऐसी बातें कठिन। बाहर में धमाधम चलती है। पाँच-पच्चीस लाख का खर्च तो कहे, धर्म हो गया। धर्म धुरन्धर श्रावक है बड़ा, ऐसा कहे। आहाहा! महीने-दो महीने के उपवास करे, वर्षी तप करे। ये वर्षीतप नहीं करते? एक दिन खाना और एक दिन उपवास। सब लंघन है, लंघन। वह उपवास नहीं। वह उपवास नहीं है, अपवास है। अपवास-आत्मा के वास से छूटकर विकल्प के वास में आया, उसका नाम अपवास है। उपवास तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ उप अर्थात् समीप जाकर स्थिर होना, उसका नाम परमात्मा उपवास कहते हैं। उस उपवास की निर्मल पर्याय का कारण आत्मा है। आहाहा!

इसलिए भावलिंगी मुनि के अभेद अनुभव में विकल्प नहीं है,... आहाहा! भावलिंगी मुनि को द्रव्यलिंग तो नग्न ही होता है। समझ में आया? वस्त्रसहित तो द्रव्यलिंग भी झूठा है। जो वस्त्रसहित है, वह भावलिंगी भी नहीं है और द्रव्यलिंगी भी नहीं है। समझ में आया? परन्तु जिसे नग्नपना द्रव्यलिंग में आया तो भावलिंग चारित्र हुआ, ऐसा नहीं। भावलिंग जो वीतरागी पर्याय का कारण तो भगवान आत्मा है। द्रव्यलिंग और विकल्प उसका कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

चौथे, पाँचवें गुणस्थान में जब मुनिपना लेने की भावना आती है तो पहले पंच महाव्रत का विकल्प, नग्नपना आता है। परन्तु नग्नपना का विकल्प चारित्र का कारण है, ऐसा नहीं। जिसको चारित्रदशा आत्मा के अवलम्बने से प्रगट हुई, उसको नग्नदशा और पंच महाव्रत का विकल्प सहज आ जाता है। आहाहा! गजब मार्ग, बापू! वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव का यह हुकम है।

कहते हैं, यह जानकर **अतः निर्विकल्प अनुभव से सिद्धि है,...** आहाहा! अन्दर में पंच महाव्रत का विकल्प या बारह व्रत का विकल्प-राग या शास्त्र पढ़ने का विकल्प-राग, वह कोई वस्तु नहीं है-वह कोई धर्म नहीं। भगवान आत्मा का अन्दर में निर्विकल्प दृष्टि, निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प अनुभव आनन्द और चारित्र हो, वही मोक्ष का

मार्ग है। आहाहा! **यह जानकर इस प्रकार करता है।** देखो! **निर्विकल्प अनुभव से सिद्धि है, यह जानकर इस प्रकार करता है।** आत्मा त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर अपनी ज्ञान—दर्शन पर्याय को प्रगट करता है। आहाहा! जैसा गुजराती में आये ऐसा हिन्दी में नहीं आता। क्योंकि भाषा वहाँ अटक जाती है। मूल भाषा नहीं है। आहाहा! उस समय तो...

गाथा-५९

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं –

(अनुष्टुप् श्लोक)

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।।५९।।

एकः मे शाश्वतः आत्मा ज्ञानदर्शन लक्षणः।
शेषाः मे बाह्याः भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः।।५९।।

मैं ज्ञान दर्शन लक्षणात्मक एक शाश्वत आत्मा।
हैं शेष सब बहि भाव मुझ संयोग लक्षण मानता।।५९।।

अर्थ – भावलिंगी मुनि विचारता है कि ज्ञान, दर्शन लक्षणरूप और शाश्वत अर्थात् नित्य ऐसा आत्मा है, वही एक मेरा है। शेष भाव हैं, वे मुझसे बाह्य हैं, वे सब ही संयोगस्वरूप हैं, परद्रव्य हैं।

भावार्थ – ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है, वह तो मेरा रूप है, एक स्वरूप है और अन्य परद्रव्य हैं, वे मुझसे बाह्य हैं, सब संयोगस्वरूप हैं, भिन्न हैं। यह भावना भावलिंगी मुनि के है।।५९।।

गाथा-५९ पर प्रवचन

५९।

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।।५९।।

आहाहा! सन्त भावलिंगी मुनि सच्चे मुनि हो, वे तो विचारते हैं कि **ज्ञान, दर्शन लक्षणरूप और शाश्वत अर्थात् नित्य ऐसा आत्मा है, वही एक मेरा है।** आहाहा! अन्दर नग्नपना हुआ, पंच महाव्रत का विकल्प हुआ, वह मेरा नहीं। मैं तो ज्ञान-दर्शन-त्रिकाल ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला आत्मा है, वह मैं (हूँ)। त्रिकाली ज्ञान और दर्शन उपयोगस्वरूप मैं अथवा वर्तमान मति-श्रुतज्ञान आदि की पर्याय का भेदवाला लक्षण, वह व्यवहारनय है। वह लक्षणभेद। त्रिकाली ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप 'उपयोग लक्षण जीवो' वह निश्चय। आहाहा! और मति और श्रुतज्ञान की पर्याय भेदवाली है, वह व्यवहार हुआ। वह लक्षणवाला मैं हूँ। मेरा आत्मा मति और श्रुतज्ञान के लक्षण से लक्षित होता है। मेरा आत्मा ध्येय में मति और श्रुतज्ञान का लक्षण से ध्येय में आता है, ध्यान में आता है। कोई विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान, दया के भाव से आत्मा ध्यान में आता है, ऐसा आत्मा है नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय से भी लक्ष्य में आता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** शाश्वत। मैं तो त्रिकाल ध्रुव हूँ, शाश्वत् हूँ। मेरी उत्पत्ति नहीं, मेरा अभाव नहीं और वर्तमान में मेरे स्वभाव से मैं शून्य नहीं। आहाहा! ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव या सम्यग्दृष्टि, ज्ञान, चारित्र सहित भावलिंगी मुनि अपने को ऐसा विचारते हैं। समझ में आया?

'एगो मे सस्सदो अप्पा' मैं तो शाश्वत् ध्रुव आत्मा हूँ। आहाहा! कैसा? **'णाणदंसणलक्खणो'** जानना-देखना, यह मेरा शाश्वत् लक्षण है। **लक्षणरूप और शाश्वत अर्थात् नित्य ऐसा आत्मा है,...** वही एक मेरा है। आहाहा! यह मेरा है, ऐसा पर्याय निर्णय करती है। पर्याय जो निर्विकल्प पर्याय-अवस्था है, वह निर्णय करती है कि यह ध्रुव मैं हूँ, मैं शाश्वत् हूँ। निर्णय करने की पर्याय कहती है कि यह शाश्वत् मैं

हूँ। समझ में आया? यह तो अलौकिक मार्ग है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ का मार्ग कोई अलौकिक है। जगत को सुनने मिलना मुश्किल हो गया। आहाहा!

कहते हैं, **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** कौन निश्चय करता है? कौन विचारता है? वर्तमान पर्याय, वर्तमान दशा। **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** यह ध्रुव शाश्वत् मैं हूँ। पर्याय कहती है, मैं पर्याय नहीं। ये तो इस ओर (ध्रुव की ओर) आ गयी है न। एकरूप हुई, इस ओर सन्मुख हुई, उस अपेक्षा से एकरूप हुई। बाकी पर्याय पर्यायरूप रही है, ध्रुव ध्रुवरूप रहा है। दोनों एक होते नहीं।

मुमुक्षु : अभेद का अर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद का अर्थ इस ओर सन्मुख हुई, इसलिए अभेद। क्या पर्याय और ध्रुव एक हो जाते हैं? सूक्ष्म बात है, भगवान!

जो वर्तमान पर्याय राग और पुण्य की क्रिया और बाह्य पर थी, वह भेद में थी, ऐसा कहने में आता है। वह पर्याय अन्तर्मुख में गयी तो अभेद हुई, ऐसा कहने में आता है। उसका अर्थ (यह कि) पर की ओर का झुकाव छोड़कर अन्तर्मुख के झुकाव में आया तो अभेद कहने में आया। बाकी जो पर्याय है, वह तो पर्यायरूप ही रही है, वह ध्रुवरूप नहीं हुई और ध्रुव जो है, वह पर्यायरूप होता नहीं। समझ में आया?

'एगो मे सस्सदो अप्पा' मैं एक शाश्वत् आत्मा (हूँ)। आहाहा! अनित्यपना निकाल दिया, अशाश्वत् अर्थात् अनित्य पर्याय निकाल दी। **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** एकरूप मैं, शाश्वत्रूप मेरा आत्मा, उसका ज्ञान-दर्शन लक्षण है। जानना-देखना लक्षण से आत्मा लक्षित होता है। जानन-देखन लक्षण से भगवान आत्मा लक्षित-ज्ञान में ज्ञेयरूप जानने में आता है। मलूकचन्दभाई! ऐसा सब यह सूक्ष्म है। वहाँ अमेरिका में मन्दिर करवाते हैं, वहाँ शास्त्र भेजिये। यहाँ अभी तुम्हें समझ में नहीं आता, वहाँ कौन समझे?

मुमुक्षु : भावना ऊँची है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भावना सच्ची नहीं है।

मुमुक्षु : कोई माँगे तो देना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : माँगे, क्या माँगे ? उसे भान नहीं, क्या माँगे ? मुफ्त में माँगे कि हमें मुफ्त में भेजिये। परन्तु पुस्तक में क्या है, वह समझेगा कहाँ? यहाँ जैन में समझनेवाले नहीं।... कुछ नहीं। व्रत पाले, ये करें, वह करें, धूल करे, वह धर्म। धूल में भी धर्म नहीं है। आहाहा! शास्त्र क्या समझे ? शास्त्र के जो निश्चय वाक्य, व्यवहार वाक्य, उसका भावार्थ, आगम वाक्य क्या ? अन्यमति क्या (कहते हैं) ? यहाँ अपने में (समझनेवाले नहीं मिलते) कि शास्त्र का क्या कहना है ? ६०-६० वर्ष से साधु होकर बैठे, नग्न होकर, हों! उसे भी मालूम नहीं है कि क्या है चारित्र और क्या है सम्यग्दर्शन। वह तो समझे कि पाँच महाव्रत पालते हैं। अभी तो पाँच महाव्रत भी कहाँ है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपके चरण पड़े तो सब सरल हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ जाये ? यहाँ तो तुम्हारा ठिकाना नहीं है और वहाँ चरण करवाने हैं ? यहाँ तो सीधी बात है। समझ में आया ? आहाहा! भाई! यह तो वीतराग का मार्ग है, प्रभु!... परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई, यह वाणी है। आहाहा! उस वाणी कुन्दकुन्दाचार्य जगत को कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो बीच में आड़तिया हैं, माल तो वीतराग का है। आहाहा! समझ में आया ?

मैं नित्य ऐसा आत्मा है, वही एक मेरा है। ओहोहो! गजब बात करते हैं न! वर्तमान पर्याय निर्मल मति-श्रुतज्ञान की पर्याय ऐसा विचार करती है कि मैं नित्य ऐसा आत्मा है, वह मेरा है। बापू! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई! साधारण दया पालो, व्रत पालो, ऐसा तो कुम्हार भी कहते हैं। वीतराग का मार्ग वैसा होगा ? अनन्त काल में किया नहीं। जिसे इन्द्र स्वीकार करते हैं, जिसको गणधर मानते हैं, वह चीज़ कैसी होगी ? समझ में आया ? दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो, ऐसा तो कुम्हार भी कहते हैं। ऐई!

यहाँ तो तीन लोक के नाथ परमात्मा वीतराग के श्रीमुख से निकली वाणी में तो ऐसा आया है कि धर्मीजीव की मतिज्ञान की धारा में, श्रुतज्ञान की धारा में ऐसी विचारणा चलती है कि **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** पर्याय है, वह तो अशाश्वत् है, शाश्वत् नहीं। जो निर्णय और विचार करती है, वह पर्याय अशाश्वत् है, नाशवान है, अनित्य है।

ऐई! अनित्य, नित्य का निर्णय करती है। शाश्वत् वस्तु की स्वीकारता... अनन्त गुण का एकरूप अभेद, ध्रुव, वह एक मेरा है। ध्रुव एक मेरा है। ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप भान हुआ, तो कहते हैं कि शाश्वत् एक ध्रुव ही मैं हूँ। समझ में आया?

न्यालभाई में आता है तो लोग विरोध करते हैं न? न्यालभाई कहते हैं, पर्याय मेरा ध्यान करती है, मैं किसका ध्यान करूँ? बाबूलालजी! तीसरे भाग में आता है न? न्यालभाई है न? सामने फोटो है। अजमेर के थे। कलकत्ता में बड़ी दुकान है। वे तो गुजर गये। लड़का बड़ा लखपति है। पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ? ... बड़ा गृहस्थ था, बड़ा लखपति। गुजर गये। मैं आत्मा शाश्वत् ध्रुव नित्य, यह मैं हूँ। पर्याय ऐसा कहती है कि मैं पर्याय नहीं। आहाहा! पर्याय मैं, वह तो पर्यायबुद्धिवाला मानता है, ऐसा कहते हैं। जिसकी अंशबुद्धि है, पर्यायबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है, बहिरबुद्धि है... आहाहा! वह ऐसा कहता है कि मैं पर्याय हूँ।

सम्यग्ज्ञान की पर्याय, धर्मी की सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की पर्याय, मैं एकरूप शाश्वत् हूँ **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** वह मैं। **'एगो मे सस्सदो अप्पा' 'एगो मे सस्सदो अप्पा'**। आहाहा! बापू! यह तो पूरा संसार को उखाड़ देना है। मेरे में संसार तो नहीं, मेरे में संसार का विकल्प (नहीं)। विकल्प ही संसार है। संसार कोई स्त्री-पुत्र नहीं है, वह तो बाह्य पर है, उसमें संसार कहाँ आया? मिथ्यात्वभाव-पर्याय जितना मैं, राग मैं —ऐसा मिथ्याबुद्धि है, वह संसार है। संसार कोई स्त्री-पुत्र नहीं है, वे तो बेचारे पर हैं। तेरे में वह कहाँ घुस गये हैं? तेरी चीज़ जो आनन्दकन्द है, उसमें से संसरण अर्थात् हटकर मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान में आया, उसका नाम संसार कहते हैं। यह संसार उसने एक समय भी कभी छोड़ा नहीं। ये स्त्री-पुत्र छोड़कर दीक्षा ली तो संसार छोड़ा, धूल में भी संसार छोड़ा नहीं। सुन न! संसार किसको कहना, यह तुझे खबर नहीं। संसार छोड़ा, इसने त्याग किया, त्याग किया। बड़ा व्यापार था, धन्धा था, दुकान थी। धूल भी नहीं था। उसका कहाँ था वह?

निर्मल भगवान आत्मा की पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान की, विचारता है ज्ञान; श्रद्धता है समकित; स्थिर होता है, वह चारित्र। मतिज्ञान की पर्याय (ऐसा विचारती है), **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** मैं एक शाश्वत् आत्मा (हूँ)। शाश्वत् ध्रुव मैं हूँ, ऐसा पर्याय कहती

है। ध्रुव नहीं कहता, ध्रुव में ऐसा है नहीं। समझ में आया? जिसने स्वीकार किया, मेरी पर्याय में पूर्णानन्द का नाथ कभी स्वीकारता में आया नहीं था, वह मेरी स्वीकारता में आया कि यह मैं हूँ। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया?

'एगो मे सस्सदो अप्पा' 'एगो मे सस्सदो अप्पा' वह मैं। ऐसा हुआ न? आहाहा! नित्य ध्रुव। स्थानकवासी में ये सब श्लोक चलते हैं। ....अर्थ कुछ न समझे। ऐई... चिमनभाई! जगत की बाहर की मिठास, इज्जत, पैसे, शरीर सुन्दर, पुत्र-पुत्री कुछ ठीक हो... आहाहा! करोड़-दो करोड़ की पूँजी हो, पुत्र की अच्छे जगह शादी हुई हो। लड़की अच्छे ठिकाने हो बाद में मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाए। धूल भी नहीं है, सुन तो सही। भगवान आत्मा नित्यानन्द का नाथ ध्रुव शाश्वत् वस्तु है, वह तेरी है। और कोई तेरी चीज़ नहीं। पर्याय मेरी नहीं, ऐसा कहते हैं। मैं तो यह हूँ। राग मेरा, पुण्य मेरा, शरीर मेरा, स्त्री मेरी, पुत्र मेरा, मेरा गाँव कहाँ से आया? उठाईगीर। तेरी चीज़ में नहीं उसको मेरा मानना, उठाईगीर है-चोर है। आहाहा!

शाश्वत् दल, चैतन्यदल, ध्रुव... आहाहा! गजब किया है न! मुनि विचारते हैं, ऐसा लिखा है न? **ज्ञान, दर्शन लक्षणरूप और शाश्वत अर्थात् नित्य ऐसा आत्मा...** आत्मा का लक्षण जानना-देखना। और यह लक्षण विचारता है कि मैं तो यह हूँ। लक्ष्य जो हुआ वह मैं हूँ। आहाहा! अनन्त पुरुषार्थ है, भाई! वह कोई बात करने से काम नहीं होता। आहाहा! वही एक मेरा है। ऐसा तो कहते हैं, यह मेरा है, ऐसा विकल्प भी मेरा नहीं। समझ में आया? समझाये तब तो ऐसे समझाये न?

नित्यानन्द का नाथ प्रभु, नित्य जो ध्रुव दल, ध्रुव नित्य शाश्वत् मैं हूँ। **शेष भाव हैं, वे मुझसे बाह्य हैं,...** है न? **'सेसा मे बाहिरा भावा'** स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश तो बाह्य है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प भी बाह्य है, मेरा स्वरूप नहीं। वह संयोगलक्षणी चीज़ है। संयोग से उत्पन्न हुआ, वह भाव मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! **शेष भाव...** ध्रुव भाव से अलावा शेष भाव **मुझसे बाह्य हैं,...** ध्रुव के अतिरिक्त पर्याय भी मुझसे बाह्य है। पर्याय भी अन्दर में नहीं है। समझ में आया? ऐसा मैं भाव, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सर्वज्ञ के पथानुगामी परमात्मा के वे पुत्र हैं। लोग

कहते हैं, ईशु परमेश्वर का पुत्र है। सब बातें। इनको तो शास्त्र में गणधर को सर्वज्ञ के पुत्र कहे हैं। धवल शास्त्र में कहा है। गणधर सर्वज्ञ के पुत्र हैं। आहाहा! और इनको भी वहाँ कहा न? 'जिनेश्वर के लघुनन्दन' समकिती को कहा। समझ में आया? आहा! सम्यग्दृष्टि जीव जिनेश्वर का लघुनन्दन है-छोटा पुत्र है; मुनि हैं, वे बड़े पुत्र हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मेरा ध्रुव स्वरूप से जो चीज़ है, पर्याय है, वह भी बाह्य है। निर्णय करनेवाली पर्याय भी ध्रुव से बाह्य है। **वे सब ही संयोगस्वरूप हैं,...** पंचास्तिकाय में आता है न? भाई! पर्याय भी उत्पन्न होती है, वह संयोग है और पर्याय का वियोग होता है, व्यय होता है, वह उसका वियोग है। पर्याय का संयोग और वियोग। पर्याय की व्याख्या ली है। पंचास्तिकाय में। ध्रुव वस्तु जो भगवान, उसमें निर्मल पर्याय का उत्पन्न होना, वह भी संयोग हुआ। आहाहा! और उसका व्यय होना, वह वियोग हुआ। संयोग-वियोग पर्याय में है। कठिन बातें, भाई! 'प्रभु का मार्ग है शूरों का, कायर का नहि काम वहाँ' 'हरि का मार्ग है शूरों का, कायर का नहि काम जोने...' हरि (अर्थात्) आत्मा। अज्ञान और राग-द्वेष का नाशकर उत्पन्न हुआ भगवान आत्मा, वह हरि है। 'हरि का मार्ग है शूरों का, कायर का नहि काम जोने, प्रथम पहेला मस्तक मूकी, पछी लेवुं नाम जोने।' एकदम अर्पणता करनी। शूरवीर का काम है। समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! आहाहा! अरे! ऐसी जैनदर्शन की बात होगी? जैनदर्शन तो... स्थानकवासी कहते हैं, व्रत पालना, दया पालनी, ये करना। श्वेताम्बर में कहे, पूजा करनी, भक्ति करनी, यात्रा करनी, दस-बीस लाख का खर्च करके संघ निकालना, सूर्यास्त पूर्व भोजन करना, जमीकन्द नहीं खाना। दिगम्बर में वस्त्र छोड़ना, ये छोड़ना। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ क्या करना? सच्चा करना या झूठा? अनादि से झूठा करता आ रहा है। वह तो अनादि से करता है। आहाहा!

शरीर संयोगलक्षण। आहाहा! कहते हैं कि संयोगी चीज़... देव-गुरु-शास्त्र, वह संयोगलक्षण है। वह बाह्य चीज़ है, वह मेरे में नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति के राग की मन्दता का पुण्य परिणाम हो, वह बाह्य लक्षण है। वह संयोगी विकारी भाव संयोगी है। आहाहा! और आगे तो पर्याय भी संयोग से उत्पन्न हुई है। स्वभाव में वह नहीं है।

ध्रुव स्वभाव में सभी पर्यायें अन्तर्मग्न हैं, वह अलग बात है। परन्तु उसके साथ वर्तमान में एक नहीं है। ...

सामान्य चेतना में विशेष चेतना व्यक्तियाँ अन्तर निमग्न है। आता है न? अव्यक्त में। अव्यक्त के छह बोल आते हैं। समयसार ४९ गाथा। उसमें यह तीसरा बोल है। पहला बोल यह है कि छह द्रव्यस्वरूप लोक व्यक्त है, ज्ञेय है, व्यक्त है। उससे भगवान भिन्न है, इसलिए अव्यक्त है। आहाहा! भाषा भी कैसी! व्यक्त और अव्यक्त। ऐसा जैनदर्शन में होगा? ये नहीं खाना, फलाना करना... ऐसा समझ में तो आये। वह तो अज्ञान है, सुन न। वह तो अनादि से समझा है, उसमें है क्या? आहाहा! एक समय की पर्याय कहती है, मैं शाश्वत् आत्मा। आहा! पर्याय कहती है कि मैं शाश्वत् आत्मा हूँ और वह पर्याय स्वभाव से भिन्न लक्षणवाली संयोगलक्षणी है, उत्पाद-व्ययवाली है। समझ में आया? आहाहा!

शेष बाहर है... है सही। है? नहीं है, ऐसा नहीं। **'बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा'** शेष है, ऐसा कहा। शेष बाह्य भाव है, ध्रुव के अलावा। वह संयोगलक्षण है। त्रिकाल स्वभाव का लक्षण मेरा ध्रुव है, वह मैं हूँ। समझ में आता है? **परद्रव्य हैं।** स्वद्रव्य की मुख्यता की अपेक्षा एक समय की निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय भी परद्रव्य है। यह तो ४९ (गाथा में) आता है। नियमसार। ये अव्यक्त के छह बोल है, वह भी समयसार की ४९ गाथा। ... आहाहा!

द्रव्य तो त्रिकाली ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... है... है... है, वह मैं और पर्याय भी परद्रव्य है। क्यों? कि जैसे परद्रव्य में से निर्मलता नहीं होती, वैसे पर्याय में से नयी निर्मल पर्याय नहीं होती। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव में से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है। **'एगो मे सस्सदो अप्पा'** है न। सब गाथा याद कर ली थी, आठ साल पहले। (संवत्) १९६८ वर्ष। १९६८-६८। छह हजार गाथायें कण्ठस्थ की थी। छह हजार गाथा। उसमें कुछ सार नहीं। भाव समझनेवाले थे नहीं, भाव की खबर नहीं थी। पहाड़ा रट ले, ऐसा रट लिया था। आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है,...** जानन-देखन स्वरूप नित्य आत्मा। एक आत्मा मेरा रूप है। वह मेरी जाति की, रूप की चीज़ है। **एक स्वरूप है**

और अन्य परद्रव्य हैं, वे मुझसे बाह्य हैं, सब संयोगस्वरूप हैं, भिन्न हैं। यह भावना भावलिंगी मुनि के है। भावसन्त जो है, उनकी यह भावना है। आहाहा! उसे भावलिंगी साधु (कहते हैं)। नग्न द्रव्यलिंग नग्न तो होता ही है। जिसे भावलिंग है, उसका द्रव्यलिंग नग्न ही होता है और जंगल में उसका वास होता है। समझ में आया? उसे यहाँ मोक्षमार्गी भावशुद्धता (कहते हैं)। यह भावपाहुड़ शुद्धपर्याय की बात है। और शुद्धपर्याय कहती है कि यह मैं हूँ। आहाहा! उसके आश्रय से यह प्रगट हुई है। उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-११८, गाथा-५९ से ६२, गुरुवार, माघ शुक्ल १, दिनांक २४-०१-१९७४

अष्टपाहुड़ में पाँचवाँ पाहुड़ है। ५९ गाथा का भावार्थ। धर्मात्मा पहला आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन है, ऐसा जानकर जिसने आत्मा का अनुभव किया है, वह धर्मात्मा भावना किसकी करता है, यह बात है।

भावार्थ – ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है,... जानना और देखना, यह जिसका स्वरूप नित्य एक आत्मा है। यहाँ लक्षण भले दो कहे। ज्ञान-दर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा। गुण भले दो परन्तु वस्तु एक। **वह तो मेरा रूप है,...** बहुत संक्षिप्त में। ज्ञान, दर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा। ओहोहो! **वह तो मेरा रूप है,...** मेरा स्वरूप एक है। एक परन्तु वह एक स्वरूप है। एक 'अेगो मे' है न? उसमें दो लिये। एक तो वह एक है। ज्ञान-दर्शन जानने-देखने का स्वरूप एक नित्य एक। वह एक स्वरूप है। आहाहा!

और अन्य परद्रव्य हैं, वे मुझसे बाह्य हैं,... जितने परपदार्थ हैं, देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, कर्म, पुण्य-पाप के भाव, वे सब मुझसे बाह्य हैं। 'सब संयोगस्वरूप हैं...' वे तो संयोग से रहे हुए स्वरूप है। स्वभाव में रहा हुआ उनका स्वरूप नहीं है। शरीर, मन, पुण्य और पाप के विकल्प राग, वे सब संयोगस्वरूप हैं। कल तो अधिक कहा था। मेरा एक ध्रुव स्वरूप है, वह मैं हूँ। बाकी सब पर्यायें भी संयोगस्वरूप से आती हैं, जाती हैं... आती-जाती हैं।

मुमुक्षु : आज इतना ही क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आज अभी इतना कहा। वह अब कहा। पर्याय भी निश्चय से, जो निर्णय करती है, वह पर्याय भी मुझसे भिन्न है। एक शब्द प्रयोग किया है न? मैं तो एक स्वरूप। ज्ञान और दर्शन के दो लक्षण होने पर भी मैं दो स्वरूप नहीं। मैं शरीररूप, रागरूप तो नहीं परन्तु मैं दो स्वरूप नहीं। आहाहा! मैं तो एक ध्रुव स्वरूप, नित्यस्वरूप, शाश्वत वस्तु, वह मैं हूँ। आहाहा!

भिन्न हैं। बाकी सब चीज़ें भिन्न है। **यह भावना...** धर्मात्मा... यहाँ तो भावलिंगी मुनि कहते हैं। परन्तु धर्मात्मा की कायम की यह भावना होती है। कुछ करना, षोड़शकारणभावना भाना और यह भावना धर्मी की नहीं होती। भावता है न, सोलहकारण भावना...

मुमुक्षु : भावना तो पर्याय में होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो तो उसकी भावना करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! यह तो ज्ञान-दर्शनस्वरूप एकरूप विराजमान, उसकी भावना, उसमें एकाग्रता, वह भावना करनेयोग्य है। बाकी यह षोडशकारण (भावना का) विकल्प भी भावना करनेयोग्य नहीं है। आ जाए, हो। आहाहा! भावपाहुड़ है न।

यह भावना भावलिंगी मुनि के है। अथवा यह भावना धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि की यह भावना है। इतना इसका भावार्थ है। यह सब चरणानुयोग के ... शास्त्र में है न। पंच महाव्रत, उसके अतिचार पालना, उसे दोष नहीं लगाना।

मुमुक्षु : यह जीव का भाव कहाँ है? यह तो रागभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चरणानुयोग की क्रिया है न। वह बीच में होती है, इसलिए उसका ज्ञान कराया है, परन्तु उसकी भावना करनेयोग्य नहीं। आहाहा! भावना तो ध्रुव चैतन्यस्वरूप को दृष्टि में लेकर जिसने अनुभव किया है, ऐसे अनुभवी को तो ध्रुव की भावना करना चाहिए। यह ५९ गाथा (हुई)।

गाथा-६०

आगे कहते हैं कि जो मोक्ष चाहे वह इस प्रकार आत्मा की भावना करे –

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं।।६०।।

भावय भावशुद्धं आत्मानं सुविशुद्धनिर्मलं चैव।
लघु चतुर्गति च्युत्वा यदि इच्छसि शाश्वतं सौख्यम्।।६०।।

यदि चाहते हो चतुर्गति बिन शाश्वत सुख हो सदा।
तो भाव शुद्ध विशुद्ध निर्मल आत्मा भाओ सदा।।६०।।

अर्थ – हे मुनिजनों ! यदि चारगतिरूप संसार से छूटकर शीघ्र शाश्वत सुखरूप मोक्ष तुम चाहो तो भाव से शुद्ध जैसे हो वैसे अतिशय विशुद्ध निर्मल आत्मा को भावो।

भावार्थ – यदि संसार से निवृत्त होकर मोक्ष चाहो तो द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित शुद्ध आत्मा को भावो इस प्रकार उपदेश है।।६०।।

गाथा-६० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो मोक्ष चाहे... जिसे पूर्ण आनन्द की पर्याय की भावना हो। वह इस प्रकार आत्मा की भावना करे – पूर्णानन्द की दशा की प्राप्ति, वह मोक्ष। उसकी जिसे चाह है, उसे आत्मा की भावना करना चाहिए। आहाहा!

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं।।६०।।

अर्थ – हे मुनिजनों ! यदि चारगतिरूप संसार से छूटकर... है न? 'लहु चउगइ चइऊणं' चार गति से शीघ्ररूप से जिसे छूटना हो तो शाश्वत सुखरूप मोक्ष तुम चाहो... शीघ्र शाश्वत सुखरूप मोक्ष तुम चाहो... देखो! मोक्ष की पर्याय है, वह शाश्वत् रहती है, क्यों रहती है। है तो वह पर्याय। परन्तु कायम रहती है, इसलिए

उसे शाश्वत् कहा जाता है। एक ओर पहले **'एगो'** आत्मा शाश्वत् कहा और यहाँ मोक्ष को भी शाश्वत् कहा। वह दशा प्रगट हुई, वह ऐसी की ऐसी कायम रहती है, इसलिए उसे शाश्वत् कहा जाता है। नहीं तो मोक्ष की पर्याय भी परिणमती है, बदलती है। एक समय की दशा है, वह दूसरे समय नहीं होती। भले वैसी हो, वह नहीं होती। वैसी उस जाति की होती है, इसलिए उस मोक्ष के सुख को शाश्वत कहा जाता है। एक ओर आत्मा त्रिकाल को शाश्वत् कहा। एक ओर उसकी मूल आनन्द की पर्याय पूरी प्रगट हो, उसे शाश्वत् कहा।

सुखरूप मोक्ष तुम चाहो तो भाव से शुद्ध जैसे हो वैसे... भाव से शुद्ध जैसे हो, वैसे। **वैसे अतिशय विशुद्ध निर्मल आत्मा को भावो।** शुद्ध परिणाम से, शुद्ध भाव से आत्मा को भाओ, ऐसा कहते हैं। विशुद्धभाव से, शुद्धभाव से अर्थात् कि शुद्ध उपयोग से **विशुद्ध निर्मल आत्मा...** वह ध्येय। विशुद्ध-शुद्ध निर्मल आत्मा को ध्याओ। आहाहा! यहाँ तो व्यवहार का विस्तार शास्त्र में कितना आता है। वह सब हो, बीच में आवे परन्तु वह भावना करने जैसी दृष्टि नहीं है। आस्रव की भावना करने जैसी है? चरणानुयोग में जितने महाव्रत आदि के कथन है, वे सब आस्रव हैं। आहाहा! चाहे तो ... अतिचार पालना और.... गजब!

एक भगवान शाश्वत् वस्तु, उसकी शुद्ध भावना द्वारा भावना करने से पूर्ण आनन्दरूपी मोक्ष वह शाश्वत् उसे प्राप्त होता है। ऐसा मार्ग है। **विशुद्ध निर्मल...** यह विशुद्ध शब्द से पवित्र पूर्ण कहना है। विशुद्ध के बहुत अर्थ हैं। शुभभाव को विशुद्ध कहते हैं, शुद्धभाव को विशुद्ध कहते हैं, निर्मल शुद्ध पर्याय को विशुद्ध कहते हैं और त्रिकाली को विशुद्ध कहते हैं। समझ में आया? यहाँ विशुद्ध निर्मल आत्मा की भावना ऐसा है। विशुद्ध त्रिकाली निर्मलानन्द पवित्र का पिण्ड प्रभु, ऐसा जो विशुद्ध भाव। नहीं तो शुभभाव को भी विशुद्ध कहा जाता है। संक्लेश को अशुभ और विशुद्ध को शुभ। जिस स्थान में जो कहने का प्रकार हो, उसे समझना चाहिए न? शब्द को नहीं पकड़ना चाहिए। जिस जगह उसका भाव क्या कहना है। यहाँ तो पर्याय की विशुद्धता-शुद्धता द्वारा विशुद्ध आत्मा का ध्यान करना, उसकी भावना करना, यह बात है। उसकी अन्तिम मर्यादा यहाँ जाती है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ – यदि संसार से निवृत्त होकर... उदयभाव जो संसार, उदयभाव। संसार कोई दूसरी चीज़ नहीं है। उदयभाव (संसार है)। चार गति का उदयभाव, वह संसार। राग-द्वेष-मिथ्यात्वभाव, वह संसार है। संसरण इति संसार:। त्रिकाली शुद्धभाव में से हट गया है और रागादि में आया है, वह रागादि का भाव ही संसार है। समझ में आया? उस **संसार से निवृत्त होकर मोक्ष चाहो तो...** पूर्ण आनन्द की प्राप्ति चाहो तो **द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित...** सहित होने पर भी रहित। व्यवहारनय से सहित और निश्चयनय से रहित। आहाहा! यह जड़कर्म। भावकर्म अर्थात् शुभपरिणाम, शुभाशुभभाव, तीर्थंकरगोत्र का भाव, वह भावकर्म है। **और नोकर्म से रहित...** आहाहा! शरीर, भाषा, पर्याप्ति आदि नोकर्म। उनसे रहित अन्दर भगवान चैतन्यसत्ता शाश्वत् है। जिसका अस्तित्व सत्ता मौजूदगी, पूर्ण स्वरूप है, वह पर से रहित **शुद्ध आत्मा को भावो...** उसमें विशुद्ध कहा था। सुविशुद्ध कहा। पाठ में विशुद्ध कहा। **'अप्पा सुविसुद्धणिम्मल'** ऐसा था न? फिर अर्थ में विशुद्ध किया। पाठ तो **'सुविसुद्ध'** ऐसा है।

कारण कि शुभभाव को विशुद्ध कहा जाता है, शुद्धभाव को विशुद्ध कहा जाता है। यह तो सुविशुद्ध है। आहाहा! ... बहुत आवे। वीतरागी भाव प्रगट करना। वीतराग जिनस्वरूप ही, वीतरागस्वरूप ही है। 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही है कर्म' अकषाय रस का सत्त्व, वह आत्मा। ऐसे आत्मा को यहाँ **'सुविसुद्ध'** कहा। **'सुविसुद्ध'** पूर्ण स्वरूप, पूर्ण निर्मल... निर्मल... निर्मल। उसे शुद्धभाव से भावना करो। पवित्र परिणति से उसके सन्मुख देखकर, सन्मुख होकर, उसमें एकाग्र होओ। गजब मार्ग, भाई! कहो, पाटनीजी! यह व्यवहारवालों को ऐसा लगे कि व्यवहार लोप हो जाएगा। ऐसा कहते हैं। सोनगढ़ में अकेली निश्चय की बातें और हमारे निश्चय और व्यवहार दोनों। अनेकान्त है हमारे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो... यह क्या आया इसमें? **'भावेह भावसुद्धं अप्पा'** भावना कर, भाव शुद्ध के भाव से। **'अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव। लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं।'** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के यह आत्म उद्गार है। हृदय के उद्गार है। आहाहा! भाई! तुझे जो परम आनन्द, मोक्षप्राप्ति करनी हो, क्योंकि तेरा ध्येय तो सुख

की प्राप्ति का है, तो पूर्ण सुख तो मोक्ष में है। ऐसे पूर्ण आनन्द की प्राप्ति जो इच्छा और चाहना हो तो शुद्धभाव द्वारा सुविशुद्ध निर्मल भगवान आत्मा की भावना कर। आहाहा! यह तो निश्चय की बात, फिर व्यवहार उसका साधन (क्या)? ऐसा कहते हैं।

जब अगास में दोपहर में व्याख्यान हुआ न? श्रीमद् का अगास है न? वहाँ। सबने सुना। रात्रि में एक व्यक्ति आया। यह बात सब ठीक है परन्तु इसका साधन क्या? ऐसा कि उसे ऐसा कि यह भक्ति करना, वाँचन करना, श्रवण करना, यह सब साधन। बापू! यह साधन नहीं है। आहाहा! लोगों को यह मूल चीज़ कठिन पड़ती है न, इसलिए फिर बाहर की चीज़ का साधन होवे तो ठीक पड़े, दिखे, ख्याल में आवे, (कि) कुछ करते हैं। वह अन्दर में जाना, यह करे तो ख्याल में आवे नहीं। आहाहा! ध्रुव के ध्येय में परिणति जो अभेद हो, वह तो ख्याल में आवे नहीं। (इसमें तो दिखता है) यह ऐसा करते हैं और भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, दान करते हैं, दया पालते हैं, व्रत पालते हैं, संवर करते हैं, ऐसा करते हैं। देखकर चलते हैं, विचार कर बोलते हैं। यह सब बातें ख्याल में आवे। आहाहा! मार्ग तो यह है। भावपाहुड़ का अधिकार है न? भावसार। प्राभृत-भेंट। शुद्धपर्याय की भेंट जीव को दे, वह आत्मभावना कर सकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह ख्याति और लाभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कब मिले?

मुमुक्षु : शुभभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव में धूल भी नहीं।

मुमुक्षु : वह ख्याति कब हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ख्याति—आत्मख्याति।

मुमुक्षु : फिर तो कोई जाने नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो पहले बात की।

मुमुक्षु : मान मिले, रोटियाँ मिले...

पूज्य गुरुदेवश्री : मान और रोटियाँ अब धूल में ... मिले। आहाहा! देखो न!

पाण्डव ध्यान में थे। आहाहा! और उपसर्ग, लोहे के गर्म किये हुए (आभूषण पहनाये)। सहदेव और नकुल को विकल्प आया, अरे! बन्धुओं को, साधर्मी भाईयों को... ऐसे तो सहोदर है, उनको क्या (होता होगा)? बड़ी उम्र के धर्मराजा, भीम, अर्जुन। ऐसा एक विकल्प आया, उसमें दो भव हुए।

मुमुक्षु : विकल्प एक और भव दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वार्थसिद्धि का भव और वहाँ से मनुष्य का भव। आहाहा! तीन—भीम, अर्जुन और धर्मराजा अन्तर में ध्रुव के ध्यान में स्थिर होकर केवल(ज्ञान) प्राप्त हुए। पाँचों सहोदर साधर्मी जीव, सन्त। आहाहा! भावलिंगी सन्त। ऐसा जरा विकल्प उठा कि अरे रे! मुनिराज-बड़े मुनिराज को, बड़े बन्धु मुनिराज को क्या होता होगा? लोहे के तमतमाते डाले। अरे! नेमिनाथ भगवान का समय था न? नेमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे तब ... किया। ऐसे समय में भी ऐसी दशा! परन्तु यहाँ तो यह कहना है कि साधर्मी मुनियों के प्रति विकल्प आया कि कैसे है? (उसमें) ३३ सागर का आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि का ३३ सागर। संसार में ३३ सागर रहना पड़ा।

मुमुक्षु : संसार में या सर्वार्थसिद्धि में?

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार में। सर्वार्थसिद्धि अर्थात् संसार। आहाहा! नेमचन्दभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो इतनी स्पष्ट बात की है। नहीं तो वह तो शुभभाव था। वह कहीं स्वयं के लिये नहीं था। स्वयं के लिये कमजोरी आयी, जिससे विकल्प उठा। ३३ सागर। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। और एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। और वहाँ से निकलकर वापस मनुष्य होंगे। आहाहा! वह शुभराग भी चाहनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, भगवान! उसमें राग का कण भी नुकसानकारक है।

अभी इसकी श्रद्धा का ठिकाना न हो। उसे अन्दर में शुद्ध में जाना भारी कठिन पड़ता है। किस प्रकार जाए? उसे पर से खाली न करे (तो कहाँ से अन्दर जाए)? किसी कारण से आत्मा प्राप्त न हो। वह तो शुद्धता के भाव से ही प्राप्त होता है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पन्थ' ऐसा ही मार्ग, उसे शुद्धभाव से आत्मा विशुद्ध को

भा। आहाहा! आचार्य का हृदय उस समय... यह लिखते समय विकल्प है परन्तु विकल्प की भावना नहीं। आ गया है विकल्प। शास्त्र लिखने का विकल्प भी भाने योग्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तू वीतरागस्वरूप है और उस वीतराग की परिणति द्वारा ही प्राप्त होता है। दूसरी कोई पद्धति नहीं है। समझ में आया?

छहढाला में नहीं कहा? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ।' आता है न? पण्डितजी! 'छोड़ी जगत द्वंद्व फंद...' यह तो दौलतरामजी का है। जिससे उदास होना है, उसकी भावना कैसे हो सकती है? आहाहा! अर्थात् कि जिसका उत्थापन राग से भिन्न करके अन्दर में स्थिर होना है, उसे ऐसे राग की भावना कैसे होगी? सुविशुद्ध ऐसा परमात्मा निर्मलानन्द नाथ प्रभु की शुद्धभाव से भावना कर। आहाहा! व्यवहार की तो बात उड़ा दी है।

गाथा-६१

आगे कहते हैं कि जो आत्मा को भावे वह इसके स्वभाव को जानकर भावे, वही मोक्ष पाता है –

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं।।६१।।

यः जीवः भावयन् जीवस्वभावं सुभावसंयुक्तः।
सः जरामरणविनाशं करोति स्फुटं लभते निर्वाणम्।।६१।।

जो जीव जीव-स्वभाव को सद्भाव संयुत भाएगा।
वह जर मरण का नाश कर प्रत्यक्ष मुक्ति पाएगा।।६१।।

अर्थ **– जो भव्यपुरुष जीव को भाता हुआ भले भाव से संयुक्त होता हुआ जीव के स्वभाव को जानकर भावे, वह जरा-मरण का विनाश कर प्रगट निर्वाण को प्राप्त करता है।**

भावार्थ **– 'जीव' ऐसा नाम तो लोक में प्रसिद्ध है, परन्तु इसका स्वभाव कैसा**

है? इस प्रकार लोगों को यथार्थ ज्ञान नहीं है और मतान्तर के दोष से इसका स्वरूप विपर्यय हो रहा है। इसलिए इसका यथार्थ स्वरूप जानकर भावना करते हैं। वे संसार से निर्वृत्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।।६१।।

गाथा-६१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो आत्मा को भावे, वह इसके स्वभाव को जानकर भावे,... यह क्या कहते हैं? कि आत्मा को एकाग्र होना, परन्तु उसका स्वभाव क्या? उसका कायमी स्व-भाव। वह वस्तु, उसका कायमी गुण क्या? आत्मा तो आत्मा कहा। वह तो आत्मा वस्तु। परन्तु उसका स्वभाव, स्व-अपना भाव शाश्वत् क्या चीज़ है? उसके भाव को जानकर फिर भावना करे। **इसके स्वभाव को जानकर भावे,...** ऐसे तो जड़ परमाणु भी द्रव्य है। आत्मा भी द्रव्य है। परन्तु आत्मा का स्वभाव क्या? उसका स्वभाव आनन्द और ज्ञान। दो बाद में लेंगे। ज्ञानस्वभाव और चेतनास्वरूप, ऐसा लेंगे। ६२ में। अर्थात् कि यह आत्मा वस्तु है, वह तो द्रव्य हुआ। परन्तु उसका वास्तविक त्रिकाली गुणस्वभाव क्या है? कि जिससे यह ऐसा स्वभाव है, उस स्वभाववन्त को भाना। यह ६१ गाथा में कहते हैं। **जानकर भावे, वही मोक्ष पाता है -**

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं।।६१।।

अर्थ - जो भव्यपुरुष... लायक पुरुष। भव्य को है न मोक्ष? दूसरे को कहाँ है? आहाहा! दुनिया में दिखाने का भाव हो, उसे छोड़ दे, कहते हैं। दुनिया में कुछ दिखाऊँ, मुझे सामने गिनती में गिने। बापू! तुझे क्या काम है? तेरी गिनती गिन न। तेरा स्वभाव क्या है? आहाहा! नित्यानन्द का नाथ भगवान उसका भाव है जानना और देखना। चेतना उसका स्वभाव है। चेतना उसका स्वभाव है। चेतने के दो प्रकार—ज्ञान और दर्शन उसका स्वभाव है। यहाँ ज्ञान स्वभाव लिया है।

जो वस्तु की भावना, एकाग्रता पर्याय से की है, उसका स्वभाव क्या? अर्थात् कि द्रव्य आत्मा और उसका स्वभाव ज्ञान और चेतना। उसमें एकाग्र होना, वह पर्याय।

तीनों आ गये। आहाहा! द्रव्य अर्थात् आत्मा पदार्थ वस्तु, उसका स्वभाव चेतना और ज्ञानस्वभाव है, वह शाश्वत। परन्तु उसका स्वभाव यह। उसकी एकाग्रता, वह शुद्ध पर्याय। यह द्रव्य-गुण-पर्याय तीन आये। आहाहा!

जो भव्यपुरुष जीव को भाता हुआ... भगवान आत्मा की भावना करता हुआ **भले भाव से संयुक्त होता हुआ...** यहाँ भला भाव अर्थात् शुद्ध। भला है न? **'सुभावसंजुत्तो'** तो है न मूल? **'जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो'** ऐसा है न? पद में है। **'जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो'** सुभाव अर्थात् शुद्धभाव से सहित। आहाहा! इन शुभ-अशुभभाव से रहित शुद्धभाव से भाता हुआ। आहाहा! ऐसी बात पाँचवें काल में होगी? कोई कहता है कि चौथे काल के लिये है। भगवानदास सेठ सागरवाले... यह तो चौथे काल के लिये है। साधु पंचम काल के हैं। पाँचवें काल के लिये कहते हैं। ऐसी बातें तो चौथे काल के लिये हो। पाँचवें काल के साधु पाँचवें काल के भव्य जीव को कहते हैं। अर्थात् ऐसा कि अभी कुछ दूसरा हो। सेठ भी ऐसा कहते हैं न? बारम्बार पूछा। साहूजी। महाराज! हम गृहस्थ हैं। हमारे योग्य कुछ कहो न। अरे! भगवान! गृहस्थ या मुनि तो पर्याय है। आत्मा वैसा है ही नहीं।

गृहस्थ तो उसे कहते हैं। गृह-अपने निजघर में स्थिर हो, रहे-टिके, उसे गृहस्थ कहते हैं। आहाहा! यह पंचसंग्रह में आता है। अध्यात्म पंचसंग्रह पुस्तक है न? दीपचन्दजी कृत। अध्यात्म पंचसंग्रह। आता है, पंचसंग्रह आता है। उसमें यह आता है। गृहस्थ किसे कहना? गृह-घर, निजघर नित्यानन्द प्रभु में स्थिर हो। शुद्धभाव से स्थिर हो, वह गृहस्थ है। गृहस्थ। स्थ—रहना। आहाहा! यह तो पैसेवाले हों तो गृहस्थ कहलाये, अमुक हो तो गृहस्थ कहलाये। धूल भी नहीं, सुन न अब। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्धस्वभावी, उसे **भले भाव से संयुक्त होता हुआ...** देखा! शुद्धभाव से सहित होता हुआ। आहाहा! त्रिकाली शुद्धभाव ऐसा शुद्ध चैतन्यस्वभाव अस्ति शाश्वत् ऐसे भाव को, उस भले भावसहित होता हुआ। यह टीका में कर्तापना बताते हैं। शुद्ध **'सुभावसंजुत्तो'** देखा! निर्मल पर्यायसहित। यह **'सुभावसंजुत्तो'** कहा। मार्ग, ऐसा मार्ग है, इसलिए लोगों को ऐसा लगता है व्यवहार करो, व्यवहार करो।

व्यवहार कुछ करें। हमारे तो यह हो। प्रवचनसार में आता है न? श्रावक को तो व्यवहार धर्म से ही मुक्ति होती है, लो! प्रवचनसार चरणानुयोग में ऐसा वहाँ पाठ है। उसे शुभभाव से ही मुक्ति होती है। वह तो शुभभाव उसे अशुभ टालने के लिये होता है। परन्तु उसमें जितना अंश टलता है, उतना लाभ का कारण है। और फिर शुभ का अंश भी टलेगा, तब उसे शुद्ध होगा। आहाहा! यह बड़ी चर्चा हुई थी। राजकोट, राजकोट नहीं, मोरबी। (संवत्) २००६ वर्ष। उन स्थानकवासी को है न? रतनलालजी। चेलाना, चेलाना गाँव है। चेलाना नागर है। वह स्थानकवासी का पत्र प्रकाशित करता है। उसका नाम क्या?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन, हाँ, सत्य बात है। सम्यग्दर्शन पत्र प्रकाशित करता है। चेला के रतनलाल। बहुत वर्षा से। उसमें २००६ के वर्ष में वहाँ मोरबी ... वहाँ आये थे। वे कहे, महाराज! देखो! यह प्रवचनसार में ऐसा कहा है। वाँचने लगे हैं। परन्तु तुम्हारे प्रवचनसार मान्य नहीं और उसके दृष्टान्त क्या? वह बचाव करने के लिये। कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है। शुभभाव से गृहस्थ को परम्परा से मुक्ति मिलती है, यह प्रश्न किया था। स्थानकवासी 'चेलाना' के पत्रकार। क्या कहना? अरे! भाई! यह तो गृहस्थ को अशुभ टालने की अपेक्षा में शुभ आता है। उसमें जितना अशुभ टलता है, उतना लाभदायक है परन्तु उसे गृहस्थाश्रम में बहुत शुभभाव हो, इस अपेक्षा से उसे शुभभाव टलता है और परम्परा टालेगा, उसे मुक्ति का कारण उसके कहा है। शुभराग कभी मुक्ति का कारण नहीं हो सकता। आहाहा! सब यह दृष्टान्त देते हैं। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आता है न समयसार की १२वीं गाथा?

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।१२।।

देखा, व्यवहार का उपदेश करना। वे और स्थानकवासी थे, कपूरभाई। वह (संवत्) १९९४ में यहाँ आया था। दरियापरी था, दरियापरी। कपूरभाई नहीं थे, दरियापरी था। उसका पुत्र था नटु-नटु। १९९४ में आया था। बहुत वर्ष हो गये। ३६। वह कहे, महाराज! परन्तु १२वीं गाथा में ऐसा कहा है किन्तु तुमको... तुम्हारे समयसार नहीं न। बचाव

करने के लिये। १२वीं गाथा में तो ऐसा कहा कि व्यवहारियों को व्यवहार का उपदेश देना। व्यवहार का उपदेश देना। भाई! ऐसा वहाँ नहीं कहा। यह इस सेठ ने स्वयं ऐसा कहा था, साहूजी दिल्ली। यह व्यवहार का उपदेश .... व्यवहार का उपदेश देना। ऐसा उसमें लिखा है। उन पण्डितों ने कहा है न। साहूजी। बापू! ऐसा उसका अर्थ नहीं है। **'ववहारदेसिदा पुण'** का अर्थ उपदेश देना, ऐसा नहीं है।

'ववहारदेसिदा पुण' का वाच्य वह निर्मल पर्याय थोड़ी है और अशुद्ध पर्याय साथ में है, उसे जानना, इसका नाम व्यवहार प्रयोजन है। जानना। आदर करने की बात नहीं, करने की बात नहीं, उपदेश देने की बात वहाँ नहीं है। वह तो पद में ऐसा **'ववहारदेसिदा'** शब्द आया है, परन्तु उसके भाव में अमृतचन्द्राचार्य ने तो कहा है कि जो कुछ अशुद्धभाव के अंश हों, उस काल में उसे जानना। जाना हुआ प्रयोजनवान है। **'तदात्वे'** प्रयोजनवान। पण्डितजी! **'तदात्वे', 'तदात्वे'। 'परिज्ञायमानस्त' 'तदात्वे परिज्ञायमानस्त'** उस काल में जाना हुआ—इतना शब्द है। इसका अर्थ क्या? कहा। जिस-जिस समय में जो-जो राग की मन्दता होती है, उस-उस काल में उस प्रकार का ज्ञान जानना, वह प्रयोजनवान। दूसरे समय में राग की मन्दता हो, उस प्रकार का ज्ञान करके जानना। **'तदात्वे परिज्ञायमानस्त'** ऐसा है। उपदेश-बुपदेश की व्याख्या है ही नहीं। **'ववहारदेसिदा'।**

मुमुक्षु : **'देसिदा'** शब्द पड़ा है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। **'देसिदा'** यह तो वाचक का वाच्य यह है कि उस काल का जो अशुद्धभाव आदि हो, उसका जानना। उसमें यह बात है। कहना और उपदेश करना, यह व्याख्या है ही नहीं। साहूजी ने दस मिनिट थोड़ी सभा में लगायी थी। पण्डित कहते हैं। अरे! भगवान! क्या हो?

यहाँ कहते हैं, **जो भव्यपुरुष जीव को भाता हुआ, भले भाव से संयुक्त हुआ... 'सु'** शब्द है न? **'सुभावसंजुत्तो'** भले भाव अर्थात् शुद्ध। भला भाव अर्थात् शुद्ध।

मुमुक्षु : शुभ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ नहीं। शुभ भला है ही नहीं। इस शुद्ध को ही शुभ कहा

है। समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में। शुद्ध को शुभ कहा है। और शुभ-अशुभ को अशुभ कहा है। आहाहा!

भले भाव से संयुक्त हुआ जीव के स्वभाव को जानकर भावे,... शुद्ध परिणति, शुद्ध पर्याय से सहित होता हुआ **जीव के स्वभाव को जानकर...** भगवान आत्मा को जानकर भावे। **वह जरा-मरण का विनाश कर...** वह जीर्णता का, मरण— देह का छूटना, उसका अभाव करके **प्रगट निर्वाण को प्राप्त करता है।** प्रत्यक्ष पूर्णानन्द की प्राप्ति उसे होगी। वाद-विवाद से पार नहीं आता। इतनी चर्चा हुई है तो भी अभी फिर से चर्चा करो, ऐसा कहते हैं। मक्खनलालजी कहते हैं। भाई! ... बापू! वस्तु की स्थिति ऐसी है, ऐसा समझे तो पार आवे। वाद-विवाद से पार आवे?

मुमुक्षु : चर्चा व्यर्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा व्यर्थ ... तुम्हारे ओर की दलील भी व्यर्थ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें कहा था न पहले? हाँ किया था। पाँच-पाँच हजार रुपये इकट्ठा करके अपने ... फिर ऐसा हुआ कि अपनी पोल निकलेगी, इसलिए इनकार कर दिया। यह कहे, मुझे छापना है। तुम्हारी दलील है और यह भी दलील है। दोनों की है।

मुमुक्षु : वापस फेरफार किया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी फेरफार नहीं किया। पूछा था फेरफार कुछ खबर है न उनके हस्ताक्षर हैं। बंशीधरजी के हस्ताक्षर हैं। उनके हस्ताक्षर होकर फिर तो प्रकाशित किया है। ऐसी गड़बड़ कुछ चले? उसमें सबके हस्ताक्षर हैं। आहाहा! **जरा-मरण का विनाश कर प्रगट निर्वाण को प्राप्त करता है।**

भावार्थ - 'जीव' ऐसा नाम तो लोक में प्रसिद्ध है,... जीव... जीव... जीव... जीव... लो! **परन्तु इसका स्वभाव कैसा है?** वस्तु तो कही, भले जीव, परन्तु उसका शाश्वत स्वभाव क्या? वस्तु है, वह तो जीव कही। अस्ति। अब उसका स्वभाव अस्तित्व कैसा है? आहाहा! जीव तो एक वस्तु हुई स्वभाववान। परन्तु उसका स्वभाव क्या?

आहाहा! **स्वभाव कैसा है? इस प्रकार लोगों को यथार्थ ज्ञान नहीं है...** लोगों को यथार्थ ज्ञान नहीं कि यह जीव है, इसका स्वभाव चेतना और ज्ञान है। उसका दूसरा स्वरूप ही नहीं है। ऐसी खबर नहीं है। इसलिए कोई कुछ कल्पित करता है, कोई कुछ कल्पित करता है। **और मतान्तर के दोष से इसका स्वरूप विपर्यय हो रहा है।** जगत के अनेक मतों में वास्तविक जीव के स्वभाव में मतान्तर अनेक अन्तर अर्थात् अनेक मत हो गये हैं। वास्तविक स्वरूप की दृष्टि वहाँ नहीं रही। आहाहा! **इसलिए इसका यथार्थ स्वरूप जानकर...** भगवान आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानकर... आहाहा! **भावना करते हैं।** यह क्या स्वभाव कहेंगे।

वे संसार से निर्वृत्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। पर्याय में उदयभाव का अभाव होकर पारिणामिक क्षायिकभाव की पर्याय प्रगट करेंगे। क्योंकि स्वभाव में मोक्ष की पर्याय तो उसके स्वभाव में अनन्त पड़ी है। ज्ञान-दर्शन आदि मुक्तस्वरूप वह है। उसका स्वभाव मुक्त स्वभाव है। ऐसे मुक्त स्वभाव को भाने से नित्य स्वभाव में रही हुई आनन्द की शक्ति पर्याय में प्रगट होगी। इसलिए उसे परमानन्दरूपी मोक्ष का शाश्वत् लाभ (होता है)। यह शाश्वत् कहा। यह तो... एक गति में से दूसरी। सर्वार्थसिद्धि में से मनुष्य के भव में... और... आहाहा! कहाँ सर्वार्थसिद्धि का जीव हो, वह छूटकर माता के गर्भ में सवा नौ महीने उल्टे सिर (रहे)। आहाहा! अभी एक भव करना है न सर्वार्थसिद्धिवाले को? भव तो यह है। आहाहा! जिसके श्वास लेने की क्रिया को सुविधा न मिले। चारों ओर कफ और माँस और हड्डियाँ, उसमें बीच में उल्टे सिर। आहाहा! अरे! यह किस प्रकार रहा? इसके इतिहास की इसे खबर नहीं। आहाहा! इसकी जिन्दगी में क्या हुआ यह सब? इसका पूर्व का इतिहास स्वयं देखे तो ... इसे खबर पड़े। ओहोहो! भव-भव में दुःख में रहा।

ऐसा जीव का स्वभाव जानकर **भावना करते हैं। वे संसार से निर्वृत्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।** आहाहा! जीव, उसका स्वभाव धर्म। धर्म स्वभाव। धर्म अर्थात् ज्ञान और चेतना स्वभाव। उसकी पर्याय में शुद्धता से भावना भाते हुए, वह जो स्वभाव चैतन्य का ज्ञानादि है, वह पर्याय में पूर्ण प्राप्त होगा। इसका नाम मुक्ति है।

गाथा-६२

आगे जीव का स्वरूप सर्वज्ञदेव ने कहा है, वह कहते हैं –

जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहावो य चेयणासहिओ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो।।६२।।

जीवः जिनप्रज्ञप्तः ज्ञानस्वभावः च चेतनासहितः।
सः जीवः ज्ञातव्यः कर्मक्षयकरणनिमित्तः।।६२।।

है जीव जिन-उपदिष्ट ज्ञान स्वभाव चेतनता-सहित।
उस जीव को ही जानना यह कर्म-क्षय-कारण निमित्त।।६२।।

अर्थ – जिन सर्वज्ञदेव ने जीव का स्वरूप इस प्रकार कहा है – जीव है, वह चेतनासहित है और ज्ञानस्वभाव है, इस प्रकार जीव की भावना करना, जो कर्म के क्षय के निमित्त जानना चाहिए।

भावार्थ – जीव का चेतनासहित विशेषण करने से तो चार्वाक जीव को चेतनासहित नहीं मानता है, उसका निराकरण है। ज्ञानस्वभाव विशेषण से सांख्यमती ज्ञान को प्रधान धर्म मानता है, जीव को उदासीन नित्य चेतनारूप मानता है, उसका निराकरण है और नैयायिकमती गुण-गुणी का भेद मानकर ज्ञान को सदा भिन्न मानता है, उसका निराकरण है। ऐसे जीव के स्वरूप को भाना कर्म के क्षय के निमित्त होता है, अन्य प्रकार मिथ्याभाव है।।६२।।

गाथा-६२ पर प्रवचन

आगे जीव का स्वरूप सर्वज्ञदेव ने कहा है, वह कहते हैं – आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! सर्वज्ञदेव ने कहा। पाठ है न इसमें?

जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहावो य चेयणासहिओ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो।।६२।।

जिसे जानना कर्मक्षय के कारण से। आहाहा!

अर्थ – जिन सर्वज्ञदेव ने जीव का स्वरूप इस प्रकार कहा है... इसका स्वभाव और इसका स्वरूप इस प्रकार से कहा है। **जीव है, वह चेतनासहित है...** वस्तु है तो कोई स्वभाव होगा न उसका? मिश्री का मीठा स्वभाव, नमक का-लवण का खारा स्वभाव, खड़ी का सफेद स्वभाव; वैसे भगवान आत्मा का स्वभाव चेतना और ज्ञान। **ज्ञानस्वभाव है,...** लो! चेतनासहित ज्ञानस्वभाव। अकेला जानना और देखना ऐसा चेतना ही उसका स्वरूप है। ऐसा चेतना, ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव है। जानना और देखना, वही उसका स्वरूप है। अकेला जागृत होकर जानना और देखना वह उसका स्वरूप है। राग करना और राग होना और शरीर सम्बन्ध, वह कोई उसका स्वभाव नहीं है, वह कोई उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा!

जिसका ध्यान करना है, उसका स्वभाव क्या? कहते हैं। जीव का ध्यान करना है अर्थात् उस ओर झुकना है। जिसकी ओर झुकना है, उसका स्वभाव क्या? कि इस चेतनासहित ज्ञानस्वभाव। यह चेते ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव। आहाहा! रात्रि में व्याख्यान ऐसा दे शीघ्र बुलावे एक घण्टे में। यह तो धीरे-धीरे मानों कोई... आहाहा! ऐसा पकड़ में आवे नहीं। विचार ... मौका मिलना चाहिए न? भाई! तू जीव है। तो जीव का स्वभाव सर्वज्ञ ने क्या कहा? जिसे ज्ञान में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, उसने तेरे स्वभाव को कैसा कहा? वह तो चेतना। चेतना ऐसा ज्ञानस्वभाव... चेतना ऐसा ज्ञानस्वभाव। बस। आहाहा! चेतना ऐसा ज्ञानस्वभाव। कुछ करना, ऐसा ज्ञानस्वभाव, ज्ञान करना— ऐसा भी नहीं। वह तो चेतना, ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव है।

इस प्रकार जीव की भावना करना,... जीव एक द्रव्य हुआ। चेतनासहित ज्ञानस्वभाव उसका गुण हुआ, स्वभाव हुआ, भाव हुआ। भाववान, भाव। उसकी भावना, वह पर्याय हुई। आहाहा! समझ में आया? **इस प्रकार जीव की भावना करना,...** ऐसे जीव की एकाग्रता करना। ऐसे जीव की चेतनासहित ज्ञानस्वभाव ऐसे जीव की एकाग्रता करना। आहाहा! गजब मार्ग है। **जो कर्म के क्षय के निमित्त जानना चाहिए।** कर्म का क्षय तो उसकी पर्याय से होता है। परन्तु उसमें यह भाव, निमित्त है। आहाहा! समझ में आया? जीव, उसका चेतनासहित ज्ञानस्वभाव, उसकी एकाग्रता की

शुद्ध पर्याय की भावना, वह कर्मक्षय का, कर्म का क्षय तो उसकी पर्याय में उसके कारण से होता है, परन्तु उस कर्मक्षय में निमित्त है यह शुद्धभाव। उपादान उसका (कर्म का)। समझ में आया? यह कहे, आत्मा कर्मक्षय करता है, कर्म का क्षय होता है तो यह ज्ञान होता है। ऐसा नहीं है, भाई! यहाँ तो द्रव्य का स्वभाव चेतनासहित ज्ञान, उसकी जो एकाग्रता ऐसी शुद्ध पर्याय, वह शुद्ध पर्याय कर्म के क्षय के काल में यह शुद्ध पर्याय उसे निमित्तकारण कही जाती है। आहाहा! यह शुद्धपर्याय कर्मक्षय नहीं करती। कर्म तो जड़ है।

मुमुक्षु : कर्मक्षय कौन करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय उसकी कर्म की। कर्म का अभाव होना कर्मरूप पर्याय की अकर्मरूप पर्याय होना, वह तो उसका स्वभाव है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से वहाँ हुआ। यह तो निमित्त कहा न? शुद्धपर्याय तो निमित्त है। उपादान तो क्षय होने का कर्मपर्याय में उसके कारण से है। ऐसी बात करते हैं। समझ में आया? इसमें शुद्ध पर्याय पूर्ण प्रगट की, इसलिए कर्म को नाश होना पड़ा, ऐसा नहीं है। वह कर्म का उसमें नाश का उसका काल था। उससे वह कर्मरूप पर्याय हुई है। कर्मरूप पर्याय के क्षय का अर्थ कर्मरूप पर्याय अकर्मरूप हुई। उसमें इस शुद्ध परिणाम को निमित्त कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बातें, भाई! इसे समझना निमित्त कारण है, इसलिए वहाँ क्षय हुई है, ऐसा नहीं है। इसमें शुद्धभाव किया, इसलिए कर्म को नष्ट होना पड़ा और कर्म का नाश हुआ, इसलिए शुद्धपर्याय केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? तत्त्वार्थसूत्र में आवे—कर्मक्षयात्। चार कर्म क्षय हो तो नवलब्धि प्रगटे। यह तो निमित्त के कथन हैं। उमास्वामी ने भी वहाँ व्यवहार को बतलाया है।

मुमुक्षु : पूरा व्यवहार का...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पूरा व्यवहार का ग्रन्थ है।

यह देखो न भाषा। **'सो जीवो णायव्वो'** इस जीव को इस प्रकार से जानना और

जानने से कर्मक्षय तो उसका निमित्त है। उसकी शुद्धपर्याय ही कर्मक्षय होने में निमित्त है। कर्म का क्षय तो उस काल में उसकी पर्याय में होने का काल ही था। कर्म की अवस्था का अभाव होना, वह तो उस कर्म की अवस्था का ही स्वकाल था। समझ में आया? आत्मा ने शुद्धभाव किया, इसलिए कर्म का अभाव हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसलिए निमित्त शब्द प्रयोग किया है न? **'कम्मक्खय-करणणिम्मित्तो'** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली गजब की शैली है! रतनचन्दजी कहते हैं न, तुम ऐसा कहते हो कि शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, इसलिए कर्म उसके कारण से नाश होते हैं। हम ऐसा कहते हैं कि कर्म का नाश होता है, तब शुद्धभाव-केवलज्ञान प्रगट होता है। भाई! तुझे खबर नहीं। ऐसा नहीं है।

यहाँ इसने राग-द्वेष किया, इसलिए वहाँ कर्म की पर्याय को कर्मरूप होना पड़ा? ऐसा है नहीं। वह तो उसके कर्म परमाणुओं में कर्म की पर्याय होने के योग्य उस समय में थी, वे कर्मरूप परिणमे हैं। यहाँ राग-द्वेष किये, इसलिए उसरूप कर्म परिणमा है, ऐसा नहीं है। राग-द्वेष तो निमित्त है। राग-द्वेष तो निमित्त है। कर्म की पर्याय उपादानरूप से उस समय उस पर्यायरूप से परिणमने की थी, उसका वह उपादान है। बड़ा उपादान निमित्त का घोटाला है। पण्डितजी! बड़ी चर्चा। पाँच की चर्चा—उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्ध—यह सोनगढ़ के सामने पाँच का... आहाहा! पाँचों का एक सवाल में उड़ जाए ऐसा है सब।

जिस काल में स्वकाल है प्रत्येक पर्याय का। अपने स्वचतुष्टय में जीव है या प्रत्येक द्रव्य है, परचतुष्टय से नहीं। समाप्त हो गया। स्वचतुष्टय से है। अपने स्वकाल के कारण जीव है। चाहे तो निर्मल के समय, चाहे तो मलिन के समय। पर तो निमित्त है, उससे कुछ हुआ नहीं। और स्वकाल है, वह क्रमबद्ध है। एक के बाद एक स्वकाल और स्वकाल में व्यवहार है; इसलिए निश्चय हुआ, ऐसा नहीं आता। जिस काल में निर्मल पर्याय हुई, उस काल में राग साथ में है। ... राग है, उसे व्यवहार कहा जाता है और इसे निश्चय। परन्तु राग से, व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसी बात है नहीं। पाँचों ही बोल एक सवाल में उड़ जाते हैं। समझ में आया? कर्म का निमित्त है। भावार्थ कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-११९-ए, गाथा-६२ से ६४, शुक्रवार, माघ शुक्ल २, दिनांक २५-०१-१९७४

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़। गाथा-६२। भावार्थ है न?

भावार्थ – जीव का चेतनासहित विशेषण करने से... गाथा का स्पष्टीकरण करते हैं। जीव के स्वभाव का ध्यान करना। ऐसा है न मूल? जिन भणन्ते—वीतराग ने जीव का स्वभाव कैसा कहा है, वह कहते हैं। **जीव का चेतनासहित विशेषण करने से तो चार्वाक जीव को चेतनासहित नहीं मानता है,...** चार्वाक है न एक नास्तिक? चेतना आत्मा है, ऐसा नहीं मानते। नास्तिक। **उसका निराकरण है। ज्ञानस्वभाव विशेषण से सांख्यमती ज्ञान को प्रधान का धर्म मानता है,...** सांख्यमति हैं, वे रजो, तमो, सत्व इन प्रकृति के गुणों को ज्ञान मानते हैं। **सांख्यमती ज्ञान को प्रधान धर्म मानता है, जीव को उदासीन नित्य चेतनारूप मानता है,...** चेतना जाने, ऐसा नहीं। उदासीन चेतना। **उसका निराकरण...** होता है। ज्ञानस्वभाव और चेतनागुणसहित है। उसके ऐसे स्वभाव को जानना।

'णायव्वो' है न? **'सो जीवो णायव्वो'** चेतनास्वभाव, वह ज्ञानस्वभाव। वह जो जाने, उसका नाम जीव। उसकी भावना एकाग्रता की, वह धर्म। लो! **नैयायिकमती गुण-गुणी का भेद मानकर ज्ञान को सदा भिन्न मानता है,...** नैयायिकमत है, वह गुण-गुणी, द्रव्य और ज्ञान दो भिन्न है। जीवद्रव्य और ज्ञान अत्यन्त भिन्न है, ऐसा मानता है। **सदा भिन्न मानता है, उसका निराकरण है। ऐसे जीव के स्वरूप को भाना...** ऐसा जो जीव का ज्ञानस्वरूप और चेतनास्वभाव, उसकी भावना करना, इसका नाम वास्तविक जीव का धर्म है। लो! ऐसा करना, यह पूजा करना, भक्ति करना, यह करना, यह कोई बात नहीं ली है।

मुमुक्षु : दूसरे शास्त्र में ली हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे शास्त्र में क्या? व्यवहार होता है, उसका ज्ञान कराया है। बाकी वह कोई धर्म नहीं है। धर्म तो जीव चेतनासहित और ज्ञानस्वभाव, उसकी एकाग्रता करना, इसका नाम धर्म है। है न?

ऐसे जीव के स्वरूप को... ऐसे जीव के भाव को। ऐसा जो जीवद्रव्य, उसका जो स्वरूप, भावस्वरूप, चेतनास्वरूप, ज्ञानभाव को **भाना...** भावना करना। बहुत संक्षिप्त कहा है। जीवद्रव्य, चेतना और ज्ञान उसका स्वभाव त्रिकाल। उसकी एकाग्रता करना, यह पर्याय धर्म। ऐसा ... स्वभाव है। यहाँ व्यवहाररत्नत्रय इसमें नहीं आता। वह तो राग में जाता है। भावपाहुड़ है न? जो भाव शुद्ध हुआ, पवित्र है, वह शुद्ध पवित्र ऐसा त्रिकाली स्वभाव, उसकी भावना, वह पवित्र शुद्धभाव है। वह परमधर्म है। कठिन लगे। बाहर में कुछ करना हो तो इसे लगे कुछ करते हैं।

यहाँ तो चैतन्यद्रव्य, उसकी चेतना और ज्ञान उसका स्वभाव, उसमें एकाग्र होना, उस ज्ञान और चेतना में एकाग्र होना, उसकी भावना भाना, उसमें लीनता करना, इसका नाम भाव शुद्ध और धर्म है। वह **कर्म के क्षय के निमित्त होता है,...** वह पवित्र परिणाम-त्रिकाली चेतना और ज्ञानस्वभाव की एकाग्रतारूप पवित्र परिणाम कर्मक्षय का निमित्त है। कर्मक्षय तो उसके कारण से होता है। कर्म की पर्याय का अकर्मरूप होना, वह तो उसके कारण से, जड़ के कारण से (होता है)। उसमें यह परिणाम निमित्त कहे जाते हैं। **अन्य प्रकार मिथ्याभाव है।** ऐसा ज्ञानस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, उसकी एकाग्रता के अतिरिक्त, दूसरे कोई भी पुण्य और पाप का भाव, वह धर्म है, यह मिथ्याभाव है। और यहाँ तो अकेला व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... चलता है।

मुमुक्षु : ...सद्भूतव्यवहार नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार नहीं। दया, व्रत, तपस्या, पूजा, भक्ति क्रिया वह तो असद्भूत है, राग है। वह व्यवहार में कहाँ है?

अपना त्रिकाली स्वरूप वस्तु और उसका जो स्वस्वरूप भाव, वह त्रिकाल, उसे ध्येय में लेकर एकाग्र होना, बस, यह एक धर्म है। आहाहा! उसका नाम भावपाहुड़ अर्थात् भाव की शुद्धता कहीं जाती है। वह अन्य प्रकार मिथ्याभाव है, दूसरे प्रकार से माने तो वह दुःखभाव है। आहाहा!

गाथा-६३

आगे कहते हैं कि जो पुरुष जीव का अस्तित्व मानते हैं, वे *सिद्ध होते हैं –

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा।।६३।।

येषां जीवस्वभावः नास्ति अभावः च सर्वथा तत्र।
ते भवन्ति भिन्नदेहाः सिद्धाः वचोगोचरातीताः।।६३।।

जिनके सतत सद्भाव आतम सर्वथा नास्ति नहीं।
वे देह से हो पृथक् होते बच-अगोचर सिद्ध ही।।६३।।

अर्थ – जिन भव्यजीवों के जीवनामक पदार्थ सद्भावरूप है और सर्वथा अभावरूप नहीं है, वे भव्यजीव देह से भिन्न तथा वचनगोचरातीत सिद्ध होते हैं।

भावार्थ – जीव द्रव्यपर्यायस्वरूप है, कथंचित् अस्तिस्वरूप है, कथंचित् नास्तिस्वरूप है। पर्याय अनित्य है, इस जीव के कर्म के निमित्त से मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारक पर्याय होती है, इसका कदाचित् अभाव देखकर जीव का सर्वथा अभाव मानते हैं। उनको सम्बोधन करने के लिए ऐसा कहा है कि जीव का द्रव्यदृष्टि से नित्य स्वभाव है। पर्याय का अभाव होने पर सर्वथा अभाव नहीं मानता है, वह देह से भिन्न होकर सिद्ध परमात्मा होता है, वे सिद्ध वचनगोचर नहीं हैं। जो देह को नष्ट होते देखकर जीव का सर्वथा नाश मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं, वे सिद्ध-परमात्मा कैसे हो सकते हैं? अर्थात् नहीं होते हैं।।६३।।

गाथा-६३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो पुरुष जीव का अस्तित्व मानते हैं, वे सिद्ध होते हैं –

* सिद्ध-मुक्त-परमात्मदशा को प्राप्त।

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा।।६३।।

अर्थ – जिन भव्यजीवों के जीवनामक पदार्थ सद्भावरूप है और सर्वथा अभावरूप नहीं है,... पर से अभावरूप है। शरीर, कर्म आदि से अभावरूप है। अपने स्वभाव से सद्भावरूप है। शरीर (का) नाश (होता) होने पर भी अथवा पर्याय बदलती होने पर भी सद्भावरूप नित्यरूप आत्मा है। ध्रुव ध्रुव आत्मा सद्भाव, सत्भावरूप आत्मा है। शरीर पलटने से कहीं आत्मा का नाश नहीं होता। एक समय की पर्याय पलटने से कहीं नित्य का नाश नहीं होता। ऐसा **जीव नामक पदार्थ सद्भावरूप है और सर्वथा अभावरूप नहीं है,...** कथंचित् अभाव है। शरीर आदि से अभावरूप है, ऐसे एक समय की पर्याय से भी अभावरूप है। कथंचित् अभावरूप है, सर्वथा अभावरूप नहीं। आहाहा! एक-एक शब्द में कितना भरा! देखो न! वस्तु सद्भाव सत् स्वभावरूप है। सर्वथा अभावरूप नहीं। ऐसा कहा न पाठ में? सर्वथा अभावरूप नहीं। कथंचित् अभावरूप है। पर की अपेक्षा से अथवा पर्याय की अपेक्षा से अभावरूप है परन्तु वस्तु की अपेक्षा से तो सद्भावरूप है। आहाहा!

वे भव्यजीव देह से भिन्न... देह से भिन्न भगवान आत्मा **तथा वचनगोचरातीत...** जो ऐसे जीव स्वभाव का सद्भावरूप, सर्वथा अभावरूप नहीं ऐसे जीव का जो ध्यान और ज्ञान करता है, वह वचनगोचरातीत तो सिद्ध है। वचन को गम्य नहीं, ऐसे सिद्धपद को पाता है। वह मोक्षपद को पाता है। जीव सद्भावरूप है। वह ... नित्यानन्द है, प्रभु ध्रुव है। ऐसा जो नित्य स्वभाव, वह जिसे दृष्टि में आता है, वह जीव कथंचित् पर से अभावस्वरूप है परन्तु अपने स्वभाव से सद्भावस्वरूप है। ऐसी जिसकी दृष्टि हुई, वह सिद्धपद को पाता है। वह निर्मल पूर्ण पर्याय को पाता है। लो! यह तो मोक्ष का मार्ग यह और उसका मोक्ष यह। आहाहा! इन चरणानुयोग में कथनों का पार नहीं मिलता। ऐसे व्रत और उसकी पर्याय, उसमें अतिचार लगे और उसका प्रायश्चित लेना, यह दोष टालना। सब अधिकार कहाँ गये? वह सब विकल्प की बात हो, बतलानी हो तब होती है। स्वरूप में वह विकल्प नहीं और वह विकल्प स्वरूप का साधन नहीं। आहाहा!

भावार्थ – जीव द्रव्यपर्यायस्वरूप है,... भगवान आत्मा जीवद्रव्य वस्तु और

एक समय की पर्यायरूप, इतना अस्तित्व प्रमाण का विषय उसे कहते हैं। **कथंचित् अस्तिस्वरूप है,...** अपने सद्भाव की अपेक्षा से अस्ति। कथंचित् अर्थात् अपने सद्भाव की अपेक्षा से अस्ति। **कथंचित् नास्तिस्वरूप है।** परन्तु पर शरीरादि की अपेक्षा से नास्ति। और एक समय की पर्याय की अपेक्षा से भी नास्ति।

पर्याय अनित्य है, इस जीव के कर्म के निमित्त से... पर्याय तो अनित्य है। नित्य तो द्रव्यस्वरूप ध्रुव है। **जीव के कर्म के निमित्त से मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारक पर्याय होती है, इसका कदाचित् अभाव देखकर...** शरीर का अभाव देखकर आत्मा का अभाव हो गया, ऐसा नहीं जानना। शरीर छूट गया, इसलिए साथ में आत्मा भी छूट गया, ऐसा नहीं। देह का अभाव होने पर जीवतत्त्व का ध्रुवस्वभाव सद्भाव है, ऐसा जानकर। सर्वथा नास्ति है, ऐसा नहीं मानना। **इसका कदाचित् अभाव देखकर जीव का सर्वथा अभाव मानते हैं। उनको सम्बोधन करने के लिए ऐसा कहा है कि जीव का द्रव्यदृष्टि से नित्य स्वभाव है।** लो! वस्तु है ध्रुव, नित्य, उस दृष्टि से तो सद्भाव त्रिकाल है।

पर्याय का अभाव होने पर सर्वथा अभाव नहीं मानता है,... ऐसे एक समय की पर्याय बदलती और शरीर बदलता देखकर उसे नाशवान नहीं मानना। विचार भी बदल जाए, पर्याय बदल जाए, (यह) बदलने से वस्तु बदल जाती है? बहुत संक्षिप्त बात है।

भूतार्थ का आश्रय करना, यह आया। पर्याय बदलती है, इससे कहीं पूरी चीज़ बदल जाती है, ऐसा नहीं है। (समयसार की) छठवीं गाथा में तो कहा, प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय जिसमें नहीं। लो! आहाहा! **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।'** यह तो ज्ञायकभाव चैतन्यस्वभावभाव सद्भाव ऐसी जो त्रिकाली चीज़, यह ज्ञायकभाव, वह वस्तु। उसमें तो पर्याय भी नहीं। आहाहा! **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो'** कौन सी पर्याय बाकी रह गयी? पहले से छठवीं भूमिका तक की पर्याय प्रमत्त, सातवें से चौदहवें तक की अप्रमत्त। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो'** भगवान सद्भाव ध्रुवरूप अस्ति, इस पर्याय का उसमें अभाव है। आहाहा! ऐसे ज्ञायकभाव को उस पर्याय में अनुभव करना। पर से लक्ष्य छोड़कर अपने त्रिकाल भाव का सेवन

करना। उसे पर्याय में शुद्धता अनुभव में आवे, उसे यहाँ भावशुद्ध कहते हैं। और भावशुद्ध में त्रिकाली शुद्ध है, वह दृष्टि में आता है। चीज़ तो है सद्भावरूप। परन्तु जब उसकी ओर के लक्ष्य और झुकाव से, आत्मा त्रिकाल की सेवना जिस पर्याय ने की, वह पर्याय भावशुद्ध है और उस पर्याय में यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा प्रसिद्ध हुआ। यह त्रिकाली शुद्ध है, ऐसा प्रतीति में आया। आहाहा! पलाखुं तो बहुत संक्षिप्त है। पलाखुं समझते हो? पहाड़ा। पहाड़ा कहते हैं न? ऐकड़े एक और बिगड़े दो और तिगड़े तीन। भाव बहुत सूक्ष्म।

कहते हैं कि जो कोई जीव का सर्वथा अभाव मानता है, उसके सम्बोधनरूप से कहा। **जीव का द्रव्यदृष्टि से नित्य स्वभाव है। पर्याय का अभाव होने पर सर्वथा अभाव नहीं मानता है,...** पण्डित जयचन्द्रजी ने स्पष्टीकरण किया है। **वह देह से भिन्न होकर सिद्ध परमात्मा होता है,...** देह से अभाव हो जाए, इसलिए उसका— जीव का अभाव हो, ऐसा नहीं है। देह का अभाव होने से तो सिद्धपर्याय प्रगट होती है। देह की पर्याय का नाश होने पर भगवान आत्मा तो सिद्धपर्याय को पाता है। नित्य वस्तु है, वह इस पर्याय को पाती है। यह पर्याय हट गयी। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग परमार्थ का ऐसा रूखा लगे, रूखा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वीतरागी अर्थात् रूखा। रागवाले को रूखा लगे। क्या कहते हैं यह? बापू! भगवान! तेरा अस्तित्व.... अस्तित्व... नित्य और ध्रुव है। उसे देह का अभाव हो अथवा उस क्षण की पर्याय का अभाव हो तो वह सिद्ध होगा। समझ में आया? आहाहा!

पर्याय का अभाव होने पर सर्वथा अभाव नहीं मानता है, वह देह से भिन्न होकर सिद्ध परमात्मा होता है, वे सिद्ध वचनगोचर नहीं हैं। वह सिद्ध वाणीगम्य नहीं। अरे! विकल्प—शुभराग गम्य नहीं। आहाहा! वह तो स्वसंवेदनगम्य है। है तो उसके देह से भिन्न, राग से भिन्न ऐसा अपना ज्ञानस्वरूप सं-प्रत्यक्ष वेदनगम्य है। आहाहा! **वे सिद्ध वचनगोचर नहीं हैं। जो देह को नष्ट होते देखकर जीव का सर्वथा नाश मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं, वे सिद्ध-परमात्मा कैसे हो सकते हैं?** ऐसे जीव

शुद्ध परमात्मा किस प्रकार हों, ऐसा कहते हैं। जिसे द्रव्यस्वभाव नित्य ध्रुव श्रद्धा में अस्तित्व आता नहीं और इस देह के अभाव से मानो मेरा अभाव हो जाए अथवा एक समय की पर्याय के अभाव से मेरा अभाव हो जाए, उसे सिद्धपद किस प्रकार मिले? उसे अज्ञानपद मिले भटकने का। आहाहा! **कैसे हो सकते हैं? अर्थात् नहीं होते हैं।** जिसे त्रिकाली ध्रुवस्वभाव का ही अन्तर में स्वीकार नहीं और पलटती चीज़ देखकर मानो मैं भी नाश होता हूँ, ऐसी जिसकी मान्यता है, उसे सिद्धपद किस प्रकार होगा? उसे भटकने का अज्ञानपद संसारपद होगा। आहाहा!

गाथा-६४

आगे कहते हैं कि जो जीव का स्वरूप वचन के अगोचर है और अनुभवगम्य है, वह इस प्रकार है –

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।६४।।

अरसमरूपमगंधं अव्यक्तं चेतनागुणं अशब्दम्।
जानीहि अलिंगग्रहणं जीवं अनिर्दिष्टसंस्थानम्।।६४।।

है चेतना गुण जीव अरस अरूप-गंध अव्यक्त है।
जानो अलिंग ग्रहण अशब्द रु अनिर्दिष्ट संस्थान है।।६४।।

अर्थ **– हे भव्य ! तू जीव का स्वरूप इस प्रकार जान कैसा है ? अरस अर्थात् पाँच प्रकार के खट्टे, मीठे, कडुवे, कषायले और खारे रस से रहित है। काला, पीला, लाल, सफेद और हरा इस प्रकार अरूप अर्थात् पाँच प्रकार के रूप से रहित है। दो प्रकार की गन्ध से रहित है। अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों के गोचर व्यक्त नहीं है। चेतना गुणवाला है, अशब्द अर्थात् शब्दरहित है। अलिंगग्रहण अर्थात् जिसका कोई चिह्न इन्द्रिय द्वारा ग्रहण में नहीं आता है। अनिर्दिष्ट संस्थान अर्थात् चोकोर-गोल आदि कुछ आकार उसका कहा नहीं जाता है, इस प्रकार जीव जानो।**

भावार्थ **– रस, रूप, गन्ध, शब्द ये तो पुद्गल के गुण हैं, इनका निषेधरूप जीव कहा, अव्यक्त अलिंगग्रहण अनिर्दिष्टसंस्थान कहा, इस प्रकार ये भी पुद्गल के स्वभाव की अपेक्षा से निषेधरूप ही जीव कहा और चेतना गुण कहा तो यह जीव का विधिरूप कहा। निषेध अपेक्षा तो वचन के अगोचर जानना और विधि अपेक्षा स्वसंवेदन गोचर जानना। इस प्रकार जीव का स्वरूप जानकर अनुभवगोचर करना। यह गाथा समयसार में ४९, प्रवचनसार में १७२, नियमसार में ४६, पंचास्तिकाय में १२७, धवला टीका पु. ३ पृ. २, लघु द्रव्य संग्रह गाथा ५ आदि में भी है। इसका व्याख्यान टीकाकारों ने विशेष कहा है वह वहाँ से जानना चाहिए।।६४।।**

गाथा-६४ पर प्रवचन

यह गाथा आयी अब। प्रत्येक में यह गाथा है। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, धवल और यह अष्टपाहुड़। प्रत्येक में यह गाथा है। प्रत्येक ग्रन्थ में यह गाथा है। ६४।

आगे कहते हैं कि जो जीव का स्वरूप वचन के अगोचर है और अनुभवगम्य है,... विकल्प और वचन से ज्ञात हो, ऐसा नहीं, तथापि ज्ञानगम्य है, अनुभवगम्य है। आहाहा!

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।६४।।

'जाण' शब्द पड़ा है न? अर्थात् गुरु का सम्बोधन है। जान। हे शिष्य! ऐसा तू जान। आहाहा!

अर्थ – हे भव्य! 'जाण' कहा न? **तू जीव का स्वरूप इस प्रकार जान...** लो! भगवान आत्मा का स्वरूप, स्व-रूप, अरूप। वह स्वरूप। अरूप, तथापि उसका स्वरूप ऐसा जान। **कैसा है? अरस अर्थात् पाँच प्रकार के खट्टे, मीठे, कडुवे, कषायले और खारे रस से रहित है।** आनन्दरस सहित है, इस रस रहित है। पहला रस लिया है न? खट्टा, मीठा आदि रस है, वह तो जड़ की पर्याय है। उस रस से तो भगवान

आत्मा भिन्न है। वहाँ यह इन्द्रिय के विषय के रसवाला मैं नहीं। मैं तो अतीन्द्रिय रस के आनन्द का स्वरूप उसका है। आहाहा! निर्विकल्प रसवाला वह तत्त्व है। पंचेन्द्रिय रस वह इस रसरूप नहीं, ऐसा पहले यह सिद्ध किया। दूसरे बोल पहले न लेकर यह पहले लिया। वर्णरहित और गन्धरहित, ऐसा न लेकर, पहले रसरहित (लिया)। उसका रस तो आनन्दरस है। अतीन्द्रिय आनन्द में एकाकार होना, वह उसका रस है। इन्द्रिय के विषय का रस है, वह तो उसके स्वरूप में है नहीं। आहाहा! एक-एक बोल में आत्मा को प्रसिद्ध किया है।

काला, पीला, लाल, सफेद और हरा इस प्रकार अरूप... यह रूप उसमें नहीं। **अर्थात् पाँच प्रकार के रूप से रहित है।** इस रूप से रहित है, अरूप सहित है। अरूप जिसका स्वरूप है। रूप जिसके स्वरूप से रहित है। अरूप जिसका स्वरूप है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि अरूप जिसका स्वरूप है। यह नास्ति से बात करते हैं न? फिर कहेंगे, चेतनागुण। चेतनागुण है न? यह अस्ति से सिद्ध किया है। यह सब नास्ति से बात करते हैं। यह नहीं, तब है क्या? यह है।

'चेदणा' है न? चेतना-चेतना। वह चेतना का रस है। वह चेतना का रूप है। आहाहा! इस रस और रूप से रहित चेतनारस और चेतनारूप सहित। अस्ति-नास्ति की है। आहाहा! यह बड़ी पण्डिताई से कहीं पकड़ में आये ऐसा नहीं है। आहाहा! पण्डिताई की बाहर की चीज़ कहाँ वस्तु है। यह गाथा समयसार में बहुत वर्णन की है।

दो प्रकार की गन्ध से रहित है। भगवान आत्मा सुगन्ध और दुर्गन्ध नामक जड़ की पर्याय से रहित है, परन्तु चेतना के आनन्द के गन्धसहित है। समझ में आया? यह गन्ध का आ गया। नहीं आया था? वह गाथा रख दी। उसमें गन्ध आया है न? वह गाथा रख दी। उसमें। वह ४३ गाथा है। ४३ है, ४३। **'उज्झसु गंधं'** ४३ है। हे भावियों! आत्मा के आनन्द को भाकर **'उज्झसु गंधं अब्भंतरं'** यह बाहर की गन्ध की वासना जीव छोड़ दे। वह जड़ गन्ध तो नहीं परन्तु राग की वासना की गन्ध भी उसमें नहीं। समझ में आया? जिसमें जड़ गन्ध तो नहीं परन्तु विषय की वासना की गन्ध, विकार की गन्ध उसमें नहीं। उसमें नहीं, उसे छोड़। है, उसे पकड़। आहाहा! आनन्द की गन्ध जिसमें है, आनन्द का जिसमें वास है, उसकी वासना ले। आहाहा! इस गन्ध को सूँघते

हैं न? आत्मा की गन्ध आनन्द है, उसे सूँघ—उसे अनुभव कर। आहाहा!

अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों के गोचर व्यक्त नहीं है। इन्द्रियों के व्यक्त नहीं है। ...छह बोल लिये हैं, समयसार में। अव्यक्त के छह बोल लिये हैं। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय-व्यक्त है, उससे जीव अव्यक्त है। ऐसे छह बोल लिये हैं। यह पहला है। छह द्रव्यस्वरूप लोक, एक ओर लोक और एक ओर सातवाँ आत्मा, ऐसा लिया है। सप्तम आत्मा हो जाता है। सम्यग्ज्ञान दीपिका में ऐसा लिखा है न, आत्मा सप्तम हो जाता है, छह द्रव्य से भिन्न सप्तम, गाथा है, यह उसमें से लिया है। ४९ गाथा। समयसार। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है, व्यक्त है। उससे जीव भिन्न अव्यक्त है। छह द्रव्यस्वरूप से भिन्न आत्मा है, ऐसा लिया है। छह द्रव्य में नहीं? छह द्रव्य को जानने की पर्यायवाला पूरा भिन्न तत्त्व है। ज्ञेय है न वह? छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय, यह ज्ञान। वह व्यक्त, उससे भिन्न अव्यक्त। ऐसा बोल लिया है। समझ में आया? अव्यक्त ... मात्र इन्द्रियगम्य नहीं इतना।

प्रवचनसार में, पंचास्तिकाय में, नियमसार में ... समयसार में बहुत स्पष्ट किया। दूसरा बोल आया—कषाय के समूहरूप भावकभाव व्यक्त है। कषाय अर्थात् यह पुण्य-पाप के भाव, वे सब व्यक्त हैं। उनसे जीव अव्यक्त है। समझ में आया?

तीसरा बोल—चेतना सामान्य में चेतना की सर्व व्यक्तियाँ अन्तर निमग्न है। चेतना सामान्य में चेतना की पर्याय व्यक्त आदि जो है, वह उसमें अन्तर निमग्न है। सामान्य में सभी चेतना की विशेष पर्यायें अन्तर मग्न है, इसलिए उसे अव्यक्त कहा जाता है। आहाहा! समयसार तो महासमुद्र है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतना सामान्य में चेतना की विशेष व्यक्ति—अवस्थाएँ अन्तर निमग्न हैं। एक समय की अवस्था सिवाय सभी अवस्था अन्दर मग्न है। सामान्य में विशेष भरा हुआ है। आहाहा! इसलिए उसे अव्यक्त कहा जाता है।

चौथा बोल—क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं, इसलिए अव्यक्त है। क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं। ऐसा कहते हैं कि पर्याय की क्षणिकता की व्यक्तिमात्र नहीं, इसलिए अव्यक्त है।

समझ में आया? (पाँचवाँ बोल)—व्यक्त और अव्यक्त अनुभव में आने पर भी, व्यक्त को वह स्पर्शता नहीं। द्रव्य है, वह प्रगट पर्याय को स्पर्शा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? व्यक्त और अव्यक्त दोनों ज्ञान में जानने में—जनाने में आने पर भी उस व्यक्त को अव्यक्त द्रव्य स्पर्शता नहीं। द्रव्य, पर्याय को छूता नहीं; इसलिए अव्यक्त है। आहाहा!

छठवाँ बोल—व्यक्त और अव्यक्त बाह्य और अभ्यन्तर अनुभव में आने पर भी व्यक्त के प्रति उदासीन प्रद्योतमान है। बाह्य और अभ्यन्तर अनुभव में आने पर भी व्यक्त पर्याय के प्रति उदासीन है। पर्याय में वह रहता ही नहीं। द्रव्य में आ जाता है। सूक्ष्म बातें हैं, भाई! अमृतचन्द्राचार्य की टीका है न! बाह्य-अभ्यन्तर अनुभव में आने पर भी—द्रव्य और पर्याय वेदन में आने पर भी, वह पर्याय-वेदन की पर्याय के प्रति उदासीन प्रद्योतमान है। वहाँ टिकता ही नहीं। एकदम द्रव्य में जाता है। समझ में आया? यह तो सब दिगम्बर सन्तों की क्रीड़ा है। राम की क्रीड़ा जिसने लगायी है अन्दर। समझ में आया? उनके एक-एक वाक्य में बहुत गम्भीरता है।

वह इन्द्रिय से गम्य नहीं। ऊँची बात रखी है। अर्थात् कि वह वचन से आदि सबसे गम्य नहीं। और वह पूरा द्रव्य जो है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह तो अलिंगग्रहण में आता है न? १८-१९-२० बोल। २०वें में आता है। द्रव्य पर्याय को करता नहीं। पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं और द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। यह शुद्ध अनुभव की पर्याय उतना ही आत्मा। द्रव्य का अनुभव नहीं हो सकता; अनुभव तो पर्याय का ही होता है। आनन्द का, शान्ति का, वीतराग पर्याय का अनुभव होता है। वह अपने अनुभव पर्यायमात्र है, उस द्रव्य को अनुभवपर्याय छूती नहीं। सवेरे आता है न? पर्याय द्रव्य।

पर्याय और द्रव्य के प्रदेश भिन्न हैं। निहालभाई ने लिखा है। चिद्विलास में है। चिद्विलास में है। आप्तमीमांसा में है। धर्म और धर्मी दोनों निरपेक्ष तत्त्व है। धर्म और धर्मी दोनों एकरूप नहीं। आहाहा! द्रव्य और पर्याय दो तत्त्व सत्त्व भिन्न है। बहुत सूक्ष्म बात। वीतराग का मार्ग है, बापू! ऐसी बात कहीं होती नहीं। सर्वज्ञ, वह भी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं है। आहाहा!

यह द्रव्य जो है, वह अव्यक्त है, वह व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। उसे स्पर्श करे

तो द्रव्य पर्यायरूप हो जाए। और पर्याय का जो अनुभव है, पर्याय का अनुभव है, वह अनुभव द्रव्य का हो जाए, वह तो पर्याय द्रव्यरूप हो जाए और द्रव्य का अनुभव हो सकता नहीं कभी। ध्रुव का अनुभव हो सकता ही नहीं। आहाहा! द्रव्य जो ध्रुव है, उसका वेदन क्या हो? वेदन तो पर्याय का होता है। तथापि जब ध्रुव के लक्ष्य में पर्याय जाती है, तब ध्रुव को वेदन करती है, ऐसा कहने में आता है। परन्तु वेदती तो है पर्याय को। आहाहा!

(समयसार) ११वीं गाथा में आता है—ज्ञायक प्रगट होता है, ऐसा आता है न? भाई! ११वीं गाथा। ज्ञायक प्रगट होता है। ज्ञायक प्रगटे क्या? ज्ञायक तो ज्ञायक ही है, ध्रुव है। परन्तु पर्याय में उसका भान हुआ, इसलिए ज्ञायक प्रगट हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा बहुत सूक्ष्म मार्ग है, भाई! इसका मार्ग बहुत सूक्ष्म। यह बाहर की पण्डिताई और बाहर की प्रवृत्ति से कहीं पता खाये, ऐसा नहीं है। दुनिया बहुत महिमा करे, इसकी महिमा करे, इससे इसे हाथ आ जाए, ऐसी चीज़ नहीं है।

इन्द्रियों के गोचर व्यक्त नहीं है। इतना अर्थ किया। वहाँ इतने अर्थ किये। आहाहा! वहाँ तो यह अर्थ सिद्ध किया है। व्यक्त को स्पर्श नहीं करता, ऐसा अर्थ वहाँ किया है। अव्यक्त है, वह व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। द्रव्य है, वह पर्याय को नहीं छूता। आहाहा! ध्रुव है, वह ध्रुव में रहता है। ध्रुव, वह कहीं पर्याय में नहीं आता। आहाहा! और पर्याय जो है, एक समय का वेदन, वह (पर्याय) कहीं ध्रुव में नहीं जाती, ध्रुव को वेदती नहीं, ध्रुव को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! ऐई! शान्तिभाई! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है। तुम्हारे हीरा-माणिक में बहुत खोज करे ऐसे और वैसे। सब धूल की बातें हैं। यह तो चैतन्यरत्न भगवान। भाषा समझ में आती है? भाई! तुम्हारे पिताजी को कहा। आहाहा!

अव्यक्त है, भगवान अव्यक्त है। अर्थात् कि पर्याय में नहीं आता। क्योंकि राग और पर से ज्ञात नहीं होता। आहाहा! तथा उस अव्यक्त में व्यक्त की सभी पर्यायें अन्तरमग्न हैं। आहाहा! जल की तरंग जल में समाती है। जल... जल, उसकी तरंग। उसकी पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह व्यय होने पर उसमें समा जाती है। आहाहा! उत्पन्न हुई निर्मल पर्याय या अरे! मलिन हो। जल की तरंग जल में समाती है। वे पर्यायें उत्पन्न हुई, व्यय होने पर सामान्य में समा जाती है। आहाहा! जो पर्याय व्यक्तरूप से उदय,

उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकरूप कहलाती थी, जो पर्याय प्रगटरूप से वर्तने से उसे— विकारी को उदय कहा जाता था, निर्मल को उपशम कहा जाता था, क्षयोपशम कहा जाता था, वहाँ निर्मल और उदय को, क्षायिक कही जाती निर्मल पर्याय को। वह पर्याय अन्तरमग्न होने पर उसे पारिणामिकभाव कहा जाता है। पाटनीजी! यह सब अव्यक्त का चलता है। बापू! यह मार्ग अलग, भाई! यह चैतन्यसमुद्र... आहाहा! यह नास्ति से बात की।

चेतना गुणवाला है,... यह अस्ति से बात की। आहाहा! चेतना की पर्यायें जितनी है, वे अन्दर चेतनागुण में लीन है। आहाहा! अरे! भाई! तेरी चीज़ को तू जानने का प्रयत्न तो कर कि यह क्या है? दूसरे सब प्रयत्न करके मर गया। शास्त्र को जानना, ग्यारह अंग और नौ पूर्व। ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा। थोथा निकला। आहाहा! जिसमें अपना द्रव्य जो अव्यक्त है, उसे नहीं जाना (तो) वह ग्यारह अंग और नौ पूर्व सब बन्ध के कारण हुए। अबन्ध ऐसा जो भगवान अव्यक्त आत्मा, उसके ज्ञान और श्रद्धा के अन्तर्मुख के भान बिना वे सब निरर्थक गये। उसकी महत्ता की महिमा को तूने जाना नहीं। भगवान आत्मा की अव्यक्त जो महिमा है, उतनी रीति से उसे महिमा को महिमारूप से नहीं जाना। आहाहा! और इसे किसी प्रकार से हीन, पर्यायवाला, राग से ज्ञात हो, इससे ज्ञात हो, ऐसी उसकी महिमा को तूने कलंक लगाया। समझ में आया? वह तो अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! यह अलिंगग्रहण का बोल है। भगवान आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। उसे तूने दूसरे प्रकार से माना, यह कलंक लगाया। समझ में आया? आहाहा! यह हड़ताल है आज। यहाँ खिलवट है आज। ऐई! उल्टा होवे न जगत से? आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ राग की हड़ताल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की हड़ताल है। स्वभाव की जागृति है। भगवान! तू कितना? इतना और ऐसा। इतना। उसमें कुछ भी यदि कम, अधिक या विपरीत माना... कलंक लगाया। आहाहा! पाटनीजी! आहाहा! अरेरे! ऐसी बातें सुनने को मिली नहीं। वह कब विचार में जाए और कब अन्तर में उतरने की पद्धति को जाने? आहाहा! वाद-विवाद करके खोटा... अरे! भगवान! जैनधर्म है, भाई! स्वरूप में जाना कठिन बात है। और उसमें गये बिना उसकी प्राप्ति कभी होगी? राग में रहे, पर्यायबुद्धि में रहे, उसकी

प्राप्ति नहीं होगी। समझ में आया? ऐसी बात है। फिर विवाद करे और यह करे।

यह देखो न, २४-२५ की है न? कौन कहता था? पण्डितजी कहते थे। ... तुम्हारे ... सलूम्बर को? उदयपुर सलूम्बर की अरे! सलूम्बर! भगवान वह वस्तु है वह जगत की। यह मार्ग कोई अलग प्रकार का है। यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है।

यह भगवान आत्मा... यहाँ तो कहते हैं कि चेतनागुणवाला है। आहाहा! यह चेतनागुण, यह अस्ति से सिद्ध किया। यह तो चेतनागुणस्वरूप भगवान है। यह सब रहित है। स्पर्श, गन्ध, रस, रंग से रहित है। इस सहित है। जाणक स्वभाव। चेतना स्वभाव से सहित स्वरूप है। यह अस्ति तत्त्व की अन्दर अनुभव में प्रतीति आना, उसे यहाँ परमात्मा सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अशब्द... आहाहा! भगवान आत्मा में शब्द नहीं है। शब्द की उत्पत्ति का वह स्थान नहीं है। शब्द की ध्वनि उठती है, इसका वह क्षेत्र नहीं है। आहाहा! उसमें शब्द पके, ऐसा वह क्षेत्र नहीं है। शब्दातीत बात है। भगवान आत्मा अशब्द है। शब्दरहित है। उसके बदले वापस वे... आता है न? यह चर्चा में आता है, भाई! ज्ञान का कार्य, वह शब्द। एक शब्द आता है। भाषा, वह ज्ञान का कार्य है। ज्ञान में नित्यपना गिनकर भाषा को कार्य उपचार से कहा है। पाठ में है। धवल में है। आहाहा! ज्ञान का कार्य प्रभु! ज्ञान का कार्य तो ज्ञान की पर्याय होता है। ज्ञान का कार्य वाणी होगा? ज्ञान का कार्य राग होगा? यह शब्द छिपाकर उसने चर्चा की थी। ... क्या हो? वाणी का कारण... परन्तु निमित्तरूप से ज्ञान है न केवलज्ञान? इसलिए ऐसा कहा है। बाकी ज्ञान का कार्य वाणी? आहाहा! शब्द... ऐसे भगवान के वाक्य जहाँ हो और उसे यथार्थ मानकर अर्थ करे, भाई! ऐसा नहीं होता। किस नय का वाक्य है और नय को जोड़कर अर्थ होता है।

शास्त्र का कोई भी शब्द है, उसका शब्दार्थ हो, आगमार्थ हो तो आगम की रीति उसका क्या अर्थ है? और अन्यमति की अपेक्षा से उसका क्या अभाव है इसमें? नय की अपेक्षा से किस नय का यह (कथन है)? असद्भूतव्यवहारनय का वाक्य है? सद्भूतव्यवहार का है? उपचरित का है? अशुद्ध निश्चय का है? या शुद्ध निश्चय का

है ? ऐसे प्रत्येक शब्द में नय लगाकर अर्थ करना चाहिए। तत्पश्चात् अन्त में तात्पर्य लेना चाहिए। वहाँ पाँच अर्थ किये हैं। समयसार, द्रव्यसंग्रह। प्रत्येक शब्द के पाँच-पाँच बोल से अर्थ करे। आहाहा!

मुमुक्षु : यह निर्णय करने के लिये निवृत्त कौन है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्त कौन है ? आहाहा! द्रव्यसंग्रह में, समयसार में, पंचास्तिकाय में कहा है। शब्दार्थ, आगमार्थ, मतार्थ, नयार्थ, तात्पर्य—भावार्थ पाँच बोल हैं। प्रभु! यह तो काम करना हो, उसे तो यह सब निर्णय करना पड़ेगा। एक पक्ष में खड़े रहकर बात करे, यह नहीं चलता। आचार्यों ने किस नय से यह कहा है ? ऐसे नय का वाच्य क्या है ? किस नय से, ऐसा निर्णय करना पड़ेगा। आचार्यों ने कहा है, इसलिए यह सच्चा, लो! परन्तु किस नय से कहा है ? आहाहा! यह अपेक्षा जाने बिना सत्य का असत्य हो जाएगा, असत्य का सत्य हो जाएगा।

अलिंगग्रहण अर्थात् जिसका कोई चिह्न इन्द्रिय द्वारा ग्रहण में नहीं आता है। बीस बोल लिये हैं। प्रवचनसार के एक अलिंगग्रहण के बीस बोल लिये है। अव्यक्त के छह हैं। समयसार में अलिंगग्रहण का एक ही वाक्य है। अमृतचन्द्राचार्य स्वयं टीकाकार हैं न ? आहाहा! ... इन्द्रिय द्वारा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह तो स्वभाव द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। विकल्प द्वारा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। बीस बोल हैं। वह प्रकाशित हो गये हैं अपने अलिंगग्रहण पुस्तक में।

अनिर्दिष्ट संस्थान अर्थात् चोकोर-गोल आदि कुछ आकार उसका कहा नहीं जाता है,... उसका आकार क्या ? जड़ के आकार से उसे क्या कहना ? वह आकार नहीं। द्रव्य है, इसलिए प्रदेशगुण के कारण से उसका आकार होता है। अरूपी को भी आकार तो है। यह चौकोर इसका आकार उसमें नहीं। वस्तु है न ? वस्तु है, वह आकार बिना की होती ही नहीं। अरूपी आकार हो या रूपी आकार, आकाश को भी आकार है न। सर्व व्यापक आकाश, तो भी प्रदेशगुण के कारण से द्रव्य का वह आकार होता ही है। गजब बातें! सर्व व्यापक को आकार कहना। जहाँ कहीं अन्त नहीं, वहाँ उसे आकार, तथापि उसे प्रदेशगुण के कारण से द्रव्य में आकार तो होता है। अरूपी, तथापि उसे आकार अरूपी का होता है। यह रूपी का आकार नहीं होता। आहाहा! **इस**

प्रकार जीव जानो। लो! आचार्य महाराज का वचन है न? '**जाण**' है न? '**जाण**' है न इस प्रकार से जान। आहाहा! ऐसा आत्मा है।

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।

जीव को जान। ऐसा जीव है, उसे पहिचान। उसकी पहिचान में खान तुझे पहिचानने में आयेगी। खान पूरी निधान में तुझे पहिचान होगी। आहाहा! ओळखाण कहते हैं न? आहाहा! तुझे उसमें सब बहुत ज्ञात होगा। तुझे पूरे सिद्धान्त के हल उसमें से निकलेंगे। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सिद्धान्त को भगवान को परमात्मा को क्या कहना है, वह ऐसे जीव को जान तो तुझे सब हल हो जाएगा। 'सब आगमभेद सु उर बसे।' श्रीमद् कहते हैं न? 'सब आगमभेद सु उर बसे' सम्यग्ज्ञान होने पर, जीव का भान होने पर सब आगम भेद उसके उर में—हृदय में, सब भास हो जाता है। आहाहा! ऐसे आत्मा को जान। भावार्थ कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-११९-बी, गाथा-६४ से ६७, शनिवार, माघ शुक्ल ३, दिनांक २६-०१-१९७४

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। गाथा ६४ का भावार्थ। आत्मा अरस, अगन्ध ऐसा जो कहा, उसका स्पष्टीकरण है।

भावार्थ – रस, रूप, गन्ध, शब्द ये तो पुद्गल के गुण हैं,... पुद्गल के गुण हैं। **इनका निषेधरूप जीव कहा,...** इनके अभावरूप जीव कहा। रस, गन्ध आदि जो सात हैं। **अव्यक्त अलिंगग्रहण अनिर्दिष्टसंस्थान कहा, इस प्रकार ये भी पुद्गल के स्वभाव की अपेक्षा से निषेधरूप ही जीव कहा...** अलिंगग्रहण में इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं, ऐसा लिया है न? वह भी पुद्गल से अभावरूप उसका वर्णन किया है। **और चेतना गुण कहा तो यह जीव का विधिरूप कहा।** विधि—जीव चेतनस्वरूप है। वह रस, गन्ध, आदि अव्यक्त, अनिर्दिष्टसंस्थान, पुद्गलस्वभावरूप नहीं है।

निषेध अपेक्षा तो वचन के अगोचर जानना और विधि अपेक्षा स्वसंवेदन

गोचर जानना। .. अभावस्वरूप है उसमें से ... स्वस्वरूप विधि है। वह स्वसंवेदनरूप है। अर्थात् ज्ञान से प्रत्यक्ष ज्ञान ज्ञात हो, ऐसी विधि चीज़ है। अस्तिरूप चेतनागुण अस्तिरूप स्वभाव, उस अस्ति के स्ववेदन से जानने में आवे, ऐसा है। समझ में आया? **इस प्रकार जीव का स्वरूप जानकर अनुभवगोचर करना।** जीव का स्वरूप जानकर अनुभवगम्य करना। पश्चात् तो यह पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। समयसार में और इस गाथा में डाला है, वह पण्डित जयचन्द्रजी की बात नहीं है। वे लिखनेवाले हैं।

गाथा-६५

आगे जीव का स्वभाव ज्ञानस्वरूप भावना कहा वह ज्ञान कितने प्रकार का भाना यह कहते हैं –

भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।
भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणो[१] होइ।।६५।।

भावय पंचप्रकारं ज्ञानं अज्ञाननाशनं शीघ्रम्।
भावनाभावितसहितः दिवशिवसुखभाजनं भवति।।६५।।

अज्ञान-नाशक पंचविध यह ज्ञान भाओ शीघ्र ही।
यह भावना भावित सहित दिव-मुक्ति सुख पाता सही।।६५।।

अर्थ – हे भव्यजन ! तू यह ज्ञान पाँच प्रकार से भा, कैसा है यह ज्ञान ? अज्ञान का नाश करनेवाला है, कैसा होकर भा? भावना से भावित जो भाव उस सहित भा, शीघ्र भा, इससे तू दिव (स्वर्ग) और शिव (मोक्ष) का पात्र होगा।

भावार्थ – यद्यपि ज्ञान जानने के स्वभाव से एक प्रकार का है तो भी कर्म के क्षयोपशम और क्षय की अपेक्षा पाँच प्रकार का है। उसमें मिथ्यात्वभाव की अपेक्षा से मति, श्रुत और अवधि ये तीन मिथ्याज्ञान भी कहलाते हैं, इसलिए मिथ्याज्ञान का अभाव करने के लिए मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानस्वरूप पाँच प्रकार

१. 'भावेण' पाठान्तर 'भायणो'

का सम्यग्ज्ञान जानकर उनको भाना। परमार्थ विचार से ज्ञान एक ही प्रकार का है। यह ज्ञान की भावना स्वर्ग-मोक्ष की दाता है।।६५।।

गाथा-६५ पर प्रवचन

आगे जीव का स्वभाव... इसमें यह नहीं डालना चाहिए। पण्डित जयचन्द्रजी बात में किसी के घर की बात नहीं डालना चाहिए। पण्डित जयचन्द्रजी का जितना है, उतना डालना चाहिए। दूसरी बात है यह। पण्डित जयचन्द्रजी का लेखन है, ऐसा हो जाए। पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है? लिखनेवाले ने लिखा है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... डालना हो तो भी यह ... पण्डित जयचन्द्रजी ने डाला नहीं।

मुमुक्षु : निश्चय से कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से कहा जा सकता है कि अभावरूप स्वभाव यह किस प्रकार से? वह किस प्रकार से है, यह ख्याल में, वेदन में आ नहीं सकता, ऐसा कहना है। अस्ति है, वह वेदन में आ सके, ऐसा कहते हैं। अभावरूप है, वह वेदन से ही ... ऐसा। ... पण्डित जयचन्द्रजी ने ....

आगे जीव का स्वभाव ज्ञानस्वरूप भावना कहा,... भावना कहा, **वह ज्ञान कितने प्रकार का भाना यह कहते हैं** – यह व्यवहार से अर्थ कहते हैं।

भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।
भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणो होइ।।६५।।

अर्थ – हे भव्यजन! आचार्य महाराज कहते हैं न, **'भावहि'** सम्बोधन करते हैं न? **तू यह ज्ञान पाँच प्रकार से भा,...** यद्यपि ज्ञान की पर्याय में भेद है, उसे भाने में तो ऐसा होता है इतना भाव, ऐसा कहते हैं। फिर कोई पाँच प्रकार के भेद से कहीं भावना नहीं होती। ज्ञानस्वरूप भगवान एकरूप है, उसकी एकाग्रता होती है। यहाँ

अज्ञान के नाश की अपेक्षा लेकर ज्ञान की पाँच प्रकार की भावना करे, ऐसा कहा गया है। **कैसा है यह ज्ञान? अज्ञान का नाश करनेवाला है,...** ऐसा कहना है न साथ में? मतिअज्ञानादि का नाश मतिज्ञान से होता है। श्रुत अज्ञान का नाश श्रुतज्ञान से होता है, इत्यादि पाँच ज्ञान की भावना से अज्ञान का नाश होता है।

कैसा होकर भा? भावना से भावित जो भाव उससहित भा,... अर्थात् स्वरूप जो ज्ञानस्वरूप चैतन्य है, उसकी एकाग्रता की भावना, उससे भायी ऐसा जो भाव निर्मल पर्याय शुद्ध, चैतन्यसन्मुख की निर्मल पर्याय का भाव, उससहित भा। उससहित भावना रख। आहाहा! ज्ञायकस्वभाव सन्मुख का एकाग्रपनासहित भावना भा। अकेली कल्पना से, चिन्तवना से, ऐसा नहीं। **शीघ्र भा,...** पाठ शीघ्र है न? आहाहा! आनन्द भगवान ज्ञानस्वरूप की अन्तर की एकाग्रता शीघ्र से कर। विलम्ब न कर। आहाहा! अन्तर्मुख होने का शीघ्र कर, ऐसा कहते हैं। चैतन्यस्वरूप से भरपूर भण्डार भगवान, उसमें एकाग्रता के लिये शीघ्र कर, ऐसा कहते हैं।

इससे तू दिव (स्वर्ग) और शिव (मोक्ष) का पात्र होगा। ... ज्ञान की पाँच भावना का भेद किया है न? उसके भेद में विकल्प भी रहता है और अभेद में निर्विकल्प रहता है। वह विकल्प जो है, उससे पुण्य बँधता है। अभेद भावना से संवर और निर्जरा होती है। उससे तू स्वर्ग और **मोक्ष का पात्र होगा।** भावार्थ है पण्डित जयचन्द्रजी का।

भावार्थ – यद्यपि ज्ञान जानने के स्वभाव से एक प्रकार का है... जानने के स्वभाव की अपेक्षा से वह ज्ञान एक ही प्रकार का है। जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... उसमें यह मति और श्रुत (ऐसे भेद) जानना, उसमें नहीं आते। **तो भी कर्म के क्षयोपशम और क्षय की अपेक्षा पाँच प्रकार का है।** निमित्त की प्रधानता से कथन ले तो उसके पाँच प्रकार ज्ञान के पड़ते हैं। **उसमें मिथ्यात्वभाव की अपेक्षा से मति, श्रुत और अवधि ये तीन मिथ्याज्ञान...** विपरीत मान्यता की भावना से हुए मति, श्रुत, अवधि यह मिथ्याज्ञान है। **इसलिए मिथ्याज्ञान का अभाव करने के लिए मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञानस्वरूप पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान जानकर उनको भाना।** अन्तर्मुख होकर मति-श्रुतादि की भावना कर, ऐसा

कहते हैं। **परमार्थ विचार से ज्ञान एक ही प्रकार का है।** भेद से विचार है, वह तो अभी विकल्पवाला भाव है, पाँच प्रकार के ज्ञान का। इसलिए अन्तर में ज्ञान की एकता स्वभाव की भावना, वह वास्तविक एकरूप ज्ञान है। **परमार्थ विचार से ज्ञान एक ही प्रकार का है।**

गाथा-६६

आगे कहते हैं कि पढ़ना-सुनना भी भाव बिना कुछ नहीं है -

पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं।।६६।।

पठितेनापि किं क्रियते किं वा श्रुतेन भावरहितेन।
भावः कारणभूतः सागारानगारभूतानाम्।।६६।।

हो भाव-विरहित पठन सुनना क्या करेगा जीव का?
है भाव ही कारण सदा अनगार सागारत्व का।।६६।।

अर्थ - भावरहित पढ़ने सुनने से क्या होता है? अर्थात् कुछ भी कार्यकारी नहीं है, इसलिए श्रावकत्व तथा मुनित्व इनका कारणभूत भाव ही है।

भावार्थ - मोक्षमार्ग में एकदेश, सर्वदेश व्रतों की प्रवृत्तिरूप मुनि-श्रावकपना है, उन दोनों का कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव हैं। भाव बिना व्रतक्रिया की कथनी कुछ कार्यकारी नहीं है, इसलिए ऐसा उपदेश है कि भाव बिना पढ़ने-सुनने आदि से क्या होता है ? केवल खेदमात्र है, इसलिए भावसहित जो करो वह सफल है। यहाँ ऐसा आशय है कि कोई जाने कि पढ़ना-सुनना ही ज्ञान है तो इस प्रकार नहीं है, पढ़कर सुनकर आपको ज्ञानस्वरूप जानकर अनुभव करे तब भाव जाना जाता है, इसलिए बारबार भावना से भाव लगाने पर ही सिद्धि है।।६६।।

गाथा-६६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि पढ़ना-सुनना भी भाव बिना कुछ नहीं है – भाव अर्थात् सम्यग्दर्शन। शुद्ध स्वरूप का अनुभव होकर प्रतीति, उसका जो भाव—सम्यग्दर्शन, उसे जिनभावना कहते हैं। इन गाथाओं में उसे जिनभावना कहते हैं। सम्यग्दर्शन को जिनभावना कहते हैं कि जो अनन्त काल में उसे हुआ नहीं, की नहीं। ऐसा जो जिनस्वरूप अपना भगवान, उसकी श्रद्धा, निर्विकल्प उसका अनुभव, ऐसे सम्यग्दर्शन के भावसहित **पढ़ना-सुनना भी भाव बिना कुछ नहीं है** – ऐसे सम्यग्दर्शन बिना पढ़े या सुने, उसमें कुछ आत्मा को लाभ नहीं है, ऐसा कहते हैं।

पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं।।६६।।

अर्थ – भावरहित... सम्यग्दर्शन जो मूल भाव। चैतन्य की परिपूर्ण सत्ता का स्वीकार और सन्मुख होकर प्रतीति, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसके बिना **पढ़ने-सुनने से क्या होता है?** पढ़े तो भी क्या? कहते हैं। **'पढिएण वि किं'** ऐसा है न? **पढ़ने-सुनने से क्या होता है?** अन्दर सम्यग्दर्शन ही जहाँ नहीं। स्वभाव परिपूर्ण की अन्तर दृष्टि के अनुभवसहित जिनपने की वीतरागता जहाँ प्रगट नहीं हुई और वीतराग भावना के अतिरिक्त **'पढिएण वि किं'** पढ़े, उसमें क्या? कहते हैं। ग्यारह अंग, नौ पूर्व। ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा परन्तु मूल चीज़ वस्तु का स्वभाव वीतरागपना, उसकी पर्याय में वीतरागता प्रगट न हुई। उस वीतरागता के भावप्रधान बिना पढ़कर क्या करेगा? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन बिना तेरा पढ़ना निरर्थक है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से आवे परन्तु परमार्थ की दृष्टि बिना (निरर्थक है)।

वस्तु तो यह है। किया नहीं। करना तो यह था। आहाहा! सुनकर करने का तो यह था। यह परम परमात्मस्वरूप की प्रतीति, अनुभव और ज्ञान, उसका करना था। आहाहा!

यह यदि नहीं हुआ तो **पढ़ने-सुनने से क्या होता है?** सुनने से क्या होगा? 'सुन-सुन करके फूटे कान...' नहीं आता? 'तो भी नहीं आया ब्रह्म ज्ञान।' अन्यमत में यह आता है। भजन में आता है। 'सुनकर सुनकर फूटे कान, तो भी न आया हरि का भान।' ब्रह्म का ज्ञान, ब्रह्म। ... यह तो वास्तविक भगवान आत्मा पूर्णानन्द जो सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा आत्मा दृष्टि में, जिनभावना में लिया नहीं और उसके बिना उसे पढ़ना और सुनना, सब निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। ऐसे तो कबीर आदि दूसरे सब भले कहे, परन्तु उसे कुछ वस्तुस्थिति की खबर नहीं। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ, देखा हुआ आत्मा, वह आत्मा असंख्य प्रदेशी, वह आत्मा अन्यत्र कहीं नहीं होता। कबीर या नरसिंह मेहता जो बातें करते हैं,... 'ज्या लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' इसलिए जरा उदाहरणरूप से कहा जाता है। उदाहरण तो कहा था न? भक्तामर में नहीं? बृहस्पति को ... ऐसा कहा जाता है। यह तो अन्यमति की बात है। उदाहरणरूप से कहकर सिद्धान्त सिद्ध करना हो तो कहा जाता है। सर्वज्ञ ने देखे हुए इस आत्मा की बात उनके पास है ही नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह तो असंख्य प्रदेश। यह बात है नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं है।

एक आत्मा असंख्य प्रदेश जिसकी भूमिका, उसमें प्रदेश में एक-एक में अनन्त गुण व्याप्त हैं। ऐसा जो क्षेत्र, ऐसा जो भाव, उसका एकरूप ऐसा जो द्रव्य, उसकी अन्तर जिनभावना, सम्यग्दर्शन की भावना, भावना शब्द से चिन्तवना ऐसा नहीं, यहाँ तो एकाग्रता है। सम्यग्दर्शन की चारित्र की अन्तर में एकाग्रता। निर्विकल्प दृष्टि भिन्न भावना में है। थोड़ा परन्तु बहुत समाहित किया है। महाप्रभु पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा के सन्मुख की एकाग्रता, वह सम्यग्दर्शन जिनभावना कही जाती है। इसके बिना तेरा पढ़ना और सुनना किस काम का? वह सब दुनिया में दिखाव के लिये है, ऐसा कहते हैं। तेरे आत्मा के हित के लिये नहीं है। आहाहा!

पढ़ने-सुनने से क्या होता है? अर्थात् कुछ भी कार्यकारी नहीं है,... आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन के संस्कार नहीं पड़े, कहते हैं। ... संस्कार जिनभावना के संस्कार हैं। उस भावना बिना सब सुनना, ... श्रावक का, मुनिपना पंचाचार... **इसलिए श्रावकत्व तथा मुनित्व इनका कारणभूत भाव ही है।** यह सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। श्रावकपना, मुनिपना का मूलकारण तो सम्यग्दर्शन है। आहाहा! इस वस्तु की प्रतीति और वस्तु कैसी है, इसकी खबर न हो तो श्रावकपना और मुनिपना आया कहाँ से? उसका मूल तो सम्यग्दर्शन है। परन्तु मूल नहीं और फिर यह सब व्रत, तप, त्याग और प्रतिमा आयी कहाँ से? कहते हैं।

भावार्थ - मोक्षमार्ग में एकदेश, सर्वदेश व्रतों की प्रवृत्तिरूप... एकदेश श्रावक और सर्वदेश मुनि, **उन दोनों का कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव हैं।** देखो! स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं। पण्डित जयचन्द्र। निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय, हों! व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह कोई वस्तु नहीं; व्यवहार ज्ञान, वह कोई ज्ञान नहीं; व्यवहार व्रत, वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! भावपाहुड़ है न? शुद्धस्वरूप परमात्मा की एकाग्रता का सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान-उसका ज्ञान—आत्मा का, उसमें रमणता ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना, इस भाव बिना **दोनों का कारणभूत...** श्रावक और मुनि को कारणभूत तो यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान है। व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका कारण है, ऐसा यहाँ नहीं कहा। व्यवहार है, करते हैं। वह तो निश्चयचारित्र जहाँ तक प्राप्त न हो, वहाँ तक व्यवहारचारित्र करना और व्यवहारचारित्र करने से निश्चय होगा। यह वस्तु वीतराग के घर की नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जिसे भगवान परमानन्दस्वरूप, जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ ही जहाँ दृष्टि और ज्ञान में नहीं आयी तो वह स्थिर किसमें होगा? स्थिर होना अर्थात् चारित्र। जिस चीज़ की वस्तु जो है, उसमें स्थिर होना है परन्तु वह वस्तु कैसी है, कैसे है, यह दृष्टि में-अनुभव में आयी नहीं। उसमें स्थिर होना नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन चीज़ क्या है ... उसके माहात्म्य की खबर नहीं। बाहर की बातों में सब दौड़ गये हैं। मुनिपना, प्रतिमा ले ली, वस्त्र बदले और आठ प्रतिमा, दस प्रतिमा, ग्यारह प्रतिमा, अधिक ली। उसे भान कहाँ है प्रतिमा क्या कहलाती है?

मुमुक्षु : उसमें से....

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य करने का क्या है? वस्तु है, ऐसी श्रद्धा करना, उसमें पुरुषार्थ है। पश्चात् अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। जैसी चीज़ है, वैसी चीज़ का पहले विकल्पसहित श्रद्धा, उसकी विकल्पसहित श्रद्धा (हो) वह ... तथापि वह श्रद्धा भी यथार्थ नहीं है। पहले आवे अवश्य। आहाहा!

आता है, (समयसार) कर्ता-कर्म १४४ गाथा में कहा है न? पहली, चीज़ ज्ञानस्वरूप है, ऐसा विकल्प से निर्णय करे। १४४ गाथा, कर्ता-कर्म में आया है। जैसी वस्तु है, ऐसी रागमिश्रित विचार में उसे उस जाति का भास तो पहले आना चाहिए, तथापि उस वस्तु से अन्दर अनुभव हो, ऐसा नहीं है। तथा अनुभव होने से पहले ऐसा आये बिना रहता नहीं। ऐसी बात है। १३वीं गाथा में कहा है न? नय, निश्चय, प्रमाण से आत्मा को जानना। यह विकल्प सहित की बात है। १३वीं गाथा, समयसार। **'भूदत्थेणाभिगदा'** भावमिश्रित विचार की भूमिका में नय से, निश्चय से, व्यवहार से, प्रमाण से, निक्षेप से, ज्ञेय के भेद निक्षेप हैं, ज्ञान के भेद नय हैं। ज्ञेय के भेद, वह निक्षेप है। ज्ञान के भेद, नय हैं। उनसे बराबर वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा उसे विकल्पसहित भूमिका में जानना। तथापि वह अभूतार्थ है। वस्तु की दृष्टि करने पर, अनुभव करने पर वे सब नय और निक्षेप और प्रमाण से वस्तु का विकल्प है, वह जो नय को कहा, वह सब अभूतार्थ है। आहाहा! झूठा है।

मुमुक्षु : अभूतार्थ में कुछ लगता नहीं, झूठा में लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभूतार्थ कहो या असत्य कहो। अभूत—असत्य। असत्य अर्थात् झूठा। ... ... अभूतार्थ कहते हैं। पर्यायमात्र अभूतार्थ है।

मुमुक्षु : अभूतार्थ कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : असत्यार्थ कहते हैं, झूठी कहते हैं। वस्तु स्वभाव त्रिकाल, वही सत्यार्थ है। इस अपेक्षा से पर्यायमात्र असत्यार्थ है। इस अपेक्षा से, हों! पर्याय अपेक्षा से पर्याय सत्यार्थ है। त्रिकाल सत्यार्थ की अपेक्षा से वह पर्याय असत्यार्थ है। चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय हो, वह भी असत्यार्थ है। आहाहा! सत्यार्थ, भूतार्थ एक

त्रिकाली ध्रुव स्वभाव एक ही सत्यार्थ है। ... भेद पड़ा, व्यवहार हो गया। जैनदर्शन बहुत सूक्ष्म। लोगों ने बाहर से माना है, ऐसा वह जैनदर्शन नहीं है। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं, वस्तु का स्वरूप है। वस्तु का स्वरूप ...

यहाँ तो कहते हैं, **उन दोनों का कारणभूत...** श्रावक और मुनिपना। उनका मूलकारण तो **कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव हैं।** आहाहा! सम्यग्दर्शन निश्चय ज्ञानादि हुए नहीं और श्रावक और मुनिपना नाम धरावे। धराओ, बिना अंक के शून्य हैं। शून्य-शून्य। **भाव बिना व्रतक्रिया की कथनी कुछ कार्यकारी नहीं है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान और स्वरूप का आचरण ऐसा निश्चय भाव, जो शुद्धभाव, उसके बिना व्रतादि की क्रिया कुछ भी कार्यकारी नहीं है। **व्रतक्रिया की कथनी कुछ कार्यकारी नहीं है,...** वह तो कथनी है। पंच महाव्रत और बारह व्रत और कथनमात्र के व्यवहार हैं। आहाहा! वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा!

अनन्त-अनन्त सागरोपम सातवें नरक में रहा। वहाँ ३३ सागर का आयुष्य। उस ३३ सागर में तो एक सागर में तो दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। और एक पल्योपम में असंख्य भाग में असंख्य वर्ष जाते हैं। चौबीसी तो दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम। एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की एक चौबीसी। ऐसे-ऐसे अनन्त सागरोपम ... रहा। बाहर के मान और अभिमान में, बाहर में महत्ता दी, वह सब भूल गया। अनन्त सागर कैसे जाते हैं? आहाहा! इस मिथ्यात्व के कारण यह सब हुआ, कहते हैं।

मुनि हुआ, नौवें ग्रैवेयक जाए ऐसा। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' यह पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण यह दुःखरूप है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' तब यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, यह सुख नहीं; यह तो दुःख है। आहाहा! सातवें नरक के दुःख भोगे और ऐसे नौवें ग्रैवेयक जाने के ऐसे पंच महाव्रतादि की भाव के दुःख भोगे। आहाहा! उस दुःख से रहित होने का मूार्ग तो भगवान पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर में सन्मुख होकर प्रतीति और ज्ञान के संस्कार सम्यग्दर्शन के पड़ना... इस बिना व्रत क्रिया **कुछ कार्यकारी नहीं है,...** व्रत की क्रिया कथनी तो ऐसी है, इसके व्रत ऐसे हैं, इसके अतिचार ऐसे... परन्तु मूल बिना? निरतिचार

व्रत पालते हैं। व्रत में दोष नहीं लगने देते। यह सब कथनी किस काम की तेरे? आहाहा! जिसमें परम आनन्द का नाथ हाथ न आया और ऐसे दु:ख के परिणाम को पकड़कर बैठा। आहाहा! ....भाई! ऐसी बातें हैं। सब पैसेवाले को चैन नहीं, ऐसा कहते हैं। दु:खी है। व्रतधारी दु:खी है। तो पैसेवाले बहुत दु:खी। आहाहा! व्रत और तप के भाव सब दु:खरूप है। शुभराग है न, वह विकल्प है। आहाहा! तो यह और पैसा और इज्जत के धनी होकर सुखी होकर बैठे, मूढ़ है। दु:ख में जल गये हैं, दु:ख में जल गये हैं।

पंचास्तिकाय में कहते हैं न? कषाय के अंगारों में स्वर्ग के देव जल रहे हैं। आहाहा! उसकी सुविधा का पार नहीं। कषाय के भाव से सुलग रहे हैं। उन्हें भगवान आत्मा अकषायस्वरूप शान्तरस का कन्द प्रभु वीतरागमूर्ति आत्मा की जिसे दृष्टि सम्यक् नहीं है, उसे यह सब व्रत, क्रिया आदि की कथनी, उपवास की कथनियाँ निरर्थक है। आहाहा! भावपाहुड़ है न? भाव में सम्यग्दर्शन भाव, शुद्धभाव (लेना है) ऐसे शुद्ध भाव के भान बिना यह सब निरर्थक है। दुनिया के दिखाव के लिये भले दुनिया करे और देखनेवाला उसे बहुत आगे बढ़ा है, धर्म करता है, ऐसा कहे, वह कोई वस्तु नहीं है।

इसलिए ऐसा उपदेश है कि भाव बिना पढ़ने-सुनने आदि से क्या होता है? शास्त्र पढ़े और वाँचन करे। सात-सात घण्टे तक सुने। उससे क्या? कर्ता-कर्म में तो यहाँ तक लिया है कि मैं निश्चय से एक अबद्ध हूँ और व्यवहार से बद्ध हूँ। निश्चय से त्रिकाल शुद्ध हूँ, पर्याय से अशुद्ध हूँ—ऐसे विकल्प से क्या है? ऐसे विकल्प से तुझे क्या लाभ? उससे क्या? यहाँ तक आया, उससे क्या? आहाहा! मैं शुद्ध हूँ, पूर्ण हूँ, अबद्ध हूँ ऐसा जो विकल्प, वहाँ तक आया, उससे क्या? ऐसा कहते हैं। क्योंकि तब तक विकल्प का कर्तापना खड़ा है। विकल्प, वह कार्य और उसका मैं कर्ता, यह मिथ्यात्वभाव खड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए ही समझ में नहीं आता। सुनने में ध्यान रखो। सच्ची नहीं। सच्ची तो निर्विकल्प दृष्टि करे, तब सच्ची हो। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! ... भाई! वीतराग का मार्ग सुनना ही कठिन है। दुनिया ने मान रखा है और वह ठीक, ऐसा नहीं है। यह विकल्प से (हुआ) निर्णय, वह भी सच्चा निर्णय नहीं

है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तक तो अनन्त बार आया है, कहते हैं। भाई! तेरे घर में तू आया नहीं। वह भी सब बाहर की बातें हैं। आहाहा! मैं शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ—ऐसा जो विकल्प है, उसका कार्य और कर्तापना, वह सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो। प्रश्न करने की अपेक्षा सुनने में ध्यान रखे तो सब स्पष्टीकरण (आता है)। यह मार्ग अलग, बापू!

यह भगवान आत्मा... कहते हैं कि विकल्प से सच्चा यह है... सच्चा यह है, ऐसा करे तो वह भी सच्चा नहीं। और राग स्वयं खोटा है। राग उसके स्वभाव में नहीं है और उसके द्वारा निर्णय किया, वह सच्चा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का, भाई! प्रभु का अर्थात् तेरा, ऐसा। देखो न! आचार्य कहते हैं। ओहोहो! एक ओर कहे कि ... सुनो। **'वोचच्छामि समयपाहुडम्'** कहते हैं न? सुनो। यहाँ कहते हैं कि परन्तु इस सम्यग्दर्शन बिना तेरा सुनना (निरर्थक है)। आहाहा! जो सन्मुख दृष्टि की नहीं, जो भगवान परमात्मस्वरूप पूर्ण ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, जिसकी सिद्ध की पर्याय से भी अनन्तगुणा जिसका माहात्म्य है, ऐसे माहात्म्यवन्त पदार्थ के सन्मुख देखा नहीं और उससे विमुख होकर सुनना और पढ़ना, वह सब तेरा निरर्थक है। आहाहा! समझ में आया?

दुनिया तुम्हें अच्छा कहेगी, दुनिया में सामने तो करेंगे। दुनिया में न? वह बहिरात्मा है। आहाहा! यह पढ़कर हम पढ़े और हमें आता है और सुनकर हमें आया, यह सब अभिमान है ... क्योंकि जानपना तो प्रभु ने उसे कहा है कि पूर्णानन्दस्वरूप भगवान की अन्तर में सन्मुख होकर प्रतीति में लिया, ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाया, उसे सच्चा ज्ञान और सच्ची श्रद्धा कहते हैं। भले दूसरा जानपना कम हो, समझाना भी न आवे... समझ में आया? सभारंजन करना न आवे, उससे क्या? और सभारंजन करना आया, उससे क्या? आहाहा! प्रभु! तेरा आत्मा पूर्णानन्दसहित है। उसका तुझे विश्वास निर्विकल्प श्रद्धा में आया नहीं, तब क्या...? कुन्दकुन्दाचार्य की करुणा, उनकी करुणा का स्रोत बहता है। आहाहा! व्रत से क्या हुआ? और पढ़ने-गुणने से क्या हुआ? दो हुआ न? पहले में पढ़ने-गुणने से कहा था। दूसरे में 'लळूळफजूळफडळजै' भावकारणभूत। तो इस भाव बिना तेरा व्रत और तप का क्या हुआ? दोनों बातें ली हैं। आहाहा! जिसमें सत्

का सत् फल न आवे, वह तेरा पठन किस काम का ? कहते हैं। जिसमें सत्य का सत्य फल अन्दर में श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति न आवे, वह तेरे व्रत और तप मुनिपने के-श्रावक के किस काम के ?

भाव बिना पढ़ने-सुनने आदि से क्या होता है? केवल खेदमात्र है,... देखो! पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा! सुनना और पढ़ना, वह दु:ख है, कहते हैं। वह विकल्प है, वह दु:ख है, खेद है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि तो हुई नहीं। दुनिया में मान हो, न हो, दुनिया माने, न माने, उसके साथ कोई सत्य और श्रद्धा को सम्बन्ध नहीं है। संख्या अधिक हो, उसे माननेवाले... इसलिए उसका सत्य सच्चा कहलाये, ऐसे सत्य को संसार की आवश्यकता नहीं है। सत्य को सत्य की आवश्यकता है। ऐसा कहते हैं। व्रत धारते हैं, सत्य धारते हैं, यात्रा करनेवाले, पूजा के करनेवाले उनकी संख्या बहुत निकले। दस-दस लाख खर्च करके यात्रा निकाले, लो! परन्तु उसमें क्या हुआ ? यात्रा जहाँ ले जाना है, वहाँ तो ले नहीं गया और सम्मेदशिखर की और शत्रुंजय की यात्रा निकाली। दस-दस लाख लोग, दो करोड़ का खर्च... परन्तु उसमें क्या हुआ ? भाई! बेकार है। आहाहा!

मुमुक्षु : जाने बिना बिकार है परन्तु जानने के बाद तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने के बाद भी राग है, दु:ख है। जानने के पश्चात् भाव आवे, वह भी दु:ख है। व्यवहार आता है, हेयबुद्धि से आता है। दु:ख है, दु:ख है। ... राग है, राग आता है, पंच महाव्रत, बारह व्रत वह दु:ख है। विकल्प है तो दु:ख है।

केवल खेदमात्र है,... भाषा देखी ? आहाहा! यह पढ़ना और सुनना, व्रत और तप की क्रिया अन्तर सम्यग्दर्शन के भाव बिना अकेला खेद है। अकेला खेद अर्थात् वस्तु नहीं, वहाँ इतना खेद है। वस्तु का भान होने के पश्चात् होवे तो अकेला खेद नहीं। आनन्द है, उसके साथ वह खेद है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन के अन्तर अनुभव बिना... 'अनुभव रत्नचिन्तामणि अनुभव है रसकूप, अनुभव मार्ग मोक्ष का अनुभव मोक्षस्वरूप।' इस अनुभव के बिना तेरे व्रत, तप और बहुत सुना, सब केवल खेद, अकेला खेद है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन और ज्ञान की भूमिकासहित ऐसे विकल्प आवे तो वह भी खेद। आनन्द है, उसके साथ थोड़ा खेद है। केवल खेद है, ऐसा कहा।

यह अभी ... अट्ठाईस मूलगुण ... ... उसके लिए संख्या नहीं। लाखों लोग और ऐसे और ऐसे...

इसलिए भावसहित जो करो वह सफल है। अर्थात् कि निर्मलभावसहित का शुभभाव होवे तो इतना अन्दर अशुभ टलता है, इतना सफल है। निश्चय बिना तो शुभभाव में अशुभ टलता नहीं। सम्यग्दर्शन और अनुभव बिना वह शुभभाव है, उसमें अशुभ टलता नहीं। निश्चय के भानसहित ऐसा शुभभाव होता है, उसमें अशुभ टलता है उतना... बाकी जितना शुभ है, वह तो अशुद्ध है। आहाहा! **यहाँ ऐसा आशय है कि कोई जाने कि पढ़ना-सुनना ही ज्ञान है...** सुनना और पढ़ना, वह ज्ञान। **तो इस प्रकार नहीं है,...** ऐसा नहीं है, भाई!

पढ़कर-सुनकर आपको ज्ञानस्वरूप जानकर अनुभव करे... वाँचकर-पढ़कर, जानकर, सुनकर। **आपको ज्ञानस्वरूप...** भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप ही ज्ञाता है। ऐसा वह अनुभव करे। ज्ञानस्वरूप जानकर अनुभव करे, **तब भाव जाना जाता है,...** तब उसका भाव सच्चा है, ऐसा जानने में आवे। ... व्यवहार की भारी विपरीतता कठिन है न? व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है, ऐसी विपरीतता घुस गयी है। वह तो निश्चय के साथ ऐसे भानसहित में ऐसे भाव होते हैं, उन्हें व्यवहार से साधकरूप का आरोप दिया जाता है। ऐसी वस्तु है। समझ में आया?

तब भाव जाना जाता है,... अर्थात्? कि सुनकर, वाँचकर भी ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, यह विकल्प भी नहीं, राग भी नहीं, शरीर भी नहीं। यह ज्ञानस्वरूप कहने से पूरा आत्मा। उसमें अनन्त गुण आ गये। वह ज्ञानस्वरूपी पवित्र भगवान है, उसका अनुभव करे, तब **भाव जाना जाता है,...** तब उसका भाव सच्चा है, ऐसा जानने में आता है। समझ में आया? गजब मार्ग! **इसलिए बारबार भावना से भाव लगाने पर ही सिद्धि है।** इसलिए बारम्बार शुद्धस्वभाव में एकाग्रता का भाव लगाने से सिद्धि है। कोई व्यवहार के कारण से सिद्धि है नहीं। **बारबार भावना से भाव लगाने पर...** अन्तर स्वरूप में एकाग्र होने से **सिद्धि है।** तब उसकी मुक्ति है। अन्तर द्रव्यस्वभाव में एकाग्र होने से। श्रद्धा की एकाग्रता, ज्ञान की एकाग्रता और चारित्र की एकाग्रता से सिद्धि है। व्यवहार व्रत बीच में हो, वह बन्ध का कारण है।

गाथा-६७

आगे कहते हैं कि यदि बाह्य नग्नपने से ही सिद्धि हो तो नग्न तो सब ही होते हैं-

दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता।।६७।।

द्रव्येण सकला नग्नाः नारकतिर्यंच सकलसंघाताः।
परिणामेन अशुद्धः न भावश्रमणत्वं प्राप्ताः।।६७।।

नारक तिर्यक् सम्पूर्ण प्राणी द्रव्य से नित नग्न ही।
हैं भाव से नहिं शुद्ध इससे भाव-श्रामण्य भी नहीं।।६७।।

अर्थ – द्रव्य से बाह्य में तो सब प्राणी नग्न होते हैं। नारकी जीव और तिर्यंच जीव तो निरन्तर वस्त्रादि से रहित नग्न ही रहते हैं। 'सकलसंघात' कहने से अन्य मनुष्य आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं तो भी परिणामों से अशुद्ध हैं, इसलिए भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए।

भावार्थ – यदि नग्न रहने से ही मुनिलिंग हो तो नारकी तिर्यंच आदि सब जीवसमूह नग्न रहते हैं, वे सब ही मुनि ठहरे इसलिए मुनिपना तो भाव शुद्ध होने पर ही होता है। अशुद्ध भाव होने पर द्रव्य से नग्न भी हो तो भावमुनिपना नहीं पाता है।।६७।।

गाथा-६७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यदि बाह्य नग्नपने से ही सिद्धि हो तो नग्न तो सब ही होते हैं –

दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता।।६७।।

अर्थ – द्रव्य से बाह्य में तो सब प्राणी नग्न होते हैं। नारकी जीव... तो पूरा

समुदाय ही नग्न है। असंख्य नारकी का समुदाय वह नग्न है। वस्त्र का धागा भी नहीं। रहने को मकान नहीं। **तिर्यंच जीव...** भी नग्न है। उन्हें कहाँ वस्त्र है? ... नग्न है। **निरन्तर वस्त्रादि से रहित नग्न ही रहते हैं। 'सकलसंघात' कहने से अन्य मनुष्य आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं...** आहाहा! विषय के समय मनुष्य भी नग्न होता है। उससे क्या? ऐसा कहते हैं। आहाहा! वासना के काल में मनुष्य भी नग्न होता है। पशु और नारकी तो सदा ही नग्न रहते हैं। **'सकलसंघात' कहने से अन्य मनुष्य आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं तो भी परिणामों से अशुद्ध हैं,...** आहाहा! नहाने के काल में नग्न हो।... नहाये, नहाये।... नग्न है। नग्न हुआ तो क्या? **परिणामों से अशुद्ध हैं,...** आहाहा! नारकी नग्न, पशु नग्न, विषयवासना के काल में शरीर नग्न और नहाने के काल में... नग्न। आदमी भी कोई एकान्त हो तो नग्नपने नहावे। उससे क्या? नग्न हुआ तो क्या?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नग्न अर्थात् बाबा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मुसलमान ने किया। घोराजी के मुसलमान। नग्न। नग्न पीर करते हैं। वह पानीयारुँ होता है न पानीयारुँ? पानीयारुँ समझते हो? जल-जल।... होती है न जगह? ऊपर पानीयारुं होता है और नीचे गड्डा होता है न गड्डा। उसमें ... अन्दर बैठे नग्न। युवक मनुष्य, हों! २५-३० वर्ष का। नग्न बैठे, बोले नहीं। खावे, पीवे, ... वह नग्न पीर कहलाये। पीर, मुसलमान में।.... उससे भिन्न पड़ गया हुआ। नग्न। माँ, बाप, स्त्री, पुत्र होने पर भी वह नग्न बैठा हो, पानीयारा के नीचे। पानीयारा के नीचे खानुं होता है न? उसमें बैठे...

मुमुक्षु : उसे वे मानता रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता रखे। लोग तो पागल-मूर्ख है। मूर्ख के गाँव भरे हैं न सब। उसे पीर मानते है, पीर। नग्न पीर। आहाहा!

कहते हैं, शरीर के नग्नपने से परिणाम में तो नग्नता गयी नहीं। मिथ्यात्व की जो

नग्नता है, वह तो गयी नहीं। आहाहा! और नग्न बाबा-साधु होकर रहा। क्या अन्तर है तुझे? **इसलिए भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए।** ऐसा नग्नपना अनन्त बार धारण किया। आनन्दस्वरूप भगवान को अनुभवा नहीं। आनन्द का स्वाद नहीं लिया। वह भावसाधु नहीं हुआ। आहाहा! वह तो दुःख के वेदन में रहा। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, विकल्प, वह सब दुःख का वेदन है। आहाहा! क्योंकि वह कषाय का अंश है, राग है, हिंसा है। आहाहा! वीतराग मार्ग, बापू! वीतरागभाव से... रागभाव से वीतरागभाव नहीं होता। यह तो धीर का काम है। अन्तर स्वरूप की रमणता, यह वीर का नाम है। बाहर से वीरपना तो अनन्त बार प्रगट किया। वीर, वीर्य। वी अर्थात् वीर्य। ... स्वरूप की प्रेरणा में वीर्य को प्रस्फुटित नहीं किया। आहाहा! उसे जीव नहीं कहा।

... ... दृष्टान्त और दलील और रमझट... ऐई! पाटनीजी! आहाहा! भगवान .... दुनिया में चाहे जो माने, मनावे, शास्त्र के व्यवहार के दृष्टान्त के शरण में व्यवहार की बातें करे, उसमें कुछ नहीं होता। इस शास्त्र में ऐसा कहा, इस शास्त्र में ऐसा कहा। सब कहा, बापू! यहाँ साधक कहा है व्यवहार को। और व्यवहार से ऐसा होता है। आहाहा! पंचास्तिकाय में नहीं आता? १७२ गाथा में? क्या कहलाता है वह? ... है न?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : टीपे वह माणल पानी में वस्त्र धोवे न? टीपे अर्थात् मैल निकल जाए। व्यवहार से आत्मा को टीपे अन्दर। ... ऐसा पाठ है वहाँ, समय-समय में। १७२ गाथा। व्यवहार से समय-समय में आगे जाए। बापू! ... आहाहा! लोगों को कथन सुनते हुए किस अपेक्षा का कथन है, वह अपेक्षा न जाने और अर्थ करे अपने को समुचित लगता हुआ, बापू! ऐसा नहीं होता। अर्थ का अनर्थ होता है। है न? शुद्धता सिद्धि नहीं होती। उसमें शुद्धता की प्रवृत्ति की वृद्धि नहीं होती। वे सब अर्थ के अनर्थ करनेवाले हैं। आहाहा! लो! **इसलिए भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए।**

भावार्थ – यदि नग्न रहने से ही मुनिलिंग हो तो नारकी तिर्यंच आदि सब

जीवसमूह नग्न रहते हैं, वे सब ही मुनि ठहरे; इसलिए मुनिपना तो भाव शुद्ध होने पर... ... शुद्ध। पुण्य और भाव के विकल्प से रहित निर्विकल्प शुद्धभाव होने से होता है **अशुद्ध भाव होने पर...** यह पुण्यभाव आदि जो व्यवहार है, वह अशुद्धभाव है। **नग्न भी हो तो भावमुनिपना नहीं पाता है।** उसे भावमुनिपना नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१२०, गाथा-६६ से ६९, बुधवार, असोज कृष्ण ७, दिनांक २१-०१-१९७०

यह अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ६६वीं गाथा। अर्थ फिर से लो। आ गया है। **भावरहित...** अर्थात् आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा जो शुद्धभाव, आत्मा चैतन्य आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका श्रद्धा-ज्ञान, वह शुद्धभाव। पुण्य-पाप के विकल्प से-भाव से रहित ऐसे शुद्धभाव बिना **पढ़ने-सुनने से क्या होता है?** पढ़ने, सुनने से क्या होगा? **कुछ भी कार्यकारी नहीं है,...** अपना स्वभाव चैतन्य भगवान, उसकी श्रद्धा की शुद्धता प्रगट किये बिना यह सब पढ़ना आदि कुछ कार्यकारी नहीं है। **इसलिए श्रावकत्व...** गृहस्थाश्रम में श्रावक और मुनि **इनका कारणभूत भाव ही है।** आहाहा! इसका कारण तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान है। इसके बिना सब निरर्थक हैं। समझ में आया?

भावार्थ - मोक्षमार्ग में... आत्मा के स्वभाव की पूर्णता प्राप्त करने के मार्ग में **एकदेश, सर्वदेश व्रतों की प्रवृत्तिरूप मुनि-श्रावकपना है,...** गृहस्थाश्रम में एकदेश व्रत, मुनि को सर्वदेश व्रत। **व्रतों की प्रवृत्तिरूप...** है। ऐसे शुभपरिणाम, वह प्रवृत्ति। **उन दोनों का कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव है।** यदि उसमें निश्चय सम्यग्दर्शन न हो (तो) वह सब कथनी व्यर्थ है। समझ में आया? **दोनों...** अर्थात् श्रावकपने के बारह व्रतादि और मुनिपने के पंच महाव्रतादि की प्रवृत्ति, वह तो शुभपरिणाम है। वह कोई मूल वस्तु नहीं। मूल चैतन्य भगवान आनन्द और शान्त अविकारी स्वभाव, उसकी रुचि, दृष्टि और शुद्ध का परिणमन, इस शुद्ध के भाव की भूमिका बिना ऐसे

देशव्रत और मुनिव्रत **भाव बिना व्रतक्रिया की कथनी...** ऐसा शब्द लिया, देखा! वह तो कथनी, कथन है, कहते हैं। व्रत के शुभ परिणाम हो, वह तो व्यवहारनय से कथन है, वस्तु (नहीं है)।

व्रतक्रिया की कथनी कुछ कार्यकारी नहीं है,... वह सब कथनी है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प राग। समझ में आया? यह **व्रतक्रिया की कथनी...** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य के अनुभव के सम्यग्दर्शन बिना जो शुद्धभाव, उसके बिना वह शुभभाव भी कथनीरूप निरर्थक है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए ऐसा उपदेश है कि भाव बिना पढ़ने-सुनने आदि से क्या होता है?** अन्तर वस्तु की दृष्टि की खबर न हो। पुण्य-पाप के रागरहित चीज़, उस चीज़ की दृष्टि नहीं, उसका ख्याल आया नहीं, अन्दर दृष्टि हुई नहीं। उसके **बिना पढ़ने-सुनने आदि से क्या होता है?** पढ़ना और सुनना, वह सब खेदमात्र है, ऐसा कहते हैं। **केवल खेदमात्र है,...** वस्तु की खबर नहीं। समझ में आया? जरा नजदीक आना, जरा जगह कम है। समझ में आया? यह भावपाहुड़ है। भावसार। भावपाहुड़ अर्थात् भावसार। क्यों (कि) पाहुड़ अर्थात् सार।

मुमुक्षु : भाव का सार।

पूज्य गुरुदेवश्री : सार है। यह भावसार अर्थात् वे भावसार, वह नहीं। भाव-सार।

चैतन्य ज्ञानानन्द तत्त्व भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप अपना निश्चय से तो द्रव्यस्वभाव, वही है। उसकी अन्दर श्रद्धा, उसका निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, द्रव्य के आश्रय से, अवलम्बन से प्रगट हुई सम्यग्दर्शन दशा, वह शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान आदि भाव बिना, कहते हैं कि वह सब खेद है। दो बातें ली हैं। व्रतादि खेद है। ऐसा यह सुनना और पढ़ना, वह भी खेद है। दोनों। समझ में आया?

इसलिए भावसहित जो करो, वह सफल है। सम्यग्दर्शनसहित हो तो वह आत्मा का कार्य हो। नहीं तो कुछ है नहीं। **यहाँ ऐसा आशय है कि कोई जाने कि पढ़ना-सुनना ही ज्ञान है...** सुनना और पढ़ना, वह ज्ञान है—सम्यग्ज्ञान है, ऐसा कोई माने **तो इस प्रकार नहीं है, पढ़कर-सुनकर...** पढ़कर और सुनकर भी **आपको**

ज्ञानस्वरूप जानकर अनुभव करे, तब भाव जाना जाता है,... देखो! **आपको...** अर्थात् अपने को। अन्दर ज्ञान चैतन्यस्वभावरूप **जानकर...** मैं तो ज्ञान ही हूँ। विकल्प-विकल्प दया, दान, व्रतादि मेरा स्वरूप नहीं है। मैं ज्ञान चैतन्यस्वरूप हूँ, चैतन्यज्योति हूँ, ऐसा जानकर अनुभव करे। ऐसा जानकर आत्मा का वेदन करे। वह आनन्द का वेदन करे। समझ में आया?

आत्मा ज्ञानस्वरूप है—अस्ति। जहाँ ज्ञान का भाववाला पदार्थ है, ऐसा जानकर उसमें कोई शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप है नहीं, ऐसा आत्मा का ज्ञानस्वरूप जानकर, उसे अनुसरकर वेदन और अनुभव होना। जो अनादि से राग और पुण्य का अनुभव है, वह जहर का अनुभव है। समझ में आया? वह दुःख का अनुभव है। पुण्य-पाप के विकल्प, राग की वासना शुभ हो या अशुभ वासना, दोनों दुःखरूप जहरवासना है। उस जहरी दुर्गन्ध का अनुभव करता है। जहर का अनुभव करता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह सब चक्रवर्ती के राज और बड़े-बड़े अमलदार—अधिकारी लाखों रुपये की महीने की आमदनीवाले, कहते हैं कि वे दुःख को अनुभव करते हैं।

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका ज्ञान नहीं और ज्ञान नहीं; इसलिए उसका उसे वेदन नहीं, अनुभव नहीं। आत्मा आनन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द के समक्ष दुनिया के इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके के कूचा जैसे लगते हैं। ऐसा जिसे ज्ञान और आनन्द का भान नहीं, वे जीव भाव बिना के हैं और ऐसा भाव हो, तब अनुभव हो तब भाव जानते हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब काम। भगवान चैतन्यस्वभाव और उस स्वभाव में दूसरी कोई रागादि चीज़ नहीं है। ऐसा जानकर, प्रतीति करके उसका वेदन करना। वह राग-द्वेष और पुण्य-पाप का वेदन है, वह दुःखरूप वेदन अज्ञानभाव है।

भगवान आत्मा चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा है, ऐसा है—ऐसी दृष्टि करके अनुभव करना **तब भाव जाना जाता है,...** तब उसे भाव है, ऐसा जानने में आता है। वह शुभादि भाव है, वह भाव नहीं। समझ में आया? यह शुभभाव व्रत का, दया का, दान का, सुनने का भाव, वह भाव, भाव नहीं है। वह भाव अभाव। स्वरूप में अभाव है, इसलिए भाव नहीं है। समझ में आया? **तब भाव जाना जाता है,...** भगवान

आत्मा के दरवाजे खुले करे। निधान चिदानन्दप्रभु महाप्रभु है, उसे राग और स्वभाव की एकता का ताला लगाया है, इसलिए वह खजाना खुलता नहीं। समझ में आया?

चैतन्य आनन्द का धाम, उसे राग ऐसा विकल्प अर्थात् आकुलता। चाहे तो दया, दान, व्रत का विकल्प, वह भी आकुलता है। वह आकुलता और अनाकुल आनन्दस्वरूप आत्मा निधान, दोनों की एकताबुद्धि में ताला लगाया, उसे खोलने का। राग अकेला खिले, स्वभाव खिले और खुले नहीं। वह जब राग से रहित चैतन्यस्वभावरूप आत्मा है, ऐसा जानकर, मानकर अनुभव करे, तब उसका ताला बन्द था, वह खुल गया। वह कली खिली। वनस्पति की कली होती है न? खिलती है न, खिलती है? सौ पंखुड़ी, हजार पंखुड़ी आदि। वह भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के धाम के स्वभावस्वरूप वस्तु, उसका अनुभव होने पर उस पर्याय में अर्थात् अवस्था में ज्ञान और आनन्द के अंकुर खुलते हैं। तब भाव जानते हैं कि इसको भाव है। आहाहा! समझ में आया?

आपको ज्ञानस्वरूप जानकर... लो! एक ही बात है। कोई दूसरी चीज़ नहीं। विकल्प और पुण्य-पाप और दया, व्रत और उसका कर्ता और वह मैं, यह वस्तु ही नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पूरी दुनिया की मान्यता से अन्तर?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया की मान्यता से अन्तर है। दुनिया तो संसार। दो न्याय है। एक न्याय कहाँ है वहाँ? एक न्याय से सत्य वस्तु यह है। आहाहा! दुनिया को दूसरी रीति से चलता है और मानती है, और इसलिए जरा यह मार्ग ही कोई अन्तर का अलग है। इसे बैठा नहीं परन्तु यह किस प्रकार है, यह सुना नहीं। ऐसे का ऐसा ऊपर का ऊपर अनादि से चला जाता है। समझ में आया? ऊपर अर्थात् आत्मा के आनन्द के ऊपर। राग और पुण्य की क्रिया में वह चला जाता है। वह कोई वस्तु नहीं। समझ में आया? गजब काम, भाई! ऐसा। आहाहा! यह जगत की मौज—मजा। जिसे कुछ भी पुण्य के परिणाम भी शुभ में मजा है, ऐसी मान्यता है, वह आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ, उसका वह खून करता है। समझ में आया? आहाहा!

शुभभाव हो, परन्तु उसमें मुझे ठीक पड़ता है। पाप के भाव में तो ठीक पड़े, वह

तो और तीव्र पाप मिथ्यात्व है। समझ में आया? परन्तु भगवान आत्मा मक्खन, चैतन्य का मक्खन आनन्द का गोला है वह तो। उसके भान बिना इस शुभभाव में मजा लगे, ठीक लगे, वह जहरदृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है। उसे भाव है नहीं। भाव नहीं किसका? आत्मा का। ऐसा। यह तो अनात्मा का भाव हुआ। बहुत सूक्ष्म। बहुत सूक्ष्म। नवनीतभाई! मार्ग ऐसा है। यह बाहर में सब हैरान होने के रास्ते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मजा तो बहुत लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ। मजा मानता है। है कहाँ धूल में? बालक ने ज्येष्ठ महीने में बहुत दूध पीया हो, दूध। पश्चात् शेरडे-शेरे (अर्थात्) पतला दस्त हो, ठण्डा लगे तो बालक चाटता है। ऐसा है यह। समझ में आया? ज्येष्ठ महीना होता है न, ज्येष्ठ महीना? बहुत गर्मी हो। उसकी माता ने अधिक दूध पिलाया। दूध-दूध। तो पतली दस्त हो गयी। गर्मी बहुत, इसलिए दस्त ठण्डी लगे। उसे खाये, जीभ पर चुपड़े, ठण्डा लगे। ऐसा यह संसार का मजा है। लो! राग है, वह वास्तव में विष्टा है। हाय... हाय... विष्टा! विष्टा तो (क्या), जहर है, सुन न अब। राग तो जहर है। विष्टा तो अभी सूकर खाता है और जीता है। जहर खाये तो मर जाए। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! तेरे पास कुछ है या नहीं? या तू खाली है? दूसरे राग और पुण्य और परवस्तु में ही माल है? ऐसा कहते हैं। पुण्य परिणाम के भाव या पाप के भाव या शरीरभाव या लक्ष्मी उसमें कुछ है? तू कुछ है ज्ञानस्वरूप चीज़ भिन्न, उसमें कुछ माल है या नहीं? आहाहा! खबर नहीं होती। अन्ध-अन्ध। यही वास्तविक माल है। राग, पुण्य, शरीर और वाणी में धूल भी कुछ नहीं है। सरीखी धूल नहीं पुण्य परिणाम सरीखे। आहाहा! सबके पुण्य ऐसे हैं। सम्यग्दृष्टि के पुण्य ऐसे हैं—जहर है। कहा नहीं, मोक्ष अधिकार में? मुनि को भी पंच महाव्रत के परिणाम वे जहर हैं। मोक्ष अधिकार में... है न परन्तु अमृतस्वरूप भगवान आत्मा, अमृत के अतीन्द्रिय स्वभाव के माल से भरपूर ऐसा भगवान, उससे पुण्य परिणाम तो विरुद्ध है। तो अमृत से विरुद्ध अर्थात् जहर है। आहाहा! यहाँ तो उसे हिंसा, झूठ, विषयवासना के भाव करके मजा लगता है। वह तो बहुत तीव्र जहर है, कहते हैं। बहुत यह तो धीर का काम है, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : वृद्ध व्यक्ति का काम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वृद्ध व्यक्ति का नहीं। आत्मा से जवान हुआ हो, उसका यह काम है। आत्मा जवान, हों! अज्ञान अवस्था, वह जीव की बाल अवस्था है। युवा अवस्था, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की अवस्था है। वृद्ध अवस्था, वह केवलज्ञान की अवस्था है। समझ में आया? धूल की अवस्था क्या है? यह तो बाल है। पच्चीस वर्ष का युवक हो तो कीड़े पड़े। स्नान करे तो। यह सड़ जाए कलेजा। यह देखो न! अभी तो क्या कहलाता है यह? कैंसर। ऐसे कैंसर होता है, सुने तो ओहोहो! पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... यहाँ कैंसर। यह सड़ता हो। कान का कैन्सर, नाक का कैन्सर, गले का कैंसर, आँख का कैंसर, लो! सहा न जाए (इतनी) वेदना।

मुमुक्षु : बाल अवस्था...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाल अवस्था, वह अज्ञान अवस्था। युवा अवस्था, वह सम्यग्दर्शन-धर्म अवस्था। वृद्ध अवस्था, केवलज्ञान अवस्था। समझ में आया? ऐसा शास्त्र में आता है, हों! सब जगह सब रखा है। बहुत जगह रखा है। पक गया केवलज्ञान। शास्त्र में तो बहुत कहा है। ओहोहो!

भगवती आराधना में तो इतनी बात भरी है। ओहोहो! राजा थे और बाद में मुनि हुए। शिवकोटि राजा थे। उसमें फिर मुनि हुए। राज छोड़कर और फिर ऐसी वैराग्य की बात को गाया है और माना है न! वह तो झूलता पुल मानो अध्धर हो ऐसा आत्मा अध्धर रागरहित। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, बापू! बाकी तो चौरासी के अवतार में हैरान... हैरान... हैरान... आहाहा!

इसलिए बारबार भावना से... देखो! बारम्बार आनन्द भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, ज्ञानस्वभाव, ज्ञान जिसका भाव, ज्ञान जिसका स्वरूप, ज्ञान जिसका सत् का सत्त्व, आत्मा सत् उसका ज्ञान पूरा सत्त्व, उसकी भावना बारम्बार करना। विकल्प और राग और निमित्त की नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए बारबार भावना से भाव लगाने पर ही सिद्धि है।** भगवान आनन्दमूर्ति में भावना करने से, एकाग्रता करने से जो शुद्धभाव प्रगट होता है, उस शुद्ध से सिद्धि है। कहो, समझ में आया? पहले जिसके

समझण का भी ठिकाना नहीं, उसे तो सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ है, वह सब व्यर्थ है। समझ का ठिकाना नहीं कि समझण यह चीज़ ऐसी है। मैं अकेला विकल्प दया, दान, व्रत के रागरहित मेरी चीज़ है और उस चीज़ का अनुभव और प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। और उस भाव बिना व्रतादि की, पठन की, श्रवण की, यह पठन और यह श्रवण की सब निरर्थक बात है, ऐसा कहते हैं। ऐई! भीखाभाई! यह क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : अरे! भगवान! ... कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलना आता है न, बराबर रचकर बोलता है।

आगे कहते हैं कि यदि बाह्य नग्नपने से ही सिद्धि हो तो नग्न तो सब ही होते हैं। अब कहते हैं कि नग्नपना धारण करने से यदि साधुपना आ जाता हो तो सब दुनिया पूरी नग्न ही है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा के शुद्ध चैतन्य दर्शन बिना और आत्मा के अनुभव के सम्यक् बिना यह नग्नपना तो पूरी दुनिया करती है। नग्नपने से क्या फल है? कहते हैं। आहाहा!

दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता।।६७।।

अर्थ – द्रव्य से बाह्य में तो सब प्राणी नग्न होते हैं। कैसे? **नारकी...** जितने नारकी, असंख्य नारकी हैं, पहले नरक से सातवें, नग्न ही है। वहाँ उसे वस्त्र का टुकड़ा नहीं है। समझ में आया? बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती मरकर नरक में गये। ब्रह्मदत्त, जैसे वहाँ रवरव नरक में अभी है। ब्रह्मदत्त अपरिठाणे। ३३ सागर की स्थिति। एक सागर में दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम, एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। ऐसे ३३ सागर में वहाँ नारकी नग्न है। यहाँ हीरा के पलंग में सोता-सोता मर गया है। ब्रह्मदत्त। चौदह हजार देव जिसकी (सेवा में) तैनात थे। देव, हों! जिसे बत्तीस हजार राजा ऐसे खम्मा, अन्नदाता (कहकर) चँवर ढोरते थे। वह मरकर पोढ़ा सातवें नरक में। समझ में आया? कहते हैं कि वह नग्न है। यदि नग्न से लाभ हो जाता हो तो उसे लाभ होना चाहिए। आहाहा! सत्य बात जैसी हो, वैसी आवे न! ऐई!

मुमुक्षु : उसमें ढीला नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ढीला नहीं चलता कुछ।

द्रव्य से बाह्य में तो सब प्राणी नग्न होते हैं। 'सयल' की व्याख्या करते हैं कि **नारकी जीव और तिर्यंच जीव तो निरन्तर वस्त्रादि से रहित नग्न ही रहते हैं।** पशु को वस्त्र नहीं। गधे को, गायों को, भैसों को है? यदि नग्न साधु हो और लाभ होता हो तो इन्हें होना चाहिए।

मुमुक्षु : ... होता है न? ... इसको किसका हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं लाभ। नग्न हो तो क्या? नग्न ही है कहते हैं। यह अधिक कहते हैं, देखो न!

और **'सकलसंघात' कहने से अन्य मनुष्य आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं...** बालक नग्न है। समझ में आया? इत्यादि, इत्यादि... पुरुष भी नग्न हो जाते हैं। परिणाम तो मलिन है। समझ में आया? **मनुष्य आदि...** अर्थात् बालपन, युवापने में विषय-वासना के काल में नग्न हो जाते हैं। यदि नग्न होने से लाभ होता हो तो वह भी नग्न है। ऐसा कड़क दृष्टान्त दिया है। आहाहा! **आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं तो भी परिणामों से अशुद्ध हैं,...** परिणाम तो अन्दर मलिन है। आहाहा!

यह उसमें नहीं? सबमें लंगोट ही पहने। आदिवासी होते हैं न आदि? क्या अपने तलाश्री तलाश्री गये थे न? तलाश्री। वाड की उस ओर है। वह तलाश्री पानी में डूब गया है। वह खड्डे में है न ऐसे। तलाश्री गये थे। पहली बार गये थे। मागसर कृष्ण आठ वहाँ की थी। कुन्दकुन्दाचार्य की तिथि। सब माँस खानेवाले। तलाश्री आता है। 'वापी-वाणी' वापी के बाद एक आता है जंगल में। आदिवासी का। वहाँ हमारे चलकर जाना था न उसमें डोली में। इसलिए वहाँ उतरे थे, एक दिन रहे थे। परन्तु ढलान में था। बड़ी नदी थी। वहाँ सामने। सड़क के ऊपर मकान है, वह रह गये। वे सब माँस खानेवाले, लो! समझ में आया? और लंगोटी पहनकर रहनेवाले। बड़े-बड़े ५०-५०, ६०-६० वर्ष के। और जवान २०-२० वर्ष के। लकड़ियाँ लेकर निकलते। लकड़ियाँ पकती हैं न बहुत? जंगल में लकड़ियाँ। गाड़ी में लकड़ियाँ डाले। एक लंगोटी पहनी हो, लो! परन्तु बेचारे अनार्य जैसे, भान नहीं होता।

कहते हैं, **'सकलसंघात'**... संघात अर्थात् समूह। **अन्य मनुष्य आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं तो भी परिणामों से अशुद्ध हैं,...** परिणाम तो मलिन हैं। **इसलिए भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए।** भाव साधुपने को प्राप्त नहीं हुए। ऐसा नग्नपना अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प तो अनन्त बार किये। उसमें कुछ आत्मा का सफलपना नहीं आया। **भावश्रमणपने को तो प्राप्त नहीं हुए।** ऐसा करने पर भी।

मुमुक्षु : कारण नहीं फिर क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ही कहाँ थी परन्तु वह? रागादि क्रिया है। वह आत्मा वीतरागभाव है, उसे राग का कारण कहाँ आया? यह कहेंगे अब, देखो!

भावार्थ – यदि नग्न रहने से ही मुनिलिंग हो तो नारकी तिर्यंच आदि सब जीवसमूह नग्न रहते हैं, वे सब ही मुनि ठहरे... तब तो सब मुनि ठहरे। आहाहा! वह आदिवासी देखो तो सब बस, लंगोटी छोटी-बड़ी और ऐई...! कुछ नहीं। बेचारे पशु की तरह घूमते हों, लो! **वे सब ही मुनि ठहरे, इसलिए मुनिपना तो भाव शुद्ध होने पर...** देखो! शुद्ध। भावशुद्ध। शुभ नहीं। यहाँ भावपाहुड़ में यह सिद्ध करना है। चैतन्य भगवान शुद्ध मूर्ति चैतन्य आनन्द, उसके परिणाम शुद्ध पुण्य-पाप के भावरहित हों, उस शुद्धभाव को यहाँ भाव गिनने में आया है। वह भाव मुक्ति का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आदिवासी श्वेताम्बर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। श्वेताम्बर नहीं। अन्यमति। अन्यमति। अन्यमति। श्वेताम्बर नहीं; अन्यमति। बहुत गाँव हैं। दो-दो झोंपड़े होते हैं। एक साथ पचास-सौ नहीं। सब जंगलवासी जंगल। और भ्रमणाएँ बहुत। देवी-देवला की भ्रमणाएँ बहुत। इस देवी को माने और देव को माने। बहुत भ्रमणाएँ। बेचारे मूर्ख में जन्मे हुए। कुछ भान नहीं होता। ऐसे अनन्त अवतार जीव ने किये हैं। यह कोई नया नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, **मुनिपना तो भाव शुद्ध होने पर ही होता है।** देखो! भावशुद्ध का अर्थ—आत्मा आनन्द का धाम प्रभु, उसकी रुचि की और उसका—शुद्ध का परिणमन करना, उसे भावशुद्ध कहा जाता है। पहले रुचि पलटा देना। पुण्य-पाप के विकल्प,

निमित्त की रुचि छोड़कर चैतन्य ज्ञायकभाव है, उसकी रुचि करने से, उसका अन्दर एकाकार होकर परिणमन हो, तब उसे शुद्धभाव समकित, जिनभावना, जिनभावना, वीतरागभाव उसे कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

अशुद्ध भाव होने पर द्रव्य से नग्न भी हो तो... कहते हैं, पुण्य के भाव हो, वह अशुद्ध है। शुभ-अशुभभाव ये दोनों अशुद्ध हैं। **अशुद्ध भाव होने पर द्रव्य से नग्न भी हो...** बाहर से नग्न हो जाए। **तो भावमुनिपना नहीं पाता है।** इससे कहीं भाव साधुपना नहीं पाता। सच्चा श्रावकपना भी नहीं पाता। आहाहा! शुद्ध और अशुद्धभाव दो के बीच की बात की। शुभ-अशुभभाव जो है, वह अशुद्धभाव है। चाहे तो शुभ हो। महाव्रत के परिणाम हों तो भी वे अशुद्ध हैं। अशुद्ध शुभ। हिंसा, झूठ, अशुद्ध-अशुभ, परन्तु हैं दोनों अशुद्ध। समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्वत्र पाप ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप ही है न। स्वरूप से पतित होते है। आहाहा! आनन्द में से हट जाता है, तब पुण्य-पाप के परिणाम होते हैं। परन्तु वास्तव में तो निश्चय से दोनों पाप हैं। आहाहा! ऐसा लोगों को कठिन लगे। मिठास है न उस ओर पुण्य की। ऐसे सुविधा, शरीर की, इन्द्रिय की, पैसे की, मकान की, खाने-पीने की सुविधा की मिठास है न, उसे अन्दर पुण्य की मिठास है। जड़ की मिठास है। है न अपने, देखो! जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है। देखो! है? फिर क्या है? उसे आत्मा के धर्म की रुचि नहीं। लो, है? है न भाई! उसे कोने में ऊपर। पहला चौका। पहला चौका इस ओर। दक्षिण दिशा में। 'जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है।' यह तो है तक पढ़ा। उसे आत्मा के धर्म की रुचि नहीं, यह नहीं आया। आहाहा! सूक्ष्म भी भूल क्या होती है, उसकी इसके खबर नहीं। सूक्ष्म भूल बड़ी शल्य होती है, शल्य! कठिन काम है। कठिन अर्थात् महाअनन्त पुरुषार्थ अपेक्षित है। स्वभाव सन्मुख का, विभाव से विमुख का महा पुरुषार्थ। ऐसे स्वभाव की शुद्ध बिना, कहते हैं कि **द्रव्य से नग्न भी हो तो भावमुनिपना नहीं पाता है।** अब यह कहा। ६८ (गाथा)।

गाथा-६८

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए केवल नग्नपने की निष्फलता दिखाते हैं-

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमइ।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं।।६८।।

नग्नः प्राप्नोति दुःखं नग्नः संसारसागरे भ्रमति।
नग्नः न लभते बोधिं जिनभावनावर्जितः सुचिरं।।६८।।

वह नग्न पाता दुःख वह ही भवोदधि में भटकता।
जिन-भावना से रहित वह चिर बोधि नहिं पाता वहाँ।।६८।।

अर्थ - नग्न सदा दुःख पाता है, नग्न सदा संसार समुद्र में भ्रमण करता है और नग्न बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप स्वानुभव को नहीं पाता है, कैसा है, वह नग्न जो जिनभावना से रहित है।

भावार्थ - 'जिनभावना' जो सम्यग्दर्शन-भावना उससे रहित जो जीव है, वह नग्न भी रहे तो बोधि जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाता है। इसीलिए संसारसमुद्र में भ्रमण करता हुआ संसार में ही दुःख को पाता है तथा वर्तमान में भी जो पुरुष नग्न होता है वह दुःख ही को पाता है। सुख तो भाव नग्न हो वे मुनि ही पाते हैं।।६८।।

गाथा-६८ पर प्रवचन

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमइ।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं।।६८।।

कड़क बात है कुन्दकुन्दाचार्य की। आहाहा! देखो! यह जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन। बहुत जगह अपने पहले आ गया। आठवीं गाथा में। ७२ में है, ८८ में है, १३० में है। जिनभावना।

अर्थ – नग्न सदा दुःख पाता है,... दुःखी होता है बेचारा, हैरान-हैरान पीड़ा पावे। वस्त्र नहीं। सर्दी-धूप सहन करे। वह तो दुःख पाता है, कहते हैं। समझ में आया? **नग्न सदा संसार समुद्र में भ्रमण करता है...** वह नग्न तो आत्मा के भान बिना संसार में भ्रमता है।

मुमुक्षु : जिनभावना...

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न।

और **नग्न बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान...** देखो! नहीं पाता, ऐसा कहते हैं। देखो! निषेध है इसमें। **नग्न बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप स्वानुभव को नहीं पाता है,...** नग्नपने से कुछ नहीं मिलता। ऐसा तो अनन्त बार लिया। बाह्य वेश की क्रिया कहाँ आत्मा की थी? आहाहा! नग्नपने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान की बोधि का लाभ नहीं मिलता। आहाहा! लो! आया है न शास्त्र में? गोम्मटसार में। अनादि मिथ्यादृष्टि हो, द्रव्यलिंगी नग्न, उसे एकदम ध्यान में में सातवाँ आ जाए, ऐसा आता है पाठ में। परन्तु यह कहते हैं कि नग्नपने के कारण नहीं आया। समझ में आया? यह बहुत डालते हैं, देखो! इसमें। नग्न मिथ्यादृष्टि है। परन्तु नग्न है, पंच महाव्रत की क्रिया है। उसे जब अन्दर धर्म होता है, तब वह आत्मा अन्तर शुद्ध आनन्दकन्द में झुकता है और अनुभव करता है। तब उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है। इसलिए नग्न से बोधिलाभ मिलता है, ऐसा नहीं है। यह सिद्ध करना है। उसे साधुपना अन्दर प्राप्त होता है, इसलिए उसे बाह्य क्रिया में नग्न ही पहला होता है, इतनी बात। समझ में आया? क्या कहा यह?

ऐसे द्रव्यलिंगी तो हो, नग्न आदि अट्ठाईस मूलगुण परन्तु अन्दर में आत्मा का यदि ध्यान करे, इस कारण से नहीं परन्तु आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप का ध्यान करे, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। नग्नपने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान बोधि का लाभ होता है, ऐसा निषेध किया। देखो न! आया न? क्या कहा? **'णग्गो ण लहइ बोहिं'** नग्नपने से कहीं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों प्राप्त नहीं होते। कड़क है न। नग्नमुनि स्वयं दिगम्बर है। बोधि नहीं, बोधि लाभ मिलता नहीं। आहाहा! तब कहे, वहाँ भी नग्न हुए है तब उसे सातवाँ (गुणस्थान) आता है न? उसके कारण से नहीं। वह आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द

प्रभु, उसे अन्तर के आनन्द का नशा चढ़ता है अन्दर, नशा। चैतन्यप्रभु अन्दर जागृत होकर आनन्द को वेदता है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। नग्नपने के कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा होने पर भी पहली बात आ गयी थी। मुनि होता है, तब कोई भावमुनि हो और नग्न हो पहले ऐसा नहीं होता। चारित्र आया और अब नग्न हो, ऐसा नहीं होता। पहले पंच महाव्रत, सावद्ययोग का त्याग पहले आता है। फिर उसकी रुचि छोड़कर आत्मा का ध्यान करे, तब उसे सच्चा मुनिपना आता है। आया था न? पण्डितजी! पहले आया था। बाकी नग्नपना लिया, इसलिए बोधि पाता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो स्पष्ट इनकार करते हैं। **'णग्गो ण लहइ बोहिं'** नग्न बोधिलाभ को नहीं पाता। स्पष्ट बात है। **'णग्गो ण लहइ बोहिं' 'नग्नः प्राप्नोति दुःखं' 'नग्नः प्राप्नोति दुःखं'** संस्कृत भी आया है। आहाहा! अन्दर जिनभावना। देखो! अब आता है।

स्वानुभूति को नहीं पाता है, कैसा है यह नग्न–जो जिनभावना से रहित है। लो! जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन। राग की भावना, वह मिथ्यादर्शन। और जिनभावना अर्थात् वीतरागी चैतन्यमूर्ति हूँ, ऐसी अन्तर की एकाग्रता की भावना का नाम जिनभावना सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? यह जिनभावना बहुत जगह आयी है। अपने पहले आठवीं गाथा में आया। आठवीं में लेख है न? पश्चात् यह ७२ है। दूसरी बहुत जगह है। ८८ गाथा है। १३० गाथा है। सर्वत्र जिनभावना लिखा है। जिनभावना। देखो! पहले बताया था। आठवीं गाथा में पहले आया न? आठवीं-आठवीं।

भावपाहुड़, आठवीं। पहले आया था, कहा था। उस समय कहा था। आठवीं, देखो! **'भावहि जिणभावणा जीव!'** भावपाहुड़ की आठवीं। है न? **'भावहि जिणभावणा जीव!'** ६८।.... यह ७२। ७२ गाथा। ऊपर है न? **'जिणभावणरहिय'।** पहली लाईन। **'जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा'** यह ७२ में है। ८८ में। ८८ गाथा। ८८ में है, देखो! **'भावहि जिणभावणं णिच्चं'** ८८ गाथा। **'भावहि जिणभावणं णिच्चं'** १३०। अन्तिम १३० गाथा। भावपाहुड़। **'जिणभावणभावियो धीरो'** यह १३० में है। इस जिनभावना में महा सिद्धान्त है कि आत्मा वीतराग की मूर्ति आत्मा है। उसका स्वभाव जिनस्वरूप-वीतरागस्वरूप है और उसकी श्रद्धा, वह वीतरागभाव की श्रद्धा है और

वीतरागभाव की वह भावना है। ज्ञानी को राग की भावना नहीं होती। आहाहा! कहो, समझ में आया? एक ओर कहे पंच महाव्रत, फिर उनकी भावना। उसमें दोष लगाना नहीं। आवे न? व्यवहार की बातें हों परन्तु वस्तु यह है। जिनभावना। लो! समझ में आया? जिनभावना ६८ अपने चलती है यह।

जिनभावना से रहित है। जिसे आत्मा चैतन्यबिम्ब वीतरागमूर्ति की श्रद्धा की भावना नहीं, उसकी अन्तर एकाग्रता नहीं; इसलिए उसकी भावना राग की है, वह राग की भावनावाले जिनभावना रहित है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? परन्तु मार्ग ऐसा बहुत कठिन। कोई सरल मार्ग होगा या नहीं? अन्यत्र कहीं?

मुमुक्षु : आप सरल करो तो होगा, नहीं तो नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो यह सरल है न! पहले सम्यग्दर्शन यह पहला मार्ग सरल। फिर चारित्र वह महँगा। दोनों मार्ग हैं वीतरागभाव, शुद्धभाव। शुद्धभाव की भावना सम्यग्दृष्टि को होती है। अज्ञानी को शुद्धभाव की भावना नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ – 'जिनभावना' जो सम्यग्दर्शन-भावना... देखो! जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन भावना। **उससे रहित जो जीव है, वह नग्न भी रहे तो बोधि जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाता है।** बोधि की व्याख्या यह तीन है— सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। परन्तु जिन सम्यग्दर्शन भावना बिना, यह बोधि पा नहीं सकता। ऐसा कि जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र पा नहीं सकता, ऐसा है। समझ में आया? ओहोहो! कितनी स्पष्ट बात रखी है, लो! लोगों को कठिन लगती है। यह तो हित की बात है, भाई! हाँ तो कर। मार्ग तो यह है। वीतराग प्रभु आत्मा के अन्तर्मुख होकर श्रद्धा और ज्ञान शुद्ध प्रगट हुए, उसका नाम जिनभावना है। वह वीतराग की भावना भावे तो वीतरागपने में वह प्रगट हो। ज्ञानी राग में एकाग्र नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **'जिणभावणवज्जिओ'** लो, ठीक!

वह नग्न भी रहे तो बोधि जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाता है। इसीलिए संसारसमुद्र में भ्रमण करता हुआ संसार में ही दुःख को

पाता है... आहाहा! संसारसमुद्र चौरासी के अवतार। अहो! जैसे शक्करकन्द को अग्नि में डालकर सेंकते हैं, वैसे सीधे सूअर को और राजा के कुँवर को अग्नि में डालकर सेंके, ऐसे भव अनन्त बार हुए हैं। नारणभाई नहीं कहते थे? नारणभाई कहते थे। नारणभाई कहते, हमारे पारसी था। सूकर था सूकर। सूकर को पैर से बाँधकर, मुख बाँधकर, पैर से बाँधकर जैसे शक्करकन्द डाले शक्करकन्द अग्नि में (डाले), उसी प्रकार सूकर को डाला। पश्चात् ऊपर अग्नि। वफ जाए तो फिर खाये। आहाहा! गजब! लोगों को त्रास लगे परन्तु उससे अनन्तगुणी पीड़ा पहले नरक के दस हजार के पासड़े में है। उष्ण पीड़ा, पूरे सूकर के पैर बाँधे लोहे के तार से, सरिया। पतले सरिया लोहे के आते हैं। वायर.. वायर। लोहे के पतले लेकर पैर बाँधे। दो पैर ऐसे अग्नि में डाले। नीचे अग्नि, कण्डे के ऊपर अग्नि। बफ जाए। नारणभाई कहे अर र र! यह क्या किया तुमने? कि हमारा भोजन है। आहाहा! इससे अनन्तगुणे बाफ में अनन्त बार बफ गया है। अनन्त बार, भाई! आदि कहाँ है? आदि कहाँ है? आहाहा! है... है... है... भव... भव... भव... भव... भव... भव... भव... भव... भव... था, वहाँ सिंक गया है यह तो। खबर नहीं। अवसर आया, तब कहीं रुक गया। आहाहा!

उस अन्ध का दृष्टान्त है न? अन्ध था, उसे गाँव में जाना था। गढ था, गढ। चारों ओर गढ। उसमें चार दरवाजे—पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण। अब उसे कौन ले जाए अन्दर दरवाजे तक? इसलिए किसी को कहा, भाई! मुझे गाँव में जाना है। कहाँ से जाना? कहे, गढ को हाथ लगाते हुए जाओ। दरवाजा आवे, वहाँ घुस जाना। लगाते-लगाते जहाँ दरवाजा आया वहाँ खुजली आयी। खड़े रहकर खुजलाया होता तो दिक्कत नहीं परन्तु चलते-चलते किया, वहाँ दरवाजा निकल गया। वहाँ वापस गढ आया। और जहाँ दूसरा दरवाजा आयो, कहे, लाओ न पेशाब कर आऊँ। फिर उस गढ के वहाँ का वहाँ आया वापस चलते-चलते आगे निकल गया। पेशाब करके, और वह पड़ा रहा। इसी प्रकार अवसर आया, तब उसने ऐसा किया। हो! आहाहा! थोड़ा स्त्री का करूँ, थोड़ा लड़के का कर लूँ, थोड़ा इज्जत का कर लूँ, थोड़ा दुनिया में आगे गिनाते-गिनाते गिनाऊँ, ऐसा आ जाए। कहाँ गिनाना है तुझे?

मुमुक्षु : भूलने के स्थान बहुत हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत हैं। दूसरे में दूसरे से अधिकपने कुछ मैं हूँ। रूप से, रंग से, कण्ठ से, इज्जत से, पैसे से किसी भी रीति से मैं अधिक हूँ, ऐसा मुझे कुछ गिनो और गिनने में लो, ऐसे गिनने के भाव में मर गया बेचारा। आहाहा! अपने को अन्दर गिना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **संसारसमुद्र में भ्रमण करता हुआ...** बोधि धर्म बिना और बोधि सम्यग्दर्शन बिना। ऐसा। **संसार में ही दुःख को पाता है तथा वर्तमान में भी जो पुरुष नग्न होता है, वह दुःख ही को पाता है।** सम्यग्दर्शन और अनुभव आनन्द तो नहीं। इसलिए जहाँ हो वहाँ खेद होता है, उसे तो दुःख ही होता है। परीषह पड़े, अनुकूलता-प्रतिकूलता। इन दोनों परीषह में उसे दुःख ही होता है। आहाहा! **वर्तमान में भी जो पुरुष नग्न होता है, वह दुःख ही को पाता है। सुख तो भाव नग्न हो, वे मुनि ही पाते हैं।** लो! आहाहा! अन्तर में आनन्द की शीतलता प्रस्फुटित हुई। जैसे पर्वत में से पानी का झरना झरे, वैसे भगवान आनन्द का पर्वत, अरूपी चैतन्यघन के अनुभव से आनन्द का झरना झरे, ऐसा जो मुनि, वह नग्न हो, वह तो भावमुनि होता है। भावमुनि के कारण मुनिपने का सफलपना है। नग्न से कहीं सफलपना नहीं है। आहाहा! पंच महाव्रत पाले तो भी उससे कुछ सफलपना नहीं है। अभी तो वह भी कहाँ ठिकाना है? (और कहे), उस—साधु को मानते नहीं। आहाहा! बापू! साधुपद तो अलौकिक पद है, भाई! यह तो सवेरे, दोपहर, णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं चलता है, उसमें नहीं आता? णमो लोए... धन्य साधुपद, बापू! चारित्रपद तो ओहोहो! समझ में आया?

जिसकी दशा देहातीत तो दृष्टि हुई है परन्तु रागातीत जिसकी स्थिरता हुई है। समझ में आया? ऐसी स्थिरता और वह चारित्र, वह तो परमेश्वर पद है। गणधर को पूज्य है। समझ में आया? परन्तु वह भाव-भावपना होना चाहिए न? नहीं तो कहते हैं कि दुःख को पाता है अकेला नग्न तो, भाव बिना तो। सम्यग्दर्शन बिना बाहर के राग का कर्ता होना, शरीर की क्रिया का कर्ता होना, शरीर की क्रिया से मुझे लाभ होता है, जीवित शरीर से कुछ धर्म होता है। आहाहा! ऐसे अभिप्राय में फँसे पड़े हैं। भाई! तेरी दया का उद्धार करनेवाला कोई दूसरा नहीं है। तू कर तो हो, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

गाथा-६९

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए कहते हैं जो द्रव्यनग्न होकर मुनि कहलावे उसका अपयश होता है –

अयसाण भायणेय य किं ते णग्गेण पावमलिणेण।
पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण।।६९।।

अयशसां भाजनेन न किं ते नग्नेन पापमलितेन।
पैशून्यहासमत्सरमायाबहुलेन श्रमणेन।।६९।।

इस निंद्य पाप मलिन पिशुनता हास्यमय माया बहुल।
मत्सर सहित नंगे श्रमण से क्या मिलेगा सोच यह?।।६९।।

अर्थ – हे मुने ! तेरे ऐसे नग्नपने तथा मुनिपने से क्या साध्य है? कैसा है – पैशून्य अर्थात् दूसरे का दोष कहने का स्वभाव, हास्य अर्थात् दूसरे की हँसी करना, मत्सर अर्थात् अपने बराबरवाले से ईर्ष्या रखकर दूसरे को नीचा करने की बुद्धि, माया अर्थात् कुटिल परिणाम, ये भाव उसमें प्रचुरता से पाये जाते हैं, इसीलिए पाप से मलिन है और अयश अर्थात् अपकीर्ति का भाजन है।

भावार्थ – पैशून्य आदि पापों से मलिन, इस प्रकार नग्नस्वरूप मुनिपने से क्या साध्य है? उलटा अपकीर्तन का भाजन होकर व्यवहार धर्म की हँसी करानेवाला होता है, इसलिए भावलिंगी होना योग्य है – यह उपदेश है।।६९।।

गाथा-६९ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए कहते हैं। जो द्रव्यनग्न होकर मुनि कहलावे उसका अपयश होता है – द्रव्य नग्न हो। द्रव्य से नग्न हो। मुनि कहलावे... भाव में भान कुछ नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान का ठिकाना नहीं। अपयश हो, उसका जगत में। कोई ऐसा वैराग्य भी न हो, मूल समकित बिना और भाव न हो अन्दर। दुनिया में अपयश हो कि ऐसे के ऐसे नग्न।

अयसाण भायणेय य किं ते णग्गेण पावमलिणेण।
पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण।।६९।।

अर्थ – हे मुने ! तेरे ऐसे नग्नपने तथा मुनिपने से क्या साध्य है? आहाहा! आचार्य भी अपने सम्प्रदाय की दृष्टि को भी नग्नपने की व्याख्या करते हुए ऐसी करते हैं, देखो! **क्या साध्य है?** भाई! आत्मा के आनन्द के अनुभव बिना **पैशून्य अर्थात् दूसरे का दोष कहने का स्वभाव,...** तेरा हो जाएगा, क्योंकि गुण का भान नहीं। तो दूसरे के दोष बताकर भी स्वयं अधिक है, ऐसा कहने के भाव तुझे हो जाएँगे। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? गुण का भान तो नहीं। इसलिए दूसरे के दोष कहकर मैं भी उनसे अधिक हूँ, ऐसा बतलाने का भाव तेरा सम्यक् अनुभव बिना, सम्यग्दर्शन बिना रहेगा।

हास्य अर्थात् दूसरे की हँसी करना,... दूसरे की हँसी करे। यह नग्न है और कुछ वैराग्य नहीं। मुख में वैराग्य नहीं, कुछ भान भी नहीं सम्यग्दर्शन-ज्ञान का। लोग नग्न का तो अपयश करें। ऐसा कहते हैं। आहाहा! **दूसरे की हँसी करना, मत्सर अर्थात् अपने बराबरवाले से ईर्ष्या रखकर...** देखो! अपने जैसे समान हों, उसमें उनका कुछ नाम बढ़ता हो तो ईर्ष्या रखे। परन्तु आत्मा आनन्द की तो खबर नहीं। आत्मा का स्वाद अन्तर, जिसके अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के घूँट पीते हुए... जैसे प्यासा गन्ने का रस पीवे। गर्मी के दिन (हों), बारह बजे हों। चार कोस चला हो, धूप हो, पानी कुछ मिला न हो। उसमें गन्ने का रस मिले। वह गटक-गटक पीता हो। ऐसे धर्मी राग के विकल्परहित सम्यग्दर्शन आत्मा के भान में उस आत्मा के रस के घूँट पीता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे दुःख नहीं होता। आहाहा!

अपने बराबरवाले से ईर्ष्या रखकर दूसरे को नीचा करने की बुद्धि,... रहे। दूसरे को हल्का बताने की बुद्धि उसकी रहा करे। क्योंकि वस्तु तो अन्दर में तो नहीं। परन्तु मैं ऐसा पालन करता हूँ, मेरा... यदि मुझसे यह हो, दूसरे यह नहीं करते। ऐसा करके बाहर से अधिकपना दूसरे को बतलाने, दूसरे से बतलाने वहाँ रुक जाता है। वस्तु का भान नहीं। समझ में आया? आहाहा!

माया अर्थात् कुटिल परिणाम,... हो। भाव में नहीं और बाहर में बतलाना है कि हम मुनि हैं और श्रावक हैं। ऐसी कितनी ही माया-कपट हो अन्दर। आहाहा! **ये**

भाव उसमें प्रचुरता से पाये जाते हैं,... लो! **'मलिणेण'** है न? **'णग्गेण पावमलिणेण' इसीलिए पाप से मलिन है...** लो! **'बहुलेन'** है न यह तो। प्रचुर अर्थात् **'बहुलेन'** और मलिन। कैसा है? **और अयश अर्थात् अपकीर्ति का भाजन है।** वह तो अपकीर्ति का स्थान है, कहते हैं। आहाहा! दुनिया में भी ऐसा कहे, ऐई! परन्तु इसे कुछ भान नहीं होता और यह नग्न होकर घूमता है। जैन शासन की अवज्ञा कराता है। समझ में आया? आचार्य महाराज तो ऐसा स्पष्ट करते हैं। **इसीलिए पाप से मलिन है और अयश अर्थात् अपकीर्ति का भाजन है।** वह अपकीर्ति का भाजन है। धर्म के नाम से दुनिया में अपकीर्ति हो। वीतराग दृष्टि और सम्यग्दर्शन-ज्ञान है नहीं, इसलिए इस प्रमाण उसका अपयश जगत में होता है। इसलिए वह नग्नपना कार्यकारी नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१२१, गाथा- ६९ से ७२, शुक्रवार, असोज कृष्ण ९, दिनांक २३-१०-१९७०

भावपाहुड़। ६९ गाथा का भावार्थ है। भावार्थ है न? कहते हैं कि **पैशून्य आदि पापों से मलिन, इस प्रकार नग्नस्वरूप मुनिपने से क्या साध्य है?** जिसमें पर की चुगली, पर के दोष दिखाना, अपना अधिकपना मनवाना, वस्तु के अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन बिना, ऐसे नग्नपनेरूप मुनि से क्या साध्य है? उसका तेरा फल क्या उसमें आवे? **उलटा अपकीर्ति का भाजन होकर व्यवहार धर्म की हँसी करानेवाला होता है,...** निश्चय का आनन्दस्वभाव अन्दर धीर अन्तर अनाकुल तो प्रगट हुआ नहीं और बाह्य में सब फिर व्यवहार क्रिया में आकुलता दिखाई दे। इसलिए व्यवहारधर्म की भी हँसी करानेवाला होता है। अन्तर स्वरूप की प्रतीति, अनुभव नहीं और धीरपना जो अन्दर चाहिए, वह प्रगट नहीं हुआ। बाहर से वेश धारण किया तो बाहर से अपकीर्ति करानेवाला व्यवहारधर्म से अपकीर्ति होती है। इसलिए भावलिंगी होना योग्य है। लो! उपदेश है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करना - पहले अनुभव, पश्चात् मुनिपना धारण करना। यह उपदेशमार्ग वीतराग का है।

गाथा-७०

आगे इस प्रकार भावलिंगी होने का उपदेश करते हैं –

पयडहिं जिणवरलिंगं अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियइ।।७०।।

प्रकटय जिनवरलिंगं अभ्यन्तरभावदोषपरिशुद्धः।
भावमलेन च जीवः बाह्यसंगे मलिनयति।।७०।।

हो शुद्ध अन्तर्भाव मल-बिन प्रगट कर जिन-लिंग को।
जिस भाव मल से जीव बाहर संग में आसक्त हो।।७०।।

अर्थ – हे आत्मन् ! तू अभ्यन्तर भावदोषों से अत्यन्त शुद्ध ऐसा जिनवरलिंग अर्थात् बाह्य निर्ग्रन्थलिंग प्रकट कर, भावशुद्धि के बिना द्रव्यलिंग बिगड़ जायेगा, क्योंकि भावमलिन जीव बाह्य परिग्रह में मलिन होता है।

भावार्थ – यदि भाव शुद्ध कर द्रव्यलिंग धारण करे तो भ्रष्ट न हो और भाव मलिन हो तो बाह्य परिग्रह की संगति से द्रव्यलिंग भी बिगाड़े इसलिए प्रधानरूप से भावलिंग ही का उपदेश है, विशुद्ध भावों के बिना बाह्यभेष धारण करना योग्य नहीं है।।७०।।

गाथा-७० पर प्रवचन

७०। आगे इस प्रकार भावलिंगी होने का उपदेश करते हैं –

पयडहिं जिणवरलिंगं अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियइ।।७०।।

अर्थ – हे आत्मन्! तू अभ्यन्तर भावदोषों से अत्यन्त शुद्ध ऐसा जिनवरलिंग अर्थात् बाह्य निर्ग्रन्थलिंग प्रकट कर,... पहला सम्यग्दर्शन अनुभव, आत्मा का अनुभव प्रगट करके पश्चात् जिनवरलिंग प्रगट कर। पाठ है न? **'पयडहिं'** प्रगट कर।

पश्चात् निर्ग्रन्थपना धारण कर। मुनि को लक्ष्य करके भावशुद्धि की बात है न विशेष? मुनिपना, वह भावशुद्धि बिना नहीं होता। शुद्धभाव। पुण्य-पाप के भाव, वे तो अशुद्ध मलिन हैं। उनसे कहीं सम्यग्दर्शन और मुनिपना नहीं होता।

हे आत्मन्! तू अभ्यन्तर भावदोषों से अत्यन्त शुद्ध... है न? अभ्यन्तर भावदोष। आत्मा आनन्दस्वरूप, उसे कुछ भी पुण्य के राग में प्रेम रह जाए, उसमें सुखबुद्धि रह जाए तो वह अत्यन्त भावदोष से। **भावदोषों से अत्यन्त शुद्ध ऐसा जिनवरलिंग...** तो भावशुद्ध तो हुआ नहीं। आहाहा! जिस सम्यग्दर्शन में आत्मा का आनन्द पहले भासित हो, समझ में आया? आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द। इन्द्र के इन्द्रासनों में आनन्द भी वह तो जहर जैसा है। चक्रवर्ती के सुख, जुगलिया के, वे सब राग के सुख तो जहर है। आत्मा का सुख जो अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका अनुभव सम्यग्दर्शन बिना, उसमें पर में उसकी सुखबुद्धि हटती नहीं। ऐसा कहते हैं।

अभ्यन्तर भावदोषों से अत्यन्त शुद्ध ऐसा... आनन्दस्वरूप मैं हूँ। अतीन्द्रिय आनन्द वही मैं हूँ। पर में सुखबुद्धि होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का अनादर और असातना और हिंसा होती है। समझ में आया? कुछ भी शुभक्रिया द्रव्यलिंग की हो, उसमें उसे ठीक बुद्धि हो जाए, यह तो कुछ ठीक करते हैं, तो वह अतीन्द्रिय आनन्द जो आत्मा का स्वभाव है, उसका उसे अनादर हो जाता है। समझ में आया? इसलिए अतीन्द्रिय भगवान आत्मा, जिसके आनन्द की लहेजत, मजा सम्यग्दर्शन बिना उसका स्वाद अनुभव में नहीं आता। इससे **भावदोषों से अत्यन्त शुद्ध...** भाव में विकल्प में कुछ भी सुखबुद्धि रह जाए, वह सब मिथ्यात्व का दोष है। **अत्यन्त शुद्ध ऐसा जिनवरलिंग...** पश्चात् निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर। निर्ग्रन्थ लिंग प्रगट कर। ऐसा शब्द है न पाठ में?

भावशुद्धि के बिना द्रव्यलिंग बिगड़ जायेगा,... अन्तर में आनन्दस्वभाव का प्रेम रुचि परमात्मा की हुई नहीं, स्वयं परमात्मा आनन्दस्वरूप है। उसका जहाँ प्रेम हुआ नहीं, उसका प्रेम राग और निमित्त की क्रिया में लुट गया है। समझ में आया? आहाहा! इस **भावशुद्धि के बिना द्रव्यलिंग बिगड़ जायेगा,...** अन्दर कुछ भी अभिमान होगा, हम कुछ करते हैं, यह करते (हैं), ऐसा अभिमान होगा तो तेरा भावलिंग बिगड़ जाएगा।

मुमुक्षु : शुभभाव बिगड़ जाएगा या... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव का भी ठिकाना नहीं रहे, ऐसा कहते हैं। शुभभाव रहे परन्तु वह बिगड़ा हुआ भाव है न ? और उसमें किंचित् मायाचारीपना आ जाएगा। नहीं, उसे मनवाना है बाहर में। लोगों से मनवाना है बाहर में, वह तो माया-कपट और मलिनभाव हो जाएगा। ऐसा कहते हैं। शुभभाव का भी ठिकाना नहीं रहेगा। समझ में आया ?

भावशुद्धि के बिना द्रव्यलिंग बिगड़ जायेगा,... पाठ है न अन्दर, देखो न! **'भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियइ'** अन्दर मलिन हो जाएगा। आहाहा! बड़ा पद नाम धराया हो। अन्तर में वस्तु की दृष्टि और अनुभव हो नहीं। पश्चात् कुछ न कुछ भाव बिगड़े बिना रहेगा नहीं। यह हमारा मानते नहीं, यह हमारा आदर करते नहीं, यह अमुक (करते हैं), ऐसी सब बाहर की चाहना उसकी नहीं मिटेगी। **बाह्य परिग्रह में मलिन होता है।** देखो! **क्योंकि भावमलिन जीव...** मिथ्यादृष्टिपना है। जहाँ आत्मा के आनन्द की प्रतीति और प्रेम और भाव उघड़ा नहीं, उसके **भावमलिन जीव बाह्य परिग्रह में मलिन होता है।** उसे बाह्य परिग्रह-उसका प्रेम छूटता ही नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि तो गृहस्थाश्रम में हो तो भी परिग्रह का प्रेम छूट गया है। राग आवे, उसका भी प्रेम छूट गया है। और उसे तो आत्मा के प्रेम की खबर नहीं। वस्तु क्या है, उसकी (खबर नहीं)। इसलिए उसे बाहर में प्रेम हुए बिना रहेगा नहीं। प्रेम हुआ वह परिग्रह हुआ बाहर में। पश्चात् पकड़ होगी कि यह करूँ तो ऐसा होगा... यह करूँ तो ऐसा होगा... यह करूँ तो ऐसा होगा... दुनिया में अनुकूलता होगी, दुनिया...

भावार्थ – यदि भाव शुद्ध कर द्रव्यलिंग धारण करे तो भ्रष्ट न हो... मूल यहाँ जिनभावना सम्यग्दर्शन पर पूरा वजन है। शुद्धभाव-शुद्धभाव। शुभाशुभपरिणाम तो दोनों अशुद्धभाव हैं। समझ में आया ? **भाव शुद्ध कर द्रव्यलिंग धारण करे...** शुद्ध कर। है न शब्द ? शुद्ध अर्थात् सम्यग्दर्शन। समझ में आया ? शुभाशुभपरिणाम, वह कहीं सम्यग्दर्शन और धर्म नहीं है। शुद्ध धर्म है। शुद्ध तो आत्मा पवित्र पूर्ण आनन्द की श्रद्धा, उसका ज्ञान, वह द्रव्य शुद्ध, उसे शुद्धभाव कहा जाता है। आहाहा! लोगों को भारी कठिन काम लगे।

भाव शुद्ध कर द्रव्यलिंग धारण करे तो भ्रष्ट न हो और भाव मलिन हो तो

बाह्य परिग्रह की संगति से द्रव्यलिंग भी बिगाड़े... परिग्रह का प्रेम उसे अन्दर में से नहीं जाता। कहीं न कहीं, कहीं न कहीं उसे ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... अमुक करूँ... पाठशाला करूँ, मैं पाठशाला मैं ध्यान रखूँ, सम्हालूँ। यह सब परिग्रह उसे मिथ्यात्व की पकड़ हो जाएगी। समझ में आया? **परिग्रह की संगति से द्रव्यलिंग भी बिगाड़े...** लो! भावमुनि न हो तो बाह्य परिग्रह से... लक्ष्मी, पैसा, पुस्तक ऐसे बढ़ाकर मैं कुछ हूँ। वस्तु की दृष्टि की तो खबर नहीं, इसलिए बाह्य से उसमें कुछ हूँ, दूसरे की अपेक्षा मैंने कुछ अधिक किया। ऐसे **द्रव्यलिंग भी बिगाड़े...** द्रव्यलिंग में भी शुभभाव का ठिकाना नहीं रहेगा, ऐसा कहते हैं। भारी भाई आचार्य का!

इसलिए प्रधानरूप से... प्रधान अर्थात् मुख्य। **भावलिंग ही का उपदेश है,...** यहाँ तो भावपाहुड़ में मुख्य दर्शनशुद्धि, जिनभावना, आत्मा वीतरागस्वभावस्वरूप है, उसकी एकाग्रता की श्रद्धा—सम्यग्दर्शन-ज्ञान, उसका यहाँ मुख्यरूप से उपदेश है। समझ में आया? **विशुद्ध भावों के बिना बाह्यभेष धारण करना योग्य नहीं है।** विशुद्ध अर्थात् चैतन्य की शुद्धता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति। अन्तर के अनुभव के स्वाद बिना। ऐसा कहते हैं। बाह्य वेश धारण करना, वह उचित नहीं है। आहाहा! कहीं न कहीं उसकी मिठास रह जाएगी। आत्मा की मिठास आयी नहीं। आत्मा की क्या मिठास होगी? स्वाद तो यह दूधपाक का स्वाद, मौसम्बी का स्वाद, हलुवे का स्वाद, ऐसा कहे लोग। आत्मा का स्वाद? भाई! दूसरे के स्वाद में उसका स्वाद कहाँ है? उसमें उस समय राग होता है, उसका स्वाद है। आहाहा! अच्छी मौसम्बी, जामुन, गुलाबजामुन। क्या कहते हैं वह मावा के? घी में तले हुए फर्स्टक्लास कुछ चबाना न पड़े। फट-फट-फट। उसमें जो मिठास है, वह तो जड़ है। यहाँ जड़ का ज्ञान होता है कि वह मिठास उसमें है, मुझमें नहीं। परन्तु उसमें उसे मिठास लगती है (कि) यह ठीक है। आत्मा के स्वाद की खबर नहीं, इसलिए उसे राग का स्वाद आता है। उसका (परवस्तु का) नहीं। क्या कहा? यह जामुन कहा न? जामुन, यह मैसूर, मौसम्बी, उसका जो स्वाद जीव को नहीं आता, किसी अज्ञानी को भी (नहीं आता)। वह तो जड़ है, जड़ की दशा है। जड़ का स्वाद जीव को होगा?

मुमुक्षु : वह तो जीभ का काम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीभ का काम क्या? जीभ तो जड़ है। जीभ के टेरवे चीज़ छुए। कल कहा था न थोड़ा? टेरवे छुए तब जरा लगे। टेरवा के आगे हो तो न लगे, अन्दर जाए तो न लगे। आगे जाए तो स्वाद न लगे। यहाँ छुए तब जरा स्वाद का उसे ख्याल आवे। ख्याल आवे ज्ञान में। ख्याल आने पर यह ठीक है, ऐसा राग करे, उस राग को अनुभव करता है। जीभ को नहीं, पर स्वरूप को नहीं। जड़ को क्या अनुभव करे? परन्तु आत्मा तो अरूपी है। आहाहा! खबर नहीं होती यह खबर। आत्मा में तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। वह रंग, गन्ध, स्पर्श को भोगे? परन्तु उसकी अनुकूलता उसे लक्ष्य में लेकर 'मुझे ठीक है' ऐसा राग का वह स्वाद लेता है। आकुलता का। प्रतिकूलता के समय द्वेष का स्वाद लेता है। स्वाद उसे-अज्ञानी को अनादि का राग-द्वेष का है। नहीं पर का स्वाद, नहीं आत्मा का स्वाद। नवनीतभाई! न्याय से समझ में आता है या नहीं?

परवस्तु तो जड़ है। मक्खन हो, रेशम हो, सुकोमल शरीर हो, लो! वह तो जड़-मिट्टी है। उसका अनुभव जीव को होगा? वह तो जड़ है। उसके ऊपर लक्ष्य जाने से इसे ऐसा होता है, यह ठीक है। आनन्द है, उसकी तो खबर नहीं—मुझमें अतीन्द्रिय आनन्द है, वह ठीक है, ऐसी तो श्रद्धा और ज्ञान हुए नहीं। इसलिए उसमें मुझे ठीक है, ऐसा मानकर राग करता है, उस अशुभ राग का उसे वेदन है।

मुमुक्षु : वापस राग को अशुभ कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तो शुभ भी कहाँ है।

मुमुक्षु : मजा आता है, उसमें अशुभ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा धूल में भी नहीं आता। मानता है। मूर्ख है न। पागल हुआ गहल-पागल। आहाहा! वह अशुभ है। शुभ तो वह नहीं। यह तो भगवान की भक्ति, महाव्रत के परिणाम वे शुभ। परन्तु वह शुभ भी राग और जहर है। समझ में आया? यह तो अशुभराग है। इस अशुभ का उसे वेदन है। चाहे तो पाँच-दस लाख मिले, उसमें प्रसन्न हो तो वह अशुभराग का वेदन है। जाए तो अं... ऐसा करके द्वेष का वेदन है। बाकी कुछ पर का वेदन उसे नहीं है। पर का अस्तित्व ही पर में है। इसमें नहीं तो कहाँ से से आवे? परन्तु यह खड़ा करता है राग-द्वेष का अस्तित्व, इसकी दशा में।

इसका उसे वेदन है। नहीं पर का अनुभव, नहीं आत्मा का अनुभव अज्ञानी को। समझ में आया? आहाहा!

यह कहते हैं, देखो! **बाह्य परिग्रह की संगति से द्रव्यलिंग भी बिगाड़े...** आहाहा! इसलिए प्रधान भाव का उपदेश है। प्रभु! तेरे घर में आनन्द है न, नाथ! उसे देख न तू। निधान अतीन्द्रिय आनन्द का दबाकर पड़ा है। राग के विकल्प की आड़ में भगवान अन्दर विस्मृत हो गया है इसे। आहाहा! ऐसा चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्द का जमा हुआ टुकड़ा (बर्फी), आनन्दकन्द भगवान, उसकी दृष्टि का अनुभव कर, उसका यहाँ उपदेश दिया जाता है। बाकी तो सब शुभ-अशुभ के अनन्त बार अनुभव किये, कहते हैं।

विशुद्ध भावों के बिना बाह्यभेष धारण करना योग्य नहीं है। लो! विशुद्ध लिया वापस, हों! शुद्ध से विशेष। शुद्ध हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान में, उससे भी थोड़ी विशेष स्थिरता। ऐसे **विशुद्ध भावों के बिना बाह्यभेष धारण करना (जैनदर्शन में) योग्य नहीं है।** आहाहा! अरे! ऐसी बात को समझे तो सही पहले। बाहर की सिरपच्ची में पड़ा। जिन्दगी चली जाती है। देह की स्थिति के सन्मुख जिन्दगी जाती है। वह मानो कि मैं बड़ा होता हूँ। यहाँ कहते हैं कि तू मरण के सन्मुख होता है। क्योंकि जितनी स्थिति लेकर आया है, उसमें अब स्थिति घटती जाती है। बराबर है न, भाई! जो अवधि लेकर आया, उसमें से एक समय बढ़ने का नहीं है देह में। जितना बड़ा होता है, उतना मरण के नजदीक जाता है। अरे... अरे...! गजब बात! जगत के और ज्ञानी के माप अलग। आहाहा! भाई! इस संयोगी चीज़ की स्थिति है, उतनी रहेगी। उसमें तेरा तत्त्व जो संयोग बिना का है, उसका यदि अनुभव, सम्यग्दर्शन स्वाद नहीं लिया तो पर के स्वाद की मिठास तुझे नहीं जाएगी। आहाहा! और ऐसे तेरे मरण के समय भी भगवान... भगवान करो, महावीर परमात्मा, वह शुभराग। उसका स्वाद अज्ञान का रहेगा। वह अज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! लोग ऐसा कहे कि, वाह! भगवान का स्मरण (करता है)। दुनिया के गज कितने परन्तु? भगवान करके भाई ने देह छोड़ा, समाधिमरण। धूल भी समाधि नहीं। यह भगवान... भगवान करके मरे-देह छूटे तो वह विकल्प है, राग है। राग का अनुभव तो जहर का अनुभव है। राग आत्मा के अमृत का लुटेरा है। कहो, भीखाभाई! आहाहा! भाई! तू कहाँ लुटा है और कहाँ तेरा धन पड़ा है, यह तुझे खबर

नहीं, ऐसा कहते हैं। इसलिए शुद्ध उपदेश का अधिकार है। भावपाहुड़। दुनिया, दुनिया की जाने, तू तेरा कर। दुनिया उसकी पर्याय प्रमाण परिणमेगी। वह कहीं तेरे कारण से वहाँ परिणमेगी, ऐसा है नहीं। आहाहा! क्या परन्तु यह तो कुन्दकुन्दाचार्य करुणा करके जगत को कहते हैं, भाई! **विशुद्ध भावों के बिना बाह्यभेष धारण करना योग्य नहीं है।** इतना कहा, अब विशेष कहते हैं।

गाथा-७१

आगे कहते हैं कि जो भावरहित नग्न मुनि है, वह हास्य का स्थान है –

धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य [१]उच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण।।७१।।

धर्मे निप्रवासः दोषावासः च इक्षुपुष्पसमः।
निष्फलनिर्गुणकारः नटश्रमणः नग्नरूपेण।।७१।।

है नग्न पर नहिं धर्म में नित वास दोषावास है।
वह इक्षु पुष्प–समान निष्फल निर्गुणी नट–श्रमण है।।७१।।

अर्थ – धर्म अर्थात् अपना स्वभाव तथा दसलक्षणस्वरूप में जिसका वास नहीं है, वह जीव दोषों का आवास है अथवा जिसमें दोष रहते हैं, वह इक्षु के फूल के समान है, जिसके न तो कुछ फल ही लगते हैं और न उसमें गन्धादिक गुण ही पाये जाते हैं। इसलिए ऐसा मुनि तो नग्नरूप करके नटश्रमण अर्थात् नाचनेवाले भाँड के स्वांग के समान है।

भावार्थ – जिसके धर्म की वासना नहीं है, उसमें क्रोधादिक दोष ही रहते हैं। यदि वह दिगम्बर रूप धारण करे तो वह मुनि इक्षु के फूल के समान निर्गुण और निष्फल है, ऐसे मुनि के मोक्षरूप फल नहीं लगते हैं। सम्यग्ज्ञानादिक गुण जिसमें नहीं हैं, वह

१. 'उच्छु' पाठान्तर 'इच्छु'

नग्न होने पर भांड जैसा स्वांग दीखता है। भांड भी नाचे तब शृंगारादिक करके नाचे तो शोभा पावे, नग्न होकर नाचे तब हास्य को पावे, वैसे ही केवल द्रव्यनग्न हास्य का स्थान है।।७१।।

गाथा-७१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो भावरहित नग्न मुनि है, वह हास्य का स्थान है – नटश्रमण है, नटश्रमण। आहाहा! भाषा भी।

धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण।।७१।।

अर्थ – धर्म अर्थात् अपना स्वभाव तथा दसलक्षणस्वरूप में जिसका वास नहीं है,... क्या कहते हैं? **'धम्मम्मि णिप्पवासो'** धर्म अर्थात् आत्मा आनन्द और ज्ञान, शान्ति स्वभाव, उसमें जिसका वास नहीं, भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसमें जिसका वास-वास-बसना, रहना, रहा हुआ नहीं। **अपना स्वभाव...** शान्ति, वीतरागता। **तथा दसलक्षणस्वरूप...** वीतरागभाव क्षमा, शान्ति, सब वीतरागभाव, हों वह! शुभभाव नहीं। आहाहा! **धर्म अर्थात् अपना स्वभाव तथा दसलक्षणस्वरूप में जिसका वास नहीं है, वह जीव दोषों का आवास है...** अस्ति-नास्ति की है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति और अकेला ज्ञानस्वभाव से भरपूर पदार्थ, उसमें जिसका वास नहीं। देखो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो तो उसमें वास हो, नहीं तो वास नहीं होता। आहाहा! ऐसा कहते हैं। गजब बात। भगवान आत्मा के आनन्द के ज्ञान के धाम में चैतन्यबिम्ब में जिसका वास नहीं। **वह जीव दोषों का आवास है...** अस्ति-नास्ति की है। भगवान आनन्दस्वभाव में जिसका वास नहीं, वह दोष का आवास है। वह राग और पुण्य-पाप के परिणाम में बसा हुआ है। वह दोष में बसा हुआ है। आहाहा! कहो, यह मकान-बकान के आवास की बात नहीं की।

यहाँ तो आत्मा ज्ञान चैतन्यस्वभाव का बिम्ब प्रकाश की मूर्ति, चैतन्यप्रकाश स्फटिक मूर्ति और अतीन्द्रिय आनन्द का रस ऐसा जो आत्मा, उसमें जिसका वास नहीं,

उसमें जिसकी दृष्टि नहीं, उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसमें जिसकी लीनता नहीं, उसका आत्मा में वास नहीं अर्थात् धर्म में उसका वास नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया? **वह जीव दोषों का आवास है अथवा जिसमें दोष रहते हैं,...** लो! वह दोष का आवास है, वहाँ दोष में वह बसता है, अथवा जिसमें दोष ही बसते हैं, गुण तो है नहीं। आहाहा! समझ में आया? भारी सूक्ष्म ऐसा तत्त्व, भाई! मार्ग तो ऐसा है, भाई! इसने कभी लिया नहीं, इसलिए इसे महँगा लगता है। है तो सत् सरल, सहज परन्तु उस चीज का माहात्म्य इसे अनन्त काल से आया नहीं। बाहर... बाहर... बाहर... बाहर... किसी भी प्रकार से इसकी महिमा बाहर में जाती है। अन्त में पुण्यभाव करे तो भी कुछ करते तो है न? कुछ करते तो हैं न? ऐसा करके मिथ्यादृष्टि का माहात्म्य दोष के वास में जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो' ऐसा कहा न? दो बात। पाठ है न यह? **'धम्मम्मि णिप्पवासो'** अर्थात् धर्म में वास नहीं, अर्थात् कि दोष में वास है। भारी शब्द संक्षिप्त। समझ में आया? भगवान आत्मा निजघर में आनन्द, ज्ञान और शान्ति पड़ी है। वह शान्ति आनन्द और ज्ञान में जिसका वास नहीं, उसके सन्मुख होकर उसमें रहा नहीं, वह दोष का आवास है। उससे विमुख होकर राग और द्वेष में जिसका रहना है, वह दोष का आवास है—दोष का घर है। कहो, समझ में आया? बहुत संक्षिप्त! भेदज्ञान।

जिसका राग और द्वेष के विकल्प में वास है, वह दोष के घर में पड़ा है। जो आत्मा के आनन्द में बसा है, वह निजघर में बसता है। वह गुण का आवास है। यह दोष का। आहाहा! समझ में आया? कैसा है यह? आचार्य दृष्टान्त देते हैं। **इक्षु के फूल के समान है,...** वह इक्षु के फूल के समान। इक्षु-इक्षु—गन्ना। गन्ने का फूल होता है न, गन्ने का? उस फूल में सुगन्ध भी नहीं होती और फूल खिरकर फल भी नहीं होता। दूसरा फूल खिरकर फल होता है। समझ में आया? फूल हो न जहाँ पपीते का फूल हो तो वह फूल खिरकर फल होता है। उसके फूल में सुगन्ध भी नहीं और फूल खिरकर फल भी नहीं। ऐई!

इक्षु के फूल के समान है, जिसके न तो कुछ फल ही लगते हैं... इस नीम

में जो फूल होता है न? कोर। वह कोर कितनी ही खिर जाए भले परन्तु बाकी कोर खिरने के पश्चात् वहाँ बारीक निंबोली होती है। बारीक निंबोली। निंबोली कहते हैं? फूल खिरे। यह नीम के-नीम, उसके फूल खिरे, उसकी निंबोली होती है। वह तो खिर जाए भले परन्तु कितनी ही खिरे और पीछे निंबोली होती है। फल होता है, इसी तरह आम की कोर फिरे। आम होता है न आम? उस आम का इतना बारीक फल आवे पहले। यह तो कहते हैं गन्ने का फूल। नहीं सुगन्ध, नहीं फूल, नहीं खिरे फल। फूल खिरे फल बेकार है। आहाहा! देखो! दृष्टान्त कैसा दिया।

इक्षु के फूल के समान है, जिसके न तो कुछ फल ही लगते हैं और न उसमें गन्धादिक गुण ही पाये जाते हैं। इसलिए ऐसा मुनि तो नग्नरूप करके नटश्रमण... कहते हैं। वह तो नटश्रमण है। आहाहा! आचार्य को भी... **नाचनेवाले भाँड के स्वांग के समान है।** कहते हैं। उसकी वापस उपमा देंगे। भाण्ड तो कहते हैं कि भाई! गहने पहनकर नाचता है। और यह तो गहने पहने नहीं। दागीना समझे न? जेबरात-जेवर। भाण्ड है, वह जेवर पहनकर नाचता है। जेवर बिना... क्योंकि अन्दर की दृष्टि का ठिकाना नहीं, इसलिए उसकी गति, हिलना, बोलना सब चपलाई ही दिखाई दे। समझ में आया? अन्दर वस्तु की दृष्टि है नहीं। इसलिए धीमाश तो प्रगटी नहीं अन्दर से। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ - जिसके धर्म की वासना नहीं है, उसमें क्रोधादिक दोष ही रहते हैं। भावार्थ है न भावार्थ! जिसके धर्म में वास नहीं। जिसका धर्म स्वभाव में बसना नहीं। भगवान आत्मा शान्त... शान्त... शान्त... अरागी वीतरागी आनन्द का धाम। वीतरागी विज्ञान आनन्द का धाम। उसमें जिसका वास, बसना, टिकना नहीं, वह **क्रोधादिक दोष ही रहते हैं।** वहाँ तो उससे विरुद्ध विभाव ही बसते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, पुण्य-पाप भाव... ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली तड़ाक और भड़ाक।

भगवान आत्मा, उसका निजघर देखा नहीं। निज निधान के धाम में उसकी रुचि-दृष्टि नहीं, इसलिए वह निज धाम में नहीं बसता। वह धर्म **'धम्मम्मि णिप्पवासो'** धर्म के आवास में वह नहीं है। दोष निवास में है। क्रोध, मान, माया, लोभ यह सब विकारी भाव स्वभावभाव में नहीं है। अर्थात् स्वभाव से विरुद्ध भाव ऐसे पुण्य-पाप के

भाव, उसमें वह बसता है। वह दोष का घर है। वह तो दोष में बसा है।

यदि वह दिगम्बर रूप धारण करे... ऐसा हो और दिगम्बर मुनिपना बाहर में धारे **तो वह मुनि इक्षु के फूल के समान निर्गुण...** लो! उसमें कुछ गुण नहीं और उसका आत्मा का फल नहीं। **निष्फल है,...** इक्षु के रसवाला दृष्टान्त दिया। इक्षु के फूल का। कहो, आहाहा! समझ में आया? गन्ने को फूल आते होंगे। अपने को तो खबर नहीं। गन्ना होता है। शेरडी—गन्ना। चमरा होता है फूल-फूल। कुछ होगा, हमने कुछ देखा नहीं।

मुमुक्षु : दक्षिण में बोबे और वहाँ फूल आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। होगा कहीं। हमने तो देखा नहीं।

मुमुक्षु : इक्षु को फूल हमारे यहाँ तो नहीं होते।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ आते हैं, भाई कहते हैं देखो न। चमरा-बमरा नहीं होता। फूल होता है फूल। फूल नहीं हो। देखा नहीं कहीं। फूल-फूल होते होंगे। आहाहा! चमरा तो है, बड़े लम्बे होते हैं वे दिखते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : फूल-फूल है फूल? वह तो चमरा लम्बा।

यहाँ तो कहते हैं **इक्षु के फूल के समान निर्गुण...** अर्थात् फूल में कहीं गुण नहीं और उसमें कुछ फल नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **ऐसे मुनि के मोक्षरूप फल नहीं लगते हैं।** लो! आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आनन्द के अनुभव बिना ऐसी बाह्य क्रिया के ... से कुछ मोक्ष का फल नहीं लगता। ऐसा वह भाव वर्तमान है, वह गन्ध बिना का है। आत्मा की गन्ध उसमें नहीं है। दुर्गन्ध है। आहाहा! गन्ध भी नहीं और फल भी नहीं।

सम्यग्ज्ञानादिक गुण जिसमें नहीं हैं, वह नग्न होने पर भांड जैसा स्वांग दीखता है। सम्यग्ज्ञान-दर्शन आदि गुण स्वभाव सन्मुख आनन्दादि का ज्ञान नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं। इसलिए **नग्न होने पर भांड जैसा स्वांग दीखता है।** अब थोड़ा उभारते हैं। **भांड भी नाचे तब शृंगारादिक करके नाचे...** भाण्ड जो है, वह तो गहने-

बहने पहनकर, जेबरात-जेवर (पहनकर नाचे)। **तो शोभा पावे, नग्न होकर नाचे तब हास्य को पावे, वैसे ही केवल द्रव्यनग्न हास्य का स्थान है।** वैसे केवल द्रव्य से नग्न (हुआ), वह तो हास्य का स्थान है। ओहोहो! सम्यग्दर्शन शुद्धभाव क्या है, उसके बिना सब निरर्थक है। निरर्थक भी कहा नहीं। मोक्ष का फल नहीं लगता अर्थात् संसार का लगेगा। इसका अर्थ यह हुआ न?

आता है न गाथा में? ... महा भागा। अबुद्धा महाभागा। अबुद्धा है। यह गाथा आती है। श्वेताम्बर में आती है, यह प्रवचनसार में आती है। प्रवचनसार तीसरे भाग में आती है। अबुद्धा महाभागा। जो आत्मा की दृष्टि अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं, अज्ञानी है परन्तु महाभाग्य है। दुनिया में पुण्यवन्त और दुनिया महिमा करे, दुनिया में सभा भराये उसकी। लाखों लोग भरे हों। हे अबुद्धा। महाभागा। परन्तु भाग्यवान है, पुण्यवन्त है। 'जीव अबुधा महाभागा वीरा असंमत्त दंसणो।' परन्तु वीर है। क्रियाकाण्ड कठोर करता है। महीने-महीने के अपवास, दो-दो महीने के अपवास, रस का त्याग, चमड़ी सुकड़ जाए। ऐसा वीर। वीर परन्तु असंमत्त दंसणो। परन्तु है सम्यग्दर्शन बिना के। जीव अबुधा महाभागा वीरा ... अशुद्ध... यह श्लोक है। कुन्दकुन्दाचार्य का। प्रवचनसार। उसका सब फल अशुद्ध होता है, उसकी सब अशुद्ध क्रिया है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि अशुद्ध है। उसका सफल है, जो अनादि से संसार फलता है, वह फलेगा। संसार के फल बिना की उसकी क्रिया नहीं है। समझ में आया? है या नहीं प्रवचनसार में? कहाँ होगा? यह प्रवचनसार है। इतने में होगा कहीं।

एसो त्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मौ जदि णिष्फलो परमो।।११६।।

११६ में है यह। **अनादि कर्म पुद्गल की उपाधि के सद्भाव के आश्रय से (-कारण से) जिसके प्रतिक्षण विवर्तन वर्तता है...** जिसे पुण्य और पाप के विकल्प सदा ही वर्तते हैं। **ऐसे संसारी जीव की क्रिया वास्तव में स्वभावनिष्पन्न ही है...** उसकी पर्याय में उसका वह स्वभाव विभाव है, उसरूप उत्पन्न हुई है। कर्म ने कुछ की नहीं। **इसलिए उसे मनुष्यादि पर्यायों में की कोई भी पर्याय 'यह ही' ऐसा टंकोत्कीर्ण नहीं, क्योंकि वे पर्यायें पूर्व-पूर्व पर्याय के नाश में प्रवर्तते क्रियाफलस्वरूप होने**

से उत्तर-उत्तर पर्याय द्वारा नष्ट होती है। और क्रिया का फल तो, मोह के साथ मिलन का नाश नहीं हुआ होने से, मानना चाहिए, क्योंकि-प्रथम तो, क्रिया चेतन के पूर्वोत्तरदशा से विशिष्ट चैतन्यपरिणामस्वरूप है; और वह (क्रिया)-जैसे दूसरे अणु के साथ जुड़ा हुआ (कोई) अणु की परिणति द्विअणुकार्य की निष्पादक है।

वह मनुष्यादि कार्य की निष्पादक होने से सफल ही है,... अज्ञानी की क्रिया सफल है। ज्ञानी की क्रिया निष्फल है। क्योंकि ज्ञानी की क्रिया आत्मा के स्वभाव की क्रिया है। उसका फल उसे संसार नहीं। कहो, समझ में आया? देखो! यहाँ **निष्पादक होने से सफल ही है,...** धर्मी को निष्फल है। जो संसार राग से उत्पन्न होता है, वह सफलपना अज्ञानी को है। ज्ञानी को है नहीं। आहाहा! सफल ही होता है, ऐसा कहा, ऐई! भीखाभाई! अज्ञानी की क्रिया सफल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धर्मी की क्रिया निष्फल है। क्योंकि वह आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उसकी क्रिया है। उसका फल संसार नहीं। अनादि से फलता है, वह नहीं। ११६ गाथा है। प्रवचनसार।

लोग स्वाध्याय करते नहीं और स्वाध्याय करे तो अपने को सुहावे वैसा अर्थ करके करते हैं, परन्तु वास्तविक तत्त्व क्या है, इस प्रकार से वाँचन नहीं करते। इसलिए वहाँ से शल्य नहीं निकलता। यहाँ कहते हैं अष्टपाहुड़ में। **केवल द्रव्यनग्न हास्य का स्थान है।** लो!

गाथा-७२

आगे इसी अर्थ के समर्थनरूप कहते हैं कि द्रव्यलिंगी जैसी बोधि-समाधि जिनमार्ग में कही है वैसी नहीं पाता है -

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
ण लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले।।७२।।

ये रागसंयुक्ताः जिनभावनारहितद्रव्यनिर्ग्रन्थाः।
न लभंते ते समाधिं बोधिं जिनशासने विमले।।७२।।

जो राग-परिग्रह-सहित द्रव्य नगन-रहित जिन-भावना।
से विमल जिन-शासन में भी बोधि समाधि प्राप्त ना।।७२।।

अर्थ **– जो मुनि राग अर्थात् अभ्यन्तर परद्रव्य से प्रीति, वही हुआ संग अर्थात् परिग्रह उससे युक्त है और जिनभावना अर्थात् शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं, वे द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तो भी निर्मल जिनशासन में जो समाधि अर्थात् धर्मशुक्लध्यान और बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान- चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाते हैं।**

भावार्थ **– द्रव्यलिंगी अभ्यन्तर का राग नहीं छोड़ता है, परमात्मा का ध्यान नहीं करता है, तब कैसे मोक्षमार्ग पावे तथा कैसे समाधिमरण पावे? ।।७२।।**

गाथा-७२ पर प्रवचन

अब ७२। **आगे इसी अर्थ के समर्थनरूप कहते हैं कि...** यह कहा, उसका समर्थन करते हैं। **द्रव्यलिंगी जैसी बोधि-समाधि जिनमार्ग में कही है, वैसी नहीं पाता है –**

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
ण लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले।।७२।।

अर्थ – जो मुनि राग अर्थात् अभ्यन्तर परद्रव्य से प्रीति, वही हुआ संग... लो! आत्मा के द्रव्य का प्रेम नहीं, आनन्द का प्रेम नहीं और जिसे परद्रव्य के प्रति के प्रेम का विकल्प-राग है, ऐसे राग का जिसे संग देखने से। देखो! **'रायसंगजुत्ता'** शुभराग के भी संग से सहित है, वह जिनभावना रहित है। इसे रागरहित आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य की उसे श्रद्धा और ज्ञान की भावना नहीं। भारी रूखा लगे। वह वार्ता करे बड़ी। कथा ऐसी माँडे कि इसने आज मारा, कल मारेगा। रावण कब मरेगा? लक्ष्मण के हाथ से। बात सुनते-सुनते ऐसा रस इसे आवे न। वह कथा रखे ऐसी कल की कल बात अब रहेगी। अरे! चलो भाई! रावण को कल राम मारेंगे। अरे! यह उसकी बात नहीं। यह तो राम—आत्माराम अज्ञान को मारे, उसकी यह बात है। समझ में आया? यह आत्माराम अज्ञान को मारे, वह रावण को मारा कहलाये। उसकी तो खबर नहीं होती।

उस बाहर की लड़ाई की बातें और कथा और... ओहोहो!

जो मुनि राग अर्थात् अभ्यन्तर... संग। है न? पाठ है न? **'रायसंगजुत्ता'** मूल शास्त्र का अर्थ तो ऐसा है कि रागसहित है यह। उसमें आत्मा के राग के विकल्प सहित माना है। इसलिए उसे राग की ही भावना है, ऐसा कहते हैं। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, वह सब राग है। राग की भावना, राग का जिसे **'संगजुत्ता'** ऐसा है न? राग संग सहित है। तब जिनभावना रहित है। यहाँ ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति की भावना सम्यग्दर्शन-ज्ञान, उससे रहित है। रागभाव सहित है, निरागभाव रहित है। कहो, समझ में आया?

अर्थात् परिग्रह उससे युक्त है... राग अभ्यन्तर परिग्रह है न? एक शुभराग भी अभ्यन्तर परिग्रह है। और वह शुभराग मेरा, यह मिथ्यात्व परिग्रह है। आहाहा! अभ्यन्तर परिग्रह है न चौदह? मूल पहला तो मिथ्यात्व परिग्रह है। राग, वह मैं हूँ, राग से मुझे लाभ होता है, ऐसी जो अन्तर की रुचि है, वह मिथ्यात्वरूपी परिग्रह है। समझ में आया? **परिग्रह, उससे युक्त है और जिनभावना अर्थात् शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं,...** लो! आहाहा! बहुत संक्षिप्त। उसमें धर्म पीवासो—नीपीवासो दोषा वासो। यहाँ उसका स्पष्टीकरण किया कि राग में जिसकी एकता है, उस राग का जिसे संग है। विकल्प सहित हूँ, ऐसा आत्मा जिसने माना है, उस राग का उसे परिग्रह है। समझ में आया?

जिनभावना अर्थात् शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं,... भगवान आत्मा तो शुद्ध (स्वरूप है)। पुण्य-पाप के विकल्प रहित है। उसकी दृष्टि रहित है, इसलिए जिनभावना रहित है। कहो, समझ में आया या नहीं? आहाहा! **शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं, वे द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं...** वे द्रव्यनिर्ग्रन्थ है। **तो भी निर्मल जिनशासन में...** वह निर्ग्रन्थ द्रव्य हों तो भी अन्दर के विकल्प के राग की रुचि का प्रेम है और राग से कुछ भी किंचित् मुझे लाभ और पर को लाभ होगा, ऐसी जहाँ दृष्टि है, वह राग के परिग्रह सहित मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? भारी काम कठिन। बाहर से अरबों रुपये छोड़े हों, सब छोड़कर साधु हुआ हो सेठाई छोड़कर, परन्तु अन्दर में राग के शुभ में अन्तर प्रेम और रुचि है, कहते हैं कि राग संयुक्त-सहित वह परिग्रही जीव है। आहाहा!

वह **शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं,...** क्योंकि रागसहित जिसे माना है, वह राग की भावना करे। राग रहित जाना तो वह वीतरागभावना करे। एकाग्र हो। ऐसा। समझ में आया?

शुद्धस्वरूप की भावना... अर्थात् एकाग्रता। उससे रहित है। **वे द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तो भी निर्मल जिनशासन में जो समाधि अर्थात् धर्मशुक्लध्यान और बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाते हैं।** द्रव्य निर्ग्रन्थ हैं, वे जैनशासन में धर्मध्यान, शुक्लध्यान को नहीं पाते और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी नहीं पाते। आहाहा! अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, पंच महाव्रत के विकल्प निरतिचार हो, तो भी वह राग संयुक्त है, यहाँ तो कहते हैं। वह वस्तु में नहीं, तथापि उसे राग सहित गहरे-गहरे उससे मुझे लाभ होगा और दूसरे को भी होगा। करो, करो, भाई! देखो! इसमें से तुम्हें धर्मध्यान होगा। धर्मध्यान किसका? राग है, वह धर्मध्यान है? समझ में आया? कितने कथन स्पष्ट हैं। ग्रन्थ बाहर प्रसिद्ध हैं। यह ग्रन्थ कोई सोनगढ़ का नहीं है। पहले के हैं। अर्थ भी पहले के किये हुए हैं। यहाँ कहीं हिम्मतभाई ने नहीं किया। हिम्मतभाई ... भरता-भरता तो क्या होगा अभी? कितने वर्ष चले गये। कहो, समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग। देखो! क्या कहा? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा जो मोक्षमार्ग, उसे द्रव्यनिर्ग्रन्थ नहीं पायेगा। क्योंकि सम्यग्दर्शन की दृष्टि नहीं, स्वभाव की भावना नहीं और राग संयुक्त है। राग के परिग्रह से पकड़ा गया है। उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग नहीं पायेगा, लो! समझ में आया? लो! यह जिनभावना आयी न इसमें? आठवीं गाथा में आया था, ६७ में आया था। यह जिनभावना।

जिनभावना का अर्थ ही सम्यग्दर्शन है। क्योंकि आत्मा पवित्र पूर्णानन्द ध्रुव अखण्ड-अभेद एक। उसकी दृष्टि सम्यक् होने पर उसे आत्मा के स्वभाव की भावना अर्थात् एकाग्रता होती है। जिसे राग की प्रीति (है) और राग संयुक्त जीव को माना, उसने राग को ही बढ़ाने की और राग की ही एकाग्रता और राग की ही भावना होती है। गजब काम परन्तु भाई यह। इसलिए लोग यह सब समाज सब मिल जाए बाहर की बात में। यह हुआ, यह किया। यह किया। देशसेवा करते हैं, अमुक करते हैं, ऐसा

करते हैं। अरे! भाई! तेरे शरीर के परमाणु का भी तू कुछ नहीं कर सकता। यह राग का करना, यह माना, वह रागसहित परिग्रही है, कहते हैं। आहाहा! तू परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ नहीं है। ऐसा कहते हैं। नग्नपना धारण किया है, अट्ठाईस मूलगुण है, तो भी तू निर्ग्रन्थ नहीं है, सग्रन्थ है। रागसहित और राग से लाभ मानता है, वह तेरी गहरी मिठास है। सग्रन्थ है। समझ में आया? कहीं लिखा है। उसमें होगा या उस बड़े में है। उसे सग्रन्थ कहा है। तू निर्ग्रन्थ में से सग्रन्थ है। समझ में आया? उसमें है ... में कहीं है। कहीं पुस्तक में है।

भावार्थ – द्रव्यलिंगी अभ्यन्तर का राग नहीं छोड़ता है, परमात्मा का ध्यान नहीं करता है,... लो! संक्षिप्त किया। परमात्मा कौन? परम-आत्मा। परम-आत्मा, परम-स्वरूप। परम-आत्मा, परम-स्वरूप। परमस्वरूप अर्थात् परम शुद्ध चैतन्यधातु, आनन्द और ज्ञान, वह उसका परमस्वरूप है, ऐसा स्वयं परमात्मा, उसकी उसे श्रद्धा-ज्ञान बिना, उसकी भावना होती नहीं। आहाहा! **अभ्यन्तर का राग नहीं छोड़ता है, परमात्मा का ध्यान नहीं करता है,...** आहाहा! राग की भावना छोड़ता नहीं, स्वरूप की भावना करता नहीं।

तब कैसे मोक्षमार्ग पावे... तब सम्यग्दर्शन कैसे हो? जिसे राग संयुक्त ही माना और राग की ही भावना है, उसे सम्यग्दर्शन—रागरहित चैतन्य की दृष्टि नहीं होती। **तथा कैसे समाधिमरण पावे...** समाधि कही है न? उसमें धर्म-शुक्लध्यान लिया। समाधि अर्थात् धर्म-शुक्लध्यान। यहाँ समाधिमरण लिया है। जहाँ आत्मा आनन्द की लहर में झूलता देह छूटे। यह तो तड़पड़ाहट मारते (देह छोड़े)। समझ में आया? स्वरूप की दृष्टि-अनुभव नहीं, इसलिए मरते हुए जबरदस्ती फिर व्रत ले और फिर...

एक व्यक्ति कहता था। यहाँ एक दिगम्बर आया था। महाराज! इस समाधिमरण में तड़प-तड़पकर मरते होंगे? पंचम काल के जीव का ऐसा समाधिमरण हो? ऐसा पूछता था। क्योंकि जितनो को देखा, उतने मरते हुए तड़पड़ाहट मारते हों और हों साधु। कुछ सम्यग्दर्शन नहीं और बाह्य में सहनशीलता तो आयी नहीं अन्दर से। फिर सहन नहीं हो, व्याधि कठोर आवे। एक पूछता था। आया था। जितने देखे उतने या तो क्लेश हो, खेद हो, या यह हो। मरते हुए ऐसा समाधिमरण होगा पंचम काल का? ऐसा पूछता

था। भाई! आत्मा का ज्ञान नहीं और आत्मा का भान नहीं और सम्यक्त्व नहीं, वहाँ समाधिमरण होता ही नहीं। समझ में आया? वह तड़पते-तड़पते जबरदस्ती समय बिताता है। फिर पानी पिया नहीं जाता, तृषा लगी हो। अन्दर सम्यग्दर्शन तो है नहीं। आत्मा के स्वाद का तो भान नहीं। फिर तड़पड़ाहट मारकर पूरा तो करे। क्या करे? बाहर में कुछ भंग किया जाता है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मोक्षमार्ग पाता नहीं और समाधिमरण कैसे पावे? लो!

मुमुक्षु : समाधिमरण होने के बाद सम्यग्दर्शन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहित हो तो ही मरण।

मुमुक्षु : कितने भव हों?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ठीक, थोड़े हों। फिर भव ही नहीं है। सम्यग्दर्शन हुआ तो राग भी उसका नहीं तो भव कहाँ से होंगे? वह तो ज्ञाता-दृष्टा है।

मुमुक्षु : कितनी पर्याय होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न ... वह पर्याय ही उसकी नहीं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : द्रव्यदृष्टि के द्वारा...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, द्रव्यदृष्टि नहीं। ज्ञान में ऐसा है। राग और भव है, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। तो किसी को सात-आठ भव, पन्द्रह भव रह जाए। भगवती आराधना में है। यहाँ तो भव रह जाए, वह नहीं। वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। सात-आठ भव, पन्द्रह भव ... आठ मनुष्य के और सात देव के। (इस प्रकार) पन्द्रह। अच्छा आराधन हुआ हो। नहीं तो कोई संख्यात... बिना समकित में अकेले चौथे। अकेला समकित में मरे तो किसी को संख्यात भव भी हों। भगवती आराधना। अकेला सम्यग्दर्शन हो अनुभव और मरे और चारित्र न हो तो किसी को संख्यात भव भी हों। परन्तु उत्कृष्ट...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : संख्यात भव। चारित्र-रमणता न हो अन्दर। संख्यात।

मुमुक्षु : अर्धपुद्गल।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्धपुद्गल नहीं, नहीं। असंख्य भी नहीं। संख्यात—बहुत थोड़े। पाठ है भगवती आराधना में। संख्यात भव हों किसी को। यह तो किसी जीव की बात है। बाकी सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट आराधन हो, तब तो एकावतार करके मोक्ष ही जाए। ऐसा पाठ है। सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट आराधन, मध्यम आराधन, जघन्य आराधन। बहुत अधिक है। यह तो एक बात है। श्रीमद् तो जहाँ हो वहाँ पन्द्रह भव कहते हैं। सम्यग्दर्शन सहित मरे तो पन्द्रह भव में मोक्ष जाए। यहाँ वह सात-आठ भव गिने हैं, भगवती आराधना है। आठ मनुष्य के और सात देव के। यहाँ से देव जाए। अन्त में भी मनुष्य हो। आठ मनुष्य, सात देव। यह सब बाद में, वह तो आत्मा के ज्ञान में ज्ञेयरूप से है।

मुमुक्षु : लगातार सम्यग्दर्शन।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगातार-लगातार। ६६ सागर।

वस्तु की अन्तर दशा हुई, वह जाए कहाँ? आत्मा जाए तो वह जाए। आहाहा! लो! **मोक्षमार्ग पावे तथा कैसे समाधिमरण पावे?** लो! ७२ हुई, लो!

गाथा-७३

आगे कहते हैं कि पहिले मिथ्यात्व आदिक दोष छोड़कर भाव से नग्न हो, पीछे द्रव्यमुनि बने यह मार्ग है –

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए।।७३।।

भावेन भवति नग्नः मिथ्यात्वादीन् च दोषान् त्यक्त्वा।
पश्चात् द्रव्येण मुनिः प्रकटयति लिंगं जिनाज्ञया।।७३।।

मिथ्यात्व आदि दोष तज हो नग्न पहले भाव से।
फिर द्रव्य से मुनि लिंग प्रगटा जिन-निरूपित विधि से।।७३।।

अर्थ – **पहिले मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर और भाव से अन्तरंग नग्न हो, एकरूप शुद्ध आत्मा का श्रद्धान ज्ञान आचरण करे, पीछे मुनि जिन आज्ञा से द्रव्य से बाह्यलिंग प्रकट करे, यह मार्ग है।**

भावार्थ – **भाव शुद्ध हुए बिना पहिले ही दिगम्बररूप धारण कर ले तो पीछे भाव बिगड़े तब भ्रष्ट हो जाय और भ्रष्ट होकर भी मुनि कहलाता रहे तो मार्ग की हँसी करावे, इसलिए जिन आज्ञा यही है कि भाव शुद्ध करके बाह्यमुनिपना प्रगट करो।।७३।।**

गाथा-७३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि पहिले मिथ्यात्व आदिक दोष छोड़कर भाव से नग्न हो, पीछे द्रव्यमुनि बने यह मार्ग है – जरा जोर देते हैं। बाकी कहीं पहले चारित्र हो और फिर द्रव्यलिंग हो, ऐसा नहीं है। परन्तु यहाँ तो भाव का जोर देते हैं। सम्यग्दर्शन भाव पहला हो। उसमें से कोई ऐसा निकालता है कि पहले चारित्र हो, फिर सम्यग्दर्शन हो और साथ में चारित्र आवे। फिर सातवें में। पश्चात् छठवें में आ जाए तब विकल्प आया, तब फिर वस्त्र उतारे। ऐसा इसमें से निकालते हैं। ऐसा नहीं है। क्योंकि उसमें पहले कहा है न? **'भावेण होइ णग्गो'** भाव से पहले नग्न हो। दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

मुमुक्षु : वह तो मिथ्यात्व से।

पूज्य गुरुदेवश्री : **'त्ताई'** शब्द है न? **'मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं। पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि' 'पच्छा'** द्रव्य से मुनि प्रगट करना। **'लिंगं' 'जिणाणाए'** परन्तु इसका अर्थ यह है। प्रथम सम्यग्दर्शन के अनुभव पश्चात् द्रव्यलिंग धारण करे। यह अपने आ गया है पहले। पश्चात् ध्यान करे, तब भावलिंग होता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१२२, गाथा- ७३ से ७७, शनिवार, आसोज कृष्ण १०, दिनांक २४-१०-१९७०

अष्टपाहुड़ में से।

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए।।७३।।

अर्थ – पहिले मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर... अनन्त काल से मिथ्यात्व महापाप है, वह इसने कभी जाना नहीं, माना नहीं, छोड़ा नहीं। अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य द्रव्य आनन्दस्वरूप है। उससे विरुद्ध शरीरादि मेरे, पुण्यादि के परिणाम मेरे और अल्पज्ञ अवस्था वर्तमान उतना, वह मैं—यह मिथ्यात्वभाव, पापभाव, प्रथम अधर्मभाव यह है। यह दोष छोड़कर, पहले जिसे जन्म-मरण के दुःख से छूटना हो। चौरासी के अवतार में पामर मिथ्यात्व होकर चार गति में भटकता है। ऐसे प्राणी को कहते हैं, जिसे दुःख से मुक्त होना हो, तो पहले मिथ्यात्वभाव को छोड़ना। पाठ में मिथ्यात्व आदि शब्द है। अर्थात् मिथ्यात्व सम्बन्धी अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग वह भी पहले छोड़ना।

और भाव से अन्तरंग नग्न हो,... अन्तर राग बिना, विकल्प जो पुण्य-पाप को लगनी ऐसा दुःखरूप आकुलता है। उससे भिन्न भगवान आत्मा अपना स्वरूप है। ऐसा नग्न हो। लगनी, विकल्प की लगनी जिसमें नहीं। **नग्न हो, एकरूप शुद्ध आत्मा का...** मैं तो एक शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव वस्तु हूँ, पदार्थ हूँ, मेरी सत्ता राग से और पर से अत्यन्त भिन्न है। मेरी मौजूदगी, मेरी अस्ति अकेला पवित्र शुद्धभाव, एकरूप स्वभाव, एकरूप शुद्धात्मा का स्वभाव, उसका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करे। पहले इसमें शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन द्वारा आचरण करे, सम्यग्ज्ञान द्वारा आचरण करे। **पीछे मुनि जिन आज्ञा से द्रव्य से बाह्यलिंग प्रकट करे,...** समझ में आया?

यह शब्द पड़ा है न **आचरण करे,...** उसमें से कोई ऐसा निकालता है कि पहले सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र अन्दर में प्रगट करो। फिर द्रव्यलिंग धारण करे। ऐसा कहाँ है? चारित्र पहले आवे, वह दर्शनसहित आवे। स्वरूप आत्मा भगवान, शुद्ध आनन्द की प्रतीति, अनुभव, ज्ञान हो परन्तु स्वरूप का आचरण हो जाए चारित्र, तो फिर

नग्नपना, विकल्प बारह प्रकार, बीस प्रकार का होता है अपने को, उसकी फिर कुछ आवश्यकता नहीं। परन्तु यहाँ समझाना है। इसलिए शैली ऐसी ली है। **'मिथ्यात्वादीन् च दोषान् त्यक्त्वा'** मिथ्या अभिप्राय, अव्रत, कषाय आदि के भाव अर्थात् कि मिथ्यात्व सम्बन्धी के साथ अव्रत कषायादि जो है, उसकी भूमिका की... समझ में आया इसमें? यह सब किसकी बात करे? किसकी है? कभी जाति को जानने को, देखने को निवृत्त हुआ नहीं। आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं न सोलहवें वर्ष में। सोलह वर्ष। सोलह वर्ष की उम्र में। सात वर्ष में जातिस्मरण हुआ था। श्रीमद् राजचन्द्र।

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दु:खमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या?
इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिए,
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिए।

सोलह वर्ष में कहते हैं, सोलह! शरीर के सोलह वर्ष, हों! आत्मा को वर्ष-बर्ष है नहीं। सुना है न चीनुभाई यह? सात वर्ष में उनको जातिस्मरण हुआ। पूर्व भव का ज्ञान। श्रीमद् राजचन्द्र को। सोलह वर्ष में मोक्षमाला पुस्तक बनायी। मोक्षमाला। १०८ पाठ बनाये। माला के १०८ मोती होते हैं न, मोती? णमो अरिहन्ताणं... णमो सिद्धाणं... ऐसे १०८ मोती होते हैं और क्या कहलाता है वह? पारा। ऐसे १०८ पाठ सोलहवें वर्ष में बनाये। उसमें एक पाठ यह डाला। लिखते-लिखते उसमें स्याही ढुल गयी कहा, यह क्या? इसलिए फिर यह बनाया।

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या? मैं कौन हूँ? आत्मा हूँ। कहाँ से हुआ? कहाँ से हो? अनादि है। वास्तविक स्वरूप क्या है? उसका वास्तविक-यथार्थ स्वरूप क्या है? शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के रागरहित उसकी वास्तविक चीज़ शुद्ध आनन्दकन्द है वह तो। ऐसे स्वभाव की अन्तर्दृष्टि करके अनुभव करना, उसका नाम प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म है। समझ में आया? उसे यहाँ मिथ्यात्व का नाश होकर। मिथ्यात्व आदि शब्द है न? इसलिए अधिक कहते हैं। वीतराग आचरण चारित्र हो, ऐसा कहते हैं। यह कहना चाहते हैं परन्तु इसका अर्थ कुछ... वीतराग

चारित्र हो और फिर द्रव्यलिंग आवे... ऐसा कितने ही कहते हैं। पण्डितों का एक मत है। पहले आवे सातवाँ गुणस्थान-चारित्र। पश्चात् विकल्प आवे तो वस्त्र छोड़े। ऐसा नहीं होता। समझ में आया? है न? कहाँ? उसमें है। लो, ऐसा कहाँ है, पण्डितजी को पूछा। पत्रावली में है न। 'वर्णीजी पत्रावली' में है।

मुमुक्षु : उसमें आता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्णीजी पत्रावली है न, उसमें यह गाथायें आयी है। पहले ऐसा कहा कि मुनिपना आवे अन्दर चारित्र सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र वीतराग दशा (आवे), पश्चात् सातवें से नीचे उतरे, तब विकल्प आवे, तब वस्त्र छोड़े। द्रव्यलिंग धारण करे। पत्रावली में ऐसा आता है। ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

यहाँ तो मिथ्यात्व आदि को सम्बन्धित जो कषायें हैं, उन्हें जिसने छोड़ा है। मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी कषाय, वह जिसने आत्मा के आनन्दस्वरूप का भान होकर (छोड़ा है)। अरे! मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द का धाम स्वभाव सागर हूँ। राग का विकल्प वह मेरा नहीं, मुझमें नहीं, पलटती दशा वह मुझमें नहीं, अरे! पलटती अवस्था वर्तमान निर्मल वह भी मेरे त्रिकाल में नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म चीज़ कोई महँगी है। अरे! चौरासी के अवतार में एक जरा प्रतिकूलता आवे वहाँ चिल्लाहट मचाता है। ... हुआ। क्या कहलाता है वह? पिंडली चढ़े। कोलेरा। आहाहा! जवान-जवान लड़कों को कोलेरा चढ़े और पिंडली चढ़े।

मुमुक्षु : पैर के पिंडली चढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर के पिंडली। चिल्लाहट परन्तु... अरे रे! क्या कहते हैं कोलेरा? कोलेरा कहते हैं न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अपने हिन्दुस्तान में तो यह शब्द है। कोलेरा। कोलेरा। यह हुआ नहीं? रास्ते में। 'मांडल' से आते थे साथ में। उनके लोग थे। कितने ही होंगे? सौ-दो सौ होंगे? रास्ता जंगल। अब माँ-बाप और कुटुम्ब सब साथ में। छह-छह कोस में पड़ाव डाले। वहाँ जंगल। खाने का साथ में रखे ... खाये। छह-छह कोस चले।

उसमें दो लड़कों को कोलेरा हुआ जवान, रास्ते में। जंगल। दोनों जवान थे। कोलेरा हुआ। माँ-बाप कहे, भाई! हम क्या करें? हम यहाँ राज्य के नहीं। क्योंकि जंगल में कोई नहीं मिलता। यह कोई साथीदार साथ होवे तो छह-छह कोस में पड़ाव डाले और साथ में चावल या ऐसा हो तो खाये। थे या नहीं कोई? कौन था? तुम्हारे मूलचन्दभाई कोई साथ थे? साथ में थे?

मुमुक्षु : साथ में यात्रा...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि जंगल अकेला। ... बड़ी जोखिम है। सिर पर तकरार ... लड़ाई-लड़ाई। जापान की लड़ाई। बम पड़ते थे। वहाँ लोग भागे। दोनों युवक कोलेरा। माता-पिता कहे, भाई! हम यहाँ रहेंगे। यहाँ कोई साधन नहीं, खाने का-पीने का। एक-एक पानी का लोटा... चल निकले। वे रोवे। अरे! माँ! हम क्या करेंगे? एक के बाद एक मर गये होंगे। कोलेरा... जवान मनुष्य थे। बनिया के पुत्र। आहाहा! ऐसे मरण तो अनन्त बार हुए हैं। इसमें कहाँ विचार अपना इतिहास देखा है कहीं? समझ में आया? दुकान का धन्धा मांडा हो पचास वर्ष से तो उसका इतिहास खोजता है। पहले इतनी आमदनी थी, फिर इतनी थी, फिर इतनी थी। अब बढ़ गयी। धूल की बढ़ी नहीं अब। यह इतिहास खोजता है परन्तु यह अनन्त काल में कहाँ था? और कहाँ-कहाँ रहा हूँ? थोड़ी एक मनुष्यपने की सुविधा कुछ चमड़ी अच्छी, पैसा पाँच-दस लाख हुए और स्त्री-कुटुम्ब हुए, ऐसा हुआ। ओहोहो! अरे! मर गया। उस चीज़ में तू नहीं और तुझमें वह नहीं। आहाहा! अपनी चीज़ को...

यहाँ कहते हैं, एकरूप शुद्ध भगवान आत्मा मैं तो हूँ। राग का विकल्प दया, दान का उठे, वह भी मेरी चीज़ में नहीं। आगे कहेंगे। जरा आवे। समकिती को शुभभाव आवे अशुभ से छूटने को।

मुमुक्षु : आवे वह अलग विषय है और उसका मालिक हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : मालिक हो, स्वामी हो, उससे लाभ माने (तो मिथ्यादृष्टि है)। सम्यग्दृष्टि होने के पश्चात् अनुभव होकर फिर शुक्ल जो शुद्धभाव है, वह तो अत्यन्त आदरणीय है। और शुभभाव को अशुभ टालने के लिये समकिती को, हों! अज्ञानी को

अशुभ टालने के लिये है ही नहीं। क्योंकि उसे तो मिथ्यात्व, वह महा अशुभ पड़ा है। समझ में आया? आहाहा! भाई! तेरे मरण के रुदन तेरी माँ ने किये, उसके नीर के समुद्र अनन्त भर जाए, भाई! ऐसे तेरे मरण हुए हैं। तू भूल गया है। जरा किंचित् अच्छी सुविधा हुई बाहर... हो गया।

कहते हैं कि अब तो यह मौका-अवसर आया है, भाई! मिथ्यात्व आदि का नाश कर पहले। समझ में आया? महापाप, महादोष, महा अधर्म वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! पर में सुख है, ऐसी बुद्धि। अपने आनन्द से किंचित् अधिकपना पर में भासित हो। ऐसे लाभ, उत्साह (भासित हो) उसका अर्थ कि वह मुझसे अधिक चीज़ है और मैं उससे हीन हूँ। आहाहा! समझ में आया? वह सूक्ष्म मिथ्यात्व है। ऐसे मिथ्यात्वभाव और उसका अज्ञान छोड़ और ज्ञान कर, श्रद्धा कर, आचरण कर। आचरण अर्थात् समकित। अपना जो आचरण उतना लेना। विशेष आचरण करने जाए तो चारित्र हो जाए पहले और फिर द्रव्यलिंग अट्ठाईस मूलगुण हो, ऐसा नहीं हो सकता। कथन तो अनेक प्रकार के आते हैं। उसका अर्थ समझना चाहिए न? लो! यहाँ तो यह कहते हैं।

शुद्ध आत्मा का श्रद्धान ज्ञान आचरण करे, पीछे मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग... धारण करे। समझ में आया? यह तो लिखने की शैली किस अपेक्षा से है, ऐसा जानना चाहिए न? पहला सम्यग्दर्शन, आत्मा का अनुभव, आनन्दमूर्ति आत्मा है। सच्चिदानन्द -स्वरूप मैं हूँ। मुझमें अतीन्द्रिय आनन्द की खान है। अकेला शान्ति का सागर हूँ। आहाहा! मेरी शान्ति कहीं बाहर से आवे, ऐसी नहीं है। पैसे से नहीं, स्त्री से नहीं, पुत्र से नहीं, इज्जत में नहीं, मकान में नहीं, बँगले में कहीं नहीं। भगवानजीभाई! यह तो देखा है न वहाँ दो लाख कम करके भी बेचना पड़ा। आहाहा! किसका मकान? किसका बेचाण? भाई! तेरी जाति को देख तो सही। आहाहा! अन्दर वस्तु आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु है। उज्ज्वल-निर्मल कहा न? एकरूप शुद्ध आत्मा। विकल्प की अनेकता नहीं, शरीर की भिन्नता। उसका संयोग तेरी चीज़ में नहीं, भाई! तू तो आत्मा है।

उसे छोड़कर **पीछे मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग...** अर्थात् इसका अर्थ कि सम्यग्दर्शन और आत्मा का अनुभव करने के पश्चात् मुनिपना अंगीकार कर। ऐसा। समझ में

आया? **मुनि द्रव्य से बाह्यलिंग...** अट्ठाईस मूलगुण उसे प्रगट हो, तब उसे अट्ठाईस मूलगुण द्रव्यलिंगरूप से कहे जाते हैं। नग्नपना तो बाहर पर का। वह अट्ठाईस मूलगुण यह विकल्प आस्रव है। यह कहीं आत्मा के नहीं हैं। परन्तु भावस्वरूप का अनुभव होने के पश्चात् ऐसा एक अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प का द्रव्यलिंगपना आता है, उसे यहाँ द्रव्यलिंग प्रगट कर, ऐसा कहने में आया है। भारी बात, भाई! आहाहा!

पीछे मुनि जिन आज्ञा से द्रव्य से बाह्यलिंग प्रकट करे,... देखा! जिन आज्ञा प्रमाण अट्ठाईस मूलगुण उसे होते हैं। वीतराग परमात्मा की आज्ञा आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन-अनुभव होने के पश्चात् बाह्य लिंग में उसे अट्ठाईस मूलगुण होते हैं, पश्चात् स्वरूप में स्थिर हो, तब उसे आनन्द की चारित्रदशा प्रगट होती है। समझ में आया? **प्रकट करे, यह मार्ग है।** यह भगवान का मार्ग है। आहाहा! बालपन खेल में खोया, जवानी हुई स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देखकर रोया। तीनों में कुछ किया नहीं, मैं कौन हूँ? समझ में आया? यह पढ़ने में गया। ऐई! अतुलभाई! खेल में (या) तो पढ़ने में। दस-दस वर्ष, पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष तो पढ़ने में जाते हैं। आहाहा! पाप का पढ़ना। पाप का होगा या नहीं? आहाहा! अरे! तू तुझे नहीं पढ़ा। तुझे तेरी कीमत नहीं हुई। तूने कीमत दी पर को। एक बीड़ी ठीक से मिले, तम्बाकू हो तो आहा! नारायण मिल गये मानो! परन्तु क्या है?

एक अभी आया था। वह तम्बाकू होता है न तम्बाकू चूनावाला। ऐसे-ऐसे करता था। चूना गिरता है न? तम्बाकू, ऐसे थापण मारे। इसलिए क्या वह बारीक-बारीक उड़ जाए और फिर मुँह में यहाँ डाले। तम्बाकू, जिसमें कंथवा मर गये पड़े हों। कंथवा समझते हो? छोटे कीड़े। हमने नजरों से देखा है, हों! बहुत वर्ष की बात है। क्या कहलाता है? 'करमसद'। करमसद है न गुजरात में? वह वल्लभ पटेल का गाँव। एक बार मैं वहाँ गया था दुकान से माल लेने। बीड़ी। वरियाली की बीड़ी वहाँ होती है। तम्बाकू होता है न? वरियाली। वरियाली के रस में से वे लोग बीड़ी बनाते हैं। लेने गये थे। यह तो ६६-६७ की बात होगी। संवत् १९६६-६७। रात्रि में रहे थे। पाटीदार का गाँव था। सवेरे हम जंगल निकले थे। साथ में होवे न बताने को। वहाँ बीच में खेत था तम्बाकू का। तम्बाकू का खेत। ऐसे बताते थे कि इस जगह है। अरे! कहा, इसमें तो

कितने जीव हैं। वे मर जाए। तम्बाकू के पान होते हैं। तम्बाकू के पत्ते। उसमें कंथवा बैठे। उनकी (पत्तों की) तिखाश के कारण वहाँ मर जाए।

मुमुक्षु : ... पत्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : मर जाए। उसका चूरा करके यह छींकणी (बनाते हैं)। आहाहा! अब महिलाएँ भी सूँघना सीखी हैं। नहीं तो महिलाएँ नहीं सूँघती थीं। अब तो बीड़ी पीती हैं। आहाहा! अरे! भगवान! यह ...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ऐसे बाहर नजर पड़ने पर खबर तो पड़े न। आहाहा! अरे! भगवान! इसे नशा चढ़े उससे। तम्बाकू खाये, छींकणी सूँघे। पागल है। आहाहा! व्यसन अर्थात् कष्ट। वह तो सब कष्ट है। आहाहा!

भगवान आत्मा उस व्यसन रहित (वह तो) चैतन्य व्यसनी है। आहाहा! अरे! कभी करने का इसने किया नहीं। और नहीं करने का करके चौरासी के अवतार में भटका। बाहर की मिठास ऐसी अच्छी लगे। मकान, पाँच-पचास लाख की पूँजी, बँगला बड़ा हो, स्त्री-पुत्री रूपवान हो, एम.ए., एल.एल.बी. की डिग्री लगायी हो। ओहोहो! क्या है परन्तु? यह सब सोजा है। समायेगा तो दुःखी होगा। आहाहा! देखो न अपने रमाबहिन, नहीं? सोजा हुआ था। ब्रह्मचारी। सोजा समाया, उड़कर चला गया। बालब्रह्मचारी। रमा। 'तपसी' के भाई की... पहले उसने रास्ता ले लिया। यह तुम्हारी... सोजा चढ़ गया था। ... असाध्य हो गयी, तब खबर पड़ी। मैंने कहा, यह और क्या है? असाध्य। १९ से ३० वर्ष की उम्र। बालब्रह्मचारी। करशनभाई की पुत्री। चले गये। सोजा है यह सब बाहर के। साथ में इकट्ठे दुःखी-दुःखी... हाय... हाय... अरे रे! कोई हमारा नहीं? कौन तेरा था? सुन न। यहाँ तो शुद्ध भगवान आत्मा एक इसका है। आहाहा! उसके सामने देख और उसका आदर कर। राग और पर और पर्याय का आदर छोड़ दे। उसके सामने देखना छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जिन आज्ञा से प्रकट करे, यह मार्ग है। वीतराग की आज्ञा प्रमाण पहले

सम्यग्दर्शन प्रगट करके, मिथ्यात्व का नाश करके पश्चात् द्रव्यलिंग और अट्ठाईस मूलगुण आदि आवे। समझ में आया?

भावार्थ – भाव शुद्ध हुए बिना... भाव शुद्ध हुए बिना। भाव शुद्ध हुए बिना, ऐसा कहा है। पुण्य-पाप के भाव हुए बिना, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य का गंज आनन्द का धाम है न। उसकी श्रद्धा-ज्ञान के **भाव शुद्ध हुए बिना पहिले ही दिगम्बररूप धारण कर ले...** पहले से नग्न-दिगम्बर हो जाए। कहो, शान्तिभाई! शान्तिभाई थोड़े भाग्यशाली, वे रह गये। ये साधु होनेवाले थे न। शान्तिभाई। लींबड़ी के गृहस्थ व्यक्ति। स्त्री है, पुत्र है, माता-पिता हैं। दिगम्बर साधु हो जानेवाले थे। ... रह गये यह सुनकर।

मुमुक्षु : कहते थे...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वेग आ गया, वैराग्य आ गया। स्त्री याद नहीं। कितने वर्ष पहले की बात है? चार-पाँच वर्ष? सात वर्ष? सात वर्ष हुए। स्त्री को कहा, आज्ञा क्यों दी तुमने इसे? क्या करेंगे? सामने देखे नहीं, बैठे नहीं। आज्ञा दे दी। लड़का है, माता-पिता है, सब है। गृहस्थ है। समझ में आया? हैरान बात। ... ... सम्यग्दर्शन की तो खबर नहीं। इसलिए इसका सार पर में चला जाता है। ... मायाचार हो, रागादि विशेष हो जाए, स्वरूप के शुद्ध चैतन्य भगवान की भावना तो है नहीं।

भ्रष्ट होकर भी मुनि कहलाता रहे... भ्रष्ट हो और फिर भी अपनी पदवी तो मनवाया करे। यह तो महामिथ्यात्व का सेवन है। आहाहा! समझ में आया? **भ्रष्ट होकर भी मुनि कहलाता रहे...** जो पद हो, उसकी दशा पास में हो नहीं। फिर **मुनि कहलाता रहे तो मार्ग की हँसी करावे,...** मार्ग का हास्य हो, मस्करी हो कि आहाहा! कहाँ मुनि उसे वैराग्य चाहिए, वह नहीं होता। और सम्यग्दर्शन बिना पुण्य-पाप से हटकर वैराग्य ही नहीं हो सकता।

वैराग्य तो भगवान उसे कहते हैं कि शुभ-अशुभ जो राग उठे न पुण्य-पाप के विकल्प—राग, उससे हटकर स्वभाव में आना, उसका नाम वैराग्य है। समझ में आया? यह स्त्री, पुत्र छोड़ दे। छूटे ही पड़े हैं, कहाँ घुस गये थे अन्दर में? वे तो बेचारे

बाहर भटकते हैं। समझ में आया? इसमें तो पुण्य और पाप के भाव जो हैं शुभ-अशुभराग, भाव, उससे विरक्त होना, इसका नाम वैराग्य है। आहाहा!

सर्व भाव से उदासीन्य वृत्ति करी। आता है न श्रीमद् में?

उदासीन वृत्ति हो सर्व परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब,
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं।

श्रीमद् को लाखों का मोती का व्यापार था। मुम्बई में। परन्तु अन्तर में आत्मभान था। सम्यग्दर्शन हुआ था। समझ में आया? पश्चात् भावना भाते हैं कि अहो! हम मुनि कब होंगे? इस संसार का राग छूटकर हम मुनि कब होंगे? **उदासीन वृत्ति हो सर्व परभाव से,...** भाव शब्द से पुण्य-पाप के विकल्पादि सभी।

उदासीन वृत्ति हो सर्व परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब,
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं।
तन में किंचित् भी मूर्च्छा नहीं होय जब।

यह परपदार्थ की मूर्च्छा कैसी? मेरा भगवान तो पर से भिन्न है न। समझ में आया? उसके साधन की कसौटी में कब चढ़ूँगा और कब चारित्र लूँगा? ऐसी भावना गृहस्थाश्रम में समकिती भाता है।

कहते हैं, **भाव शुद्ध करके... इसलिए जिन आज्ञा यही है कि भाव शुद्ध करके बाह्यमुनिपना प्रगट करो।** सम्यग्दर्शन अनुभव करके पश्चात् मुनिपने की क्रिया प्रगट होती है, अट्ठाईस मूलगुण आदि बाह्य दिखते हैं, ऐसा कहते हैं।

गाथा-७४

आगे कहते हैं कि शुद्ध भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है, मलिनभाव संसार का कारण है -

भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो।।७४।।

भावः अपि दिव्यशिवसौख्यभाजनं भाववर्जितः श्रमणः।
कर्ममलमलिनचित्तः तिर्यगालयभाजनं पापः।।७४।।

है भाव दिव शिव सौख्य-भाजन भाव-विरहित श्रमण है।
पापी करम-मल मलिन मन तिर्यग्गति का पात्र है।।७४।।

अर्थ - भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है और भावरहित श्रमण पापस्वरूप है, तिर्यंचगति का स्थान है तथा कर्ममल से मलिन चित्तवाला है।

भावार्थ - भाव से शुद्ध है वह तो स्वर्ग-मोक्ष का पात्र है और भाव से मलिन है वह तिर्यंचगति में निवास करता है।।७४।।

गाथा-७४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि शुद्ध भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है, मलिनभाव संसार का कारण है - आहाहा!

भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो।।७४।।

अर्थ - भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है और भावरहित श्रमण... शुद्धभाव भगवान आत्मा, उसकी पवित्रता की परिणाम की दशा बिना पवित्र प्रभु आत्मा, उसकी पवित्रता के परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना **पापस्वरूप है,...** वह साधु हो परन्तु पापस्वरूप है, कहते हैं। बाह्य ... आहाहा! **तिर्यंचगति का स्थान है...** माया हो, कपट

हो, अपना पद ऊँचा बताने के लिये व्यर्थ प्रयत्न करे। शास्त्र में से भी ऐसा किसी प्रकार से उपाय निकालता हो कि हम कुछ हैं। शास्त्र में से ऐसी शोध-खोज करे। समझ में आया? भगवान कहते हैं कि **'तिरियालय'** तिर्यंच का स्थान / भाजन होता है। तिर्यंचगति में जाता है। आहाहा! समझ में आया?

गृहस्थाश्रम में समकिती हो तो भी मरकर देह छूटकर स्वर्ग में जाए। समझ में आया? संसार में सम्यग्दृष्टि हो, आत्मा का भान हो, आसक्ति का थोड़ा राग बाकी हो, स्त्री-कुटुम्ब का निमित्तपना भी हो, परन्तु अन्तर में पर से अत्यन्त स्वामीपना छूट गया है। वह राग और पर का मैं मालिक नहीं। समझ में आया? मैं तो मेरे आनन्द और ज्ञानस्वरूप का मालिक-स्वामी हूँ। आहाहा! ऐसी मिठास के समक्ष गृहस्थाश्रम में रहा हुआ भी समकिती देह छूटे तो स्वर्ग में जाए। समझ में आया? ऐसा यह कहते हैं कि तिर्यंच में जाए। तिर्यक् गति। पाठ तो ऐसा है कि **'तिरियालय'** शब्द है। तिर्यंच का आलय। आलय अर्थात् स्थान। उसका भाजन मकान। तिर्यंच के मकान में जाए। आहाहा! माया, कपट, कुटिलता, अधिकता बतलाना, पद नहीं और पद का अभिमान सेवन करना, वे सब तिर्यंचगति के स्थानक हैं। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने भी कितनी करुणा से...

कैसा है श्रमण? **कर्ममल से मलिन चित्तवाला है।** चित्त में तो मलिनता, अशुद्धता पड़ी है। पवित्रता तो प्रगट हुई नहीं। शुद्धता का भान नहीं। सम्यग्दर्शन नहीं। चित्त में मलिनता है। समझ में आया?

भावार्थ – भाव से शुद्ध है, वह तो स्वर्ग-मोक्ष का पात्र है... अर्थात् कि शुद्धता में अभी पूर्ण शुद्धता नहीं हो, तब तक धर्मी को भी ऐसा शुभराग रह जाता है। इसलिए उसके कारण स्वर्ग में जाता है। आहाहा! समझ में आया? **मोक्ष का पात्र है...** अपना भगवान आत्मा आनन्द और शुद्ध चैतन्यदल, उसकी स्थिरता और रमणता जो है, वह मोक्ष का कारण है। **भाव से मलिन है, वह तिर्यंचगति में निवास करता है।** लो! **भाव से मलिन है वह...** वह पशु गति में जाता है। माया से। आहाहा! समझ में आया?

गाथा-७५

आगे फिर भाव के फल का माहात्म्य कहते हैं –

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।
चक्कहररायलच्छी लब्भइ बोही सुभावेण।।७५।।

खचरामरमनुजकरांजलिमालाभिश्च संस्तुता विपुला।
चक्रधरराजलक्ष्मीः लभ्यते बोधिः सुभावेन।।७५।।

नर अमर विद्याधरों से संस्तुत करांजलि माल से।
चक्री विशाल विभूति बोधि प्राप्त हो सत्–भाव से।।७५।।

अर्थ – सुभाव अर्थात् भले भाव से मंदकषायरूप विशुद्धभाव से चक्रवर्ती आदि राजाओं की विपुल अर्थात् बड़ी लक्ष्मी पाता है। कैसी है? खचर (विद्याधर), अमर (देव) और मनुज (मनुष्य) इसकी अंजुलिमाला (हाथों की अंजुलि) की पंक्ति से संस्तुत (नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य) है और यह केवल लक्ष्मी ही नहीं पाता है, किन्तु बोधि (रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग) भी पाता है।

भावार्थ – विशुद्ध भावों का यह माहात्म्य है।।७५।।

गाथा-७५ पर प्रवचन

आगे फिर भाव के फल का माहात्म्य कहते हैं –

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।
चक्कहररायलच्छी लब्भइ बोही सुभावेण।।७५।।

अर्थ – सुभाव अर्थात् भले भाव से मंदकषायरूप विशुद्धभाव से... समकिती जीव को राग की मन्दता भाव होता है, इसलिए उसे चक्रवर्ती आदि पद मिलते हैं, ऐसा कहते हैं। अज्ञानी की बात है नहीं। अज्ञानी को मन्द भाव हो सकता ही नहीं। क्योंकि मिथ्यात्वभाव की तीव्रता है न वहाँ तो। और उसे चक्रवर्ती तीर्थंकरपद के भाव नहीं हो

सकते। सम्यग्दृष्टि है, चारित्र नहीं ले सकता। आत्मा के स्वरूप का रस, आनन्दरस आया है। परन्तु आनन्द में लीनता की चारित्रदशा प्रगट नहीं हुई। आहाहा! तो उसे मन्द कषाय के परिणाम शुभभाव, हों शुभ! विशुद्ध अर्थात् शुभ। उससे चक्रवर्ती हो। छह खण्ड का स्वामी चक्रवती हो। शुभभाव के कारण, हों! धर्म की शुद्धता से तो मुक्ति होती है।

चक्रवर्ती आदि राजाओं की विपुल अर्थात् बड़ी लक्ष्मी पाता है। चक्रवर्ती आदि राजाओं की विपुल अर्थात् बड़ी लक्ष्मी पाता है। धर्मी को आत्मलक्ष्मी का बहुमान है, इससे उसे राग बाकी रह जाए, इसमें बाहर की लक्ष्मी भी उसे प्राप्त होती है। अज्ञानी को न हो ऐसी लक्ष्मी ज्ञानी को प्राप्त होती है। पूर्व में ज्ञान के भान में की हुई बात है, हों! वर्तमान ज्ञानी तो सातवें नरक में भी हो, लक्ष्मी न हो, परन्तु उसके फलरूप से लक्ष्मी पाता है। **खचर (विद्याधर),...** ख-ख। ख अर्थात् आकाश। आकाश में चरनेवाले विद्याधर मनुष्य होता है। वैचाक पर्वत पर।

अमर (देव) और मनुज (मनुष्य)... अमर है न? देव को अमर कहा जाता है न? जिथरी को अमरगढ़ नाम दिया न अभी। मरने के... क्षय रोग... अमरगढ़ करो। आहाहा! हमारे पत्र आया है। कहा न एक भाई वहाँ बैंक का आदमी है कोई। बेचारा छोटी उम्र का। आता था, रविवार को यहाँ बहुत आता था। चालीस वर्ष की उम्र होगी। मुझे ३०-३५-३२ जैसी लगती थी। दोनों आँख छह महीने में गयी। कहाँ गये भाई? तुमने ही कहा नहीं? कल याद किया था तुमको। कल पत्र आया है उसका। महाराज! मुझे दर्शन करना है। आँख तो आनी होगी तो आयेगी परन्तु अब... आता था बेचारा रविवार को, हों! प्रतिदिन। बैंक में है। टीबी की दवा की होगी न कुछ तो दवा की गर्मी बहुत हुई तो गरम लगती है। टीबी में था। दोनों आँखें गयी। आहाहा! वह जड़ की अवस्था क्षण में पलटे। समझ में आया? यह इन्द्रियाँ एक-एक इन्द्रिय क्षण में पलट जाए। अतीन्द्रिय भगवान तो ध्रुव का ध्रुव ऐसा का ऐसा है। समझ में आया? ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के भान में तो अतीन्द्रिय परिणति होती है। बाकी रह जाए राग जरा मन्द कषाय, तो कहते हैं, यह सब उसके हाथ जोड़े, ऐसा कहते हैं।

समकिती शुभभाव से चक्रवती आदि होता तो **(मनुष्य) इसकी अंजुलिमाला**

(हाथों की अंजुलि) की पंक्ति से संस्तुत (नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य) है... ऐसे हाथ जोड़े। लाखों-करोड़ों मनुष्यों में। सम्यग्दृष्टि—आत्मा के भानवाला। कुछ पुण्य बाकी रह गया, उसमें चक्रवर्ती आदि हो तो करोड़ों-करोड़ों, अरबों मनुष्य ऐसे (हाथ जोड़े)। समझ में आया? आहाहा! है न, पाठ में है न? **'चक्रधरराजलक्ष्मीः लभ्यते बोधिः' 'मरमणुयकरंजलिमालाहिं'** ऐसा कहते हैं। हाथ की माला। करोड़ों मनुष्य (बोले), खम्मा अन्नदाता! अज्ञानी को ऐसा साधन नहीं हो सकता। ऐसा कहते हैं, पुण्य भी समकिती के ही ऊँचे होते हैं। आहाहा!

जिसे आत्मा का भान है, आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है। यह देह तो मिट्टी-हड्डियाँ, चमड़ी है। यह तो राख हो जाएगी। राख है और राख होगी। भगवान आत्मा कहीं भस्म हो ऐसा नहीं है। वह तो आनन्द का धाम ध्रुव है। ऐसा जिसे भान (हुआ है), उसे जो शुभभाव में पुण्य बँध जाए, तो कहते हैं कि बड़े-बड़े राजा, विद्याधर, देव और मनुष्य अंजुलिमाला—ऐसे हाथ की माला। हाथबन्ध करे। समझ में आया? पद्मनन्दि में कुछेक आता है। हाथ जोड़े भगवान को, ऐसा आता है। स्तुति में आता है। नहीं? ऋषभदेव में आता है या दूसरे (में)? दोनों हाथ जोड़े, इसलिए स्वर्ग भी मिले और मोक्ष भी मिले। उसे दोनों मिले। ऐसा कुछ लिखा है। पद्मनन्दि (पंचविंशति) में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब। ... पहले-पहले। अभी कोई मिथ्यादृष्टि हो। पहले सम्यग्दर्शन बिना वह शलाकापुरुष बनता नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहले सम्यग्दर्शन न हो तो वह पद मिलता ही नहीं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, ये सब सम्यग्दृष्टि के (पुण्य से पदवी मिलती है)। क्योंकि ऐसी बड़ी पदवी का पुण्य तो धर्मी को ही होता है। समझ में आया?

अनाज सैकड़ों पके तो उसके पास उसकी घास तो ऊँची पके। घास भी ऊँची होती है। राडा। राडा समझते हो? बाजरा के पकते हैं न? भाठा। (संवत्) १९७३ में देखा था मैंने। ७३, ७३। कितने वर्ष हुए? २६ और २७=५३ वर्ष हुए। दामनगर में

चातुर्मास था। बहुत वर्षा। छह महीने वर्षा। वहाँ से उठे और 'आणोदरी' जाते थे 'आणोदर'। अपने हैं न वह ब्राह्मण ? रसोईया है भाई। उण्डा उसका गाँव है। परन्तु रास्ते में देखो तो... ओहोहो ! कितना ऊँचा भाठा और कितना डुण्डा। उण्डा, ७३ की बात है। ५३ वर्ष पहले की बात है। बहुत पाक था। वर्षा ऐसी आयी न। दो-दो सिर डूबे उतने डण्ठल बड़ा ऊँचा। बाजरे का, ज्वार का और दाना तो पके परन्तु डण्ठल ऐसे मोटे।

इसी प्रकार धर्मी को आत्मा का ज्ञान और आत्मा का अनुभव हो, उसमें से तो दाना पके। मोक्ष के मोती। परन्तु अन्दर दया, दान के कोई विकल्प-शुभभाव रह जाए तो उससे उसे राग हो, वह पुण्य बँध जाए, उससे लक्ष्मी आदि बाहर की, अज्ञानी को न मिले, ऐसी उसे मिलती है। कहो, समझ में आया ? यह तो स्वरूप बताते हैं, हों ! प्रसन्न होने के लिये यहाँ बात नहीं है। कहो, ऐई ! प्रसन्न होने की बात नहीं कि आहाहा ! धूल भी प्रसन्न (करने जैसी नहीं)। जो पुण्य से प्रसन्न हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। पुण्यभाव हो, वह मेरा है, मुझे लाभ होता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसकी यह बात है नहीं।

अंजुलिमाला (हाथों की अंजुलि) की पंक्ति से संस्तुत (नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य) है... लो ! **और यह केवल लक्ष्मी ही नहीं पाता है, किन्तु बोधि (रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग) भी पाता है।** लो ! सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, वह आगे बढ़कर चारित्र भी अंगीकार करे ही वह। समझ में आया ? शुद्धभाव सम्यक् चैतन्य की दृष्टि और ज्ञान हुआ है, वह आगे बढ़कर चारित्र लेनेवाला ही है। स्वरूप की रमणता प्रगट करने का। समझ में आया ? इसलिए कहा है न ? 'दंसण भट्ठा न सिझंति'। समकित से भ्रष्ट है, उसकी मुक्ति नहीं है। चारित्र भ्रष्ट की मुक्ति है। 'चारित्र भट्ठा सिझंति'। क्योंकि ख्याल में है कि मुझे चारित्र नहीं। मुझे शुभ और अशुभभाव निर्बलता के कारण आते हैं। उसका ज्ञाता (रहता है)। आते हैं, होते है, ऐसा जानता है। समझ में आया ? इससे उसका आदर है नहीं। इसलिए चारित्र कब लूँ। देखो !

श्रीमद् में आया है न ? देखो न ! गृहस्थाश्रम छोड़ नहीं सके। श्रीमद् को लाखों रुपये का मोती का व्यापार था। धन्धा बड़ा। उदास-उदास। व्यापार में उनकी अन्दर रुचि नहीं। जरा विकल्प हो, लाखों का मोती का व्यापार था। यह भावना की, देखो न !

'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा? कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब?' देखो! बाह्य और अभ्यन्तर दोनों। है या नहीं इसमें?

कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब?
सर्व सम्बन्धों का बन्धन तीक्ष्ण छेदकर
सर्व सम्बन्धों का बन्धन सर्व छेदकर
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पन्थ जब।

यह व्यापार के धन्धे, यह राग, यह राग। आहाहा! समझ में आया? विचरूँगा महत्पुरुष—वीतराग परमात्मा और सन्तों की आज्ञा प्रमाण हम कब चारित्र अंगीकार करेंगे? ऐसी भावना तो धर्मी को होती है। इसलिए उसे बोधि लाभ मिलता है, ऐसा कहते हैं। शुद्धभाववाले सम्यग्दृष्टि को आगे चारित्र की प्राप्ति होती ही है। पुण्य के कारण से लक्ष्मी आदि मिलती है।

भावार्थ – विशुद्ध भावों का यह माहात्म्य है। लो! विशुद्धभाव सम्यग्दर्शन -सहित का पुण्य विकल्प भाव, इसके कारण... समझ में आया? उसमें आता है न? नियमसार में नहीं आता? हे आत्मा! तू परमात्मा की भक्ति करेगा तो तुझे सहज लक्ष्मी राज आदि मिलेंगे। एक श्लोक में आता है। भाई! कलश में आता है। पद्मप्रभमलधारिदेव नियमसार। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि महासमर्थ। हे मुनि आत्मा! तुझे भगवान का मार्ग अन्दर बैठा और स्वरूप का साधन है तो बाहर की लक्ष्मी की इच्छा किसलिए करता है? स्वर्ग हो और रानी हो, वह धूल हो... यह तो सहज आकर मिलेगी वीतराग के मार्ग में। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी को नहीं मिलता, ऐसे पुण्य का फल ज्ञानी को बाहर दिखता है। है उसका ज्ञाता। आहाहा! मुझे मिला है पुण्य और मैं फल भोगता हूँ, यह धर्मी को नहीं होता। आहाहा!

गाथा-७६

आगे भावों के भेद कहते हैं –

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरउद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं।।७६।।

भावः त्रिविधप्रकारः शुभोऽशुभः शुद्धः एव ज्ञातव्यः।
अशुभश्च आर्त्तरौद्र शुभः धर्म्यं जिनवरेन्द्रैः।।७६।।

सब शुभ अशुभ अरु शुद्ध त्रय विध भाव जिनवर ने कहे।
हैं आर्त-रौद्र अशुभ धर्म-ध्यान है सुभ जिनवर कहें।।७६।।

अर्थ – **जिनवरदेव ने भाव तीन प्रकार का कहा है – १. शुभ, २. अशुभ और ३. शुद्ध। आर्त और रौद्र ये अशुभ ध्यान हैं तथा धर्मध्यान शुभ है।।७६।।**

गाथा-७६ पर प्रवचन

आगे भावों के भेद कहते हैं – भाव का विशेष स्वरूप बताते हैं। जो बताना है न इस भावपाहुड़ में। कहते हैं, यह शुद्धभाव कहना है। उसमें शुभभाव थोड़ा आवे अवश्य। परन्तु उसमें अशुभ का निषेध है और शुद्ध का आदर है। शुभ बीच में आता है। कथंचित् व्यवहार से उसे उपादेय कहा जाता है। लिखेंगे ७७ में।

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरउद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं।।७६।।

अर्थ – जिनवरदेव ने भाव तीन प्रकार का कहा है – वीतराग परमात्मा सर्वज्ञदेव, सौ इन्द्र के पूजनीक परमात्मा समवसरण के मध्य में भगवान ने तीन प्रकार के भाव कहे। **१. शुभ,...** पुण्य परिणाम। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह शुभभाव पुण्य। **२. अशुभ...** हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, असत् आदि यह अशुभ। **३. शुद्ध।** इस पुण्य-पाप के राग से रहित आत्मा के आश्रय

से प्रगट हुआ (भाव)। शुद्ध स्वरूप भगवान के अवलम्बन से प्रगटे, वह शुद्ध। परद्रव्य के अनुसार प्रगटे, वह अशुद्ध। उस अशुद्ध के दो प्रकार। शुभ और अशुभ। अभी तो पहले समझ का ठिकाना नहीं होता। उसे दृष्टि कब प्रगटे? कब वह धर्म करे और कब जन्म-मरण मिटे? आहाहा! बड़ी ... पड़ी है अनादि से संसार।

आर्त और रौद्र ये अशुभ ध्यान हैं... लो! **तथा धर्मध्यान शुभ है।** उसमें शुद्ध एकदम वह ध्यान आत्मा का है। अब कहते हैं, देखो यह।

गाथा-७७

सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदि जिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह।।७७।।

शुद्धः शुद्धस्वभावः आत्मा आत्मनि सः च ज्ञातव्यः।
इति जिनवरैः भणितं यः श्रेयान् तं समाचर।।७७।।

है शुद्ध शुद्ध-स्वभाव आतम आत्मा में जानना।
जिनवर कहें कल्याण जिसमें है वही स्वीकारना।।७७।।

अर्थ **– शुद्ध है, वह अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है, इस प्रकार जिनवरदेव ने कहा है, वह जानकर इनमें जो कल्याणरूप हो, उसको अंगीकार करो।**

भावार्थ **– भगवान ने भाव तीन प्रकार के कहे हैं – १. शुभ, २. अशुभ और ३. शुद्ध। अशुभ तो आर्त व रौद्र ध्यान हैं, वे तो अति मलिन हैं, त्याज्य ही हैं। धर्मध्यान शुभ है, इसलिए यह कथंचित् उपादेय है, इससे मन्दकषायरूप विशुद्ध भाव की प्राप्ति है। शुद्ध भाव है, वह सर्वथा उपादेय है, क्योंकि यह आत्मा का स्वरूप ही है। इस प्रकार हेय, उपादेय जानकर त्याग और ग्रहण करना चाहिए, इसीलिए ऐसा कहा है कि जो कल्याणकारी हो, वह अंगीकार करना – यह जिनदेव का उपदेश है।।७७।।**

गाथा-७७ पर प्रवचन

सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदि जिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह।।७७।।

अर्थ – शुद्ध है, वह अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है, इस प्रकार जिनवरदेव ने कहा है,... देखो! क्या कहते हैं? शुद्धभाव भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति, उसके भानवाला जो शुद्धभाव, वह तो अपने से, अपने में, अपने आश्रय से होता है। उसमें कुछ पर का आश्रय और विकल्प, निमित्त की आवश्यकता नहीं है। **शुद्ध है, वह अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है,...** अन्दर आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शुद्धभाव ही है। उसका भान होना, पहिचान होना, प्रतीति होना, वह शुद्धभाव है। वह तो अपना है, अपने में है। लो! वह कहीं परद्रव्य के निमित्त को अनुसरना नहीं है। परद्रव्य के अनुसार हो तो पुण्य और पाप हो, शुभ-अशुभभाव हो। शुद्धभाव तो अपना भगवान आत्मा अन्दर है, ज्ञान के प्रकाश का पूर **चैतन्य** का नूर अन्दर आत्मा। समझ में आया?

'सुद्धं' पाठ है न? **'सुद्धं सुद्धसहावं'** ऐसा है। **'अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।'** ऐसा। शुद्ध वस्तु। पुण्य-पाप के विकल्प के, राग के भाव से रहित पवित्रता के परिणामवाला भाव। वह **अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है,...** वह तो शुद्ध स्वभाव अपने में अपने से है। **इस प्रकार जिनवरदेव ने कहा है,...** जिनवरदेव ने-भगवान ने-परमात्मा ने... अहो! सर्वज्ञ परमेश्वर, अनन्त सिद्ध, उन्हें वन्दन (करे)—स्वीकारे, उन्हें आदर करे। भगवान ऐसा कहते हैं, देखो! समझ में आया?

जिनवरदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव। जिनकी सभा में सिंह और बाघ, बकरे की भाँति बैठे हों। समझ में आया? बड़ी धर्मसभा हो। करोड़ों देव, मनुष्य, बाघ और सिंह, नाग। काले नाग बड़े, ५०-५० हाथ के लम्बे जंगल में से चले आवें। ... करते-करते भगवान के समवसरण में (आवे)। भगवानजीभाई! ऐसा काला नाग देखे वहाँ हाय... हाय... मर जाऊँगा। ऐसे नाग नरम होकर भगवान की सभा में आवे, हों! आहाहा!

यहाँ कहा था न? बहुत वर्ष पहले अपने ऑफिस में बाबूभाई, उनका बारह वर्ष का लड़का था। बाबूभाई अपने ऑफिस में है। दुकान यहाँ है न? दुकान थी। बहुत वर्ष हो गये। ज्येष्ठ शुक्ल चौथ थी। ज्येष्ठ शुक्ल चौथ। बहुत वर्ष हो गये। ... लड़का दुकान पर बैठा था। यहाँ गाँव में। पैर ऐसे लम्बे करके ऐसे-ऐसे पैर हिलाता था। उसमें एक बड़ा सर्प-नाग रहता था उनके मकान में। धूलवाला मकान सही न पोला, वहाँ नाग रहता था। वह निकला। वह (लड़का) पैर ऐसे-ऐसे हिलाता था। डस लिया साथ में बोला, मैं मर जाऊँगा, मैं नहीं जीयूँगा। नाग देखा न, ऐसा बड़ा नाग था। नाग तो डसकर वापस अन्दर चला गया। गाँव में गरुड़ रहता था... क्या कहलाता है? गारुडी बुलाया। यहाँ से डालकर ले गये वहाँ मर गया, रास्ते में मर गया। ... डसा न, वहाँ मैं अब नहीं जीयूँगा, मर जाऊँगा। यह तो बेचारा पामर जैसा है, हों! वे सब नाग। वे जंगली नाग... आहाहा! समवसरण परमात्मा की तीर्थंकर की धर्मसभा हो, वहाँ चले आते हैं, हों! सैकड़ों-हजारों सर्प चारों ओर से। सिंह और बाघ। उनके मध्य में भगवान की वाणी ऐसी निकलती है, कहते हैं। जिनवर ने ऐसा कहा है कि शुद्धभाव तुझमें तुझसे तुझमें है। कहो, समझ में आया?

जिनवरदेव ने कहा है, वह जानकर... अपना शुद्धस्वभाव अपने ही में है,... स्वयं ही भगवान शुद्ध है, उसकी दृष्टि करने से परिणाम में शुद्धता प्रगट होती है। समझ में आया? **वह जानकर इनमें जो कल्याणरूप हो, उसको अंगीकार करो।** कल्याणरूप तो शुद्धभाव है। ऐसा कहते हैं। पाठ में तो इतना लिया है। अर्थ में जरा समझायेंगे अभी थोड़ा। **कल्याण...** है न पाठ? **'जं सेयं तं समायरह।'** तुझे श्रेय लगे, उसे आदर अब। आहाहा!

भावार्थ - भगवान ने भाव तीन प्रकार के कहे हैं - लो! भगवान ने भाव तीन प्रकार के कहे। अर्थात् भगवान ने। परमात्मा जिनेन्द्रदेव समवसरण में चक्रवर्ती जहाँ बकरे की भाँति (बैठा हो)। जिसे छियानवें हजार पद्मिनी जैसी रानियाँ हों। प्रभु! आपकी चैतन्य वैभव ऋद्धि वह हमें नम्रीभूत करती है। यह हमारा वैभव तुच्छ है। वे भगवान कहते थे कि तीन प्रकार के भाव हैं। शुभ, अशुभ और शुद्ध।

अशुभ तो आर्त व रौद्र ध्यान हैं,... अत्यन्त पाप के परिणाम हैं। वे तो छोड़ने

योग्य हैं। **वे तो अति मलिन हैं, त्याज्य ही हैं। धर्मध्यान शुभ है, इसलिए यह कथंचित् उपादेय है,...** सम्यग्दृष्टि को... अज्ञानी की यहाँ बात नहीं। सम्यग्दर्शन में शुद्धभाव है, उसमें रह नहीं सकता; इसलिए शुभभाव होता है। अशुभ टालने की अपेक्षा से कथंचित् उपादेय है। निश्चय से तो आदरणीय नहीं। व्यवहार है न? परन्तु व्यवहार से अशुभ से बचता है अथवा अशुभ कहने की भाषा है। अशुभ होता नहीं उस अवसर में। इसलिए इतना अशुभभाव घटता है, इस अपेक्षा से कथंचित् उपादेय कहा गया है, व्यवहारनय से, हों! निश्चय से तो आदरणीय है ही नहीं तीन काल में। आहाहा!

इससे मन्दकषायरूप विशुद्ध भाव की प्राप्ति है। राग की मन्दता। लो! अब इसे दुःख मानना। राग की मन्दता का भाव विशुद्ध, वह दुःख। परन्तु पाप के परिणाम की अपेक्षा मन्द दुःख है, मन्द आकुलता है। चारित्रमोह के पाप के परिणाम की अपेक्षा से, हों! मिथ्यात्व के परिणाम की अपेक्षा से तो उसकी कुछ गिनती नहीं। वह तो महापाप, मिथ्यात्व ही महापाप है। अशुद्ध तो वह है।

शुद्ध भाव है, वह सर्वथा उपादेय है,... वह तो अत्यन्त अंगीकार करके स्वरूप में रमनेयोग्य, वह चीज़ है। **क्योंकि यह आत्मा का स्वरूप ही है।** वह तो आत्मा का स्वरूप है। शुभभाव कोई आत्मा का स्वरूप नहीं। परन्तु अशुभभाव न हो, तब ऐसा शुभभाव होता है। व्यवहार से उसे आदरणीय कहा है। **इस प्रकार हेय, उपादेय जानकर त्याग और ग्रहण करना चाहिए,...** शुद्ध स्वरूप उपादेय है, शुभ व्यवहार से उपादेय है। निश्चय से तो हेय है। अशुभ तो सर्वथा हेय है। **जो कल्याणकारी हो, वह अंगीकार करना – यह जिनदेव का उपदेश है।** तेरा कल्याण जिसमें हो, उसे अंगीकार कर। अकल्याण भाव को छोड़। ऐसा मनुष्यदेह मिला, (उसमें) करने का यह कर। ऐसा अन्त में कहा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-७८

आगे कहते हैं कि जिनशासन का इस प्रकार माहात्म्य है –

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुवणसारं बोही जिणसासणे जीवो।।७८।।

प्रगलितमानकषायः प्रगलितमिथ्यात्वमोहसमचित्तः।
आप्नोति त्रिभुवनसारं बोधिं जिनशासने जीवः।।७८।।

है नष्ट मान कषाय मिथ्या मोह नष्ट सुसभ्य जो।
वह जीव जिन-शासन में त्रिभुवन-सार बोधि प्राप्त हो।।७८।।

अर्थ – यह जीव 'प्रगलितमानकषायः' अर्थात् जिसका मान कषाय प्रकर्षता से गल गया है, किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है और जिसके मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी नष्ट हो गया है इसीलिए 'समचित्त' है, परद्रव्य में ममकाररूप मिथ्यात्व और इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप रागद्वेष जिसके नहीं है, वह जिनशासन में तीन भुवन में सार ऐसी बोधि अर्थात् रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग को पाता है।

भावार्थ – मिथ्यात्वभाव और कषायभाव का स्वरूप अन्य मतों में यथार्थ नहीं है। यह कथन इस वीतरागरूप जिनमत में ही है, इसलिए यह जीव मिथ्यात्व कषाय के अभावरूप तीनलोक में सार मोक्षमार्ग जिनमत के सेवन ही से पाता है, अन्यत्र नहीं है।।७८।।।

प्रवचन-१२३, गाथा-७८ से ७९, रविवार, असोज कृष्ण ११, दिनांक २५-१०-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की ७८वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जिनशासन का इस प्रकार माहात्म्य है** – जैनशासन अर्थात्? आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसकी वीतरागी दृष्टि, ज्ञान और रमणता होना, वह जैनशासन है। वह जैनशासन मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग अर्थात् अनन्त दुःख से मुक्त होने का और अनन्त आनन्द की प्राप्ति होने का यह

एक उपाय है। यह जैनशासन अर्थात् वस्तु का स्वरूप। सच्चिदानन्द आत्मा जाननस्वरूप ज्ञान, उसकी अन्तर में रागादि से विकल्प से भिन्न पड़कर अधिकपने आत्मा को भिन्न अनुभव करना, इसका नाम दुःख से मुक्त होने का उपाय है। इस जैनशासन का माहात्म्य क्या है, वह कहते हैं।

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुवणसारं बोही जिणसासणे जीवो।।७८।।

यह जीव जो है, वह जैनशासन में वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द था, उन्होंने जो मार्ग कहा, उस जिनशासन में तीन भुवन में वह मार्ग सार है। **ऐसी बोधि अर्थात् रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग...** जिनशासन का सार बोधि। बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। स्वभाव-अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव भगवान आत्मा का अन्तर विश्वास और अनुभव की प्रतीति, उसके सम्बन्धी का ज्ञान और उसमें लीनतारूप चारित्र, इस दर्शन-ज्ञान-चारित्र को बोधि कहने में आता है। यह जैनशासन में तीन भुवन में सार है।

बोधि अर्थात् रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग... उसे प्राप्त करता है। परन्तु कैसा होता हुआ प्राप्त करता है? आत्मा का दुःख से मुक्त होने का ऐसा मार्ग और परम आनन्द की प्राप्ति होने का मार्ग, जो रत्नत्रयरूप बोधि मोक्षमार्ग किस प्रकार प्राप्त करता है? **'प्रगलितमानकषायः' अर्थात् जिसका मान कषाय प्रकर्षता से गल गया है,...** जिसे आनन्द के आनन्दस्वभाव के अतिरिक्त कोई भी पुण्य-पाप का विकल्प, शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के फल में से जिसका अहंपना टल गया है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दधाम के अतिरिक्त—आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त कोई भी राग, दया, दान, व्रत, विकल्प उसका बन्धन पुण्य, उसका फल यह बाहर की चीज़े, कहीं भी आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त किसी छोटी में छोटी चीज़ में विशेषता / अधिकता भासित हो तो वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? क्योंकि भगवान आत्मा आनन्दस्वभाव के अतिरिक्त कोई इस जगत में उससे अधिकपना, विशेषपना कोई चीज़ है ही नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि जिसे प्रकर्ष मान गल गया। आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप के भान में जिसे चाहे जिस प्रकार का पुण्य का शुभराग हो, उससे लेकर यह मैं हूँ, यह पुण्यभाव मैं हूँ, शरीर की सुन्दरता आदि की अधिकता देखकर उसे ऐसा हो जाए कि यह भी मुझे ठीक है, वह सब मिथ्यात्व का अभिमान है। समझ में आया? वह अभिमान जिसके अन्दर से, अपने आनन्दस्वभाव के भान और राग और पर से भिन्न / अधिक / पृथक् जानने से परसमय का अभिमान, अहंकार, गर्व जिसे गल गया है। समझ में आया? आहाहा! एक आत्मा आनन्दस्वरूप, उसके अतिरिक्त किसी चीज़ में उसे अधिकपना, मेरापना, अहंपना भासित नहीं होता। समझ में आया? उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

श्रोता : यह अहं.....

पूज्य गुरुदेवश्री : मान का अर्थ पर मैं, ऐसा। राग मैं, पुण्य मैं, व्यवहार मैं—यह सब अभिमान, वह मिथ्यात्व का अभिमान है। आहाहा! समझ में आया? मान शब्द से यह मैं—अहं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी मैं। यह मान-अभिमान है। अनन्तानुबन्धी का मान। आहाहा! समझ में आया? जो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसका अहंपना—यह मैं, ऐसा छोड़कर, उसके अतिरिक्त के किसी भी पुण्य के विकल्प से, राग से लेकर किसी भी चीज़ का अहं—यह मेरी है, ऐसा भासित हो, वह अनन्त संसार के कारण का मिथ्यात्व का मान है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि मोक्ष का मार्ग अर्थात् दु:ख से मुक्त होने का उपाय। अनादि से अज्ञानी प्राणी दु:खी है। यह राग का विकल्प या शरीर, वाणी या पुण्य के फल के संयोगों की ठाठ-बाट जमी हो, उसमें कहीं भी मैं हूँ और उसके कारण मुझे ठीक पड़ता है, यह मिथ्यात्व सम्बन्धी का मान है। किरणभाई! सूक्ष्म बात तो है सब, परन्तु आये हो बराबर ठीक अब इसमें। यह सुने तो सही कि यह क्या कुछ कहते हैं। दुनिया की पढ़ाई से कहीं यह पढ़ाई अलग प्रकार की है। आहाहा!

भाई! तू कौन है और किससे तेरी चीज़ भरपूर है? तेरा स्वभाव तो आनन्द, ज्ञान, दर्शन, वीर्य से भरपूर है। हीन नहीं, विपरीत नहीं। ऐसा तेरा अन्दर स्वभाव, तेरा

वस्तुस्वरूप है। उसे छोड़कर, भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ ऐसी ही जिसकी चीज़ और ऐसा ही उसका स्वरूप और उसके भाव में वह भरपूर है, उसे छोड़कर किसी भी विकल्प से लेकर परचीज़ की सुन्दरता, कोमलता, विशेषता, स्वभाव से दूसरी कोई चीज़ अधिकरूप भासित हो, उसका नाम यहाँ अहंकार, मान, अनन्त संसार का कारण उसे मान कहा जाता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

भगवान जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं। ऊपर कहा था न? 'जिन' का उपदेश है। **'जिणवरिंदेहिं' 'जिणवरेहिं भणीयं'** ७७ में कहा था। यहाँ **'जिणसासणे'** जीव प्राप्त करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा में आनन्द और सुख है। इसके अतिरिक्त किसी भी चीज में कहीं भी पुण्यभाव में भी सुखपना, ठीकपना, अधिकपना, विशेषता अतिशयता लगे तो वह अनन्त संसार का मान है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं। **किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है... किसी परद्रव्य...** अर्थात् आत्मद्रव्य के अतिरिक्त भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द शुद्धध्रुव अखण्डानन्द आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य—दया, दान, व्रत, भक्ति परिणाम सब परद्रव्य हैं।

श्रोता : शरीर, मन, वाणी सब आ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन, वाणी तो स्थूल है। वह स्थूल धूल है। यह तो अन्दर में पुण्य परिणाम—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा से लेकर सब परद्रव्य। आहाहा! भाई! तुझे तेरे द्रव्य के माहात्म्य की तुझे खबर नहीं है। अन्दर वह क्या चीज़ है, उसका माहात्म्य छोड़कर, जिसे परवस्तु, रागादि, पुण्यादि और उसके फलादि में माहात्म्य दिखता है, वह मूढ़ जीव परवस्तु को मैं हूँ—ऐसा मानकर गर्व में वह गल गया है। वह आत्मा की शान्ति को गला देता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? है? वजुभाई! पुस्तक है या नहीं? ठीक। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, किसकी स्त्री? किसका पुत्र? किसका राग? किसका शरीर? किसकी वाणी? किसका रंग? किसका रूप? आहाहा! यह सब जड़ के अथवा पर के। उस स्वद्रव्य को छोड़कर जिसका अभिमान-मान अर्थात् कि यह पर रागादि, दया, दान, व्रतादि से लेकर देव-शास्त्र-गुरु, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, सम्मेदशिखर और... क्या

कहलाता है? सिद्धगिरि, पालीताणा, शत्रुंजय, कहीं भी मैं हूँ और इससे मुझे लाभ होगा, (यह मिथ्यात्व है।) आहाहा!

श्रोता : दादा थे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दादा कौन देता था? धूल। तेरे पास कहाँ नहीं, वह दादा तुझे दे? उसी प्रकार पुण्य माँगता है। 'शिवपद हमको देना रे महाराज' ऐसा माँगता है वहाँ। कुछ भान नहीं होता। शिवपद कहीं वहाँ रहता होगा? आता है न? मणिभाई! वहाँ भगवान के पास माँगता है। 'शिवपद हमको देना रे महाराज, शिवपद हमको देना' भगवान कहते हैं, परन्तु तेरा शिवपद मेरे पास है या तेरे पास है? आहाहा! आहाहा!

श्रोता : भगवान को सम्हालने नहीं दिया हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को सम्हालने दिया होगा? अपना शिवपद भगवान को दिया होगा? आहाहा! समझ में आया? एक पैसे से लेकर करोड़-अरबों और तीन लोक का बड़ा राज भी मुझे ठीक है, वह मेरा है, उससे मुझे हर्ष और सन्तोष होता है, ऐसा जिसने माना है, उसने आत्मा को गलाया है और गर्व में यह गिर गया है। भगवान आत्मा के अतिरिक्त किसी भी परद्रव्य में विकल्प से लेकर परचीज़ में मुझे ठीक है, मुझे मजा है, कुछ मुझे इसकी ओर से मेरा वीर्य उल्लसित होता है, मुझे इसमें मजा पड़ता है, ऐसी जिसकी मान्यता है, जिसने आत्मा आनन्दस्वरूप को गला डाला है, मार डाला है और वह गर्व में गिर गया है। आहाहा!

देखो न, आचार्य टीका में कितना कहते हैं! आहाहा! **'पयलियमाणकसाओ'** इतना शब्द रखा है। उसे गल गया है। आहाहा! जिसे पर में मान है, उसे आत्मा गल गया है। समझ में आया? जिसे पर में मान नहीं, उसे मान गल गया है, जल गया है। आत्मा मैं... आत्मा हूँ। मैं सत् अस्तित्व, मेरी सत्ता आनन्द और ज्ञानवाली है। मेरे ज्ञान और आनन्द के लिये किसी चीज़ की मुझे अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! इस प्रकार जिसे आत्मा का स्वभाव—प्रभु आनन्द का सागर है, ज्ञान का समुद्र है, श्रद्धा से भरपूर है, शान्ति का स्वरूप ही आत्मा है। उसे छोड़कर जिसे पर में मान होता है, स्वभाव से कुछ भी दूसरी चीज अधिक भासित होती है, अधिक भासित हो - विशेष

भासित हो, इसे अतिशयवाली लगे, कहते हैं कि अनन्तानुबन्धी मान है, हों! भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐ भीखाभाई! यह तो आत्मा की क्रीड़ा है। आहाहा!

भगवान! तुझमें कहाँ कमी है कि जिससे पर से तुझे कुछ सन्तोष हो। राग से, पुण्य से, उसके फल से, उसकी सामग्री के दिखाव प्रदर्शन से! आहाहा! भगवान! तुझे उसके कारण सन्तोष हो, तू ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो सब परद्रव्य ने प्रदर्शन किया है। आहाहा! उसे देखकर उसमें मैं हूँ अथवा वह मुझे कुछ लाभदायी है और मुझे उससे कुछ सन्तोष होता है, मुझे मुझसे उसमें कुछ अधिकपना भासित होता है, उसे राग से पर अपना अधिक / भिन्न स्वभाव है, उससे घात डाला है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर की दृष्टि के ऊपर सब बात है। बाहर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में भगवान स्वयं भूल गया है और जिसकी दृष्टि के परिणाम में दूसरी चीज़; भगवान आत्मा के आनन्दस्वभाव, ज्ञानस्वभाव के अतिरिक्त किसी दूसरी चीज़ में, कुछ भी उल्लसित वीर्य होकर ठीक (है, ऐसा लगता है), ऐसा जो उसे भगवान अनन्तानुबन्धी, अनन्त संसार के दुःख के पन्थ में पड़ा हुआ अनन्तानुबन्धी मानवाला है। नवनीतभाई! आहाहा! कहो, वजुभाई! आहाहा! ऐसा मार्ग, भगवान! तेरा है, परन्तु उसकी तुझे खबर नहीं है। एक बीड़ी ठीक से जहाँ आवे वहाँ... सिगरेट पीता हो। ऐसे पीता हो या ऐसे पीता हो कुछ खबर नहीं। हमने कभी पी नहीं है। हमने कभी सिगरेट क्या, बीड़ी भी नहीं पी है। तम्बाकू-बम्बाकू कभी सूंघी नहीं है। आहाहा! सवेरे उठे और दो-चार सिगरेट पीवे, तब तो इसे दस्त ठीक से आवे। अर..र..! तब यह पाखाने जाए। आहाहा! कितने व्यसनों की रुचि का प्रेम कहाँ अर्पित हो गया है, भाई! आहाहा!

यहाँ भगवान तो (कहते हैं) **'प्रगलितमानकषायः'** इसे बोधि प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्य आत्मा के स्वभाव की साक्षात्कार की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता (कहते हैं)। जिसे पर का मान गल गया है, आत्मा के अतिरिक्त इन्द्र का राज भी जिसे सड़ा हुए तृण जैसा लगता है। यह शरीर तो धान का पिण्ड है। दो दिन धान न खावे वहाँ ऐसा और वैसा सूख जाता

है। समझ में आया? आठ दिन ठीक से बुखार आया हो, जिसके साथ प्रियता करने जाता था, तब उसे देखो तो शरीर सूख गया हो, मुँह गिर गया हो, पेट पिचक गया हो, चमड़ी में फीकापन आ गया हो, आठ दिन पाँच-पाँच डिग्री ठीक से बुखार आया हो। डॉक्टर कहें कुछ लेना नहीं। एक उकाली लेना। हाय.. हाय.. आहाहा!

ऐसे में तो क्या है? परन्तु इन्द्र के इन्द्रासन, जिसे हजार-हजार वर्ष में तो आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। पन्द्रह-पन्द्रह दिन में तो जिसे ऊँच-नीची सांस की क्रिया होती है। श्वासोच्छ्वास एक पखवाड़े में लेते हैं, एक पखवाड़े में सांस ले। इतनी साता की अनुकूलता है, ऐसा कहना है। पन्द्रह दिन में तो एक सांस ऊँचा लेकर छोड़े इतना बस। हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न हो, हजार वर्ष में, एक सागरोपमवाले को। समझ में आया? उसमें भी कुछ ठीक है, वह अभिमान मिथ्यात्व और मान का है, भाई! तेरे आनन्दस्वभाव के सागर के समक्ष दुनिया में कोई चीज़ अधिक है नहीं। समझ में आया? चमड़ी जरा रूपवान, कोमल देखकर इसे गलगलिया हो जाता है। अरे! भगवान! तू कहाँ गया? तू कहाँ खो गया? समझ में आया? तेरी चीज़ अन्दर ज्ञान और आनन्द से भरपूर और ऐसे चमड़े का जरा ऊपर लेप (होता है)। यह तो लेप है। गन्ने का छिलका जरा निकाल डाले। वह तो मोटा होता है, हों! गन्ने के ऊपर छाल होती है, वह मोटी होती है। शेरडी समझते हो? गन्ना। उसकी छाल होती है, वह बहुत मोटी होती है। यह तो बहुत पतली है। छह अंगुली निकालने लगे तो बहुत पतली निकले। फिर देखने जावे तो सूँघने को भी खड़ा न रहे, ऐसा है यह। आहाहा!

भगवान! तुझे यदि चीरे तो उसमें से आनन्द निकले, ऐसा तू है अर्थात् तू आत्मा के आनन्द सागर में एक बार डुबकी मार... वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उछलता है, आहाहा! ऐसा आत्मा कहाँ गया? तूने क्या किया? कहते हैं। प्रगलित मान। आहाहा! मान जिसने गला डाला है। मुझमें दूसरी कोई चीज़ नहीं है और दूसरी किसी चीज़ के कारण मैं हूँ या उसके कारण मुझे ठीक पड़ता है, ऐसे जिसे मान गल गया। आहाहा! यह अनन्तानुबन्धी। भाई, चन्दुभाई! आहाहा!

श्रोता : मान की ऐसी व्याख्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्या ऐसी है। आहाहा!

किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है... आहाहा! **किसी परद्रव्य से...** भगवान आत्मा के अतिरिक्त, चिदानन्द आनन्द के अतिरिक्त कोई भी द्रव्य, उसके ऊपर **किसी परद्रव्य से अहंकाररूप...** यह मैं, ऐसा मान नहीं करता। परन्तु जिसे खबर भी नहीं कि मैं क्या करता हूँ? क्या होता है? और कहाँ जाऊँगा? और इसके भाव के फल कहाँ जाएँगे, इसकी भी खबर नहीं होती। समझ में आया? और **जिसका मान कषाय प्रकर्षता से गल गया है, किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है और जिसके मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी...** उसने ऐसा डाला **'मिच्छत्तमोह'** ऐसा साथ में डाल दिया। समझ में आया? दो ही लिया। मान गल गया है और मिथ्यात्व टल गया है। अनन्तानुबन्धी का मान और मिथ्यात्व - दो बातें ली हैं। आहाहा!

कहते हैं **कैसा भया सन्ता? कैसा होता हुआ? प्रगलित अर्थात् गल गया है, नष्ट हो गया है...** क्या? मिथ्यात्व का उदयरूप मोह। आनन्दस्वरूप के अनुभव में जिसे मिथ्या भ्रान्ति तो गलकर नाश हो गयी है। आहाहा! कहीं भ्रम नहीं होता कि यह मुझे अच्छा है, यह मुझे ठीक है, यह मुझे लाभदायी, यह मुझे सहायक है, यह मुझे मददगार है, मैं दूसरों को मददगार हूँ। ऐसा जो मिथ्यात्वभाव... वीतराग का मार्ग ऐसा है। आहाहा! लोगों को सुनने को भी मिलता नहीं। इसे पूरे दिन धमाधम - यह करो... यह करो... यह करो... अरे! भगवान! जो कुछ करने का है, वह रह जाता है। जन्म-मरण गलाने का मार्ग वह कुछ रह जाता है। बाटविया! ऐसा है यह, देखो!

यह मेरा देश, कहते हैं कि यह मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य में आया या नहीं वह? लो, रामजीभाई पहले इसमें थे। जवानी में सलाह दी थी कि चलो जेल। चलो। दो महीने नहीं? एक बार एक महीना और एक बार दो महीना। आहाहा! गजब दुनिया वह भी पागल है न? पागल के गाँव कहीं अलग होते हैं? पागल के गाँव अलग नहीं मिलते। हर गाँव में पागल (होते हैं)।

श्रोता : हर गाँव में पागल नहीं, हर घर में पागल। हर व्यक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हर व्यक्ति पागल, लो न! आहाहा! अरे! भगवान! तू कौन है, प्रभु! कहाँ है? कैसे है? इसकी तुझे खबर बिना जो तुझमें कभी है नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प आदि तुझमें है ही नहीं। वे तो कृत्रिम खड़े करके मेरा मानता है। समझ में

आया? आहाहा! यह बाहर की मिठास, उसमें दो-पाँच करोड़ की पूँजी हो। लड़के-बड़के लम्बे पाँच-पाँच हाथ के अच्छे पके हों, रूपवान और समधी रिश्तेदार अच्छे मिले हों। आहाहा! मैं चौड़ा और गली सकड़ी। अपने सबसे सुखी हैं। अपनी बादशाही है। मर गया है, सुन न अब! बादशाही कहाँ से आयी तेरी? समझ में आया? उसमें यह है। है? ७८ (गाथा)। शब्द का बहुत अर्थ नहीं परन्तु पाठ है न पाठ? उसमें नहीं। यह पाठ है।

कैसा भया सन्ता... कैसा है, वह दो प्रकार से कहा। पहले ऐसा कहा कैसा भया सन्ता कि प्रगलित मान प्रकर्ष करी गल्या। प्र अर्थात् विशेषकरि। विशेषकर जिसका मान गल गया है। और कैसा होता हुआ? **जिसके मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी नष्ट हो गया है...** ऐसा ले लिया। आहाहा! पर तरफ की सावधानी का मिथ्यात्वभाव गल गया है। भगवान आत्मा के स्वभाव-सन्मुख सावधान.. सावधान.. सावधान.. 'समयवर्ते सावधान' ऐसा नहीं कहते? यह विवाह करते हैं, तब कहते हैं या नहीं? समय अर्थात् आत्मा। आत्मा को समय कहते हैं न? समयसार। समयवर्ते सावधान। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु तू समय है न! उसमें वर्तना, वह सावधानपना, वह सम्यक् है। अन्य तो और स्त्री से विवाह करने जाए तो समयवर्ते सावधान (बोले)। वह तो टाइम हुआ (तो कहते हैं), लाओ कन्या को। आठ बज गये। टाइम हो गया। फिर टाइम निकल जाएगा। माँस की हड्डियाँ हैं, उसके साथ विवाह। अरे! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने राग में लगन लगायी, पुण्य के परिणाम में लगन लगायी, उसने आत्मा की लगन छोड़ दी है। बेचरभाई! भगवानजीभाई! आहाहा! अरे! तू कौन, कहाँ और कहाँ तो मानकर बैठा है? उसकी भ्रमणा गयी है। कहीं भी मेरापन है, ऐसा मिथ्यात्वभाव जिसे गल गया है। वह जैनशास्त्र का सार, बोधि, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करता है। **'बोहि लाभं'** नहीं आता? लोगस्स में आता है। **'आरोग बोहिलाभं समाहि, वरमुत्तम'** अर्थ की खबर नहीं पड़ती, ऐसे के ऐसे बाहर में पहाड़े बोलते रहते हैं। अरे! अवतार चला जाता है, भगवान! समय-समय चला जाता है, भाई! यह समय अब वापस नहीं आयेगा। मरण की स्थिति के सन्मुख दौड़ा जाता है। काल तो मरण के सन्मुख ऐसे का ऐसा दौड़ा जाता है। आहाहा! विश्रामरहित।

तुझे करना हो तो यह है। लाख दुनिया चाहे जो हो, उसके पास (रही)।

छहढाला में आता है न? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' यह नवनीतभाई को पूरा कण्ठस्थ है। भाई को कण्ठस्थ है, इसलिए यह सब उन्हें ठीक से बैठ गया। पूरा कण्ठस्थ किया है। उसमें भी यह है। भाई! आता है न उसमें? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ि जगत द्वंद्व-फन्द निश्चय आतम उर आणो।' अरे भगवान! महाप्रभु विराजता है न, भाई! जहाँ उसके दरबार में जा न! यह राग और बाग के वेश्याओं जैसे भाव, व्यभिचारी भाव है, ऐसा भगवान ने कहा है। पुण्य का भाव (भी) व्यभिचारी भाव है। आहाहा! उस व्यभिचार के साथ तुझे प्रेम करना कैसे सूझता है?

मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी नष्ट हो गया है... क्या कहते हैं? मिथ्यात्व का मोह जिसका गल गया है। भ्रमणा भी नहीं होती। मैं भगवान हूँ। मेरा आनन्द और मेरी शान्ति से भरपूर मैं हूँ। मेरी शान्ति कहीं से मिले, ऐसी नहीं है। कहीं तीन लोक, तीन काल में मेरे अतिरिक्त कहीं शान्ति है नहीं। मुझमें शान्ति है, इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन में भासित हुआ है, उसका मिथ्यात्व गल गया है। **इसीलिए 'समचित्त' है,...** देखो, ऐसा कहा है न **'पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो'** अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम जिसे प्रगट हुए हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह मिथ्यात्व मोह जिसे गल गया है, **इसीलिए 'समचित्त' है, परद्रव्य में ममकाररूप मिथ्यात्व और इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप रागद्वेष जिसके नहीं है,...** लो! परद्रव्य में मिथ्यात्व अर्थात् ममतारूप मिथ्यात्व, राग का विकल्प उठे, उसके प्रति अहंपना और वहाँ से इष्ट-अनिष्ट पदार्थ। यह इष्ट है और अनिष्ट है, ऐसा जो राग-द्वेष है, वह सब छूट गया है। जगत में कोई इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। जगत की चीज़ें उनकी पर्यायरूप परिणम रही है। उसने कोई विष्टा अनिष्ट है, कस्तूरी इष्ट है, मित्र इष्ट है, दुश्मन अनिष्ट है—ऐसा कुछ है ही नहीं। सब ज्ञेय हैं। ज्ञान में जाननेयोग्य ज्ञेय हैं। इष्ट कौन? अनिष्ट कौन? बाहर में इष्ट-अनिष्टपना है ही कहाँ? तेरा विकारभाव, वह अनिष्ट है; स्वभावभाव, वह इष्ट है। समझ में आया? जयन्तीभाई आये हैं न? यह तो कहा, भावनगर के आये हैं और यह रविवार का अधिकार है न, इसलिए।

श्रोता : कमाने के साधन बराबर होवें तो ठीक।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाने के यह साधन हैं। वे मर जाने के साधन हैं। चक्रवर्ती छह खण्ड का धनी, वह रोटी माँगे, रे मुझे देना, मुझे रोटी देना। अर..र..! एक रोटी देना। परन्तु तेरे घर में पकवान पकते हैं न? सवेरे नौ बजे दाने होकर तेरे घर में रोटियाँ होती हैं। चक्रवर्ती के घर में सवेरे बोबे, सवेरे बोवे... नौ बजे तैयार गेहूँ। देव है न? उसके... फिर देव हैं। एक हजार देव सेवा करते हैं। यह सब शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, भरत चक्रवर्ती। सवेरे उठे और बोवे। तुम्हारे पुराने गेहूँ ने। अमरेली से क्या कहलाता है वह? अमेरिका। पुरान आवे, साधारण... आवे, पतला आवे, अमुक आवे, ऐसा नहीं। वहाँ तो सवेरे उनके देव बोवे, घण्टे भर के लिये, नौ बजे गेहूँ की रोटी होकर तैयार। लाखों-करोड़ों रुपयों की भस्म उस रोटी में डाले। घी में भस्म तले। ऐसी औषधि होवे कि जिसमें पाँच सेर घी डाले और उसमें पचास-सौ दाने गेहूँ के डाले और उसमें भस्म डाले, सोना डाले, मोती डाले, वह पिघल जाए, गेहूँ पी जाए। उस गेहूँ की रोटी बनावे। वह गेहूँ खावे। आहाहा! धूल में भी नहीं, कहते हैं सुन न! क्या हो जाता है तुझे? समझ में आया? यह चक्रवर्ती जिसके घर में ऐसा, वह भीख माँगे, ऐ... मुझे देना यह। अरे! यह क्या है तुझे? तीन लोक का नाथ परमात्मा तू विराजमान है और भिखारी होकर कुछ मुझे मान दो, बड़ा कहो, मुझे कुछ गिनती में गिनो। मैं गिनती के लोगों में कुछ थोड़े हों, उनमें मैं आ जाऊँ तो ठीक। अरे रे! गजब भाई यह तो! गाँव में कोई मन्त्री के लोग गिने जाएँ और उनमें मैं आ जाऊँ। परन्तु क्या है तुझे? आहाहा! भाई! वीतराग की आज्ञा में गिनती में आ जा, फिर पूरा हो गया। भगवान ने गिना कि इतने-इतने समकिती भक्त हैं। उनमें तू आया तो पूरा हो गया, जाओ। समझ में आया?

कहते हैं **इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप रागद्वेष जिसके नहीं है,...** समकित की व्याख्या की है। एक तो मिथ्यात्व नहीं, मान गल गया है और ज्ञेय पदार्थ के ज्ञेय की अनुकूलता-प्रतिकूलता देखकर ज्ञानी को राग-द्वेष नहीं होता। समझ में आया? चीज़ के कारण नहीं होता। ज्ञानी को कोई कमजोरी के कारण होता है, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? परन्तु परवस्तु के कारण मुझे यह अनुकूल, इसलिए राग - यह मिथ्यात्वभाव का राग है। यह प्रतिकूलता, इसलिए दुश्मन है, इसलिए द्वेष। प्रतिकूलता का द्वेष मिथ्यात्व का द्वेष है। आहाहा! **रागद्वेष जिसके नहीं है,...**

भावार्थ – मिथ्यात्वभाव और कषायभाव का स्वरूप अन्यमतों में यथार्थ नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त-जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा देवाधिदेव के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, उनमें ऐसा स्वरूप नहीं है। कहीं नहीं है, कहीं नहीं है, भाई! समझ में आया? **मिथ्यात्वभाव और कषायभाव का स्वरूप अन्यमतों में यथार्थ नहीं है। यह कथन इस वीतरागरूप जिनमत में ही है,...** आहाहा! ऐसी पद्धति की शैली वह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की मार्ग में ही होती है। समझ में आया? आहाहा!

जिन्होंने तीन काल, तीन लोक देखे और जिन्हें वीतरागभाव वर्तता है, उनकी वाणी में जो आया, ऐसा स्वरूप तीन काल में अन्यत्र नहीं हो सकता। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! सम्प्रदाय में पड़े हैं, उन्हें भी खबर नहीं है कि वीतराग क्या कहते हैं। आहाहा! देखा? एक तो मिथ्यात्वभाव का स्वरूप, कषायभाव का स्वरूप अन्यमत में कहीं यथार्थ है ही नहीं। सब नाम तो सब बहुत लें, भाई! नवनीतभाई! कबीर के भी शब्द बोले थे न सवेरे? कहीं वस्तु की यथार्थता है ही नहीं। यह भाषा ऊपर से लेकर ऐसा आत्मा और वैसा आत्मा, ऐसी सबने बात की है। समझ में आया?

इसलिए यह जीव मिथ्यात्व कषाय के अभावरूप मोक्षमार्ग तीन लोक में (भुवन में) सार... मिथ्यात्व और कषाय के अभावरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप **तीन लोक में (भुवन में) सार...** आता है न? छहढाला में आता है न पहले। 'तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता' यह छहढाला में आता है। 'तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता' **तीन लोक में (भुवन में) सार जिनमत के सेवन ही से पाता है,...** वीतरागमार्ग में कथित मार्ग से आत्मा प्राप्त होता है। समझ में आया? देखा? जिनमत का सेवन। वीतराग का मत अर्थात् अभिप्राय। वीतराग का अभिप्राय रागादि परद्रव्य से छूटकर तेरे स्वचैतन्य की दृष्टि का अनुभव कर, यह वीतरागता अभिप्राय है। समझ में आया?

जिनमत के सेवन ही से पाता है, अन्यत्र नहीं है। अन्यत्र ऐसा मार्ग मिले, ऐसा नहीं है। सुनने का ठिकाना नहीं होता, सुनानेवाले का ठिकाना नहीं होता कि क्या चीज़ है? वह दूसरे को कहाँ से समझावे और कहाँ से प्राप्त करे? बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! गजब गाथा, बहुत सरस गाथा आयी है, हों!

गाथा-७९

आगे कहते हैं कि जिनशासन में ऐसा मुनि ही तीर्थंकर प्रकृति बाँधता है –

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण।।७९।।

विसयविरक्तः श्रमणः षोडशवरकारणानि भावयित्वा।
तीर्थंकरनामकर्म बध्नाति अचिरेण कालेन।।७९।।

सुविरक्त विषयों से मुनि भा सोल कारण भावना।
वह शीघ्र नाम करम की तीर्थंकर प्रकृति को बाँधता।।७९।।

अर्थ – जिसका चित्त इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है ऐसा श्रमण अर्थात् मुनि है वह सोलहकारण भावना को भाकर 'तीर्थंकर' नाम प्रकृति को थोड़े ही समय में बाँध लेता है।

भावार्थ – यह भाव का माहात्म्य है (सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान सहित – स्वसन्मुखता सहित) विषयों से विरक्त भाव होकर सोलहकारण भावना भावे तो, अचिंत्य है महिमा जिसकी ऐसी तीनलोक से पूज्य 'तीर्थंकर' नाम प्रकृति को बाँधता है और उसको भोगकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

ये सोलहकारण भावना के नाम हैं – १. दर्शनविशुद्धि, २. विनयसंपन्नता, ३. शीलव्रतेष्व–नतिचार, ४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, ५. संवेग, ६. शक्तितस्त्याग, ७. शक्तितस्तप, ८. साधुसमाधि, ९. वैयावृत्त्यकरण, १०. अर्हद्भक्ति, ११. आचार्यभक्ति, १२. बहुश्रुतभक्ति, १३. प्रवचनभक्ति, १४. आवश्यकापरिहाणि, १५. सन्मार्गप्रभावना, १६. प्रवचनवात्सल्य – इस प्रकार सोलह भावना हैं। इनका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र की टीका से जानिये। इनमें सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न हो और पन्द्रह भावना का व्यवहार हो तो कार्यकारी नहीं है और यह हो तो पन्द्रह भावना का कार्य यही कर ले, इस प्रकार जानना चाहिए।।७९।।

गाथा-७९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जिनशासन में ऐसा मुनि ही तीर्थंकर प्रकृति बाँधता है – लो, कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव, जैनशासन में कोई शुभभाव आवे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। दूसरे सम्यग्दर्शन के बिना, जैनशासन के बिना कहीं उसकी प्रकृति नहीं बाँधते। समझ में आया? इस प्रकार एक पुण्य की विशेषता बताते हैं। ऐसा पुण्य भी जैनशासन में होता है। मिथ्यादृष्टि—जिसकी विपरीत मान्यता है, उसमें तीर्थंकरगोत्र के परिणाम उसे हो ही नहीं सकते। सम्यग्दृष्टि आत्मज्ञानी को ऐसे परिणाम होते हैं।

श्रोता : अकेले मुनि ही बाँधते हैं? श्रावक नहीं बाँधते?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बाँधते ही हैं। यह तो मुनि की मुख्यता की बात है। समझ में आया? यह तो मुख्यता से बात है। चौथे गुणस्थान में बाँधते हैं। यह तो मुनि से शुरु करके सब बात की है। ये सब मुनि... द्रव्यलिंगी... समझ में आया?

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण।।७९।।

आहाहा! देखो! मोक्षमार्ग बताया; उसके साथ तीर्थंकरप्रकृति भी ऐसे जीव को होती है, ऐसा कहते हैं। दूसरे अज्ञानी को नहीं होती, फिर चाहे जैसी कषाय मन्द हो, नग्न हो, बाबा हो, मिथ्यादृष्टि नग्न दिगम्बर मुनि हो, उसे तीर्थंकरप्रकृति के परिणाम हो ही नहीं सकते।

सम्यग्दर्शन, वह जैनमत में कहा वह। सम्यग्दर्शन नाम तो बौद्ध में भी आता है। समझ में आया? बौद्ध में भी सम्यग्दर्शन, समाधि, बोधिलाभ, ऐसा बहुत आता है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग देव ने अखण्ड परिपूर्ण मार्ग अनादि से केवली देखते आये हैं। अनादि के केवली होते आये हैं, कहीं नये नहीं हैं। ऐसे सर्वज्ञ ने जो मार्ग देखा, जाना और कहा, उसके अतिरिक्त कहीं सम्यक् मार्ग नहीं हो सकता। इसके बिना तीर्थंकरपना भी अन्यत्र नहीं हो सकता। आया न?

जिसका चित्त इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है... अर्थात् यह भाव जब...

समकिती को तीर्थंकरपने का शुभभाव है न! उस समय इन्द्रिय के विषय की आसक्ति नहीं है। अमुक समय समकिती को आसक्ति होती है परन्तु इस समय उसे नहीं है। वह इन्द्रिय के विषय से विरक्त हुआ है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो समकिती तो इन्द्रिय के विषय से विरक्त ही है, क्योंकि इन्द्रिय परद्रव्य है न! और राग परद्रव्य है, उससे विरक्त ही है, दृष्टि में तो उससे भिन्न ही है। आहाहा!

श्रोता : आहार भी विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ विषय है। बाहर विषय है, बहिर विषय है। आहाहा! वीतरागमार्ग!

कहते हैं, **इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है...** परसन्मुख के विषयवाला भाव, उससे भिन्न पड़ा है चित्त जाका... जिसका चित्त। यह तो श्रमण मुनि की मुख्यता से बात की है। **अर्थात् मुनि है, वह सोलहकारण भावना को भाकर...** सोलहकारण के ऐसे विकल्प उसे आ जाते हैं, उसे 'भाय' ऐसा कहने में आता है। **'तीर्थंकर' नाम प्रकृति को थोड़े ही समय में बाँध लेता है।** आहाहा! थोड़े काल में सम्यग्दृष्टि तीर्थंकरप्रकृति बाँधकर, थोड़े काल में केवलज्ञान पाकर तीर्थंकरप्रकृति का फल समवसरण आदि आकर छूट जाएगा। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि तीन लोक की महाऋद्धिवाला तीर्थंकरपना। दूसरी ऋद्धि तो तेरी कहाँ रही, ऐसा कहते हैं। ऐसी जो ऋद्धि, जिसे उसकी रुचि नहीं। जिसे राग का भाव-आदर नहीं, उसे ऐसा राग होता है। समझ में आया?

जिसे इन्द्र के इन्द्रासन हिलें, भगवान जहाँ जन्मते हैं, इन्द्रासन डोलते। क्या है? ओहो! अवधिज्ञान से देखता है। भरतक्षेत्र में या महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकर का जन्म हुआ। एक बार सिंहासन से नीचे उतर जाता है। सिंहासन समझते हो। सिंह-सिंह। चारों ओर सिंह हों, ऐसा उसका आसन होता है। हीरे के सिंह होते हैं। सिंहासन कहते हैं न? सिंहासन। कल भक्ति में आया था। खबर है? हरिआसन। भाई! कल भक्ति में आया था। हरिआसन। हरि अर्थात् सिंह। सिंह का आसन। बैठने के ऐसे आसन होते हैं कि जिसके चारों कौनों में हीरे के सिंह होते हैं। हीरा के ऐसे पाट होते हैं, पाट। उस पर इन्द्र विराजते हैं। इन्द्र, इन्द्राणी। कहते हैं कि वह भी तुच्छ है। जिसमें सर्वोत्कृष्ट

तीर्थंकरपना है, ऐसी जो ऋद्धि, उसे इन्द्र नमते हैं। कल आया था। करोड़ों मनुष्य अंजुली अर्थात् हाथ जोड़ते हैं। ऐसे पुण्यप्रकृति के परिणाम समकिती को होते हैं। समझ में आया? है यह राग। तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव है, वह राग है। परन्तु यहाँ यह कहना है कि भाव तो सम्यग्दृष्टि होवे, उसे ऐसा भाव होता है। जिसे राग का प्रेम है, रुचि है और पर का अहंकार है, उस मिथ्यादृष्टि को ऐसा भाव नहीं हो सकता। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सोलह बोल आते हैं न? सोलह बोल। सोलह बोल। सोलहकारण भावना। नीचे आते हैं। सोलह भावना। सम्यग्दर्शन के अनुभवसहित।

श्रोता : कौन सा भाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : रागभाव।

श्रोता : उसका अर्थ कल्याण...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; वह तो राग ऐसा आता है। वह राग यह सोलह भाव है, ऐसा राग आता है, बस। दुनिया का कल्याण होवे, ऐसा कहलाता है। कहलाता है कल्याण हो उसमें। मेरा पूर्ण हो उसका अर्थ ऐसा है, मेरा कल्याण पूर्ण हो, ऐसा विकल्प आता है। उस विकल्प में तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। समझ में आया? आहाहा!

यह भाव का माहात्म्य है... देखो! यह सम्यग्दर्शन के अनुभव में ऐसा भाव होता है।

श्रोता : पुण्य का माहात्म्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य का माहात्म्य नहीं, सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। उसके माहात्म्य में ऐसा भाव होता है। अज्ञानी को यह भाव नहीं होता। जिसे सौ इन्द्रों के सिर नमते हैं। प्रभु! धन्य अवतार। समझ में आया? जिसने तीर्थंकर को गर्भ में रखा, उसकी माँ को इन्द्र आकर पहले नमस्कार करता है। उस समकिती को ऐसा भाव होता है, यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? देखो, पाठ है न देखो! **'तित्थरनामकम्मं'** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का स्पष्ट पाठ है।

यहाँ सिद्ध तो यह करना है कि जो तीर्थंकरगोत्र है, वह परिणाम सम्यग्दर्शन के बिना पूर्ण नहीं होते। चौथे में होते हैं, पाँचवें में होते हैं, छठवें में होते हैं, सातवें तक बँधते हैं। आठवें गुणस्थान से नहीं। परन्तु मिथ्यादृष्टि चाहे जैसा द्रव्यलिंगी मुनि हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो और चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, तो भी उसे सम्यग्दर्शन नहीं; इसलिए उसे ऐसे परिणाम नहीं हो सकते। आहाहा! ऐसा करके सिद्ध यह करना है।

यह भाव का माहात्म्य है, विषयों से विरक्तभाव होकर... विषय की रुचि ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा के आनन्द के समक्ष दूसरे विषय में रुचि किसकी हो? धूल की? आहाहा! **सोलहकारण भावना भावे तो, अचिंत्य है महिमा जिसकी, ऐसी तीन लोक से पूज्य...** तीन लोक से पूज्य, **'तीर्थंकर' नाम प्रकृति को बाँधता है और उसको भोगकर...** भोग कर अर्थात् मिलती है। वास्तव में तो तीर्थंकर प्रकृति का फल तो तेरहवें (गुणस्थान में) उदय में आता है।

श्रोता : तेरहवें गुणस्थान में...

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान होता है, तब तीर्थंकरप्रकृति का उदय आता है। क्या भोगना? समझ में आया? तीर्थंकर के परिणाम चौथे-पाँचवें, छठवें (गुणस्थान) में आवें परन्तु इस बाँधी हुई प्रकृति का फल तेरहवें (गुणस्थान) में आता है। केवलज्ञान होता है, तब प्रकृति का फल समवसरण आदि उदय में आता है। अब उन्हें कहाँ भोगना है? आहाहा! ऐई!

और उसको भोगकर मोक्ष को प्राप्त होता है। तीर्थंकरपना जिसे प्राप्त है, उसे अल्प काल में केवलज्ञान होकर मोक्ष में जाता है। यह तो यहाँ शुभभाव की विशेषता बतायी। बाकी वह उसे रोक देता है। परन्तु यहाँ कहते हैं ऐसा भाव जैनशासन में सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा होता है। इतनी बात है। समझ में आया?

दर्शनविशुद्धि,... लो, पहला बोल सम्यग्दर्शन की विशुद्धि। यह दर्शनविशुद्धि विकल्पवाली है। शुभराग साथ में है। सम्यग्दर्शन है, आत्मा का भान है। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, मेरे आनन्द के समक्ष सारी दुनिया, इन्द्र के इन्द्रासन, चक्रवर्ती के पद... उसमें नहीं आता है?

चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग,
काग वीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।।

आहाहा! परन्तु उसे होवे और माने ऐसा, कहते हैं। अज्ञानी को ऐसा नहीं होता। आहाहा! काग वीट सम। कौवे की विष्टा खाने में भी काम नहीं आती। मनुष्य की विष्टा तो सूकर भी खाता है। कौवे की विष्टा है, वह खाद में भी नहीं डाली जाती। खातर समझते हो? खाद, उसे खेत में नहीं डालते। बिगाड़ डालती है। **'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग,'** पुण्य का फल। तथापि **'काग वीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।'**

श्रोता : द्वेष नहीं किया जाता न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। द्वेष की बात नहीं। वह तो ज्ञेय है, ऐसा कहते हैं। वह तो ज्ञेय है, उसे कहीं उसकी महिमा नहीं है।

श्रोता : .....सम्यग्दर्शन की महिमा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात यह है। और सम्यग्दर्शन में ऐसे बन्ध के परिणाम आते हैं, इतना यहाँ बतलाना है। अच्छे हैं और ठीक हैं, ऐसा यहाँ कहना नहीं है। समझ में आया? परन्तु ऐसे जो परिणाम सर्वोत्कृष्ट पुण्य की प्रकृति, बियालीस प्रकृति, उसमें तीर्थंकरप्रकृति सर्वोत्कृष्ट है। यह सम्यग्दर्शन के आत्मा के भान की भूमिका में ऐसा भाव आ जाता है। ऐसी ऋद्धि होती है कि इन्द्रों को नहीं होती। इन्द्र भी उनके समक्ष पानी भरते हैं। खम्बा अन्नदाता - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिनके मुकुट नम जाते हैं, जिनके चरणकमल में सौ-सौ इन्द्र आकर नमते हैं, बाघ और सिंह ऐसे नमते हैं।

श्रोता : थोड़े समय के लिये नारकियों को भी साता हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की साता, आत्मा की नहीं, बाहर की। समझ में आया? आत्मा की साता एक समय मिल जाए तो हो गया, जन्म-मरण मिट जाते हैं। बाहर की मिलती है। दर्शनविशुद्धि यह है विकल्पवाली, हों! समकित में एक विकल्प होता है, उसे यहाँ दर्शनविशुद्धि कही है, क्योंकि दर्शनविशुद्धि बँधने के पश्चात् समकिती बँधता नहीं है परन्तु उसमें विकल्प-भाव होता है कि मैं पूर्ण होऊँ, मेरा स्वरूप पूर्ण हो। बाहर

से कहते हैं कि जगत का कल्याण होओ, हित होओ। सर्व जीव करूँ शासन रचि... आता है न? सर्व जीव करूँ शासन रचि, ऐसी भाव दया मन उल्लसी। यह विकल्प-राग है। सर्व जीव करूँ शासन... सब जीव, पूरी दुनिया धर्म प्राप्त करो। सब भगवान— सर्व जीव सिद्धपद को प्राप्त करो। आहाहा! इस सिद्धपद से पीछे क्यों फिरते हो? सिद्धपद। आहाहा! सामूहिक आमन्त्रण देते हैं। सब जीमण में आना। सबको कहते हैं कि आना-आना, मेरा लाभ लेने। समझ में आया? तुम्हारा लाभ लेने, ऐसा इसका अर्थ है।

(२) विनयसम्पन्नता,... दूसरा बोल। परन्तु यह सब दर्शन होवे तो विनय सम्पन्नता। नहीं तो इसके बिना कुछ नहीं। यह नीचे लिखेंगे। **इनमें (एक) सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न हो और पन्द्रह भावना का व्यवहार हो तो कार्यकारी नहीं है...** समझ में आया? **विनयसम्पन्न...** यह विकल्प है। देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान होता है। विनय... विनय... विनय... विनय... दासानुदास हूँ। सर्वज्ञ तीर्थंकर सन्तों का दासानुदास हूँ। समझ में आया? ऐसा भाव, सम्यग्दृष्टि को ऐसी भूमिका में ऐसा शुभभाव होता है, इतना बतलाना है। ऐसा भाव मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। नग्न मुनि नौवें ग्रैवेयक जाए, तो भी उसे यह भाव नहीं होता। उसका यह शुक्ललेश्या का (भाव) हो और नौवें ग्रैवेयक जाए। वापस नीचे पड़ता है। आहाहा!

(३) शीतव्रत के अणअतिचार... शीलव्रत अतिचाररहित पालन करता है। अतिचार न हो, ऐसा निर्दोष। ऐसा विकल्प होता है।

(४) अभीक्ष्णज्ञानोपयोग... बारम्बार ज्ञान का उपयोग अन्दर... तथापि वह ज्ञान उपयोग है, वह बन्ध का कारण नहीं है। बारम्बार ज्ञान के उपयोग का विकल्प आता है—राग, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। ऐसे समकिती के अतिरिक्त ऐसा अभिक्षीण ज्ञानोपयोग का भाव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। दूसरे भी कहते हैं। ओहो! क्या... सज्झाय! परन्तु दृष्टि की खबर बिना। समझ में आया? लो! चार बोल हुए। विशेष बोल कहेंगे। ऐसे भाव होवें तो तीर्थंकर गोत्र बँधती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१२४, गाथा-७९ से ८२, सोमवार, असोज कृष्ण १२, दिनांक २६-१०-१९७०

यह अष्टपाहुड़, (उसमें) भावपाहुड़ की ७९ गाथा। ७९ गाथा चलती है। हिन्दी लो, हिन्दी। गुजराती ... समझते हो न? भैया! ... ७९ गाथा, भावपाहुड़। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कृत। इसमें कहे हैं... भावार्थ है न?

भावार्थ – यह भाव का माहात्म्य है (सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान सहित – स्वसन्मुखता सहित) विषयों से विरक्त भाव होकर सोलहकारण भावना भावे तो, अचिंत्य है महिमा जिसकी ऐसी तीन लोक से पूज्य 'तीर्थंकर' नाम प्रकृति को बाँधता है और उसको भोगकर मोक्ष को प्राप्त होता है। क्या कहते हैं? देखो! जिसको आत्मा चैतन्य शुद्ध आनन्दस्वरूप है, उसका अनुभव हुआ है, सम्यग्दर्शन। पहले तो सम्यग्दर्शन हुआ हो, उसको एक सोलहकारण भावना का विकल्प आता है। समझ में आया? आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञानधाम, पूर्णानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो देखा है, ऐसा आत्मा अन्दर ध्रुव अखण्ड अभेद की अन्तर प्रथम दृष्टि अनुभव में होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना यह सोलहकारण भावना आती नहीं है। और दर्शनविशुद्धि बिना पन्द्रह बोल साधारण आये, वह कोई तीर्थंकर प्रकृतिबन्ध का कारण नहीं। प्रथम भूमिका भावशुद्धि सम्यग्दर्शन से चलती है। उसके बिना शुभ और अशुभभाव, पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत भाव यह तो सब बन्ध का कारण, पुण्य का कारण है।

सम्यग्दर्शन में प्रथम में प्रथम धर्म प्राप्त होता है, उसको आत्मा, तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर से जो आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, चैतन्य शुद्ध आनन्दधातु, आनन्द से टिका हुआ भगवान आत्मा है, ऐसी अन्तर में दृष्टि भान अनुभव होकर होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना तीर्थंकर गोत्र का भाव कभी अज्ञानी को होता नहीं। समझ में आया?

भावपाहुड़ है न। पहले शुद्धभाव की भावना कही और दर्शनविशुद्धि आदि षोड्शकारण भावना। सम्यग्दृष्टि को दर्शनविशुद्धि का विकल्प आता है। मैं निर्मल शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ—ऐसा विकल्प-राग है, वह तीर्थंकरगोत्र बन्ध का कारण है। समझ में

आया? शुद्धि तो है, सम्यग्दर्शन की शुद्धि तो है, तदुपरान्त ऐसा विकल्प आता है, तब उसको तीर्थंकरगोत्र का बन्ध होता है। सम्यग्दर्शन की शुद्धि से वह बन्ध होता नहीं। समझ में आया?

१. दर्शनविशुद्धि, २. विनयसम्पन्नता,... सम्यग्दृष्टि अपने शुद्धस्वभाव के भानसहित पंच परमेष्ठी आदि में उसका विनय बहुत होता है। मैं तो पंच परमेष्ठी का दासानुदास हूँ, यथार्थ पंच परमेष्ठी होने चाहिए। समझ में आया? उनका विनय है विकल्प, शुभराग, परन्तु सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव आता है, तो उससे तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। समझ में आया? **३. शीलव्रतेष्वनतिचार,...** शीलव्रत में अतिचार न लगे। बारह व्रत है, उसमें अतिचार न लगे। सम्यग्दर्शनसहित, हों! आत्मा के अनुभव में आनन्द के स्वाद की भूमिका में जो बारह व्रत का अतिचाररहित जो विकल्प होता है, वह तीर्थंकरगोत्र बन्ध का कारण है। जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं है वह शील, व्रत निरतिचार हो तो वह पुण्यबन्ध का, मिथ्यात्वसहित अकेले पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग,... भगवान आत्मा ज्ञान चैतन्यस्वभाव का पिण्ड है, उसका बारम्बार ज्ञान की ओर झुकाव होना, उसमें मन्थन में विकल्प आता है कि मैं शुद्ध हूँ, आनन्द हूँ, ऐसे अनुभव की निर्विकल्प स्थिरता पहले। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को पहले तो निर्विकल्प अनुभव (हुआ) है, बाद में निर्विकल्प होने पूर्व विकल्प में मन्थन चलता है। समझ में आया? मैं ज्ञानानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, आनन्द हूँ। उसमें मैं लीन होना चाहता हूँ। ऐसा सम्यग्दृष्टि का विकल्प शुभराग तीर्थंकरगोत्र बन्ध का कारण है। समझ में आया?

५. संवेग,... अपने शुद्ध पवित्र स्वभाव को पाने का वेग-अन्दर में इच्छा। अहो! मेरी चीज़ तो शुद्ध आनन्द है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो, समझ में आया? अरे! समकिती नारकी हो, नरक में भी नारकी समकिती है या नहीं? उसको भी यह संवेग आदि होता है। शीलव्रत आदि नहीं होता। संवेग होता है तो वह तीर्थंकरगोत्र समय-समय में बाँधते हैं। समझ में आया? जैसे श्रेणिक राजा। श्रेणिक राजा भगवान का परम भक्त। महावीर परमात्मा के समवसरण में समकित पहले पाया था। उसने तीर्थंकरगोत्र बाँधा। पहले नरक की आयु बँध गयी थी तो नरक में गये। अभी चौरासी

हजार वर्ष की स्थिति में है। आगामी काल में चौबीस तीर्थंकर में पहले होंगे। वहाँ भी तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। नरक में भी। शुरुआत नहीं करते, शुरुआत मनुष्यपने में होगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ हो गया है। शुरुआत यहाँ हुई। किसी को दूसरी गति में शुरुआत नहीं होती। मनुष्यगति में ही होती है। सम्यग्दर्शन में या पंचम गुणस्थान में या मुनि छठवें (गुणस्थान में) आत्मध्यानी, ज्ञानी आनन्द में (रहते हो) या सप्त में या आठवें में, चार से आठ तक अन्दर में ऐसा विकल्प होता है तो उससे तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। अचिन्त्य महापुण्य, कहा न? यहाँ तो ऐसा कहना है कि शुद्धभाव तो है ही, भाव की प्रधानता मुख्यता तो आत्मा पुण्य-पाप के भाव से रहित शुद्धभाव की श्रद्धा और शुद्धभाव का परिणमन होना, वही धर्म है। परन्तु साथ में समकिती को ऐसा पुण्यभाव आता है कि ... तीर्थंकरप्रकृति बँध जाती है, बस इतनी बात है। समझ में आया? संवेग।

६. शक्तितस्त्याग,... शक्तिस्तत्याग। समकिती अपने वीर्य की जितनी शक्ति है उतना अन्दर राग का त्याग करते हैं। शक्ति अनुसार करते हैं, हठ नहीं। क्या कहते हैं? समझ में आया? हठ करके अन्दर सहन करना पड़े, वह तो हठ है। शक्ति अपना वीर्य जितना पुरुषार्थ दिखे, उस अनुसार राग का त्याग करता है। उसमें थोड़ा विकल्प है तो उससे तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। समझ में आया? एकदम हठ करे, अपनी शक्ति से विशेष ले ले, तब तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यहाँ तो आत्मा की भूमिका का ज्ञाता-दृष्टा रहे और उस भूमिका में राग का शक्ति अनुसार त्याग करे, उसके प्रमाण में संयोग का त्याग हो जाता है। समझ में आया?

७. शक्तितस्तप,... तपस्या आदि, उपवास आदि अपना पुरुषार्थ दिखे, ज्ञाता-दृष्टापना रहे, उस भूमिका को सम्हालकर अपनी शक्ति के प्रमाण में उपवासादि करते हैं। समझ में आया? अज्ञानी तो सख्ती करता है। आहाहा! शक्ति नहीं है, सहजशक्ति नहीं, अन्तर से ज्ञाता-दृष्टा प्रगट हुआ नहीं और हठ से करते हैं, वह तो मिथ्यात्वसहित राग की मन्दता (होती है)। उसमें तो यह तीर्थंकरगोत्रपना होता नहीं।

यहाँ यह कहते हैं, ८. **साधुसमाधि,...** है न? आठवाँ बोल। धर्मात्मा सन्त आनन्दस्वरूप में रमनेवाले मुनि, अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाले सन्त, उनको शान्ति, समाधि कैसे हो, ऐसा विकल्प उठता है। समझ में आया? उनको आहार-पानी, आहार की अनुकूलता आदि का भाव हो, उसका नाम वह विकल्प राग है। सम्यग्दृष्टि की भूमिका में ऐसा राग आये बिना रहता नहीं। परन्तु वह तीर्थंकरगोत्र का भाव सबको आता है, ऐसा नहीं। कोई जीव को समकिती ज्ञानी को ऐसा भाव आता है तो उससे तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है।

९. **वैयावृत्त्यकरण,...** वैयावृत्य। समकिती धर्मात्मा आचार्य, उपाध्याय, साधु समकिती श्रावक को उनकी वैयावृत्त सेवा करने का भाव विकल्प शुभराग आता है। सम्यग्दृष्टि शुद्धता की भूमिका में तो है ही। शुद्ध परिणमन तो है ही, परन्तु पूर्ण शुद्धता नहीं है तो उसमें ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। वैयावृत्त्य के भाव से पुण्यबन्ध होता है। जितनी आत्मा के भान की शुद्धि हुई है, उतनी संवर और निर्जरा होती है। और जितना शुभराग आया, उससे पुण्यबन्ध हो जाता है। एक समय में दो (भाव) होते हैं। विशेष होता है। कहो, समझ में आया? उस समय तो पुण्य होता है, पाप होता है, बन्ध होता है, आस्रव होता है, संवर होता है, निर्जरा होती है। आहाहा! समझ में आया? जितना अपना स्वभाव चैतन्य शुद्ध, उसका आश्रय लेकर जो पवित्रता सम्यग्दर्शन आदि प्रगट हुई है वह तो संवर, निर्जरा है। उतना तो राग रुक गया है और पूर्व की शुद्धि की अपेक्षा बढ़ गयी है। परन्तु उस समय जो राग है, उसमें शुभ हो तो पुण्य बन्ध जाये, उसमें थोड़ा पाप भी बँधता ही है। शुभभाव में पुण्य विशेष बँधता है, पाप भी थोड़ा बँधता ही है। राग है न, तो वह आस्रव है, बन्ध है। पुण्य-पाप है। ऐसा भाव भी एक समय में हो।

१०. **अर्हद्भक्ति,...** अरिहन्त की भक्ति। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव साक्षात् समवसरण में विराजते हो, न हो तो उनकी प्रतिमा हो,... समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भगवान की भक्ति का राग आस्रवरूप है, दुःखरूप है परन्तु आये बिना रहता नहीं। ऐ... भीखाभाई! राग है न? आकुलता है और आकुलता से बन्ध होता है। अनाकुल आत्मधर्म से बन्ध होता नहीं। अर्हंतभक्ति। अरिहन्त साक्षात् समवसरण में

विराजते हों, परमात्मा वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। सीमन्धर परमात्मा आदि बीस तीर्थंकर। जिनके पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन रहे थे। कुन्दकुन्दाचार्य नग्न दिगम्बर मुनि संवत् ४९ में, भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। समझ में आया?

कहते हैं कि अर्हंतभक्ति। विकल्प ऐसा बहुमान आता है। है तो राग, है तो आस्रव। तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव का कारण है। आहाहा! ऐसा शुभभाव समकिती को होता है। तीन लोक में सर्व ऋद्धि, अचिन्त्य माहात्म्यवाली प्रकृति उसे बँधती है, ऐसा कहते हैं। है तो ज्ञानी को बन्ध और बन्ध का भाव हेय। अमरचन्दभाई! आहाहा! सम्यग्दृष्टि को वह राग और राग का फल हेय है। परन्तु होता है, ऐसा यहाँ बतलाते हैं।

११. आचार्यभक्ति,... महामुनि दिगम्बर आत्मज्ञानी ध्यानी, भावलिंगी सन्त, भावलिंगी सन्त, जिनको क्षण और पल में आनन्द की अन्दर में बाढ़ आती है। अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़-भरती। ऐसे आचार्य मुनि, भगवान ने स्वीकार किया हो ऐसे, उनकी भक्ति वह शुभराग है। भक्ति भी शुभराग है। संवर, निर्जरा नहीं, धर्म नहीं। धर्म हो तो बन्ध नहीं होता। राग है तो उससे तीर्थंकरगोत्र बँधता है।

१२. बहुश्रुतभक्ति,... बहु ज्ञानी की भक्ति। सम्यग्दृष्टि सहित बहु ज्ञान, हों! उसके बिना बहुज्ञान को ज्ञान कहते नहीं। आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसी चीज़ के अनुभव में सम्यग्दर्शन, ऐसा जो... समझ में आया? बहुश्रुत... ऐसा समकिती बहुश्रुत हो, बहुज्ञानवाला हो, उसकी भक्ति सम्यग्दृष्टि करते हैं तो उस विकल्प में तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। समझ में आया?

१३. प्रवचनभक्ति,... देव-गुरु को भी प्रवचन कहने में आता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को भी प्रवचन कहने में आता है। उसकी भक्ति, बहुमान विकल्प।

१४. आवश्यकापरिहाणि,... छह आवश्यक में हानि नहीं होने देनी। सामायिक, चौविसंथो... समकिती की बात है, हों! आत्मा का स्वाद शुद्ध स्वभाव का हुआ, ऐसे समकिती चौथे गुणस्थान से आगे बढ़कर छह आवश्यक विकल्प होता है, अन्दर में शान्ति बढ़ गयी है। सामायिक, चौविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, पच्चखाण।

छह प्रकार का अनुभव समकिती को पंचम गुणस्थान में या छठवें गुणस्थान में विकल्प आता है तो उस विकल्प शुभराग से तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह विकल्प कहा न। आवश्यक आ गया। शुभराग कहो या विकल्प द्रव्य प्रतिक्रमण। भावप्रतिक्रमण स्वरूप की स्थिरता है।

आज तो ऐसा प्रश्न हुआ कि मिथ्यादृष्टि की भी भक्ति करते हैं न। परन्तु समकिती मिथ्यादृष्टि हो और बाहर में आचरण सरखा हो और भक्ति करता है न? वह दूसरी चीज़ है। यह तो समकिती की बात है। समकिती माने समकिती। ... समझे? शास्त्र में आता है न? सम्यग्दृष्टि है, आत्मा का भान है और सामनेवाले को आत्मा का भान नहीं है। परन्तु उसकी क्रिया आगम अनुसार विशेष पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार, शास्त्र अनुसार श्रद्धा, प्ररूपणा बराबर स्पष्ट... समझ में आया? तो समकिती उसकी भक्ति करे। शुभभाव है न। ...

मुमुक्षु : समकिती को मालूम है कि...

पूज्य गुरुदेवश्री : मालूम है, अन्दर समकित नहीं है, ख्याल में है। परन्तु अपने से अधिक है न, तो करे। व्यवहार है न। व्यवहार निरतिचार है या नहीं? क्यों?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं आया इसमें? आया है या नहीं? तो क्या पूछा वापस?

वह आया, देखो! कदाचित् सम्यग्दृष्टि को किसी बाह्य चिह्न द्वारा उसका निर्णय हो और वह उसकी भक्ति न करे तो दूसरों को संशय हो। आगम प्रमाण जिसका आचरण बराबर निर्दोष (हो), अट्ठाईस मूलगुण बराबर (पाले)। उसके लिये बनाया हुआ पानी का बिन्दु, प्राण जाए तो भी न ले, ऐसी जिसकी बाह्य की क्रिया आगम प्रमाण निरतिचार हो। आगम प्रमाण व्यवहार श्रद्धा भी बराबर हो। अन्तर में अनुभव में निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं। ऐसे... देखो! कहा था न? दोपहर को चला था। उस समय नहीं रखा था। ... दूसरों को (संशय हो कि) इसकी भक्ति क्यों नहीं की? इसलिए वहाँ व्यवहार समकित मिथ्यात्व की अपेक्षा से कथन जानना। समझे? व्यवहार समकित चुस्त हो।

उसका आचरण व्यवहार चुस्त हो। दूसरा समकिती निश्चियवाला भी उसे शुभभाव है, शुभभाव है, भक्ति बहुमान (का विकल्प आता है)।

सम्यग्दृष्टि तो द्रव्यलिंगी को अपने से हीनगुणसहित मानता है तो उसकी भक्ति कैसे करे? ऐसा प्रश्न है। मोक्षमार्गप्रकाशक। ... परन्तु उस समय पन्ना नहीं निकला था। व्यवहारधर्म का साधन द्रव्यलिंगी को बहुत है। देखा! द्रव्यलिंगी को व्यवहारसाधन बहुत है। निरतिचार पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार, बाह्य की क्रिया स्पष्ट। महीने-महीने का उपवास, कुछ भी दोष लगे नहीं। निर्दोष आहार-पानी आदि ले। ऐसा व्यवहार बराबर है। भक्ति करनी वह भी व्यवहार ही है। पर की हुई न वह तो। इसलिए ऐसे कोई धनवान नहीं हो, परन्तु कुल में बड़ा हो तो उसे कुल अपेक्षा बड़ा जानकर उसका सत्कार करने में आता है। ऐसी क्रिया हो तो। ऐसी निरतिचार क्रिया हो तो। कुछ फेरफार हो तो आदरणीय है ही नहीं। उसका व्यवहार भी चुस्त नहीं है।

मुमुक्षु : व्यवहार स्पष्ट होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार स्पष्ट होना चाहिए, बस, इतनी बात है।

सम्यग्दर्शन सहित यदि कोई व्यवहारधर्म में प्रधान हो तो व्यवहारधर्म की अपेक्षा से गुणाधिक मानकर भक्ति करे। व्यवहार की अपेक्षा से करे। ऐसा समझना। समझ में आया?

मुमुक्षु : माहात्म्यपूर्वक करे...?

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अन्दर वह माहात्म्य नहीं है। व्यवहार का माहात्म्य है। विकल्प तो यह आया था कि इस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे या नहीं? पहले दिमाग में प्रश्न तो यह आया था कि ऐसी भक्ति ... समकित हो और उसमें ऐसा शुभभाव हो, उसे बँधे, ऐसा लगता है। ... समझ में आया? क्या कहा? प्रवचनभक्ति।

१४. आवश्यकापरिहाणि,... सामायिक, चौविसंथो, तीर्थंकर को भगवान को वन्दना इत्यादि वन्दन का भाव समकित की शुद्धि होने पर भी स्वरूप में स्थिरता नहीं है तो ऐसा शुभभाव समकिती को भी आता है। आवश्यक की क्रिया का आता है। छह आवश्यक विकल्प है, हों! शुभराग है, पुण्य है। ...

१५. सन्मार्गप्रभावना,... लो! भगवान के मार्ग की प्रभावना का विकल्प शुभभाव आये। लोग ऐसे धर्म को प्राप्त हो। ...

१६. प्रवचनवात्सल्य... देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम। प्रवचन सिद्धान्त का प्रेम और देव-गुरु-शास्त्र का अन्तर में प्रेम होता है। सच्चा है, ... है विकल्प, है राग। ... तीर्थंकरगोत्र का बन्ध भी राग से होता है, धर्म से होता नहीं। धर्म तो अपनी आत्मा का शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और रमणता से तो निर्जरा, कर्म की निर्जरा ही होती है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग। समझ में आता है? लो, सोलह हो गये। यह सोलह भावना।

इनका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र की टीका से जानिये। इनमें सम्यग्दर्शन प्रधान है,... उसमें सम्यग्दर्शन मुख्य है। इसके बिना, **यह न हो और पन्द्रह भावना का व्यवहार हो तो कार्यकारी नहीं है...** समझ में आया? इतना वजन... चैतन्य भगवान पूर्ण अखण्ड अभेद आत्मा उसकी अन्तर प्रतीति अनुभव में ज्ञान में भान होकर, हों! ऐसे सम्यग्दर्शन बिना अकेले पन्द्रह बोल दर्शनविशुद्धि के सिवा हो तो कोई कार्यकारी नहीं है। अकेला शुभराग हो। यह तो समकिती भान सहित ... उस भाव से तो तीर्थंकरगोत्र बँधता है। समकित के बिना जैसे पन्द्रह भाव हो तो तीर्थंकरगोत्र बँधता नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। लोगों को बाहर से चाहिए और मार्ग है अन्तर में। पता लगता नहीं कि अन्तर में क्या मार्ग है। सुनने मिलता नहीं। बाह्य में ऐसा करो और वैसा करो। परन्तु आत्मा रागरहित विकल्प की क्रिया के भाव से भिन्न, ऐसा निर्विकल्प आनन्द का अनुभव, उसका स्पर्श, उसका वेदन मूल चीज़ है। समझ में आया? अन्यमति में भी ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : लोगों ने जो बात कही, सुनी...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है।

यह भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग है। यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं है। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं है। जैन तो वस्तु का स्वरूप है। स्वरूप का अनुभव धर्म है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' भगवान आत्मा अकेला वीतरागबिम्ब, चिद्बिम्ब, जिनबिम्ब, वीतरागबिम्ब वस्तु

है। विकल्प वस्तु कहाँ है, उसमें कहाँ है। आहाहा! ऐसा वीतरागस्वभाव चैतन्य भगवान अपना निज स्वरूप, उसका अन्तर में ज्ञान, भान होकर प्रतीति का होना, यह मूल चीज़ है। यह नहीं हो तो दूसरी कोई चीज़ की कीमत है नहीं। चाहे तो पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, नग्न रहे... सब निरर्थक है, आत्मा के लिये कुछ सार्थक है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन मुख्य है। प्रधान अर्थात् मुख्य। **यह न हो और पन्द्रह भावना का व्यवहार हो तो कार्यकारी नहीं है...** तीर्थंकरगोत्र का कार्य नहीं (होता)। समकित नहीं है तो साधारण पुण्य बाँधे। वह तो अनन्त बार किया। **और यह हो...** सम्यग्दर्शन, आत्मा का अनुभव, सम्यक् प्रतीति हो **तो पन्द्रह भावना का कार्य यही कर ले,...** तो पन्द्रह का काम एक ही कर ले।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है। सम्यग्दर्शन में दर्शनविशुद्धि का विकल्प है। सम्यग्दर्शन में... परन्तु यह सम्यग्दर्शन हो तो कहते हैं कि **यह पन्द्रह भावना का कार्य यही कर ले,...** एक ही पन्द्रह का काम कर ले। ... कुछेक बोल तो होते हैं। सम्यग्दर्शन हो तो उसमें वात्सल्य, भक्ति,... है न? सन्मार्ग प्रभावना ऐसे कुछ बोल होते हैं, सब नहीं होते। किसी को तो सब भी होते हैं। उसमें सम्यग्दर्शन है तो सब सफल है, वरना सफल नहीं है। आहाहा! कहा न, नरक में तीर्थंकर गोत्र बँधता है। वहाँ व्रत या नियम तो है नहीं। उसके योग्य वहाँ प्रवचनभक्ति, अरिहन्तभक्ति ऐसी भक्ति का भाव है। नरक में सम्यग्दृष्टि है न।

गाथा-८०

आगे भाव की विशुद्धता निमित्त आचरण कहते हैं –

बारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं णाणंकुसएण मुणिपवर।।८०।।

द्वादशविधतपश्चरणं त्रयोदश क्रिया: भावय त्रिविधेन।
धर मनोमत्तदुरितं ज्ञानांकुशेन मुनिप्रवर!।।८०।।

बारह प्रकार तपश्चरण तेरह क्रिया त्रय योग से।
भाओ रखो हे मुनी! वश मन मत्त गज ज्ञ-शूल से।।८०।।

अर्थ – हे मुनिप्रवर ! मुनियों में श्रेष्ठ ! तू बारह प्रकार के तप का आचरण कर और तेरह प्रकार की क्रिया मन-वचन-काय से भा और ज्ञानरूप अंकुश से मनरूप मतवाले हाथी को अपने वश में रख।

भावार्थ – यह मनरूप हाथी बहुत मदोन्मत्त है, वह तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुश ही से वश में होता है, इसलिए यह उपदेश है, अन्य प्रकार से वश में नहीं होता है। ये बारह तपों के नाम हैं – १. अनशन, २. अवमौदर्य, ३. वृत्तिपरिसंख्यान, ४. रसपरित्याग, ५. विविक्त-शय्यासन और ६. कायक्लेश – ये तो छह प्रकार के बाह्य तप हैं और १. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावृत्त्य, ४. स्वाध्याय, ५. व्युत्सर्ग, ६. ध्यान ये छह प्रकार के अभ्यन्तर तप हैं, इनका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र की टीका से जानना चाहिए। तेरह क्रिया इस प्रकार है – पंच परमेष्ठी को नमस्कार ये पाँच क्रिया, छह आवश्यक क्रिया, [१]निषिधिकाक्रिया और [२]असिकाक्रिया। इस प्रकार भाव शुद्ध होने के कारण कहे।।८०।।

गाथा-८० पर प्रवचन

आगे भाव की विशुद्धता निमित्त आचरण कहते हैं – कहते हैं कि ऐसे शुद्धता भाव में ऐसा आचरण उसको होता है। सम्यक् आत्मा का भान, मोक्ष का मार्ग, उसमें ऐसी विकल्पवाली क्रिया भी होती है।

बारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं णाणंकुसएण मुणिपवर।।८०।।

१. निषिधिका – जिनमन्दिरादि में प्रवेश करते ही गृहस्थ या व्यन्तरादि देव कोई उपस्थित है ऐसा मानकर आज्ञार्थ 'नि:सही' शब्द तीन बार बोलने में आता है अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर रहना 'नि:सही' है।
२. धर्मस्थान से बाहर निकलते समय विनयसह विदायकी आज्ञा माँगने के अर्थ में 'आसिका' शब्द बोले अथवा पाप क्रिया से मन-मोड़ना 'आसिका' है।

मुनि की प्रधानता से कथन है। **हे मुनिप्रवर ! मुनियों में श्रेष्ठ ! तू बारह प्रकार के तप का आचरण कर...** बारह प्रकार के तप। इच्छा निरोधरूपी तप। उसमें बारह प्रकार के तप को निमित्त कहने में आता है। **और तेरह प्रकार की क्रिया...** अन्दर आयेगा। **मन-वचन-काय से भा...** मन, वचन और काया से वह भावना कर **और ज्ञानरूप अंकुश से मनरूप मतवाले हाथी को अपने वश में रख।** हाथी को जैसे अंकुश मारते हैं और काबू में करते है, वैसे सम्यग्ज्ञानरूपी अंकुश, अरे! मैं आनन्द और ज्ञान (स्वरूप हूँ), यह क्या? यह क्या हुआ? ऐसे सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान के अंकुश द्वारा मनरूपी मतवाला हाथी, पागल हाथी जैसा है, उसे वश कर। मैं आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञान के भानसहित मन को वश कर। जिसको ज्ञान नहीं, भान नहीं, वह मन को वश कर सकता नहीं। समझ में आया?

भावार्थ - यह मनरूप हाथी बहुत मदोन्मत्त है,... आहाहा! मद में उन्मत्त है। **... वह तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुश ही से वश में होता है,...** सम्यग्ज्ञानसहित तप और क्रिया। उसका स्पष्टीकरण करेंगे। **इसलिए यह उपदेश है,... वह तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुश ही से वश में होता है,...** सम्यग्ज्ञान हो तो उस अंकुश द्वारा वश हो सके। सम्यक् आत्मा के भान बिना वह अंकुश हो सकता नहीं। आहाहा! अज्ञानी को मन वश होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि मन का विकल्प है, उसके साथ एकता है। एकता है, उसे मन वश कहाँ से हो? समझ में आया? अस्थिर है, एकता टूट गयी है। आत्मा में सम्यग्दर्शन होने पर राग के विकल्प के साथ एकता टूट गयी है। उसको ज्ञान का अंकुश द्वारा स्थिर करना, यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अन्य प्रकार से वश में नहीं होता है। ज्ञानरूपी अंकुश से ही वश होता है, अन्य प्रकार नहीं है। दूसरे प्रकार से वश हो सकता ही नहीं। समझ में आया? तप के नाम। **१. अनशन,...** एक महीने का उपवास आदि। **२. अवमौदर्य,...** ऊनोदरी-थोड़ा आहार लेना। **३. वृत्तिपरिसंख्यान,...** वृत्ति का संक्षेप करना। **४. रसपरित्याग,...** दूध, दही आदि का रस छोड़ना। परन्तु आत्मभानसहित विकल्प की बात है। **५. विविक्त-शय्यासन...** जहाँ रहना हो, वहाँ विक्ति अर्थात् शयन, आसन में कोई स्त्री, नपुंसक

आदि का संग नहीं हो। **६. कायक्लेश...** यह छह प्रकार के बाह्य तप हैं।

१. प्रायश्चित्त,... पाप लगा हो उसका प्रायश्चित (करना)। **२. विनय, ३. वैयावृत्त्य, ४. स्वाध्याय,...** शास्त्र का। **५. व्युत्सर्ग, ६. ध्यान ये छह प्रकार के अभ्यन्तर तप हैं, इनका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र की टीका से जानना चाहिए।**

तेरह क्रिया इस प्रकार है – पंच परमेष्ठी को नमस्कार... अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। पंच परमेष्ठी जगत में उत्तम से उत्तम पदार्थ। भगवान अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। पंच परमेष्ठी परमेश्वर है। यह सब समकित सहित की बात है, हों! समकित बिना के आचार्य, उपाध्याय, साधु सब व्यर्थ, बिना एक के शून्य है। इनको **नमस्कार ये पाँच क्रिया, छह आवश्यक क्रिया,...** छठवीं आवश्यक क्रिया। हमेशा करनेयोग्य सामायिक आदि। **निषिधिकाक्रिया...** मन्दिर में जाते समय नि:सहि... नि:सहि करना। सब ... का निषेध करके भगवान के दर्शन करने आता हूँ। समझ में आया? ऐसा रिवाज है। श्वेताम्बर में यह रिवाज बहुत है। अपने यहाँ ... भगवान के मन्दिर में प्रवेश करे तब, नि:सहि... नि:सहि... (बोले)। नि:सहि। ... अभी भगवान के दर्शन का ही भाव है। कोई पाप का भाव ... असिहि-निकलते समय असि... असि... जाते समय नि:सहि, आते समय असिहि। मन्दिर से बाहर निकलते समय असि (बोले)। बाहर निकलते समय। अन्दर जाते समय नि:सहि, निकलते समय असि। वह क्रिया है।

इस प्रकार भाव शुद्ध होने के कारण कहे। अन्तर की शुद्धि में ऐसा भाव निमित्तरूप से कारण है।

गाथा-८१

आगे द्रव्य-भावरूप सामान्यरूप से जिनलिंग का स्वरूप कहते हैं –

पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू।
भावं भावियपुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं।।८१।।

पंचविधचेलत्यागं क्षितिशयनं द्विविधसंयमं भिक्षु।
भावं भावयित्वा पूर्वं जिनलिंगं निर्मलं शुद्धम्।।८१।।

भू-शयन भिक्षा दुविध संयम पंचधा पट-त्याग है।
है भाव भावित पूर्व वह जिन-लिंग निर्मल शुद्ध है।।८१।।

अर्थ – निर्मल शुद्ध जिनलिंग इस प्रकार है, जहाँ पाँच प्रकार के वस्त्र का त्याग है, भूमि पर शयन है, दो प्रकार का संयम है, भिक्षा भोजन है, भावितपूर्व अर्थात् पहिले शुद्ध आत्मा का स्वरूप परद्रव्य से भिन्न सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी हुआ, उसे बाम्बार भावना से अनुभव किया, इस प्रकार जिसमें भाव है, ऐसा निर्मल अर्थात् बाह्यमलरहित शुद्ध अर्थात् अन्तर्मलरहित जिनलिंग है।

भावार्थ – यहाँ लिंग द्रव्य-भाव से दो प्रकार का है। द्रव्य तो बाह्य त्याग अपेक्षा है, जिसमें पाँच प्रकार के वस्त्र का त्याग है, वे पाँच प्रकार ऐसे हैं – १. अण्डज अर्थात् रेशम से बना, २. बोंडुज अर्थात् कपास से बना, ३. रोमज अर्थात् ऊन से बना, ४. वल्कलज अर्थात् वृक्ष की छाल से बना, ५. चर्मज अर्थात् मृग आदिक के चर्म से बना, इस प्रकार पाँच प्रकार कहे। इस प्रकार नहीं जानना कि इनके सिवाय और वस्त्र ग्राह्य हैं, ये तो उपलक्षणमात्र कहे हैं, इसलिए सब ही वस्त्रमात्र का त्याग जानना।

भूमि पर सोना, बैठना, इसमें काष्ठ तृण भी गिन लेना। इन्द्रिय और मन को वश में करना, छह काय के जीवों की रक्षा करना इस प्रकार दो प्रकार का संयम है। भिक्षा भोजन करना जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना का दोष न लगे – छियालीस दोष टले – बत्तीस अन्तराय टले ऐसी विधि के अनुसार आहार करे। इस प्रकार तो बाह्यलिंग है और पहिले कहा वैसे ही वह 'भावलिंग' है, इस प्रकार तो बाह्यलिंग है और पहिले कहा वैसे हो वह 'भावलिंग' है, इस प्रकार दो प्रकार का शुद्ध जिनलिंग कहा है, अन्य प्रकार श्वेताम्बरादिक कहते हैं, वह जिनलिंग नहीं है।।८१।।

गाथा-८१ पर प्रवचन

इस प्रकार भाव शुद्ध होने के कारण कहे। अन्तर की शुद्धि में ऐसा भाव निमित्तरूप से कारण है। आगे द्रव्य-भावरूप सामान्यरूप से जिनलिंग का स्वरूप

कहते हैं – लो! अब कहते हैं कि परमात्मा सर्वज्ञदेव वीतरागदेव के शासन में द्रव्यलिंग क्या है और भावलिंग क्या है, यह बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्पष्ट करते हैं।

पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू।
भावं भावियपुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं।।८१।।

अर्थ – निर्मल शुद्ध जिनलिंग इस प्रकार है,... भगवान परमेश्वर तीर्थंकरदेव के मार्ग में निर्मल जिनलिंग इस प्रकार है। **जहाँ पाँच प्रकार के वस्त्र का त्याग है,...** मुनि को अन्तर भाव आनन्द के भानसहित वस्त्र का त्याग होता है। वस्त्र का टुकड़ा भी रहे, तब तक वह साधु हो सकता नहीं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि लंगोटी भी रहे, तब तक भावलिंग, मुनिपना होता नहीं। लंगोटी कारण नहीं है, उसकी ममता है। ममता है न? और बाहर में छोड़ दिया तो ममता छूट गयी, ऐसा भी नहीं है। बाह्य से अनन्त बार (त्याग) किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।' वह छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ऐसा द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किया परन्तु आत्मा राग से, विकल्प से, निमित्त से, संयोग से भिन्न; अपने स्वभाव से परिपूर्ण अभिन्न है, ऐसे अनुभव का सम्यग्दर्शन, ज्ञान बिना बाह्य क्रिया की कोई कीमत है नहीं।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन, भानसहित उसको पाँच प्रकार के वस्त्र का त्याग (होता है)। **भूमि पर शयन है,...** नीचे भूमि। **'खिदि'** है न? **'खिदिसयणं', 'खिदिसयणं'। 'खिदि'** अर्थात् पृथ्वी। पाठ में **'खिदि'** है। जहाँ **दो प्रकार का संयम है,...** छह काय आदि। कहेंगे। जहाँ **भिक्षा भोजन है,...** भिक्षा से भोजन हो। उसके लिये बनाया हुआ आहार न ले। भिक्षा। निर्दोष आहार हो। उसके लिये चौका बनाया हो और ले, वह साधु नहीं। वह व्यवहार साधु भी नहीं। निश्चय तो नहीं, व्यवहार साधु भी नहीं है। समझ में आया? भिक्षाभोजन। सहज मिले। आनन्द सहित के भान में, उसके लिये बनाया हो वह ले नहीं। **भावितपूर्व अर्थात् पहिले शुद्ध आत्मा का...** भाव चाहिए। देखो! **पहिले शुद्ध आत्मा का स्वरूप परद्रव्य से भिन्न...** देखो! पहले यह अनुभव होना चाहिए। **सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रमयी हुआ,...** आहाहा! मुख्य तो मुनि की बात है न। पहले आत्मा परद्रव्य से भिन्न... उसमें छहढाला में भी आता है न? परद्रव्य से भिन्न

आत्मरुचि भला है।... परद्रव्य और परद्रव्य के विकल्प से भिन्न अपना चिदानन्द आत्मा का निर्विकल्प अनुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन, अपना सम्यग्ज्ञान और चारित्र। स्वरूप में लीनता, आनन्द में लीनता। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में मशगुल (लीन) हो जाना, उसका नाम चारित्र है। **उसे बाम्बार भावना से...** उसकी ओर की बारम्बार एकाग्रता करके **अनुभव किया, इस प्रकार जिसमें भाव है,...** यह पहले हो। ऐसा भाव पहले हो। कहो, शान्तिभाई! आहाहा! **ऐसा निर्मल अर्थात् बाह्यमलरहित शुद्ध अर्थात् अन्तर्मलरहित जिनलिंग है।** लो! बाह्यमल रहित और शुद्ध अर्थात् अन्तर्मल रहित। मिथ्यात्व आदि का अन्तर्मल नहीं, बाह्य में वस्त्र आदि का संयोग नहीं।

भावार्थ – यहाँ लिंग द्रव्य–भाव से दो प्रकार का है। द्रव्य तो बाह्य त्याग अपेक्षा है, जिसमें पाँच प्रकार के वस्त्र का त्याग है, वे पाँच प्रकार ऐसे हैं – १. अण्डज अर्थात् रेशम से बना, २. बोंडुज अर्थात् कपास से बना, ३. रोमज अर्थात् ऊन से बना, ४. वल्कलज अर्थात् वृक्ष की छाल से बना, ५. चर्मज अर्थात् मृग आदिक के चर्म से बना, इस प्रकार पाँच प्रकार कहे। इस प्रकार नहीं जानना कि इनके सिवाय और वस्त्र ग्राह्य हैं, ये तो उपलक्षणमात्र कहे हैं,... सबका त्याग। अन्दर ममतारहित सबका (त्याग)। **इसलिए सब ही वस्त्रमात्र का त्याग जानना।**

भूमि पर सोना, बैठना,... भूमि पर। **काष्ठ तृण भी गिन लेना।** ऐसा उसमें गिन लेना। **इन्द्रिय और मन को वश में करना, छह काय के जीवों की रक्षा करना...** लो! इन्द्रिय और मन को वश करना—पहला, छहकाय की रक्षा—दूसरा। **इस प्रकार दो प्रकार का संयम है। भिक्षा भोजन करना जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना का दोष न लगे...** स्वयं आहार-पानी बनाये नहीं, दूसरे के पास बनवाये नहीं, बनता हो तो अनुमोदन करे नहीं। बना हो तो ले नहीं। आहाहा! मार्ग तो मार्ग है न! वीतराग का मार्ग यह है।

छियालीस दोष टले... छियालीस। ब्यालीस और चार—छियालीस दोषरहित। **बत्तीस अन्तराय टले ऐसी विधि के अनुसार आहार करे।** लो! **इस प्रकार तो बाह्यलिंग है...** उसे तो अभी बाह्यलिंग कहते हैं। **और पहिले कहा वैसे ही वह**

'भावलिंग' है,... सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। ऊपर कहा न। **इस प्रकार दो प्रकार का शुद्ध जिनलिंग कहा है, अन्य प्रकार श्वेताम्बरादिक कहते हैं, वह जिनलिंग नहीं है।** श्वेताम्बर में जो वस्त्र को जिनलिंग कहते हैं, वह जिनलिंग नहीं है। वीतराग मार्ग में ऐसा लिंग नहीं है? ऐई! जमुभाई! यह क्या कहते हैं? वस्त्र रखे और मुनिपना माने और लिंग धारे, वह जैनदर्शन में है नहीं। यह तो वीतराग का मार्ग है, यह सम्प्रदाय की चीज़ नहीं है। श्वेताम्बरादिक... श्वेताम्बर है, स्थानकवासी है और यह तेरापंथी।

मुमुक्षु : पीले कपड़ेवाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पीले कपड़ेवाले। श्वेताम्बर में पहले कपड़े होते हैं।

मुमुक्षु : वह पीताम्बर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पीताम्बर है। वह पीताम्बर, श्वेताम्बर जैनलिंग नहीं है। मार्ग ऐसा है, भाई! किसी को दुःख लगे, न लगे इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? सम्प्रदाय की दृष्टिवाले कहे, हमारा मार्ग झूठा? मार्ग तो सत्य है, वह सत्य है। झूठा सत्य हो जायेगा और सत्य झूठा हो जायेगा, ऐसा बनता नहीं। अनादि सर्वज्ञ परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में कहते आये हैं, भरत, ऐरावत में भी अनादि से केवली यही कहते हैं, श्वेताम्बर तो बाद में निकले हैं। दिगम्बर में से भगवान के बाद ६०० साल के बाद (निकला है)। वह वीतराग का मार्ग नहीं है। समझ में आया? **वह जिनलिंग नहीं है।** वह वेश जिन का नहीं। जिन तो वीतरागभाव प्रगट हुआ है, उसको नग्नदशा अट्ठाईस मूलगुण को जिनलिंग कहने में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

गाथा-८२

आगे जिनधर्म की महिमा कहते हैं –

जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भाविभवमहणं।।८२।।

यथा रत्नानां प्रवरं वज्रं यथा तरुगणानां गोशीरम्।
तथा धर्माणां प्रवरं जिनधर्मं भाविभवमथनम्।।८२।।

ज्यों श्रेष्ठ है हीरा रतन में वृक्ष में गोशीर है।
त्यों धर्म में उत्कृष्ट भावी भव-मथन जिन-धर्म है।।८२।।

अर्थ – जैसे रत्नों में प्रवर (श्रेष्ठ) उत्तम वज्र (हीरा) है और जैसे तरुगण (बड़े वृक्ष) में उत्तम गोसीर (बावन चन्दन) है, वैसे ही धर्मों में उत्तम भाविभवमथन (आगामी संसार का मंथन करनेवाला) जिनधर्म है, इससे मोक्ष होता है।

भावार्थ – 'धर्म' ऐसा सामान्य नाम तो लोक में प्रसिद्ध है और लोक अनेक प्रकार से क्रियाकाण्डादिक को धर्म जानकर सेवन करता है, परन्तु परीक्षा करने पर मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला जिनधर्म ही है, अन्य सब संसार के कारण हैं। वे क्रियाकाण्डादिक संसार ही में रखते हैं, कदाचित् संसार के भोगों की प्राप्ति कराते हैं, तो भी फिर भोगों में लीन होता है तब एकेन्द्रियादि पर्याय पाता है तथा नरक को पाता है। ऐसे अन्य धर्म नाममात्र हैं, इसलिए उत्तम जिनधर्म ही जानना।।८२।।

गाथा-८२ पर प्रवचन

आगे जिनधर्म की महिमा कहते हैं –

जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भाविभवमहणं।।८२।।

अर्थ – जैसे रत्नों में प्रवर (श्रेष्ठ) उत्तम वज्र (हीरा) है... वैसे धर्म में उत्तम वीतराग जैनधर्म है। ऐसा धर्म ... होता नहीं। कहो, समझ में आया? जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप है। आत्मा वीतरागस्वरूप है, ऐसी वीतरागता प्रगट करना, वही धर्म-जैनधर्म है। वह जैनधर्म **रत्नों में प्रवर (श्रेष्ठ) उत्तम वज्र (हीरा) है और जैसे तरुगण (बड़े वृक्ष) में उत्तम गोसीर (बावन चन्दन) है,...** बावल चन्दन। क्या कहते हैं? चन्दन... चन्दन। चन्दन के वृक्ष। सुखड़ का वृक्ष बड़ा (होता है)। वैसे जैनधर्म, आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वह जैनधर्म है। समझ में आया?

वैसे ही धर्मों में उत्तम भाविभवमथन (आगामी संसार का मंथन करनेवाला) जिनधर्म है,... कैसा है जैनधर्म? भाविभवमथन। आहाहा! भविष्य के संसार का मन्थन करनेवाला है। भविष्य के भव का मन्थन कर दे—नाश करनेवाला है। भव का नाश करनेवाला जैनधर्म है। जिस भाव से संसार मिले उसको तो भगवान जैनधर्म कहते ही नहीं। भव मिले, भव। वह भाव भी जैनधर्म नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने (जो कहा), ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, ऐसी अन्तर में दृष्टि, ज्ञान की रमणता, वह भव का मन्थन करनेवाला है—भव का नाश करनेवाला है। आहाहा! भव की उत्पत्ति जैनधर्म में होती नहीं। राग से होती है, वह जैनधर्म नहीं। आहाहा! अभी तो अन्तर में मार्ग को सुना नहीं हो, उसे ऐसा लगे। आहाहा! ये क्या? अनादि से बाहर में (धर्म) मान लिया है।

कहते हैं, पाठ है न? भाविभवमंथन। भविष्य के भव का नाश करनेवाला जैनधर्म है। आहाहा! आत्मा भवस्वभाव रहित है और आत्मा भव के भाव से रहित है। यह जैनधर्म, यह वस्तु है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, वह जैनशासन। आहाहा! भविष्य के भव का नाश करनेवाला भगवान का जैनधर्म है। समझ में आया? **इससे मोक्ष होता है।** लो! वीतराग मार्ग से मोक्ष होता है। दूसरे कोई मार्ग से मोक्ष होता नहीं। पहले तो अभी श्रद्धा करने में पानी उतर जाता है। हाय.. हाय..! आहाहा!

भावार्थ – 'धर्म' ऐसा सामान्य नाम तो लोक में प्रसिद्ध है... लोग भी कहते हैं कि धर्म... धर्म... धर्म का जान न मर्म। **'धर्म जिनेश्वर शरण ग्रह्या पछी कोई न बाँधे कर्म...'** समझ में आया? कहते हैं, **'धर्म' ऐसा सामान्य नाम तो लोक में प्रसिद्ध है. और लोक अनेक प्रकार से क्रियाकाण्डादिक को धर्म जानकर सेवन करता है,...** लो! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा को धर्म जानकर सेवन करते हैं। वह धर्म नहीं है, वह पुण्य है। आगे आयेगा। ८३ गाथा। ८३ गाथा में आयेगा। वह सब तो पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? **अनेक प्रकार से क्रियाकाण्डादिक...** ऐसी दया, ऐसा व्रत, ऐसा तप, ऐसी भक्ति, ऐसी पूजा, ऐसा दान यह सब क्रियाकाण्ड शुभराग है। उसको **धर्म जानकर सेवन करता है,...** उसे धर्म मानकर सेवन करते हैं। वह जैनधर्म नहीं। **परन्तु परीक्षा करने पर मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला जिनधर्म ही**

है,... परीक्षा करने से परमात्मा परमेश्वर ने जो अपना आत्मा और उसका अनुभव सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वही जैनधर्म है। परीक्षा करने से उसकी बात सिद्ध होती है। **अन्य सब संसार के कारण हैं।** अन्य सर्व संसार के कारण हैं। आहाहा! समझ में आया? **वे क्रियाकाण्डादिक संसार ही में रखते हैं,...** अन्यमत में ऐसा बहुत है न। नवनीतभाई बहुत श्लोक बोलते हैं। कबीर के और ऐसे सब। क्रियाकाण्ड सब विकल्प है। ऐसा धर्म है नहीं।

यहाँ आया था न? कृषक लोग वहाँ गये थे। प्रवचन करना था। चवरी-चवरी (गाय) वे किसान लोग थे। बपोरे। लोगों को मालूम हुआ कि महाराज ने अध्यात्म व्याख्या की है। स्वामी नारायण था। कृषक। उसके पास एक पुस्तक थी। क्या नाम कहा? अगाध गति। ऐसे नाम की पुस्तक थी। दोपहर को प्रवचन चला। बहुत लोग आये थे। प्रसिद्धि बहुत थी। आस-पास से भी बहुत लोग आये थे। दिन को तो कृषिकार जंगल में था। खेत में। रात्रि में आया? फानस लेकर। फानस को क्या कहते हैं? लालटेन। लालटेन और एक थैली लेकर आया। महाराज! इस पुस्तक में क्या लिखा है, वह हमें मालूम नहीं पड़ता। इतना लिखा था... ओहोहो! कोई वेदान्ती ने लिखा था कि जितना दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, नामस्मरण... ओहोहो! इतना डाल दिया था... सब यहाँ फलेगा। संसार मिलेगा, उससे धर्म नहीं (होगा)। बड़ी पुस्तक थी। ... गाँव है। वहाँ गये थे। रात्रि को पुस्तक लाया था। अनजाना पुस्तक है। लाओ, बताओ। उसमें ऐसा लिखा था, नामस्मरण, भक्ति, पूजा, दया, अपवास, आहारत्याग अमुक... अमुक... इतने नाम... इतने नाम (लिखे थे)। शब्द ऐसा था कि यहाँ फलेगा। इसलिए वह समझता नहीं था। यहाँ फलेगा का अर्थ संसार फलेगा। उससे कोई जन्म-मरण मिटेगा नहीं। आहाहा! अन्यमति की पुस्तक थी। बहुत लिखा था। अगाधगति। आत्मा की मोक्षगति तो अगाधगति है। ऐसे क्रियाकाण्ड से अगाधगति मिलती नहीं। समझ में आया? स्वामी नारायण थे। ये स्वामी नारायण है न? वह कृषिकार स्वामी नारायण था। कोई पुरानी पुस्तक होगी। पढ़े लेकिन समझ में आये नहीं। यहाँ फलेगा, यहाँ फलेगा ऐसा लिखा हो (तो समझ में नहीं आता था)। जैसे अपने प्रवचनसार में आता है न? अफल, सफल। प्रवचनसार में आता है, सफल। जितनी तेरी दया,

दान,व्रत, भक्ति की क्रिया है, वह सफल है। चार गति में फलनेवाली। प्रवचनसार में आता है। समझ में आया? एक आत्मा धर्म-मोक्ष का मार्ग अफल है। अफल अर्थात् उससे चार गति का फल मिलेगा नहीं। कहो, ...भाई! चवरी-चवरी। वहाँ है न ताराचन्दभाई कंदोई की दुकान है यह चवरी। वहाँ बहुत लोग आये थे। पास में बगसरा है न। नरभेराम सेठ आदि सब प्रवचन में आये थे। ... दोपहर को प्रवचन था। कृषिकार रह गये। एक पुस्तक है। उसमें क्या लिखा है, वह हम समझते नहीं। लाओ। बहुत लिखा था। हमें तो याद भी नहीं। ऐसी दया करना, परोपकार करना, ऐसा करना, पर की सम्हाल करना, सेवा करना, पूजा करनी, भक्ति करनी, नाम स्मरण करना... सबसे संसार फलनेवाला है। अहिंसा करना, सत्य पालना, ब्रह्मचर्य पालना, चोरी छोड़ना, परिग्रह छोड़ना... बहुत नाम लिखे थे। यहाँ सब संसार फलेगा। उसमें मोक्ष नहीं होगा। कहा, देखो! यह कहते हैं। नवनीतभाई! वहाँ वह पुस्तक थी।

अपना निज स्वरूप, पुण्य की क्रियाकाण्ड के राग से भिन्न, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता से जन्म-मरण का नाश होगा। इसके अलावा मोक्ष होता नहीं। जैनधर्म के सम्प्रदाय में भी कठिन पड़ता है तो दूसरे लोगों को बेचारों को तो (कठिन पड़े ही)। पुस्तक में तो ऐसा लिखा है, वह तो बराबर है। पुस्तक में तो ऐसा लिखा है। यहाँ फलेगा, यहाँ फलेगा। यहाँ फलेगा का अर्थ क्या? अनादि का संसार है तो गति मिलेगी। जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। जन्म-मरण टलने का (उपाय) तो एक जैनधर्म अपना वीतरागी स्वभाव है, दूसरा कोई है नहीं। लो!

वे क्रियाकाण्डादिक संसार ही में रखते हैं, कदाचित् संसार के भोगों की प्राप्ति कराते हैं, तो भी फिर भोगों में लीन होता है... वह तो वहीं का वहीं है। **तब एकेन्द्रियादि पर्याय पाता है...** तब तो एकेन्द्रिय में जायेगा। पुण्य से कोई स्वर्ग मिले, फिर एकेन्द्रिय, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु का भव होगा। **तथा नरक को पाता है।** आहाहा! कहते हैं कि, वैसी पुण्य की क्रिया से स्वर्ग आदि मिलता है, फिर नरक में जायेगा। मिथ्यात्वभाव है न। समझ में आया? **ऐसे अन्य धर्म नाममात्र हैं,...** देखो! अन्य धर्म तो नाममात्र है। आहाहा! अभी तो सब वही चला है। अणुव्रत करो, अणुव्रत पालो धर्म (होगा)। धूल भी नहीं है। अणुव्रत समकित के बिना होते नहीं और तेरा

बाहर का अणुव्रत का विकल्प, राग मन्द हो तो मिथ्यात्वभाव सहित है। आहाहा! गजब बात है! दुनिया के साथ मेल खाना (कठिन है)। भटकनेवाले के साथ भटकने के भाव के साथ भटकने का अभाव का मेल खाना कठिन है। **अन्य धर्म नाममात्र हैं,...** दया, दान, व्रत आदि को धर्म कहना, अन्य धर्मी जैन के सिवा दूसरे, वह तो नाममात्र धर्म है। वीतराग के सिवा कहीं धर्म होता नहीं। आत्मा अन्दर चिदानन्दस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान वीतरागी। वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी रमणता एक ही धर्म है। **इसलिए उत्तम जिनधर्म ही जानना।** लो! इसलिए उसे उत्तम से उत्तम जिनधर्म कहते हैं। गाथा आयेगी... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-८३

आगे शिष्य पूछता है कि जिनधर्म को उत्तम कहा तो धर्म का क्या स्वरूप है? उसका स्वरूप कहते हैं कि 'धर्म' इस प्रकार है –

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो।।८३।।

पूजादिषु व्रतसहितं पुण्यं हि जिनैः शासने भणितम्।
मोहक्षोभविहीनः परिणामः आत्मनः धर्मः।।८३।।

पूजादि में व्रत-सहित है यह पुण्य जिन-शासन कहा।
है मोह-क्षोभ-विहीन आतम भाव धर्म कहा गया।।८३।।

अर्थ – जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है कि पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो 'पुण्य'ही है तथा मोह के क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम वह 'धर्म' है।

भावार्थ – लौकिक जन तथा अन्यमती कई कहते हैं कि पूजा आदिक शुभक्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है, परन्तु ऐसा नहीं है। जिनमत में जिन भगवान ने इस प्रकार कहा है कि पूजादिक में और व्रतसहित होना है, वह तो 'पुण्य' है, इसमें

पूजा और आदि शब्द से भक्ति, वन्दना, वैयावृत्त्य आदिक समझना, यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिए होता है और उपवास आदिक व्रत है, वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है, उससे पुण्यकर्म होता है, इसलिए इनको पुण्य कहते हैं। इसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है।

मोह के क्षोभ से रहित आत्मा के परिणाम को धर्म समझिये। मिथ्यात्व तो अतत्त्वार्थश्रद्धान है, क्रोध-मान-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा ये छह द्वेषप्रकृति हैं और माया, लोभ, हास्य, रति ये चार तथा पुरुष, स्त्री, नपुंसक ये तीन विकार, ऐसे सात प्रकृति रागरूप हैं। इनके निमित्त से आत्मा का ज्ञान-दर्शनस्वभाव विकारसहित, क्षोभरूप, चलाचल, व्याकुल होता है, इसलिए इन विकारों से रहित हो तब शुद्धदर्शनज्ञानरूप निश्चय हो वह आत्मा का 'धर्म' है। इस धर्म से आत्मा के आगामी कर्म का आस्रव रुककर संवर होता है और पहिले बँधे हुए कर्मों की निर्जरा होती है। सम्पूर्ण निर्जरा हो जाय तब मोक्ष होता है तथा एकदेश मोह के क्षोभ की हानि होती है, इसलिए शुभपरिणाम को भी उपचार से धर्म कहते हैं और जो केवल शुभपरिणाम ही को धर्म मानकर सन्तुष्ट है, उनको धर्म की प्राप्ति नहीं है, यह जिनमत का उपदेश है।।८३।।

प्रवचन-१२५, गाथा- ८३ से ८६, मंगलवार, आसोज कृष्ण १३, दिनांक २७-१०-१९७०

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो।।८३।।

इसका जो शासन, धर्म शिखामण, धर्म का स्वरूप। ऐसे **जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है**... ऐसा कहा है **कि पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो 'पुण्य'ही है**... पूजा, भक्ति, दया, दान आदि वह सब पुण्य है और व्रत, वह पुण्य है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह (रहितपना) वह सब पुण्यभाव है। जिनेन्द्रदेव ने जैनशासन में ऐसा कहा है। **तथा मोह के क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम वह 'धर्म' है।** ऐसा जैनशासन में कहा है। राग-द्वेष और मिथ्यात्व के परिणामरहित

अपने सम्यग्दर्शन और समभाव के परिणाम (हों), उन्हें भगवान ने जैनशासन में धर्म कहा है। गाथा बहुत स्पष्ट है। समझ में आया? तब इसमें से निकाला। **'जिणेहिं सासणे भणियं।'** वीतरागदेव ने जैनशासन में ऐसा कहा है। वापस अर्थ निकाला इसमें से, पण्डित जयचन्द्रजी ने।

भावार्थ – लौकिक जन तथा अन्यमती कई कहते हैं... जैनशासन में तो ऐसा कहा है। समझ में आया? वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के शासन में शिखामण में, समझण में, मार्ग में भगवान ने तो ऐसा कहा है कि पूजा और व्रतादि भाव, वह तो पुण्य है। तब अन्यमति इससे दूसरे मतवाले क्या कहते हैं, ऐसा कहते हैं। जैन में ऐसा कहते हैं तो अन्यमतवाले क्या कहते हैं? अन्य अर्थात् चाहे तो जैन में लौकिक हो या अन्यमति हो। कोई ऐसा कहता है कि यह कहाँ से निकाला? आज एक प्रश्न आया है, भाई! ऐसा कि यह लौकिकजन और अन्यमति कहते हैं, ऐसा कहाँ से निकाला? जैनशासन में कहा है कि उससे अन्य शासनवाले ऐसा कहते हैं, ऐसा किया तुमने। चर्चा बहुत चली थी। देखो! भगवान ने यह कहा, ऐसा कहाँ है? लौकिकजन और अन्यमति ने कहा, ऐसा कहाँ है शास्त्र में? यह रहा। पूजा और व्रत को जिनशासन में पुण्य कहा। उसके बिना अन्य शाासन अर्थात् जैनधर्म के नाम से रहे हुए लौकिकजन और अन्यमति दोनों। दोनों जैनशासन से विरुद्ध। समझ में आया? जैन सम्प्रदाय में रहे हों, वे लौकिकजन हैं। व्यवहारीजन व्यवहार को माननेवाले और अन्यमति।

कहते हैं कि पूजा आदिक शुभक्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है,... कहो, जैन सम्प्रदाय में लौकिकजन व्यवहार के माननेवाले मिथ्यादृष्टि ऐसा कहते हैं कि पूजा, व्रत, तप वह सब जैनधर्म है। भावार्थ में अभी अधिक स्पष्टीकरण करेंगे। समझ में आया? लौकिकजन अर्थात् जैन में भी मिथ्यादृष्टि व्यवहार के माननेवाले, उन्हें यहाँ लौकिकजन कहा है। इसके अतिरिक्त अन्यमति, वे सब। यह कहाँ से निकाला? कि **'पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं'** जैनशासन में व्रत, तप, दया, दान, पूजा, भक्ति को जब पुण्य कहा, तब जैन सम्प्रदाय के लौकिकजन और अन्यमति उसे धर्म कहते हैं शुभभाव को। दो तकरार है अनादि से, ऐसा कहते हैं। कहो,

समझ में आया? **परन्तु ऐसा नहीं है। परन्तु ऐसा नहीं है।** ऐसा है नहीं। स्पष्ट है या नहीं इसमें? भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : पण्डित जयचन्द्रजी ने कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित जयचन्द्रजी ने, परन्तु कहा न यह। इसके लिये तो यह स्पष्टीकरण किया। पण्डित जयचन्द्रजी ने कहाँ किया है। **'जिणेहिं सासणे भणियं'** जैनशासन में व्रत, उपवास, पूजा, भक्ति... आगे भावार्थ में विशेष स्पष्टीकरण करेंगे। उन सबको जैनशासन में तो शुभभाव और पुण्य कहा है। तब जैनशासन के अतिरिक्त... ऐसा पहले शासन में कहा न इसमें? उससे विरुद्ध जैन सम्प्रदाय में रहे हुए लौकिकजन, व्यवहार को माननेवाले मिथ्यादृष्टि और अन्यमति, उसे शुभभाव देखो न! लौकिकजन और अन्यमति। इसमें से निकाला है। तीसरे पद में से, तीसरे पद में से। कहो, समझ में आया?

यह प्रश्न उस ओर आया था पहले। उसमें अन्यमति और लौकिकजन कहाँ कहा है शास्त्र में? यह कहा, देख न। पण्डित जयचन्द्रजी ने कहा, वह घर का नहीं कहा। समझ में आया? इसमें अस्ति है, उसमें से नास्ति निकाली कि जैनशासन में शुभभाव व्रत का, तप का, दान का, दया का, पूजा का, वैयावृत्य का, इन सबको तो पुण्य कहा है। धर्म नहीं। इससे जैनशासन से विरुद्ध वीतरागभाव को नहीं माननेवाले, क्योंकि जैनशासन तो वीतरागभाव है। जैनशासन में वीतरागदेव ने आत्मा में सम्यग्दर्शन और पुण्य-पाप से रहित ऐसे वीतरागी परिणाम हों, उसे जैनशासन में धर्म कहा है। तब इस राग को धर्म कहा है न? कि हाँ, जैनशासन को नहीं माननेवाले ऐसे अन्यमति और जैन में रहे हुए अज्ञानी पुण्य है, उसे धर्म कहते हैं, जैनधर्म कहते हैं। समझ में आया? यह गाथा बहुत चर्चित हो गयी है पहले। आज अधिक स्पष्ट आया। **'जिणेहिं सासणे भणियं'** अन्यमति क्या कहते हैं। उसके सामने शब्द ही इसमें से निकलता है।

परन्तु ऐसा नहीं है। ऐसा है नहीं। **जिनमत में जिन भगवान ने इस प्रकार कहा है...** देखो! **जिनमत में जिन भगवान ने इस प्रकार कहा है कि पूजादिक में और व्रतसहित होता है, वह तो 'पुण्य' है,...** धर्म तो भगवान ने कहा नहीं। कहो, समझ में आया? पूजादि का अर्थ करेंगे। **पूजादिक में और व्रतसहित होता है, वह तो**

'पुण्य' है,... पूजा, भगवान की पूजा। कहाँ गये अभी वे थे, वे चले गये नहीं? कपूरचन्दजी। भगवान की पूजा में पुण्य? धर्म नहीं? भगवान की पूजा में राग, आकुलता? कहते हैं, **पूजादिक में और व्रतसहित... पूजा और आदि शब्द से भक्ति,...** भगवान की भक्ति। भगवान आदि, गुरु आदि को **वन्दना, वैयावृत्त्य आदिक समझना, यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिए होता है...** परद्रव्य के लिये है, उसमें तो परद्रव्य का लक्ष्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिए होता है... इसलिए वह तो परद्रव्य के आश्रय से होता है, इसलिए वह तो राग है। वह कोई धर्म नहीं है। धर्म तो स्वद्रव्य के आश्रय से होता है। चैतन्य भगवान वीतरागमूर्ति आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु, ऐसा जो आत्मा का द्रव्य वह वस्तु, उसके आश्रय से धर्म होता है। परद्रव्य के आश्रय से धर्म नहीं हो सकता। कहो, यह कितना स्पष्ट स्पष्टीकरण है इसमें, लो! क्या कहते हैं? कि पूजा शब्द से ऐसा लेना कि उसमें भक्ति लेना, वन्दना लेना, वैयावृत्य लेना आदि। वाँचन, श्रवण, मनन इत्यादि। समझ में आया? यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है। वह तो परद्रव्य के लक्ष्यवाली क्रिया है।

और उपवास आदिक व्रत है,... उपवास, व्रत, ऊनोदर आदि जो बाह्य तप। **वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है,...** लोगों को कहाँ का कहाँ मानकर जिन्दगी बिताते हैं और वापस तत्त्व की बात पड़ी रहती है। श्रद्धा में भी लेते नहीं। कहो, समझ में आया? क्या कहा? कि जैनशासन में वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर, अनन्त तीर्थंकरों ने भगवान की पूजा, भक्ति, वन्दन, वैयावृत्य यह सब पुण्यभाव, शुभभाव कहा है। वह देव-गुरु-शास्त्र के लिये है, क्योंकि वह तो परद्रव्य का लक्ष्य है उसमें तो। बलुभाई! समझ में आया? और **उपवास आदिक व्रत...** लो! किया था न तुमने? वर्षीतप किया था। वह तो आठ-दस हजार खर्च किये थे। अभी तो बड़ा दवाखाना कर डाला है। कारखाना। कारखाना दवा बनाने का... क्या कहलाता है? दवा बनाने का कहलाता है? क्या कहलाती है वह जगह?

मुमुक्षु : कान्दीवली।

पूज्य गुरुदेवश्री : कान्दीवली। गये थे न हम। आहार किया था। बड़ा है। दवा बनती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह पूजा, वन्दना, भक्ति, वैयावृत्य, श्रवण, नाम स्मरण, भगवान के गुण का स्मरण, वह सब परद्रव्य के आश्रय का शुभभाव है। कहो, भीखाभाई! आहाहा! देखो! यह तो गाथा ऐसी आयी है। आज तुम्हारे धनतेरस है। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वभावी चिदानन्दस्वरूप की अन्तर में स्वभाव की दृष्टि और रमणता होना उसे जैनशासन में धर्म कहा है। वीतराग परमात्मा के शासन में उसे धर्म कहा है। समझ में आया? बाकी जैनशासन में पुण्य उसे कहा है कि देव-गुरु-शास्त्र के लिये भक्ति, वन्दन, वैयावृत्य, उपवास, व्रत, अहिंसा, सत्य आदि। **वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है, उससे पुण्यकर्म होता है,...** पुण्य होता है, धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। बलुभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ पहले का लिखा हुआ है। यहाँ का लिखा हुआ है? यह गाथा तो दो हजार वर्ष पहले की है। कुन्दकुन्दाचार्य की दो हजार वर्ष पहले। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, जैनशासन में पूजा, भक्ति, वन्दन, व्रत, उपवास को पुण्य कहा गया है। जैनशासन वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ के मार्ग में ये पुण्य के परिणाम... आहाहा! समयसार दोपहर में है। ... अष्टपाहुड़ बहुत थोड़े हैं। समयसार बहुत हैं। दोपहर में समयसार चलता है।

क्या कहा? देखो! यहाँ है। **पूजा और आदि शब्द से भक्ति,...** भगवान की भक्ति, देव-गुरु की भक्ति, शास्त्र का बहुमान, शास्त्र की भक्ति, **वन्दना,...** तीर्थंकर को वन्दना, देवों को वन्दना, शास्त्र को वन्दना। **वैयावृत्त्य...** देव-गुरु की वैयावृत्य, सामर्धी धर्मात्मा की वैयावृत्य **आदिक समझना, यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिए होता है...** यह तो पुण्य है। परद्रव्य के आश्रय से (होता है)। परद्रव्य के आश्रय से धर्म नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **और उपवास...** ऊनोदर, रस परित्याग इत्यादि **आदिक व्रत...** बारह व्रत तो **शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है,...** रागसहित शुभ परिणाम है। **उससे पुण्यकर्म होता है, इसलिए इनको पुण्य**

कहते हैं। जैनशासन में जिनेन्द्र देवों ने उसे पुण्य कहा है। भगवान ने उसे धर्म नहीं कहा। पश्चात् कहेंगे कि उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है। किसे? जिसे निश्चय अनुभव की दृष्टि हुई है, वीतरागदशा प्रगट हुई है, उसे शुभभाव-राग आंशिक घटा है, उसको व्यवहार धर्म का उपचार किये जाता है, परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द का भान नहीं, उसे तो उस शुभभाव में व्यवहार से धर्म का आरोप भी नहीं आता। समझ में आया? आहाहा! लोगों को ऐसी बात स्पष्ट बाहर होने पर भी बहुत आग्रहों से खोज-खोजकर, शास्त्र में से खोजकर किस प्रकार से शुभभाव में किंचित् धर्म हो, ऐसा शास्त्र में से खोजा करते हैं। अरे! परन्तु शास्त्र तो इनकार करते हैं न! जैनशासन में जैन तीर्थंकरों ने इसे पुण्य परिणाम से कर्म बँधते हैं, ऐसा कहा है। शुभ परिणाम हैं।

इनको पुण्य कहते हैं। इसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है। संयोग मिले। भोगादिक यह पैसा मिला, बलुभाई! धूल मिले, यह धूल। कान्दीवली का कारखाना। उसमें आत्मा-बात्मा मिले नहीं। आहाहा! तब धर्म किसे कहा जैनशासन में? वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर अनन्त तीर्थंकर हुए, अभी विराजते हैं, अनन्त तीर्थंकर होंगे, उन भगवान ने जैनशासन में धर्म किसे कहा?

मोह के क्षोभ से रहित आत्मा के परिणाम को धर्म समझिये। लो! **मोह के क्षोभ से रहित आत्मा के परिणाम...** विकल्प जो राग है पुण्यादि का, वह क्षोभ परिणाम है। उससे रहित वीतरागी आत्मस्वरूप का अवलम्बन लेकर मोहरहित अक्षोभ परिणाम प्रगट हो, वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र (प्रगट हो), उसे भगवान ने जैनशासन में धर्म कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पंचम काल के लिये होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब यह किस काल में? पंचम काल के साधु हैं या किस काल के हैं? समझ में आया? पंचम काल के लिये दूसरा होगा, चौथे काल के लिये दूसरा होगा, ऐसा होगा? ...जैसा मार्ग है, वैसा है। ऐई! भगवानजीभाई! आहाहा!

कहते हैं, वहाँ **मिथ्यात्व तो अतत्त्वार्थश्रद्धान है,...** मिथ्यात्व का अर्थ किया। अतत्त्वश्रद्धान वह अधर्म है। उससे विरुद्ध तत्त्वार्थश्रद्धान, वह धर्म है। पुण्य को पुण्य

मानकर, पाप को पाप मानकर, अजीव को अजीव मानकर, उससे भिन्न चैतन्यद्रव्य को अनुभव में आत्मा को मानकर और जो सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो, वह तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन, उसे भगवान ने सम्यग्दर्शनरूपी धर्म कहा है। समझ में आया? **क्रोध-मान-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा ये छह द्वेषप्रकृति हैं...** राग-द्वेष की व्याख्या करते हैं। **क्रोध-मान-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा ये छह द्वेषप्रकृति हैं और माया, लोभ, हास्य, रति ये चार तथा पुरुष, स्त्री, नपुंसक ये तीन विकार, ऐसे सात प्रकृति रागरूप हैं। इनके निमित्त से आत्मा का ज्ञान-दर्शनस्वभाव विकारसहित, क्षोभरूप, चलाचल, व्याकुल होता है,...** लो! क्षोभ की व्याख्या करते हैं। आहाहा! कहते हैं कि तत्त्वार्थश्रद्धान से विरुद्ध अतत्त्वश्रद्धान, वह मोह-मिथ्यात्व। पुण्य को धर्म मानना, धर्म का अनादर करना, पाप में मिठास का वेदन करना, ऐसा जो अतत्त्वश्रद्धान, उसके **निमित्त से आत्मा का ज्ञान-दर्शनस्वभाव विकारसहित, क्षोभरूप,...** मिथ्यात्व सहित क्षोभरूप परिणाम होते हैं। समझ में आया? यह स्पष्टीकरण किया है।

विकारसहित,... ज्ञान-दर्शन स्वभाव भगवान आत्मा जानने-देखने का स्वभाव, उसमें अतत्त्वश्रद्धान से परिणाम की चलाचलता, क्षोभता, आकुलता प्रगट होती है। आहाहा! कहो, समझ में आया? **विकारसहित, क्षोभरूप, चलाचल, व्याकुल होता है,...** लो! वह पुण्य परिणाम भी व्याकुल है। मिथ्यात्व परिणाम व्याकुल है—आकुलता है।... है न! **इसलिए इन विकारों से रहित...** लो! पहली विकार की व्याख्या की। **इन विकारों से रहित हो...** अर्थात् तत्त्वश्रद्धान सहित हो, अतत्त्वश्रद्धान रहित हो और राग के, क्षोभ के परिणाम रहित हो, द्वेष के-क्षोभ के परिणाम रहित हो, **तब शुद्धदर्शनज्ञानरूप निश्चय हो...** तब शुद्ध दर्शन-ज्ञानरूप निश्चय हो। **वह आत्मा का 'धर्म' है।** उसे भगवान ने जैनशासन में धर्म कहा है। लोगों को सुनने को मिलता नहीं और कहाँ के कहाँ चले जाते हैं। जिन्दगी गँवाते हैं। श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा!

भावपाहुड़ में स्पष्ट कर दिया है। भाव, वह पुण्यभाव, एक धर्मभाव। पुण्यभाव बन्धन का कारण, धर्मभाव मोक्ष का कारण। दो चीज़ भिन्न है। समझ में आया? **शुद्धदर्शनज्ञानरूप निश्चय हो...** मैं तो एकदम ज्ञान और दर्शन और आनन्द हूँ, ऐसा आत्मा में निर्विकल्प—राग की अपेक्षारहित का निर्णय हो। कहो, समझ में आया? और

उसमें स्थिरता हो, उसे धर्म कहते हैं। भारी व्याख्या धर्म की, भाई! कहो, समझ में आया? **इन विकारों से रहित हो, तब शुद्धदर्शनज्ञानरूप...** अकेला दृष्टा-ज्ञाता के भाव की शक्ति से प्रगट होने पर दर्शन-ज्ञानरूप शुद्ध परिणाम को भगवान ने धर्म कहा है। कहो, समझ में आया? दया के परिणाम वे सब आ गये शुभभाव में। भगवान की भक्ति, पूजा, वह सब शुभभाव में आ गया। हो भले, परन्तु है वह पुण्य; धर्म नहीं। धर्मी जीव को आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और लीनता, आत्मा के आश्रय से श्रद्धा-ज्ञान और लीनता (हुए) उतना धर्म। उसे भी जितना पूजा, भक्ति का भाव उठे, उसका नाम पुण्य। समझ में आया?

इस धर्म से आत्मा के... उसमें कहा था न? पुण्य से कर्म बँधते हैं और कर्म से भोगादि मिलते हैं। अब इसकी बात करते हैं। **धर्म से आत्मा के आगामी कर्म का आस्रव रुककर...** सम्यग्दर्शन आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु में, अनुभव में प्रतीति और वीतराग परिणाम, उससे तो **आगामी कर्म का आस्रव रुककर...** मिथ्यात्व आदि, अव्रतादि रुक जाए, **संवर होता है और पहिले बँधे हुए कर्मों की निर्जरा होती है।** लो! पुण्य परिणाम में कर्म बँधे। रागसहित परिणाम हैं, इसलिए पुण्य बँधे, पुण्य से स्वर्गादि भोग की सामग्री धूल की मिले। कहो, समझ में आया? तब धर्म, वह आत्मा के परद्रव्य के आश्रयरहित स्व चैतन्यद्रव्य के आश्रय से होते वीतरागी परिणाम क्षोभरहित, वे परिणाम धर्म हैं। वह धर्म नये कर्म को रोकता है, पुराने कर्म का क्षय करता है। और पुण्य से-शुभ से पुण्य बँधता है और उससे स्वर्गादि मिलते हैं, ऐसा कहते हैं। उससे पूर्व के कर्म रुकते हैं, नये रुकते हैं और पूर्व का नाश होता है। **तब मोक्ष होता है...** तब उसे मोक्ष होता है। आहाहा!

तथा एकदेश मोह के क्षोभ की हानि होती है, इसलिए शुभपरिणाम को भी उपचार से धर्म कहते हैं... समकिती के आत्मा के स्वभाव के आश्रय से शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम (हुए), वह तो निश्चय धर्म। परन्तु साथ में ऐसे शुभभाव, उसे उपचार से, धर्म नहीं उसे उपचार से धर्म कहना, इसका नाम व्यवहार धर्म कहा जाता है।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि की तो बात ही कहीं नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी तो बात ही (नहीं)। व्यवहार कहाँ था? व्यवहार है कहाँ? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

एकदेश... सर्वदेश मोहरहित भाव, वह तो आत्मा का धर्म, परमार्थ निश्चय। परन्तु निश्चय धर्म की भूमिका में राग की मन्दता में अशुभराग टलता है, उतना गिनकर शुभराग को उपचार से धर्म कहा गया है। समझ में आया? **और जो केवल शुभपरिणाम ही को धर्म मानकर...** अब मिथ्यादृष्टि की बात आयी। अकेले दया, दान, व्रत के परिणाम को ही धर्म मानता है और **सन्तुष्ट है, उनको धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** उसे तो धर्म की प्राप्ति है नहीं। क्या कहा, समझ में आया? अकेला जो ऊपर कहा न? पूजा, भक्ति, वन्दन, वैयावृत्त्य, उपवास, व्रत उसे जो धर्म माने, उसमें सन्तोष माने, **उनको धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** उसे तो धर्म की प्राप्ति है नहीं। सम्यग्दर्शन की ही प्राप्ति नहीं, फिर प्रश्न कहाँ? समझ में आया? शास्त्र में ऐसे स्पष्ट लेख पड़े हैं, तथापि लोगों को विरोध।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... विरोध।

कहते हैं, **केवल शुभपरिणाम ही को धर्म मानकर...** केवल। जो निश्चय स्वभाव का धर्म है—वीतरागी पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है, उसके शुभ परिणाम को उपचार धर्म कहा जाता है। परन्तु **केवल शुभपरिणाम ही को धर्म मानकर...** ऐ ... देखो! गजब स्पष्टीकरण! पण्डित जयचन्द्रजी ने भी बहुत स्पष्टीकरण किया। **केवल शुभपरिणाम ही को...** शुभ परिणाम को ही **धर्म मानकर सन्तुष्ट है, उनको धर्म की प्राप्ति नहीं है, यह जिनमत का उपदेश है।** ऐसा जिनमत का उपदेश है, ऐसा कहते हैं। जयसुखभाई! आहाहा! जैनमत कोई सम्प्रदाय नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। चिदानन्दमूर्ति वीतरागमूर्ति आत्मा है। निर्दोष, निष्कलंक, निर्विकल्प चीज़ आत्मा है। बस! यही आत्मा ऐसा है, उसके आश्रय से जो वीतरागी पर्याय प्रगट हो, वह धर्म। समझ में आया? लो! यह ८३ (पूरी हुई)। ८३ गाथा। बहुत वाँचन की गयी, लिखी गयी। अखबार में आ गया। आत्मधर्म में इसकी चर्चा भी हो गयी थी। बहुत वर्ष पहले। बहुत वर्ष पहले चर्चा हुई। दिल्लीवाले ने ... गुजर गये। नहीं भाई?

मुमुक्षु : जुगलकिशोर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। जुगलकिशोर (मुख्तार)। कोई अन्यमति ऐसा कहता है, लौकिक ऐसा कहता है, ऐसा कहाँ है इसमें? ऐसा कहा है। जुगलकिशोर। ऐसा लिखा था। हम मकान में उतरे थे न। उनके मकान में। तीन दिन रहे थे। वीर सेवा मन्दिर। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, बहुत गाथा स्पष्ट है। ८३। पुण्य और धर्म जैनशासन में किसे कहते हैं, यह बात है। अन्यमति, जैनशासन के अतिरिक्त इस शुभभाव को धर्म कहते हैं, वह जैनधर्म नहीं है। वह वीतराग का कथन नहीं है। समझ में आया?

गाथा-८४

आगे कहते हैं कि जो 'पुण्य' ही को 'धर्म' जानकर श्रद्धान करता है उसके केवल भोग का निमित्त है, कर्मक्षय का निमित्त नहीं है –

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ।।८४।।

श्रद्दधाति च प्रत्येति न रोचते च तथा पुनरपि स्पृशति।
पुण्यं भोगनिमित्तं न हि तत् कर्मक्षयनिमित्तम् ।।८४।।

श्रद्धा प्रतीति रुचि स्पर्शन सभी हो पुण्य का।
है मात्र भोग-निमित्त नहिं है कर्म-क्षय की हेतुता।।८४।।

अर्थ **– जो पुरुष पुण्य को धर्म जानकर श्रद्धान करते हैं, प्रतीति करते हैं, रुचि करते हैं और स्पर्श करते हैं, उनके 'पुण्य' भोग का निमित्त है। इससे स्वर्गादिक भोग पाता है और वह पुण्य कर्म के क्षय का निमित्त नहीं होता है, यह प्रगट जानना चाहिए।**

भावार्थ **– शुभक्रियारूप पुण्य को धर्म जानकर इसका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण**

करता है, उसके पुण्यकर्म का बन्ध होता है, उससे स्वर्गादिक के भोगों की प्राप्ति होती है और उससे कर्म का क्षयरूप संवर-निर्जरा-मोक्ष नहीं होता है।।८४।।

गाथा-८४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि... कितना स्पष्टीकरण, देखो! समयसार में **'भोग'** शब्द पड़ा है वहाँ। धर्म भोग के कारण से करता है। तब यहाँ स्पष्टीकरण किया कि **'पुण्णं भोयणिमित्तं'** स्पष्ट स्पष्टीकरण किया है। यह भोग जो धर्म शब्द वहाँ कहा था, वह पुण्य है। बन्ध अधिकार में अज्ञानी धर्मी को भोग के लिये धर्म करता है अर्थात् पुण्य। परन्तु वहाँ धर्म शब्द है। यहाँ पुण्य शब्द है। स्पष्ट किया है। आचार्यों ने धर्म करने का... ऐसा कहते हैं न कितने ही? यह पुण्य शब्द है, देखो! समयसार २७५ गाथा। वहाँ धर्म शब्द प्रयोग किया है। यहाँ पुण्य प्रयोग किया है। बस। स्पष्ट किया। भावपाहुड़ है न? यह पुण्यभाव है।

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।८४।।

अब पुण्य शब्द। इसमें पुण्य शब्द आया।

अर्थ - जो पुरुष पुण्य को धर्म जानकर श्रद्धान करते हैं,... कितना सरस अर्थ किया है! उसमें उल्टा अर्थ किया। पुण्य करना, 'उपासक अध्ययन' में पुण्य करने का कहा है। ऐसा स्थानकवासी में (कहते हैं)। यहाँ तो पण्डित जयचन्द्रजी छनावट करते हैं। **जो पुरुष पुण्य को धर्म जानकर श्रद्धान करते हैं,...** पूजा, व्रत, तप, दान, दया, भक्ति, स्मरण, इस शुभभाव को धर्म मानकर जो श्रद्धान करे, उसकी **प्रतीति करते हैं, रुचि करते हैं...** उसे अनुभव करते हैं, स्पर्शते हैं। स्पर्श अर्थात् अनुभव। **उनके 'पुण्य' भोग का निमित्त है।** वह पुण्य तो स्वर्गादि के भोग का निमित्त है। आत्मा के आनन्द के अनुभवन का वह कारण नहीं है। समझ में आया? उसे यह बाहर की धूल मिलेगी, कहते हैं। वजुभाई! बड़ा बँगला मिले, हजीरा (बड़े बँगले) मिले। जा आये न तुम अफ्रीका? अफ्रीका घूम आये। आहाहा!

कहते हैं, जो कोई पुण्य को धर्म मानकर श्रद्धा करता है, रुचि करता है, प्रतीति करता है और पुण्य को स्पर्शता है। उसका पुण्य भोग का निमित्त है। भोग तो बाहर की सामग्री फल ही आता है। परन्त उसके पुण्य को उसमें निमित्त कहा जाता है, ऐसा। बाहर की सामग्री जो आती है, वह तो स्वतन्त्र जड़ की अवस्था, वह संयोग स्वतन्त्र है। उसे निमित्त कौन? कि अज्ञानी का पुण्य जो है, वह उसे निमित्त कहा जाता है। समझ में आया? **यह प्रगट जानना चाहिए।** वापस ऐसा है न? वह प्रगट जानो। बराबर जानो कि पुण्य है, वह भोग का ही कारण है। पुण्य, वह आत्मा के अनुभव का कारण नहीं। धर्म का कारण-फारण है नहीं।

भावार्थ – शुभक्रियारूप पुण्य को धर्म जानकर... शुभ परिणाम को **धर्म जानकर...** धर्म है। उसे करते-करते परम्परा से धर्म होगा। ऐसा माननेवाला, **इसका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करता है,...** लो! स्पर्श का (अर्थ) किया आचरण।... है न? **उसके पुण्यकर्म का बन्ध होता है,...** उसे पुण्यकर्म का बन्धन होता है। **उससे स्वर्गादिक के भोगों की प्राप्ति होती है...** स्वर्गादि। यह देव, राजपद आदि। वहाँ से मरकर वह आता है। कुछ ऐसा पुण्य बाकी हो। राजादि, सेठिया अरबोंपति आदि हो। **उसके पुण्यकर्म का बन्ध होता है,...** उसे पुण्य का बन्धन होता है। अबन्धस्वरूपी भगवान को इस भाव से बन्धन होता है। बँधता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

और उससे कर्म का क्षयरूप संवर-निर्जरा-मोक्ष नहीं होता है। इस शुभभाव से अंश भी संवर, अंश निर्जरा या अंश भी धर्म नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। वे तो कहते हैं न शुभभाव में अंशत: शुद्धता है, अंशत: अशुद्धता है। ऐसा कितने ही कहते हैं। कितने ही कहे, हों! सब नहीं। अब तो बहुत बदल गया है न! **उससे कर्म का क्षयरूप संवर-निर्जरा-मोक्ष नहीं होता है।** पुण्य परिणाम, दया, दान, व्रत, तप, भगवान की भक्ति, पूजा के बिल्कुल संवर और निर्जरारूपी परिणाम नहीं हो सकते। कहो, समझ में आया? ८४ (गाथा पूरी) हुई।

गाथा-८५

आगे कहते हैं कि जो आत्मा का स्वभावरूप धर्म है, वह ही मोक्ष का कारण है – ऐसा नियम है –

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदू धम्मो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।८५।।

आत्मा आत्मनि रतः रागादिषु सकलदोषपरित्यक्तः।
संसारतरणहेतुः धर्मं इति जिनैः निर्दिष्टम् ।।८५।।

रागादि सब ही दोष तज आतम में आतम-लीनता।
संसार-सागर तरण-कारण धर्म जिनवर ने कहा।।८५।।

अर्थ – यदि आत्मा रागादिक समस्त दोष से रहित होकर आत्मा ही में रत हो जाय तो ऐसे धर्म को जिनेश्वरदेव ने संसारसमुद्र से तिरने का कारण कहा है।

भावार्थ – जो पहिले कहा था कि मोह के क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम है सो धर्म है, सो ऐसा धर्म ही संसार से पारकर मोक्ष का कारण भगवान् ने कहा है, यह नियम है।।८५।।

गाथा-८५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो आत्मा का स्वभावरूप धर्म है, वह ही मोक्ष का कारण है... पहले परद्रव्य के आश्रय से था न? अब स्वद्रव्य के आश्रय की बात करते हैं।

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदू धम्मो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।८५।।

लो! भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन और आनन्द का धाम ऐसा आत्मा '**अप्पम्मि रओ**' अपने शुद्ध स्वभाव में लीन और रत रहता है। '**रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो**'

नास्ति से बात की। पहले अस्ति से की। **'संसारतरणहेदू'** वह संसार के तरण का हेतु **'धम्मो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं'** जिनेश्वरदेव ने इसे धर्म कहा है कि जो संसार के तरण का कारण है। देखो! इसमें वह आता है न छहढाला में? व्यवहार-निश्चय का हेतु, निमित्त हेतु। सब उड़ा दिया। वह तो निमित्त ऐसा होता है, उसका ज्ञान करने की बात है। यहाँ तो कहते हैं, संसार तरण हेतु तो धर्म यह है।

भगवान आत्मा वीतरागस्वभाव से भरपूर है। अनादि-अनन्त है। ऐसे आत्मा का आश्रय लेकर, अवलम्बन लेकर, वर्तमान पर्याय को द्रव्य के साथ अभेद करके जो लीन होता है, उसे आत्मा का धर्म प्रगट होता है। आहाहा! आत्मा, आत्मा के विषे। आत्मा अर्थात् ज्ञान और दर्शन और आनन्द। वह आत्मा, आत्मा में रत होता है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यद्रव्य में एकाग्रता होती है। ऐसा वैयावृत्य हो। कैसा वैयावृत्य हो? **रागादिक समस्त दोष से रहित होकर...** विकल्पमात्र रागादि से रहित होकर निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि-ज्ञान में रत हो। कहो, समझ में आया? पहले अस्ति की। आत्मा स्वयं अपने में लीन होता है। पश्चात् नास्ति की। रागादि दोष से रहित। समझाने में क्या कहे? **ऐसे धर्म को जिनेश्वरदेव ने...** ऐसा धर्म जिनेश्वरदेव को अर्थात् जिनेश्वरदेव ने। यह तो हिन्दी भाषा है। ऐसा धर्म जिनेश्वरदेव ने **संसारसमुद्र से तिरने का कारण कहा है।** आहाहा! संसारसमुद्र को तिरने का यह उपाय भगवान वीतरागदेव ने यह कहा है। समझ में आया?

भावार्थ – जो पहिले कहा था कि मोह के क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम है... कहा था न ८३ में? **पहिले कहा था कि मोह के क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम है सो धर्म है,...** पूर्व में कहा था न पहले? ८३-८३। **मोह के क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम है...** देखो! धर्म, परिणाम है; धर्म, पर्याय है; धर्म, अवस्था है; धर्म कोई गुण-द्रव्य नहीं है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली है। शुद्ध द्रव्य और शुद्ध गुण आनन्द वस्तु त्रिकाल, उसके आश्रय से होते वीतरागी परिणाम, उसे यहाँ पर्याय और धर्म कहते हैं।

सो ऐसा धर्म ही... ऐसा वापस निश्चय। ऐसा धर्म ही **संसार से पारकर मोक्ष का कारण भगवान् ने कहा है,...** ऐसा धर्म, वही संसार से-उदयभाव से पार करके,

मोक्ष का कारण भगवान ने कहा है। कहो, समझ में आया? **यह नियम है।** वीतरागमार्ग में तो यह नियम है। कहो, समझ में आया? जैनशासन में अनन्त तीर्थंकरों की शिक्षा में मार्ग तो यह कहा। **'अप्पा अप्पम्मि रओ'** व्रत, पूजा, तो परद्रव्य के आश्रय के लक्ष्यवाला था। वह तो पुण्य है और वह संयोग को देता है। और **'अप्पा अप्पम्मि रओ'** आत्मा अपने आनन्द और ज्ञानस्वभाव में लीन और रत वर्तता हुआ। इस परिणाम से संवर, निर्जरा और मोक्ष होता है। समझ में आया? संसार से पार करके चौरासी के जल में डूबता आत्मा, उस आत्मा के आश्रय से सम्यक् परिणाम प्रगट करके संसार से पार होता है। कहो, समझ में आया? यह तो सब बहुत अच्छी गाथायें आयीं।

गाथा-८६

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए कहते हैं कि जो आत्मा के लिए इष्ट नहीं करता है और समस्त पुण्य का आचरण करता है तो भी सिद्धि को नहीं पाता है –

अह पुण अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।।८६।।

अथ पुनः आत्मानं नेच्छति पुण्यानि करोति निरवशेषानि।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः।।८६।।

जो आतमा नहिं चाहता वह सभी पुण्य करे भले।
पर नहीं होता मुक्त वह संसार में स्थिर रहे।।८६।।

अर्थ **– अथवा जो पुरुष आत्मा का इष्ट नहीं करता है, उसका स्वरूप नहीं जानता है, अंगीकार नहीं करता है और सब प्रकार के समस्त पुण्य को करता है, तो भी सिद्धि (मोक्ष) को नहीं पाता है, किन्तु वह पुरुष संसार ही में भ्रमण करता है।**

भावार्थ **– आत्मिक धर्म धारण किये बिना सब प्रकार के पुण्य का आचरण करे तो भी मोक्ष नहीं होता है, संसार ही में रहता है। कदाचित् स्वर्गादिक भोग पावे तो वहाँ भोगों में आसक्त होकर रहे, वहाँ से चय एकेन्द्रियादिक होकर संसार ही में भ्रमण करता है।।८६।।**

गाथा-८६ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए कहते हैं... इसी अर्थ को दृढ़ करने का कहते हैं। **कि जो आत्मा के लिए इष्ट नहीं करता है...** भगवान शुद्ध आनन्दस्वरूप की प्रीति, रुचि, अनुभव दृष्टि नहीं करता **और समस्त पुण्य का आचरण करता है...** जितने पुण्य के भाव हों, वे सब आचरे। **तो भी सिद्धि को नहीं पाता है –**

मुमुक्षु : परन्तु सिद्धि अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष नहीं होता, मोक्ष नहीं होता, संवर-निर्जरा नहीं होती, ऐसा। अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ... करने में आता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्धन के उपाय हैं, कहते हैं।

दृढ़ करने के लिए कहते हैं कि जो आत्मा के लिए इष्ट नहीं है... भगवान आनन्दमूर्ति शुद्ध पुण्य-पाप के रागरहित प्रभु, उसकी जिसे अन्तर, प्रेम और रुचि और दृष्टि नहीं, आत्मा को प्रिय न करे और पुण्य के परिणाम को, सब प्रकार के करे तो भी उसे मुक्ति नहीं है। आहाहा! परमात्मा स्वयं निज स्वरूप से आत्मा है। उसकी प्रीति, रुचि, दृष्टि, अनुभव वह न करे, वह प्रीति न करे और राग की प्रीति करे और पुण्य के परिणाम जितने शास्त्र में कहे, वैसे व्यवहार **समस्त...** शब्द है न? **समस्त पुण्य का आचरण करता है तो भी सिद्धि को नहीं पाता है –**

अह पुण अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।।८६।।

पहले बहुत स्थापित किया है। १५ गाथा। उसमें यह शब्द पड़ा है। १५ गाथा, सूत्रपाहुड़। सूत्रपाहुड़ की १५वीं गाथा। ६६ पृष्ठ है। सूत्रपाहुड़ की १५वीं गाथा। **'अह पुण अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।'** यह शब्द वहाँ पड़ा है। क्या कहते हैं? **'अप्पा णिच्छदि'** देखो! सूत्रपाहुड़ में भगवान ने ऐसा कहा। यहाँ भी यह कहा है। **'अप्पा णिच्छदि'** जो आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी इच्छा नहीं, दृष्टि नहीं, रुचि

नहीं, अनुभव नहीं। **'धम्माइं करेइ णिवरसेसाइं'** वहाँ **'धम्माइं करेइ णिवरसेसाइं'** ऐसा है। यहाँ **'पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं'** ऐसा है। वहाँ धर्म शब्द प्रयोग किया है, यहाँ पुण्य शब्द प्रयोग किया है। कहते हैं... १५वीं गाथा। सूत्रपाहुड़। है? **'अह पुण अप्पा णिच्छदि'** जो आत्मा को चाहता नहीं। **'धम्माइं करेइ णिवरसेसाइं'** अनेक प्रकार के पुण्य परिणामरूपी धर्म जिसे व्यवहार लोग कहते हैं, उसे करे **'तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो'** वह यहाँ कहा, लो! यहाँ शब्द यह है। इस ८६ में भी यही है। यह सूत्रपाहुड़ की १५वीं गाथा है। समझ में आया?

जिसे पुण्य के परिणाम की प्रीति और रुचि है। अपने यहाँ है। जिसे पुण्य की रुचि, उसे जड़ की रुचि है। यहाँ यह कहते हैं। जिसे आत्मा की रुचि नहीं। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का धाम, उसका जिसे प्रेम नहीं, प्रीति नहीं, रुचि नहीं, आश्रय नहीं, अवलम्बन नहीं, उसे चाहता नहीं। और जो कुछ **'णिवरसेसाइं'** सब **'णिवरसेसाइं'** वहाँ ऐसा है न? यहाँ **'णिवरसेसाइं'** जितनी पुण्य की क्रियाएँ सब कठोर करे। महीने-महीने के अपवास और व्रत और तप और महा। समझ में आया? तो भी **'तह वि ण पावदि सिद्धिं'** तो भी वह मुक्ति को नहीं पाता। **'संसारत्थो पुणो भणिदो'** संसार में रहा हुआ दिखता है। वह तो संसारी प्राणी है। आत्मा आनन्दमूर्ति पुण्य-पाप विकल्प से रहित, उसकी जिसे रुचि और दृष्टि नहीं, उसकी तो एकाग्रता और भावना नहीं, वह सब पुण्य के करनेवाले जितने शास्त्र में व्यवहारनय के कथन हैं—समिति, गुप्ति, व्रत, तप, नियम वे सब निर्विशेष, जितने कहे उतने करे, व्यवहार से, परन्तु संसार फलेगा। संसार में है। वह संसार में रहनेवाला है। (उसे) मुक्ति-बुक्ति है नहीं।

अर्थ – अथवा जो पुरुष... पुरुष शब्द से आत्मा। **आत्मा का इष्ट नहीं करता है,...** देखो! यह पुण्य परिणाम को इष्ट करता है और आत्मा को इष्ट नहीं करता। दो चलता है या नहीं? आत्मा को भी इष्ट करे और पुण्य को भी इष्ट करे। एक म्यान में दो तलवार रहती है या नहीं? म्यान में दो तलवार रहती है या नहीं? नहीं? नहीं रहती। इसी प्रकार आत्मा का प्रेम रखे और पुण्य का भी प्रेम रखे तो दो नहीं चलते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो मार्ग आत्मा का है, भाई! आहाहा! सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द के स्वरूपी प्रभु का जिसे प्रेम नहीं है, उसे इष्ट नहीं करता

अर्थात् उसे चाहता नहीं। ऐसा शब्द है न यहाँ? **'ण णिच्छदि'** और पुण्य को इच्छकर सब पुण्य के काम करता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

उसका स्वरूप नहीं जानता है,... आत्मा को इष्ट नहीं करता। अर्थात् आत्मा को इष्ट नहीं करता, उसके स्वरूप को नहीं जानता कि भगवान आत्मा तो इन शुभ-अशुभ के राग के विकल्प से रहित है। ऐसा सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने ऐसा देखा, जानकर प्रगट किया है। आहाहा! समझ में आया? **और सब प्रकार के समस्त पुण्य को करता है,...** सर्व प्रकार से और सब प्रकार के। जितने णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, श्रवण, मनन, चिन्तवन जितने सब शास्त्र में व्यवहार है, वह सब व्यवहार बराबर करे। समझ में आया? **सब प्रकार के समस्त पुण्य को करता है,...** शुभभाव की क्रिया करे। आहाहा! सर्व और समस्त। आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! **तो भी सिद्धि (मोक्ष) को नहीं पाता है,...** उसे आत्मा के आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती, दु:ख की प्राप्ति होगी। आहाहा! वे सब प्रकार के पुण्य करे तो उस पुण्य का भाव दु:खरूप है और उसके फलरूप से सामग्री मिले, वह सब बाहर जड़ की। बाहर ठाठ-माठ में बादशाही लगे कितनी! नहीं? मंजिल बड़ी हो ऐसी पचास हजार की। ऐसे... भाई बैठा हो, हलवा और पूड़ी खाता हो। और भाई! भाई! करे। उस समय देख लो अन्दर से गलगलिया। आहाहा! भाई! इसमें क्या कहते हैं? वह सामग्री तो पुण्य का फल है। उसमें कहीं आत्मा नहीं है। समझ में आया? वजुभाई! वजुभाई हो तब मगनभाई को ऐसा... आवे। बड़ा लड़का कैसा भाई जैसा कहलाये ऐसा नहीं कहते लोग?

मुमुक्षु : १६ वर्ष का हो तो भाई जैसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आता है। १६ वर्ष का हो तो भाई जैसा कहे। अरे! किसके रुपये? किसका भाई! यह बाह्य के संयोग तो पूर्व में कोई पुण्य हो तो मिले, उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! नरक में गया, प्रतिकूल संयोग का पार नहीं। परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, हो गया सफल अवतार। भले बाहर में रोटी एक नहीं, चावल का दाना नहीं, गरीब, भयंकर रोग। उल्टी, वमन... क्या कहलाता है वह? कण्ठमाल। यह क्या तुम्हारे वह दर्द नया? केंसर। भगंधर, पेट में छिद्र, कान में रसी

(पीप), नाक में जीव, जीभ में छाले। उसे ऐसा है नरक में। नारकी के जीव को। परन्तु उससे भिन्न अन्दर का अनुभव करने से वह चीज़ मैं नहीं। यह राग भी मैं नहीं, द्वेष भी नहीं और यह चीज़ भी नहीं। ऐसे दु:ख प्रतिकूलता के, (उसमें) अनुभव-समकित पावे। प्रतिकूल कहाँ बाधक था? समझ में आया? कुछ समरूप हो तो कमायी मिले, ऐसा कहते हैं न लोग? कमाने का साधन हो तो... ऐई! तुरखिया! यहाँ इनकार करते हैं। थोड़ा खाने-पीने का हो, चलता हो खाने का, लड़के... तो अपने को निश्चन्तता से धर्म हो। एकदम मिथ्या बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : खाते-खाते मर जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाते-खाते मर जाए ऐसे। भाई! बापूजी! ऐ... बापूजी गये। हाय... हाय... भाई! बाहर के संयोगों में आत्मा का कुछ नहीं है। अनुकूल हो या प्रतिकूल, वह तो बाहर के संयोग के ठाठ हैं। भगवान आत्मा अन्दर चिदानन्द को जो चाहता नहीं, वह पुरुष संसार में तिष्ठता रहता है। लो! कहो, समझ में आया? वह **वह पुरुष संसार ही में भ्रमण करता है।** भावार्थ कहा जाएगा, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१२६, गाथा- ८६-८७, बुधवार, आसोज कृष्ण १४, दिनांक २८-१०-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ८६ गाथा का भावार्थ। ८६ है न? क्या कहते हैं? जिसे आत्मा का हित करना हो, उसे तो पहले आत्मा क्या है और श्रद्धा क्या है, उसे जानना चाहिए। वह यह अर्थ है, देखो!

भावार्थ - आत्मिक धर्म धारण किये बिना... बहुत सरस शब्द है। अनादि से पाप के परिणाम तो अनन्त बार अनन्त काल से करता आया है, उसे ध्येय करके। आत्मा को ध्येय अनन्त काल में कभी बनाया नहीं। यहाँ तो पाप के परिणाम उपरान्त **आत्मिक धर्म धारण किये बिना...** ऐसा कहते हैं। यह आत्मा देह में सच्चिदानन्द आनन्दस्वरूप है। उसके स्वभाव में क्या है, ऐसा जिसे ज्ञान नहीं, श्रद्धा नहीं, ऐसा

आत्मा का स्वभाव जिसने श्रद्धा में, ज्ञान में धारण नहीं किया, इसके बिना यह पुण्य की क्रियाएँ अनेक बार, अनेक करे। **सब प्रकार के पुण्य का आचरण करे...** दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह सब पुण्य के आचरण हैं, ये कोई आत्मा का आचरण नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! इसके जन्म-मरण का अन्त, चौरासी के अवतार में... पाप को ध्येय बनाकर तो पाप अनन्त बार किया और उसमें नरक आदि में गया, परन्तु पुण्य को ध्येय बनाकर आत्मा को ध्येय (बनाने का) छोड़कर (संसार में भटका है)। समझ में आया?

यह आत्मा... ऐसा है न? **आत्मिक धर्म धारण किये बिना...** और फिर कहेंगे कि आत्मा का धर्म तो मोक्ष है। ८७वीं गाथा में कहेंगे। आहाहा! इस देह में भगवान आत्मा... यह तो हड्डियाँ, मिट्टी, चमड़ी है, यह तो अजीवतत्त्व है। अब इसका ध्येय करके, इसके आचरण में राग करेगा तो वह तो संसार है, दुःखरूप दशा है। यहाँ तो तदुपरान्त **आत्मिक धर्म धारण किये बिना...** यह शब्द है। इस देह से भिन्न भगवान और पुण्य और पाप के राग के भाव से भी भिन्न, ऐसा जिसने आत्मा का स्वरूप श्रद्धा में लिया नहीं, ज्ञान में लिया नहीं, वह स्थिरता तो कर नहीं सकता। उसके आत्मिक धर्म को धारण किये बिना **सब प्रकार के पुण्य का आचरण करे...** दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यम, नियम, संयम यह सब आचरण तो पुण्य के हैं, उसमें कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मिक धर्म... अर्थात् क्या? जिसे आत्मा रुचता नहीं और पुण्य रुचता है, जिसे आत्मा ज्ञानानन्द है, उसकी इच्छा नहीं और जिसे पुण्यभाव की इच्छा है, जिसे आत्मिक आनन्द के स्वभाव का प्रेम और भावना नहीं, उसे पुण्य के परिणाम की भावना, धर्म के नाम से है। पाप के नाम से तो पाप करे, वह तो अनन्त बार किये। उसकी बात अभी नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द की मूर्ति, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द है, जो स्वर्ग के इन्द्रों को भी, समकितरहित जीवों को उसकी गन्ध नहीं। अहमिन्द्र आदि जो है न? नौवें ग्रैवेयक। नौवे ग्रैवेयक अनन्त बार ३१ सागरोपम की स्थिति में अवतार धारण किया। परन्तु उसे आत्मा क्या चीज़ है? आत्मा की क्या कीमत और कितना बड़ा और उत्तम है, उसकी इसने खबर एक सेकेण्ड भी नहीं ली।

कहते हैं कि पाप के परिणाम करनेवाले तो चार गति में—नरकादि, पशु में भटकते हैं, परन्तु आत्मा का स्वभाव ध्येय, चैतन्य आनन्द का ध्येय किये बिना (पुण्य करके भी भटकते हैं)। समझ में आया? उसे ध्येय बनाकर उसकी भावना करना, पूर्ण प्राप्ति की, मोक्ष उसका धर्म है, मोक्ष उसका स्वभाव है। राग-द्वेषादि उसका स्वभाव नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा आनन्द की पूर्ण दशा और दु:ख का अभाव ऐसा ही उसका स्वभाव और धर्म है। ऐसे आत्मा को मोक्षरूपी धर्म प्रगट करने के लिये आत्मा की धारणा अर्थात् आत्मा क्या चीज़ है, उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा, उसके स्वभाव का अतीन्द्रिय आनन्द का माहात्म्य श्रद्धा-ज्ञान में धारण किये बिना चाहे जितना पुण्य करो, वजुभाई! गजब बात। देखो! **सब प्रकार के समस्त पुण्य को करता है,...** ऐसा शब्द है न? **सब प्रकार के...** भावार्थ। ८६ का भावार्थ। चन्दुभाई! तुम्हारा शब्द आया है। उसको दूसरा था। पुस्तक नहीं थी। इसमें तो आया है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! ऐसा आत्मा महा अमूल्य, जिसका मूल्य नहीं, कीमत नहीं। जिसकी कीमत आँकने जाए तो उसकी कीमत स्वयं की, अज्ञान की हो जाती है। ऐसा महा भगवान स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप है। ऐसे आत्मा को, ऐसे आत्मा को अथवा ऐसे आत्मा के स्वभाव को अर्थात् कि ऐसे आत्मा के धर्म को अर्थात् कि ऐसे आत्मा की मुक्तदशारूपी उसका स्वभाव, ऐसा अन्तर में धारण किये बिना, अन्तर्मुख होकर उसे ध्येय बनाये बिना सर्व प्रकार के पुण्य के आचरण करे। सर्व प्रकार में सब ले लिया। पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, सत्य बोले, असत्य बोले नहीं, चोरी न करे, अचोरी रखे, लंगोटी परिग्रह का एक न रखे परन्तु वह तो आचरण सब पुण्य के, राग के, विकल्प के हैं, भाई! आत्मा का रागरहित जो स्वभाव, उसे श्रद्धा-ज्ञान में धारण किये बिना... समझ में आया? आहाहा! चौरासी के अवतार में दु:खी-दु:खी-दु:खी होकर भटकता है।

कहते हैं, **सब प्रकार के समस्त पुण्य को करता है,...** सर्व प्रकार में तो सब कोई एक तीर्थंकरगोत्र का पुण्य वह बाकी रह गया। वह उसे नहीं होता। नौवें ग्रैवेयक में आत्मा को धारण किये बिना गया। महाव्रत पालन किये, महीने-महीने के अपवास

किये। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, ऐसी क्षमा (रखी)। आत्मा के धारण बिना, धर्म के भान बिना, ऐसी क्रियाएँ अनन्त बार (पालन कीं)। यम, नियम, संयम... आता है न? श्रीमद् में एक आता है।

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठजोग प्रयोग सुतार भयो;
जप भेद जपे तप त्यौंहि तपे, उरसेंहि उदासी लही सबपें।
सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

समझ में आया? २४वें वर्ष में है। २४वाँ वर्ष है न? उसमें है यह। ... नहीं। यह आया। 'यम नियम संयम आप कियो,...' २२ और २४ वर्ष की उम्र में। 'पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो' आत्मा का स्वभाव आनन्द और शान्तमूर्ति वीतराग प्रभु, उसकी मुक्तदशा पूर्ण आनन्द और पूर्ण वीतरागता, ऐसा स्वभाव आत्मा का जिसने अन्तर में पहिचाना नहीं, जाना नहीं और श्रद्धा नहीं की, वह आत्मा के ऐसे धर्म को धारण किये बिना सर्व प्रकार से पुण्य करे अर्थात्? यम—पंच महाव्रत पाले, नियम—अभिग्रह धारण करे, संयम—इन्द्रियों का दमन करे। 'पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो...' त्याग से सब छोड़ दिया। एक लंगोटी नहीं। नग्न मुनि हो गया। 'त्याग वैराग्य...' वैराग्य यह बाहर का वैराग्य, हों! मूल वैराग्य नहीं। आहाहा!

'वनवास लियो मुख मौन रह्यो,...' वनवास में रहा परन्तु आत्मा का धर्म क्या चीज़ है, उसे आनन्दमूर्ति भगवान है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की महिमा बिना, उस अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान आत्मा अन्तर, उसके धर्म को धारण (किये बिना) और महिमा बिना यह वनवास रहा, मुख मौन रहा। बारह-बारह महीने तक जिसे काष्ट मौन कहते हैं। काष्ठ मौन अर्थात् लकड़ी बोले तो यह बोले। भाई! वहाँ जामनगर में वे रणछोड़लालजी थे न? राजकोट में, राजकोट में। रणछोड़लाल थे। वे मौन बहुत पालते थे। काष्ठ मौन। क्या धूल काष्ठ मौन। समझ में आया?

'दृढ आसन पद्म लगाय दियो।' दृढ़ आसन। बोलना नहीं, चलना नहीं। परन्तु

यह सब क्रियाएँ आत्मा चीज़ आनन्दकन्द है, उसके ध्येय बिना और उसकी श्रद्धा और ज्ञान के भान, धर्म के भान बिना यह सब तेरे आचरण चार गति में भटकने के हैं। नवनीतभाई! आहाहा! **'मन पौन निरोध स्वबोध कियो,...'** मन पौन-बन्द किया। कुम्भक रेचक और ऐसे और वैसे। और स्वबोध कियो। अपनी कल्पना से आत्मा को जाना। परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसे स्वयं जाना नहीं। **'हठजोग प्रयोग सुतार भयो;...'** हठयोग किया। बाहर में ऐसा बोलना और... क्या कहलाता है? गुफा। भोंयरा। भोंयरे में अन्दर में रहा।

'जप भेद...' महावीर... महावीर... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ऐसे जाप में तल्लीन हो गया। परन्तु वह तो राग है। वह कहीं आत्मा का धर्म नहीं। आहाहा! **'जप भेद जपे...'** जप के भेद जितने हों वे सब करे, ऐसा कहते हैं। **'तप त्यौंहि तपे,...'** महीने-महीने के अपवास, छह-छह महीने के अपवास। अपवास के पारणे में रूखा खाये। **'उरसेंहि उदासी लही सब पें...'** सारे जगत से उदास... उदास... उदास... परन्तु अस्तिपना सत्त्वपना है, ज्ञानानन्द भगवान सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण आनन्द के ध्येय और ध्यान बिना वे सब सर्व प्रकार की पुण्य की क्रियाएँ चार गति में भटकने के लिये है। आहाहा! नवनीतभाई! **'सब शास्त्रन के नय धारि हिये,...'** सब पढ़ा। ग्यारह अंग पढ़ा, नवपूर्व पढ़ा, उससे क्या हुआ? आत्मा पढ़े बिना वह सब तेरे पठन रण में शोर मचाने जैसे हैं।

मुमुक्षु : इतना कण्ठस्थ होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कण्ठस्थ अर्थात् यहाँ न, परन्तु अन्दर में? बलुभाई! अब बलुभाई आ गये हैं शीघ्रता में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे आयेंगे। धीरे-धीरे बदलते जाते हैं न! कहो, समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! बलुभाई! इसे पहले पहिचान तो करनी पड़ेगी या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : धन्धे में से निवृत्त हो तो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग धन्धा है... तथापि उनको इस ओर की जिज्ञासा... जिज्ञासा होवे न पहली ?

मुमुक्षु : पहली तो हो परन्तु आगे बढ़ना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आने के बाद हो अन्दर। कहो, समझ में आया ?

कहते हैं, **'सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये; वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो। अब क्यों न विचारता है मनसें, कछु और रहा उन साधन सें?'** यह सब साधन नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण और सब कहा न? संयम, नियम, त्याग और वैराग्य... ये सब साधन नहीं है। **'बिन सद्गुरु कोय न भेद लहे, मुख आगल हैं कह बात कहे।'** यह भगवान विराजता है, वहाँ अन्दर में। **'परम निधान प्रगट मुख आगल रे...' 'परम निधान प्रगट मुख आगल रे...'** जगत ओलंगी जाए रे जिनेश्वर। जगत अपना निधान आनन्द का धाम, उसे उल्लंघकर बाहर की प्रवृत्ति की क्रियाकाण्ड में लोग रुक जाते हैं। समझ में आया ?

'परम निधान प्रगट मुख आगल रे, जगत ओलंगी जाय रे जिनेश्वर।' जगत ओलंगी जाए। आत्मा क्या चीज़ है ? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, आत्मा किसे कहते हैं और आत्मा का धर्म स्वभाव त्रिकाली क्या है, उसके भान बिना आत्मा के निधान को उल्लंघकर बाहर चला जाता है। **'बिन सद्गुरु कोय न भेद लहे, मुख आगल है...'** अरे! यह तो मुख्य स्वयं है। आहाहा! कोई भी राग, कोई भी शरीर की क्रिया के जानने में स्वयं भगवान पहले हो तो वह ज्ञात हो। स्वयं न हो, वह ज्ञात नहीं हो। ऐसा मुख्य तो स्वयं है परन्तु उसे मुख्य न करके राग को मुख्य कर डालता है। समझ में आया ? वजुभाई! आहाहा!

'करुणा हम पावत है तुमकी, यह बात रही सुगुरु गमकी...' कहते हैं कि यह तो विकल्पातीत निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! उसे मन को ओलंग कर, विकल्प को ओलंगकर, निर्विकल्प आनन्द का निधान, उसे पहुँचने के लिये कहते हैं कि 'करुणा हम पावत है तुमकी...' हे सर्वज्ञदेव! आपकी करुणा हमारे ऊपर है। आपके

ज्ञान में हमारा भासित हुआ है कि हम अभी धर्म प्राप्त करनेवाले हैं और पाये हैं। ऐसा आपने अपने ज्ञान में हमें देखा है, (वह) आपकी करुणा है, प्रभु! भगवानजीभाई! 'करुणा हम पावत है तुमकी, वह बात रही सुगुरुगमकी...' यह तो स्वसंवेदनज्ञान से-ज्ञान से अनुभव में आये, ऐसी वह चीज़ है। उस चीज़ में कोई राग और विकल्प और व्यवहार के पक्ष की अपेक्षा की, पक्ष की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। ऐसा वह आत्मा है। परन्तु कभी उसकी दरकार भी नहीं की। एक तो मानो अभी कमाना, खाना और भोग के कारण निवृत्त नहीं। ऐसा करते हुए निवृत्त हो, वहाँ ऐसी सब क्रियाकाण्ड में फँस जाता है। ऐई! भगवानजीभाई! फिर हो बालपने खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देखके रोया। हाय... हाय... अब सब गया।

अरे! भाई! यह आत्मा अन्दर विराजता है। महा निधान प्रभु है न। आनन्द और ज्ञान का तो निधान है। अनन्त-अनन्त ज्ञान और अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की घूँट ले, ऐसा यह भगवान है। यह राग का अनुभव, वह तो जहर का अनुभव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'पल में प्रगटे मुख आगल से, जब सद्गुरुचर्न सुप्रेम बसें। तन से, मन से, धन से, सबसें, गुरुदेव की आन स्व-आत्म बसें। तब कारज सिद्ध बने अपनो, रस अमृत पावहि प्रेम घनो।' आहाहा! रस अमृत—आत्मा अनन्तस्वरूप अमृत का रस है। उसकी अन्तर्दृष्टि अनुभव करने से उसे अमृतरस का स्वाद आता है। परन्तु वह गुरुगम से समझ में आये ऐसा है। अपने आप यह कल्पना से समझे तो समझ में आये ऐसा नहीं। ऐई! भीखाभाई! लो, ठीक! 'गुरुदेव की आन स्व-आत्म बसें...' आज्ञा न? आज्ञा अर्थात् क्या? भगवान की आज्ञा अर्थात् क्या? वह आ-मर्यादा से ज्ञ-जानना। आत्मा ज्ञानानन्द -स्वरूप है। यह दया, दान के, पुण्य के परिणाम का कर्ता भगवान आत्मा नहीं है। यह कर्ता माने, वह आत्मा नहीं और आत्मा, वह उनका कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपने तो यहाँ ... की बात थी न थोड़ी?

आत्मिक धर्म धारण किये बिना सब प्रकार के पुण्य का आचरण करे तो भी मोक्ष नहीं होता है,... आत्मा का आनन्द न आवे। चाहे जितनी ऐसी पुण्य की क्रिया और आचरण करे, उसमें से आत्मा की शान्ति, आनन्द न प्रगटे। क्योंकि उस राग

में कुछ आनन्द है नहीं। आनन्द जहाँ है, उसे तो पकड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **मोक्ष नहीं होता है, संसार ही में रहता है। कदाचित् स्वर्गादिक भोग पावे...** ऐसे पुण्य के आचरण से कदाचित स्वर्ग की धूलादि मिले, **तो वहाँ भोगों में आसक्त होकर रहे,...** क्योंकि वहाँ तो आसक्त ही होता है। राग की रुचि लेकर गया है और उसके फल में वहाँ आसक्त होता है। वह स्वर्ग में पुण्य के आचरण करके जाए तो वहाँ आसक्त हो जाएगा।

वहाँ से चय एकेन्द्रियादिक होकर संसार ही में भ्रमण करता है। आहाहा! दूसरे देवलोक का देव, दो सागर की स्थिति, एक सागरोपम में दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम जाते हैं। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्यात अरब वर्ष जाते हैं। ऐसे दो सागर की स्थिति में पुण्य का आचरण करके आत्मा के धर्म को पहिचाने बिना, आत्मा को जाने बिना, वह स्वर्ग में जाए, वहाँ से मरकर एकेन्द्रिय हो। वह देव मरकर पृथ्वी में उपजे। यह हीरा है न? हीरा-माणिक पत्थर होता है न? उसरूप से उपजे, हों! साधारण पृथ्वी में नहीं उपजता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। पृथ्वी, पानी और वनस्पति। वह भी ऊँचा हीरा हो, वहाँ दूसरे देवलोक का देव, वह मरकर हीरा में जाए, एकेन्द्रिय हो। जिसे आसक्ति अन्दर पूर्ण वहाँ थी। क्योंकि जिसे आत्मा की धर्म पहिचान बिना ऐसे पुण्य के आचरण के फलरूप से स्वर्ग मिला। आसक्ति करके, मरकर पृथ्वी में जाए, वह पानी में जाए। एकेन्द्रिय पानी। एक बिन्दु पानी परन्तु उत्कृष्ट पानी, हों! सुगन्ध आती है न वह? सुगन्ध कुण्ड नहीं निकलते? पानी में सुगन्ध कुण्ड। कुण्ड में सुगन्ध पानी आवे न! गर्म पानी निकलता है। परन्तु वह तो सुगन्धी पानी, अन्दर से सुगन्ध (आवे), ऐसे पानी में उपजे, लो। देव मरकर, दो सागर की स्थिति और मरकर एकेन्द्रिय पानी, वनस्पति फूल में जाए। वहाँ स्वर्ग का देव वह आत्मा का स्वभाव चिदानन्दमूर्ति आनन्द, उसकी अन्तर में रुचि और भान बिना ऐसे पुण्य के आचरण करे, स्वर्ग में जाए, वहाँ से मरकर फूल में उत्पन्न हो। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा!

एकेन्द्रियादिक... है न? एकेन्द्रिय में जाए, कोई पृथ्वी में जाए, कोई मनुष्य में जाए परन्तु मूल एकेन्द्रियादि लिया है। **एकेन्द्रियादिक होकर संसार ही में भ्रमण करता है।** लो!

गाथा-८७

आगे इस कारण से आत्मा ही का श्रद्धान करो, प्रयत्नपूर्वक जानो, मोक्ष प्राप्त करो-ऐसा उपदेश करते हैं -

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण।।८७।।

एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन।
येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन।।८७।।

इस हेतु से निज आतमा की त्रिविध से श्रद्धा करो।
जानो उसे ही यत्न से यों मोक्ष-सुख को प्राप्त हो।।८७।।

अर्थ - पहिले कहा था कि आत्मा का धर्म तो मोक्ष है, उसी कारण से कहते हैं कि हे भव्यजीवों! तुम उस आत्मा को प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार के उद्यम करके यथार्थ जानो, उस आत्मा का श्रद्धान करो, प्रतीति करो, आचरण करो, मन-वचन-काय से ऐसे करो जिससे मोक्ष पावो।

भावार्थ - जिसको जानने और श्रद्धान करने से मोक्ष हो उसी को जानना और श्रद्धान करना मोक्षप्राप्ति कराता है, इसलिए आत्मा को जानने का कार्य सब प्रकार के उद्यमपूर्वक करना चाहिए इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिए भव्यजीवों को यही उपदेश है।।८७।।

गाथा-८७ पर प्रवचन

इस कारण से... अब ८७वीं। आगे इस कारण से आत्मा ही का श्रद्धान करो, प्रयत्नपूर्वक जानो, मोक्ष प्राप्त करो - ऐसा उपदेश करते हैं - लो! बहुत सरस

गाथा है। यह गाथा पहली १६वीं के साथ है। ६६ पृष्ठ। वह ही यह गाथा। सूत्रपाहुड़ में पहले आ गयी है।

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण।।८७।।

आहाहा! लो! नवनीतभाई! यह गाथा बहुत अच्छी आयी है। आहाहा! मोक्ष का मण्डप है, बापू! वास्तु कर आत्मा में, ऐसा कहते हैं। आत्मा में वास्तु कर तो बसकर मोक्ष होगा तेरा। बाकी बाहर में वास्तु तो अनन्त बार लिया और (छोड़ा)। आहाहा! देखो न! कल एक लड़का बेचारा बारह वर्ष का गुजर गया। गरीब सुथार का ... हो गया। गोली से खेलता था, दो बजे तो अभी। गोली से लड़के खेलते हैं न। वह गोली गिर गयी गर में। भोंण-भोंण। वह सर्प का भोंण (बिल) अर्थात् भवन। भवन का हो गया भोंण। यहाँ मनुष्यों में तुम्हारे बँगले को भवन कहते हैं। उसे भोंण कहते हैं। उसमें नागिन बैठी होगी। उस बेचारे की गोली गिर गयी तो ऐसे गोली लेने के लिये ऐसे... मारी झपट। ... ... ले जाते थे वहाँ रास्ते में ... कल एक लड़का चल बसा। बारह वर्ष का लड़का। सर्प डस गया। नागिन डस गयी। स्थिति इतनी ही थी। उसमें कोई एक समय भी बढ़ाने या घटाने में समर्थ नहीं है। वह नागिन डस गयी, इसलिए देह छूट गयी, ऐसा नहीं। उसकी स्थिति ही इतनी थी। आहाहा!

मुमुक्षु : उसने हाथ न डाला होता तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हाथ न डालने का प्रश्न ही कहाँ है? वह परमाणु की पर्याय उस प्रकार ही गति वहाँ होने की होती है। ऐसा जहाँ वह गोली लेने गया। गिर गयी दर में। वहाँ लेने गया चोट की, मर गया... ...दो बजते, शाम को मर गया। आहाहा! ऐसी मृत्यु अनन्त बार हुई है। यह कहीं नयी नहीं है। लोग ऐसा जानते हैं कि उसे हुआ है। मुझे कहाँ है? हम तो मकान चुस्त रखते हैं। सर्प का दर (बिल) नहीं होता। कहीं दर रखा न हो तो भी कहीं से आकर डसे, उस आयुष्य का पूर्ण होना हो तो। समझ में आया? आहाहा! उड़नेवाले सर्प होते हैं, सर्प। उड़े-उड़े। वे आकर सिर से चिपटे और जहर चढ़े और वहाँ मर जाए।

भाई! यह आत्मा अन्दर आनन्द का धाम है, प्रभु! पुण्य और पाप के विकल्प की वृत्ति में राग से वह पार है। भाई! तेरा निधान तो अलौकिक है। सर्वज्ञ के ज्ञान में भी उसकी महिमा वाणी द्वारा नहीं कही जा सकती। जानी सब। समझ में आया? आता है न श्रीमद् में?

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने जाना ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो।
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो।

यह आत्मा के आनन्द के अनुभव से वह ज्ञात होता है। बाकी कोई क्रियाकाण्ड और किसी से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहते हैं...

अर्थ – पहिले कहा था कि आत्मा का धर्म तो मोक्ष है,... लो! क्या कहा? वास्तव में आत्मा का स्वभाव तो मोक्ष ही उसका स्वभाव है। राग और बन्ध उसका स्वभाव नहीं है। ऐसा सिद्ध करना है, भाई! आहाहा! भाई! तू चैतन्य सनाथ—आनन्द से सनाथ है। तेरा धर्म अर्थात् स्वभाव तो मोक्ष-पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति—ऐसा मोक्ष, वह तेरा स्वभाव है। राग तो तेरा स्वभाव नहीं परन्तु अपूर्ण पर्याय, वह भी तेरा मूलस्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा! राग और मिथ्यात्व ऐसे जो परिणाम, वह तो तेरा स्वभाव नहीं। वह तो विभाव खड़ा करके तू उसमें रच-पच रहा है। परन्तु भगवान! तेरा स्वभाव तो मोक्ष है। आहाहा! देखो तो सही! **आत्मा का धर्म तो मोक्ष है,...** ऐई! चन्दुभाई! क्या होगा आत्मा का धर्म? कहते हैं। मोक्ष। ओहोहो! क्योंकि वह पवित्रता पूर्ण आत्मा की पूर्ण प्रगट हो, ऐसी पर्याय, वही उसका धर्म और मोक्ष स्वभाव है। आहाहा! पुण्य के आचरण में रहना, वह उसका स्वभाव नहीं, परन्तु अल्पज्ञ पर्याय में अल्पज्ञ रहना, वह भी उसका मूल स्वभाव नहीं। आहाहा!

वह तो मुक्तस्वरूप भगवान है। कैसे जँचे? यहाँ जहाँ एक रोटी ठीक से आवे। पूरणपोली की घी में तलकर, टपकती घी में। अन्दर से एकाकार हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? पहले तो अपने जवान आदमी मरता तो सुखड़ी नहीं खाते। सुखड़ी

नहीं खाते परन्तु थर निकालकर डाले घी का। यह तो हमारे घर में बना था, उसकी बात है। हमने तो नजरों से देखा है। हमारे भाई गुजर गये थे। बड़े भाई। दीपचन्दभाई। जवान अवस्था सत्ताईस वर्ष की। रूपवान इतने थे जवान और बहुत बुद्धिवाले। मेहमान आवे तो घी तपेली में भरकर गर्म-गर्म रोटी घी में डाले और खाये। ऐ... ! सुखड़ी (गुजराती मिठाई) नहीं खायी जाती हमारे। ऐई ! बलुभाई !

मुमुक्षु : मीठा नहीं खाते।

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठा नहीं खाते परन्तु फीका भी थर निकालकर डाले। और घर हो साधारण, गरीब घर हो उसके तो... ऐई ! नवनीतभाई ! नवनीतभाई जैसा घर हो, उसे और अलग बात है। परन्तु वह साधारण घर हो और पाँच सेर घी, दस सेर घी एक टाईम में उड़े। तब तो भाई महँगा नहीं था न।

यहाँ कहते हैं कि भाई ! उसमें रोटी गर्म-गर्म। उसमें वह क्या कहलाती है तुम्हारे ? पूरणपोली। पूरणपोली हो गयी हो गर्म और पोची रुई जैसी ऐसी सरीखी। तपेली में घी पाँच सेर डुबोकर चिमटे में। हाथ से तो पकड़े नहीं और चिमटे से पकड़कर थाली में डाले। पड़े वहाँ तो ऐसी रसबस हो जाए। ऐसे मानो... आहाहा ! धूल भी नहीं, सुन न ! वह तो विष्टा है। छह घण्टे में उसका परिणाम विष्टा आयेगा। वह तो पूर्व की तैयारी और पूर्व की पर्याय है विष्टा की। विष्टा। पूरणपोली हो या तेरा लड्डू हो। आहाहा ! यह (शरीर) मशीन है। यह विष्टा करने की यह मशीन है। ऐसा मिट्टी का पिण्ड हड्डियाँ यह अकेला विष्टा का घर, यह तो सब पेशाब का स्थान है। भगवान वहाँ क्या है ? वह तेरा नहीं, उसमें तू नहीं, तुझमें वह नहीं। तुझमें है, वह तो पूर्ण आनन्द और ज्ञान का स्वभाव तुझमें है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, **पहिले कहा था कि आत्मा का धर्म...** पूर्व में कहा था न ? **'अह पुण अप्पा णिच्छदि'** आत्मा कुछ इच्छता नहीं। और पुण्य की क्रिया को इच्छे, उसके फल को इच्छे, उसमें लीन हो जाए। मूढ़ मरकर एकेन्द्रिय होगा। समझ में आया ? आहाहा ! यह साधु हुआ होगा आत्मा के धर्म और भान बिना, तो वह मरकर स्वर्ग में से फिर एकेन्द्रिय वनस्पति आदि होगा। आहाहा ! दूसरा जीव, 'यह जीव है' ऐसा स्वीकार नहीं करेंगे, उसमें इसका अवतार होगा। आहाहा ! भगवान ! वर्तमान न देख। वर्तमान देखकर

वर्तमान में न उलझ। यह तेरा त्रिकाली तत्त्व अन्दर पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? उसका स्वभाव तो मोक्ष है। आहाहा! ऐसी बात अन्यत्र आयी नहीं। यहाँ आयी है, देखो!

आत्मा का धर्म तो मोक्ष है,... ऐसा यहाँ आया है। समझ में आया? क्योंकि पूर्ण निर्मल आनन्ददशा, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण वीर्य, पूर्ण शान्ति, वीतरागता और पूर्ण दर्शन, ऐसी जो दशा, वह तेरा धर्म और तेरा स्वभाव है। कहो, भीखाभाई! आहाहा! राग—पाप का राग वह तो बापू! नरक की खान के कारण हैं। वह नरक की खान को खोलता है। पुण्य के परिणाम भी योगफल में एकेन्द्रिय की खान को खोलते हैं। भगवान आनन्द की खान है। भाई! तुझे तेरा प्रेम नहीं। तुझे तेरा प्रेम नहीं। तेरे बिना दूसरी चीज़ का प्रेम घुस गया है। उसे कोई ऐसा कहे कि ऐ! पुण्य, वह धर्म नहीं है, हों! हाय-हाय। परन्तु भगवान की भक्ति करते हैं न यह? शत्रुंजय जाकर भगवान के पास 'शिवपद हमको देना रे महाराज!' ऐई! कान्तिभाई! 'देना-देना रे महाराज! शिवपद हमको देना।' भगवान कहते हैं, तेरा शिवपद हमारे पास नहीं है। तेरे पास है। यह शिवपद कहा न—मोक्ष? मोक्ष तो तेरा स्वभाव है। तुझे खबर नहीं और हमारे पास माँगने आया। भिखारी! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **आत्मा का धर्म तो मोक्ष है, उसी कारण से कहते हैं कि हे भव्यजीवों!** आहाहा! ... **तुम उस आत्मा को प्रयत्नपूर्वक... तुम उस आत्मा को प्रयत्नपूर्वक...** कि जिसका मोक्ष स्वभाव है। पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति, पूर्ण वीतरागता, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण परमेश्वरता, ऐसा इस आत्मा का स्वभाव है। दृष्टि अन्यत्र से फिरा डाल और वहाँ दृष्टि को रख, ऐसा कहते हैं। यह सब ललचानेवाले बाहर के पदार्थ यह मार डालेंगे। पतंगेरूप—अग्नि देखते हैं। देखने आवे (उसमें) गिरे और जले-मरे। अग्नि के सफेद तेज में वह पतंगा ऐसा देखकर... आहाहा! भारी रूपवान! भारी तेजवाला! जाए, वहाँ गिरे-मरे। उसी प्रकार आत्मा के तेज-आनन्द और ज्ञान के तेज बिना जितनी चीज़ें बाहर की पुण्य-पाप से लेकर यह फल सब ऐसे-ऐसे दिखते हैं, लगते हैं। आहाहा! रूपवान शरीर, मक्खन जैसा लगे। ऐई! मर जाएगा, सुन न! यह सब पतंगे जैसे दीपक के तेज में जलते हैं, बापू! जल जाएगा, भाई! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **उसी कारण से...** उसी कारण से अर्थात्? उसका स्वभाव तो शुद्ध आनन्द और ज्ञान का धाम परिपूर्ण, ऐसा तो उसका स्वरूप और स्वभाव है। आहाहा! श्रीमद् ने नहीं कहा एक में? कि दिगम्बर के आचार्यों ने आत्मा का मोक्ष होता है और आत्मा मोक्षस्वरूप ही है। इसने माना था कि मैं रागवाला हूँ, अल्पज्ञ हूँ, यह मान्यता इसकी इसको भटकाती है। परन्तु यह स्वयं मोक्षस्वरूप ही भगवान है। आहाहा! जीव का मोक्ष होता नहीं, ऐसा उसमें लिखते हैं। जीव का मोक्ष होता नहीं परन्तु जीव का मोक्ष समझ में आता है। समझ में आया? उसमें है। श्रीमद् में है। ... किस जगह हाथ आवे, कुछ हाथ आवे? उसे आना हो तो आवे। कितना है? है न कहीं? पृष्ठ-वृष्ट ... हों!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझ में आता है। तुमको याद...

मुमुक्षु : वर्ष याद है। व्याख्यानसार।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्यानसार? ३२ वर्ष। अमुक आचार्य ऐसा कहते हैं कि —दिगम्बर के आचार्य ने ऐसा स्वीकार किया है कि जीव का मोक्ष नहीं होता परन्तु मोक्ष समझ में आता है। ऐई! बलुभाई! यह तो श्रीमद् का वचन। सादी भाषा में शब्द है। वह इस प्रकार से कि जीव शुद्धस्वरूपी है। वह तो शुद्ध पवित्र का धाम अनन्त आनन्द का वह पुंज है। उसमें से तो अतीन्द्रिय आनन्द झरे। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प जहर झरे, वह स्थान नहीं है। वह तो नये खड़े करता है। कहते हैं, जीव शुद्धस्वरूपी है। उसे बन्ध हुआ नहीं। शुद्ध चिद्घन रसकन्द पवित्र जो है, (उस) वस्तु को बन्ध क्या? बन्ध होवे तो अवस्तु हो जाए। आहाहा! चिमनभाई! आहाहा! परन्तु इसके घर में क्या है, इसकी इसे खबर नहीं। 'अब हम कबहुं न निज घर आये। पर घर भ्रमत नाम अनेक धराये। अब हम कबहुं न निज घर आये।' यह घर। मैं तो मोक्षस्वरूप हूँ। आनन्द से रसकस, रसबोल, तरबोल भरपूर हूँ। आहाहा! तब बन्ध हुआ नहीं तो मोक्ष होनापना कहाँ रहता है? वस्तु है। रसकन्द शुद्ध। कहा न, आत्मा का स्वभाव मोक्ष है। विकल्प है, वह भावबन्ध है और कर्म है, वह द्रव्यबन्ध है। वह तो वस्तु में है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, परन्तु इसने माना हुआ है कि मैं बँधा हूँ। मान्यता है कि यह राग, वह मैं हूँ। राग, वह मैं हूँ। ऐसे भावबन्ध में मैं हूँ, ऐसा माना हुआ है। वह माननापना विचार द्वारा समझ में आता है। इस ज्ञान को जहाँ अन्तर में झुकाने से पूरा ज्ञानस्वरूपी त्रिकाल ऐसा का ऐसा है। उस ज्ञान द्वारा अपना स्वरूप समझ में आता है। दूसरे कोई क्रियाकाण्ड से समझ में आये ऐसा नहीं है। मुझे बन्ध नहीं है। विचार द्वारा समझ में आता है कि मुझे बन्ध नहीं है। मात्र माना था। वह माननापना शुद्धस्वरूप समझने से रहता नहीं। समझ में आया? अर्थात् मोक्ष समझ में आता है। यह बात शुद्धनय की—निश्चयनय की है। वास्तविक तत्त्व की है। यह पर्यायार्थिकनयवालों ने उस नय को लगकर आचरण करे तो भटक मरना है। राग की रुचिवाले हों और माने कि मोक्ष मेरा है। परन्तु तू कहाँ से लाया? समझ में आया? एक समय की पर्याय पर दृष्टि है, राग पर दृष्टि है, पर में जिसका प्रेम अर्पित हो गया है, ऐसे जीव ऐसा माने कि हम तो शुद्ध मोक्ष हैं। मर जाएगा, कहते हैं। वस्तु में तो आया नहीं, आत्मा कौन है, उसकी तो तुझे खबर नहीं। समझ में आया? ३२ वर्ष में, हों! ८० वाँ बोल है।

पहिले कहा था कि आत्मा का धर्म तो मोक्ष है, उसी कारण से... उसी कारण से अर्थात्? कि भगवान आत्मा तो पवित्रता का पिण्ड मोक्षस्वरूप ही है। उसका धर्म ही मोक्षस्वरूप है। राग का बन्धन और कर्म का बन्धन वह इसके स्वरूप में है नहीं। आहाहा! यह देखो न! बाहर से थोड़ा कुछ अच्छा लगे। यह सिनेमा और अमुक और भपका-भपका। आहाहा! मर गया। चित्रित हो गया चौरासी के अवतार में।

मुमुक्षु : खरी करी।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जो किया वह तूने किया है न? वह तेरी है न? किसी ने जबरदस्ती कराया है कुछ? पाड़ी है इसने। यह तो ऐसा का ऐसा चालू रखे, टेव-अभ्यास। परन्तु अरे! मैं आत्मा! मेरा आनन्द और अतीन्द्रिय आनन्द से भरचक लबालब भरा हुआ तत्त्व। जैसे पानी से सरोवर भरा है। सरोवर पानी से ऐसे भरा है। स्वयंभूरमणसमुद्र जैसे पानी से और रत्न से भरा है, उसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त आनन्दादि के गुणों की शक्ति के रतन से भरपूर है। उसमें कोई पुण्य-पाप विकल्प-फिकल्प हैं नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **उसी कारण से कहते हैं कि हे भव्यजीवों! तुम उस आत्मा को प्रयत्नपूर्वक...** जिसका तुझे परिपूर्ण स्वभाव प्राप्त करना है, वह आत्मा क्या है, उस आत्मा का प्रयत्न से **सब प्रकार के उद्यम करके...** वर्तमान में जितना प्रयत्न और पुरुषार्थ जागृत है, उससे अधिक पुरुषार्थ जगाकर पहले तो यथार्थ जानो। वह कौन क्या चीज़ है परन्तु यह? इतनी-इतनी महिमा! जिसके चक्रवर्ती के राज भी थोथा! अरे! तीर्थंकर की सम्पदा समवसरण भी जहाँ गिनती में नहीं। आहाहा! अचिंत्य प्रकृति जो अन्तिम में अन्तिम पुण्य प्रकृति—तीर्थंकर, उसके समवसरण और वह ठाठ। इन्द्रों ने बनाया हुआ परन्तु इन्द्रों को आश्चर्य हो। यह क्या बन गया? वजुभाई! ... इसलिए यह याद आ गया। इन्द्र समवसरण बनावे और वापस ऐसा कहे, अरे! यह क्या बना! ऐसा! ऐसा ही कोई पुण्य प्रकृति का फल सहज ऐसा बन जाए। तथापि वह भगवान आत्मा के माहात्म्य के समक्ष उसका माहात्म्य है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

तुम उस आत्मा को प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार के उद्यम करके यथार्थ जानो,... सर्व प्रकार से उद्यमपूर्वक यथार्थ जानो। इस पर वजन है। ऐसे तो अन्यमति आत्मा को अनेक प्रकार से कहते हैं, वह नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर देवाधिदेव ने जो आत्मा केवलज्ञान में देखा, वह आत्मा, उसे यथार्थ जान। जयसुखभाई! आहाहा! कहो, समझ में आया?

यथार्थ जानो,... ऐसे तो जानपना तो अभव्य ने किया, उसे ख्याल नहीं आया होगा? परन्तु जाना ही नहीं। ज्ञानस्वरूप भगवान आनन्द की मूर्ति, जिसकी ध्रुवता के एक समय में पर्याय की नास्ति। आहाहा! राग की तो नास्ति, संसार की तो नास्ति। उसमें संसार है ही नहीं। उसका अर्थ यह हुआ कि वह मोक्षस्वरूप ही है। संसार अर्थात् उदयभाव। उसमें उदयभाव नहीं। वह तो परमस्वभावभाव पारिणामिकभाव है। आहाहा! समझ में आया? संसार तो नहीं परन्तु जिसमें एक समय की पर्याय प्रगट है, वह भी ध्रुव में नहीं। आहाहा! उसका प्रदेशभेद है, भावभेद है, कालभेद है। समझ में आया? आया था न कहीं? प्रदेशभेद का नहीं? किसमें आया था? क्षेत्र अपेक्षा से। कल आया था क्षेत्र अपेक्षा से। असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है। उसकी एक समय की जो पर्याय है, एक समय की पर्याय, वह त्रिकाली असंख्य क्षेत्र में वह नहीं है। आहाहा! तो यह स्त्री, पुत्र और

कुटुम्ब, मकान और बँगला कहाँ आये और राग कहाँ आया अन्दर में ? आहाहा ! समझ में आया ? असंख्य प्रदेशी भगवान चैतन्यघन। वह घन है। जिसमें राग का प्रवेश तो नहीं परन्तु उसके क्षेत्र की एक समय की जो पर्याय है, उस क्षेत्र का प्रवेश अन्तर असंख्य पवित्र क्षेत्र में वह नहीं। ध्रुव क्षेत्र में उस पर्याय का प्रवेश नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

उस आत्मा को प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार के... देखा ! प्रयत्नपूर्वक जानो। पुरुषार्थ से जानो। ऐसा का ऐसा ज्ञात हो जाए, ऐसा नहीं है। ऐसा का ऐसा ज्ञात हो जाएगा। नहीं कहा था एक बार तुम्हारे ? छोटाभाई का। ऐई ! तुम्हारे छोटाभाई। ऐसा का ऐसा ज्ञात हो गया। मैं पैसे लेने कहाँ गया था कहे। यह ५०-६० लाख हो गये। मैं तो ... हूँ। वह थी न ? ... नल-नल। पाईप। पाईप के साथ ... है न /// इसलिए रुक गया कुछ कितने ही समय। ५० गुना भाव हो गया। ... दिक्कत उठी। एकदम बीस लाख। फिर तो ... ५०-६०... मर भी गया। साथ में धूल भी आयी नहीं कुछ। स्त्री ने कहा कि महाराज कहते हैं कि अब तुम धर्म का कुछ समझो, करो। यह पैसा कब मैं लेने गया था, इसी प्रकार धर्म अपने आप आयेगा, आना होगा तब। ऐसा कहता था।

मुमुक्षु : काललब्धि पके तो नहीं आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे काललब्धि नहीं पकती। ऐसा कि जैसे पैसे आ गये, वैसे धर्म आ जाएगा। कर्म में होगा तो धर्म आयेगा। ऐसा। जैसे कर्म में था तो यह पैसे आये, वैसे धर्म आयेगा। धूल भी धर्म नहीं कर्म में। कर्म में धर्म है ? धर्म तो आत्मा में है। समझ में आया ?

कहते हैं कि **आत्मा को प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार के उद्यम करके यथार्थ जानो, उस आत्मा का श्रद्धान करो,...** यह जानकर श्रद्धान करो। वस्तु ही जहाँ ख्याल में आयी नहीं कि यह चीज़ क्या है, वह आत्मा... आत्मा... करते हैं ? यह आत्मा, उसके और अनन्त गुण, आनन्द और असंख्य प्रदेश क्या कहते हैं यह ? पहले इसका ज्ञान करके जानने के भाव में, भाव में ज्ञान को पकड़कर, भाव को पकड़कर कि यह वस्तु ऐसी है, यह वस्तु ऐसी है। **उस आत्मा का श्रद्धान करो,...** ऐसे आत्मा की प्रतीति करो। यह अनन्त काल में नहीं किया हुआ यह धर्म है।

प्रतीति करो,... और प्रतीति करो। समझ में आया? **आचरण करो,...** आचरण करो अर्थात् उसमें स्थिर होओ। वह आनन्द का धाम भगवान, उसे जानकर, श्रद्धा करके, स्थिर होओ अर्थात् तीनों आ गये। ज्ञान-दर्शन और चारित्र। कहो, समझ में आया? ऐसी बात सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त तीन काल-तीन लोक में वीतरागदेव के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकती। सबने गप्प मारा है। कोई कहे, ऐसा करूँ, अमुक करूँ, ध्यान करूँ, यह करूँ, यह करूँ। जयसुखभाई! अभी तो बहुत धतंग चलते हैं। देखो न! उस रजनीश का चलता है, अमुक का चलता है, चारों ओर का चलता है। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ अनन्त हुए, वर्तमान में लाखों, केवली और तीर्थंकर महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। यह सीमन्धर भगवान इत्यादि। अनन्त होंगे, उन्होंने यह आत्मा अकेला आनन्द और पवित्रता का धाम, भाव का... भाव का... समझ में आया? वह पूरा शुद्धभाव का बण्डल है। खोल-खोल पर्याय में, कहते हैं। पहले जान, फिर श्रद्धा कर, स्थिर हो। **मन-वचन-काय से ऐसे करो...** लो! ... है न? मन-वचन-काया से उसे—आत्मा को जानो, श्रद्धा करो और स्थिर होओ। **ऐसे करो जिससे मोक्ष पावो।** जिससे आत्मा की मुक्ति हो, वह आचरण करने की बात है। उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा और उसका आचरण। बाकी सब थोथे थोथा। भटक मरा चौरासी के अवतार में। कहीं आत्मा की चीज़ बिना शरण है नहीं।

भावार्थ - जिसको जानने और श्रद्धान करने से मोक्ष हो... भाषा देखो! **जिसको जानने...** अर्थात् जिसे जानने से, श्रद्धान करने से और मोक्ष हो, **उसी को जानना और श्रद्धान करना मोक्षप्राप्ति कराता है,...** आहाहा! पण्डित जयचन्द्रजी का है। **उसी को जानना और श्रद्धान करना...** इस दुनिया का जाने और यह सब हीरा-माणिक की परीक्षा करे, नौकरियों में होशियार हो और पाँच-पाँच हजार का वेतन महीने में मिले। उसे जानना? सब भटकने के रास्ते हैं। ऐई! प्लास्टिक का जानपना, ऐसे जूते, ऐसे जूते खाना।

मुमुक्षु : खाना नहीं दूसरे को देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे को देना। जूते देना। परन्तु जूते रखे वह देने दूसरे को?

आहाहा! यहाँ तो कहीं आत्मा में राग भी नहीं और अल्पज्ञता भी नहीं। आहाहा! 'मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पन्थ, समझाया संक्षेप में, सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' निर्ग्रन्थ वीतराग परमात्मा राग से निकल गये, अस्थिरता से निकलकर वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा हुए। ऐसे देवाधिदेव तीर्थंकरों ने आत्मा कहा। उसे पहले तू पहिचान, कहते हैं। गुरुगम से शास्त्र से समझकर, सुनकर, विचारकर उसे जानकर श्रद्धा कर। जाने बिना किसकी श्रद्धा? गधे के सींग जगत में नहीं हैं और जान, श्रद्धा करो। किसकी श्रद्धा? परन्तु वस्तु की खबर नहीं न! यह आत्मा ऐसा है। ज्ञान चैतन्यस्वभाव पवित्रभाव का पिण्ड है, ऐसा पहले ख्याल में, ज्ञान में ले और उसकी श्रद्धा कर।

मोक्ष की प्राप्ति होती है,... जिसे जानने, श्रद्धान करने से मोक्ष हो, **उसी को जानना और श्रद्धान करना मोक्षप्राप्ति कराता है,...** बराबर है? इसलिए **इसलिए आत्मा को जानने का कार्य सब प्रकार के उद्यमपूर्वक करना चाहिए...** लो! आहाहा! इसलिए आत्मा को जानना... उसमें भी आया न? बारम्बार कहा है। 'लाख बात की बात (यही) निश्चय उर लाओ।' छहढाला में आता है। 'छोड़ी जगत द्वंदफंद आतम अन्तर उर आणो।' भगवान आत्मा परमानन्द की कातली है वह। मनुष्य उस आईसक्रीम को क्या कहते हैं? चूसते हैं न? कुल्फी। यह आनन्द की कुल्फी है। उसे जान, श्रद्धा कर और पश्चात् आचरण अर्थात् उसमें सुख-आनन्द तुझे आयेगा। समझ में आया? आकुलता को मिटाना हो और अनाकुलता की प्राप्ति करनी हो तो जिसे जानने से, श्रद्धा करने से मुक्ति हो, उसे तू जान और श्रद्धा कर। आहाहा!

इससे **आत्मा को जानने का कार्य सब प्रकार के उद्यमपूर्वक करना चाहिए...** कब समय मिले इसमें? बलुभाई! कब ऐसा समय मिले? ... फिर हमारे करना क्या इस धन्धा-बन्धा का?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं होता। यह जानने के लिये पूछते हैं न! दृढ़ करने के लिये। पहला था। कहो, समझ में आया? आहाहा! भगवानजीभाई! हमारे भगवानजीभाई पक्के हो गये हैं अब।

आत्मा को जानने का कार्य सब प्रकार के उद्यमपूर्वक करना चाहिए, इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है,... नहीं पुण्य के आचरण द्वारा। क्योंकि वह आत्मा पुण्यरूप है नहीं। इसलिए जिस प्रकार से नहीं है, उसका आचरण करने से आत्मा की मुक्ति नहीं होगी। **इसलिए भव्यजीवों को यही उपदेश है।** लो! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा का यह उपदेश है। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य... ८७ (गाथा) पूरी हुई। इसका दृष्टान्त देंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-८८

आगे कहते हैं कि बाह्य हिंसादिक क्रिया के बिना ही अशुद्ध भाव से तंदुलमत्स्यतुल्य जीव भी सातवें नरक को गया, तब अन्य बड़े जीवों की क्या कथा ?

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं।।८८।।

मत्स्यः अपि शालिसिक्थः अशुद्धभावः गतः महानरकम्।
इति ज्ञात्वा आत्मानं भावय जिनभावनां नित्यम्।।८८।।

अविशुद्ध भावों से गया मत्स्य शालि सिक्थ महा नरक।
यों जान आतम भावना जिन-भावना ही नित्य कर।।८८।।

अर्थ – हे भव्यजीव ! तू देख शालिसिक्थ (तन्दुल नाम का मत्स्य) वह भी अशुद्धभावस्वरूप होता हुआ महानरक (सातवें नरक) में गया, इसलिए तुझे उपदेश देते हैं कि अपनी आत्मा को जानने के लिए निरन्तर जिनभावना कर।

भावार्थ – अशुद्धभाव के माहात्म्य से तन्दुल मत्स्य जैसा अल्पजीव भी सातवें नरक को गया तो अन्य बड़े जीव क्यों न नरक जावें, इसलिए भाव शुद्ध करने का उपदेश है। भाव शुद्ध होने पर अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है। अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है, इसलिए जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर करना योग्य है।

तन्दुल मत्स्य की कथा ऐसे है – काकन्दीपुरी का राजा सूरसेन था। वह मांसभक्षी हो गया। अत्यन्त लोलुपी, निरन्तर मांस भक्षण का अभिप्राय रखता था। उसके 'पितृप्रिय' नाम का रसोईदार था। वह अनेक जीवों का मांस निरन्तर भक्षण कराता था। उसको सर्प डस गया सो मरकर स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य हो गया। राजा सूरसेन भी मरकर वहाँ ही उसी महामत्स्य के कान में तन्दुल मत्स्य हो गया।

वहाँ महामत्स्य के मुख में अनेक जीव आवें और बाहर निकल जावें, तब तन्दुल मत्स्य उनको देखकर विचार करे कि यह महामत्स्य अभागा है जो मुँह में आये हुए जीवों को खाता नहीं है। यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता तो इस समुद्र के सब जीवों को खा जाता। ऐसे भावों के पाप से जीवों को खाये बिना ही सातवें नरक में गया और महामत्स्य तो खानेवाला था, सो वह तो नरक में जाय ही जाय।

इसलिए अशुद्धभावसहित बाह्य पाप करना तो नरक का कारण है ही, परन्तु बाह्य हिंसादिक पाप के किये बिना केवल अशुद्धभाव भी उसी के समान है, इसलिए भावों में अशुभ ध्यान छोड़कर शुभ ध्यान करना योग्य है। यहाँ ऐसा भी जानना जो पहिले राज पाया था सो पहिले पुण्य किया था उसका फल था, पीछे कुभाव हुए तब नरक गया इसलिए आत्मज्ञान के बिना केवल पुण्य ही मोक्ष का साधन नहीं है।।८८।।

प्रवचन-१२७, गाथा-८८ से ८९, शुक्रवार, असोज कृष्ण १५, दिनांक ३०-१०-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की ८८ गाथा। आज तो भगवान का मोक्ष का दिन है... है न? कार्तिक कृष्ण चौदह के अन्तिम भाग में भगवान मोक्ष पधारे, यह कार्तिक... आसोज कृष्ण चौदह (गुजराती तिथि) और कार्तिक कृष्ण चौदह... के सवेरे के अन्तिम भाग में भगवान मोक्ष पधारे। अर्थात् आत्मा की पवित्रता पूर्ण प्राप्त हो गयी। मोक्ष की व्याख्या यह है। आत्मा का जो स्वभाव मोक्षस्वरूप ही त्रिकाल है, ऐसी पर्याय में पूर्ण प्राप्ति हो गयी, इसका नाम व्यवहार बाह्य मोक्ष कहा जाता है। पर्याय में मोक्ष। द्रव्य मोक्ष त्रिकाल है। ऐसे भगवान अनादि जो संसार था, उसका अन्त आ गया और मोक्ष की पर्याय सादि होकर अनन्त रहेगी। अनन्त काल वह मोक्ष की पर्याय। अतीन्द्रिय आनन्द की दशा (रहेगी), उसका नाम मोक्ष कहने में आता है। यहाँ भाव भी यह आया है,

देखो! **'भावह जिणभावणं'** चौथा पद है न। कौन सी गाथा चलती है? ....भाई! ८८वीं गाथा चलती है।

बाह्य, आगे कहते हैं, बाह्य सादिक किया हुआ, हिंसादि न करे तो भी **अशुद्धभाव के माहात्म्य से तन्दुल मत्स्य जैसा अल्प जीव भी...** अशुद्ध भाव से तन्दुल (चावल) जितना मत्स्य भी **सातवें नरक को गया तो अन्य बड़े जीव क्यों न नरक जावें...** भावपाहुड़ है न, इसलिए भाव की प्रधानता से कथन है। बाह्य क्रिया उसमें कुछ साधन हो नहीं।

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं।।८८।।

हे भव्य जीव ! तू देख शालिसिक्थ (तन्दुल नाम का मत्स्य)... चावल जितनी मछली। यह **अशुद्धभावस्वरूप होता हुआ महानरक (सातवें नरक) में गया, इसलिए तुझे उपदेश देते हैं...** इसलिए तुझे उपदेश करते हैं **कि अपनी आत्मा को जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** यह महासिद्धान्त। **अपनी आत्मा को जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** एक शब्द के अन्दर अर्थ आ गया। समझ में आया? अनन्त तीर्थंकर, अनन्त वीतरागी, अनन्त केवली, उसका जो सार जिनभावना भा—ऐसा कहते हैं। उसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा जिनस्वरूप ही है, वीतरागस्वरूप, ध्रुवस्वरूप। उसकी भावना। श्रद्धा और ज्ञान में त्रिकाली ध्रुव को विषय बनाकर... समझ में आया? यह सवेरे ही कहा था। शशीभाई नहीं थे।

यह आत्मा है, वह एक समय में अन्दर नित्य ध्रुववस्तु है। नित्य भावना करना, कहते हैं न यहाँ? वह वस्तु स्वयं त्रिकाल नित्य ध्रुव है। इस ध्रुव की अपेक्षा से एक समय की पर्याय भी परद्रव्य कहने में आती है। देव-गुरु-शास्त्र और तीर्थंकर तो परद्रव्य पृथक् हैं परन्तु एक समय में भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुव, जिसका नित्य स्वभाव पिण्ड ऐसा स्वभाव, वह स्वद्रव्य है; और उसकी एक समय की अवस्था है - रागरहित, निमित्तरहित, संयोगरहित अपने में हुई पर्याय—निर्मल पर्याय जो है, वह भी त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से उसे परद्रव्य कहने में आया है। आहाहा! सवेरे दूसरा कहा था। यह बाद में आयेगा। काल में आयेगा। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, ऐसा कहा है न? वह चैतन्यघन, यह असंख्यात प्रदेशी ध्रुव है। शुद्ध-बुद्ध, यह भाव और चैतन्यघन जो है, वह असंख्यप्रदेशी ध्रुव। वह ध्रुव असंख्यप्रदेशी, यह स्वक्षेत्र है। स्वक्षेत्र अर्थात् अपना है और वह असंख्यप्रदेशी एक समय की क्षेत्र में अवस्था होती है, वह भी परक्षेत्र है। शरीर, वाणी, मन का तो परक्षेत्र भिन्न रह गया परन्तु आत्मा में असंख्य प्रदेश ध्रुव चैतन्य भगवान आत्मा के पवित्र प्रदेश का स्कन्ध-पिण्ड, वह स्वक्षेत्र है और उसकी एक समय की क्षेत्र की अवस्था के प्रदेशों का अंश, वह परक्षेत्र है। यह परद्रव्य और परक्षेत्र का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह सर्वज्ञ परमात्मा अनन्त वीतरागी केवलियों का सार में सार यह भाव है। उसमें काल हो, उस काल की बात की। यह आत्मद्रव्य... है न? भगवान का काल पूर्ण सिद्ध हो गया। सर्वज्ञपद प्राप्त करके मोक्ष तो पहले से पाये। आगे उनकी पर्याय का काल शुद्धता का पूर्ण हो गया। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा त्रिकाल ध्रुव, वह उसका स्वकाल है। त्रिकाल ध्रुव वस्तु, वह द्रव्य का स्वकाल है, वह स्वसमय है; और एक समय की जो पर्याय है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि की जो पर्याय, वह परकाल की अपेक्षा से पर्याय स्वकाल है, परन्तु त्रिकाली द्रव्य के स्वकाल की अपेक्षा से एक समय की पर्याय परकाल है। आहाहा! अर्थात् कि परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल आश्रय करनेयोग्य नहीं है। गजब बात है। हिम्मतभाई! समझ में आया?

जिसे आत्मा वस्तु की भावना अर्थात् श्रद्धा-ज्ञान, उसका विषय जो त्रिकाली ध्रुव, उसका आश्रय करनेयोग्य है। जो कुन्दकुन्दाचार्य समयसार की ११वीं गाथा में (कहते हैं), **'भूदत्थमस्सिदो खलु।'** भगवान एक समय में पूर्ण ध्रुव है, उसका आश्रय करना। उस आश्रय से जीव को धर्म की दशा प्रगट होती है। बाकी धर्म की दशा किसी पर के आश्रय से नहीं होती। त्रिकाल वस्तु भगवान आत्मा उसका उसे स्वकाल अर्थात् वस्तु जिस काल, वस्तु ही वैसी है। एक समय की वीतरागी पर्याय, वह भी स्वकाल में त्रिकाल की अपेक्षा से परकाल है, परद्रव्य है, परक्षेत्र है, इसलिए उसे परकाल का, परद्रव्य का... अपना, हों! सर्वक्षेत्र का ज्ञान, जिसे यथार्थ करना हो, उसे स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जो त्रिकाली, उसका आश्रय करना पड़ेगा। नवरंगभाई! आहाहा!

उसी प्रकार आत्मा भावस्वरूप, आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आदि त्रिकाल भाव (स्वरूप है)। त्रिकाल भाव है, वह अपना स्वभाव है और उसकी एक समय की वीतरागी पर्याय, वह भाव भी परभाव है। गजब बात, भाई! दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प तो परभाव है। वह तो कहीं बाहर गया। आहाहा! यह वीतरागमार्ग। कहते हैं कि जिसे एक समय में वीतरागीदशा क्षायिक समकित प्रकट हुआ हो और चारित्र की पर्याय प्रगट हुई हो, तो द्रव्य के (आश्रय से), तथापि वह प्रगट हुआ भाव त्रिकाल महापुंज भाव, आनन्द के त्रिकाली भाव की अपेक्षा से एक समय के भाव को परभाव कहने में आता है अर्थात् कि त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, त्रिकाली क्षेत्रस्वभाव, त्रिकाली कालभाव और त्रिकाली भावभाव। उसमें पर्याय परद्रव्य, क्षेत्र पर्याय का परद्रव्य, एक समय की पर्याय परकाल और एक समय का भाव परभाव। इन चारों की त्रिकाली द्रव्य में नास्ति है। इसमें अधिक गहरे उतरे बिना समझ में आये ऐसा नहीं है। बाहर के सब पैसे झट मिल जाएँ, ऐसे मिल जाए, (ऐसा नहीं है।) वह तो पुण्य के परमाणु के कारण दिखते। मिलते कहाँ हैं? मिलते हैं।

मुमुक्षु : मिलते नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले किसे? धूल मिले। यहाँ परद्रव्य मिले किसे? यहाँ तो एक समय की पर्याय द्रव्य में मिलती नहीं। आहाहा! ऐई! ....भाई! एक समय की पर्याय भी द्रव्य में नहीं मिलती। तो फिर यह परवस्तु आवे और मिले, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा त्रिकाली द्रव्य, त्रिकाली क्षेत्र, त्रिकाली काल और त्रिकाली भाव। यह चार भेद किये, वह भी व्यवहार है। इसे-चार का एकरूप अभेद, उसका आश्रय करने से धर्म की पर्याय सम्यक् प्रगट होती है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय तीन काल-तीन लोक में नहीं है। अमरचन्दभाई! वहाँ तो ऐसा नहीं चलता होगा। पौने तीन महीने भटकने में था कुछ?

मुमुक्षु : वहाँ तो साहब हवा-पानी बहुत अच्छा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में हवा-पानी नहीं। हवा-पानी कहाँ... ? आहाहा! उस

हवा में वायरा, ध्रुव में पड़े हैं। उसके वायरा बावे, वह हवा-पानी है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि हे जीव! **अपनी आत्मा को जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** उसमें यही बात है। **अपनी आत्मा को जानने के लिये...** आत्मा जो वस्तु त्रिकाल है... जानने की पर्याय वर्तमान है। समझ में आया? परन्तु त्रिकाली द्रव्य जो है, उसे जानने का प्रयत्न कर। आहाहा! जो वस्तु एक समय की दशा में नहीं आती और जो एक समय की अवस्था त्रिकाली में नहीं मिलती, ऐसी जिनस्वभाव वस्तु आत्मा, उसे श्रद्धा-ज्ञान में विषय बना, उस त्रिकाली को श्रद्धा-ज्ञान में ध्येय बना, उसे जिनभावना कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। यह दया, दान और भगवान की भक्ति के जो विकल्प, वे तो कहीं विकार-मैल में गये। कहो, समझ में आया इसमें?

अपनी आत्मा को... इसमें यह आयेगा। **जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** अर्थात्? कि आत्मा की एक समय की पर्याय को, जिसे परद्रव्य, त्रिकाली की अपेक्षा से कहा, उसका ज्ञान भी स्वद्रव्य का ज्ञान करे तो उसका ज्ञान होता है। एक समय की क्षेत्र अवस्था असंख्य प्रदेश, जिसमें अनन्त आनन्द भरा है। ऐसा जो स्वक्षेत्र भगवान अस्तिरूप है, उसकी एक समय की क्षेत्र की दशा, जिसमें निर्मल पर्याय का रहना है, उस परक्षेत्र का ज्ञान भी स्वक्षेत्री आत्मा त्रिकाली का ज्ञान करे तो परक्षेत्र का ज्ञान होता है। अर्थ में आयेगा। अपना और पर का स्वरूप ज्ञान। इसमें अर्थ में आयेगा। **अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है,...** आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

कहते हैं कि एक समय की अवस्था जो है, उसका ज्ञान जिस समय, जो अवस्था वह काल उस काल में उस द्रव्य की होनेवाली उस पर्याय का स्वकाल स्वतन्त्र है। उस स्वकाल का ज्ञान भी त्रिकाली ज्ञायकभाव जिस काल वस्तु स्वयं ही पूरी वस्तु है, उसका ज्ञान और उसके आश्रय से ज्ञान होता है, तब पर्याय का ज्ञान, पर का ज्ञान होता है। स्व का ज्ञान होता है, तब पर का ज्ञान होता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म। समझ में आया? उसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त भावस्वरूप एकरूप... उसमें... ठीक किया थोड़ा।.... अष्टपाहुड़ पुस्तक में... किया है।...उसमें अर्थ में है। शुद्धबुद्ध एक स्वभाव। संस्कृत है। शुद्धबुद्ध एक स्वभाव, एक स्वभाव, उसे विषय बनाकर जो धर्म पर्याय प्रगट

हो, उसका भी आश्रय करने योग्य नहीं है। आहाहा! मगनभाई! बहुत आगे गया यह तो। ....यह तो .... यह तो पर्याय की बात है। इक्कीस वर्ष हो गये। आहा!

भगवान! यहाँ कहते हैं, ऐसे अशुद्धभाव से जो तन्दुल जैसा ऐसा मत्स्य इतना, वह सातवें नरक में जाता है। हिंसा आदि की क्रिया कुछ नहीं है। जीव को मारने का नहीं है, झूठ बोलने का नहीं है, माँस खाने का नहीं है; मात्र अशुद्धभाव। यह बड़ी कथा है। समझ में आया? यह कथा अन्दर में है।

रसोईया था और एक राजा था, तो रसोईया माँस खाने के लिये पकाता था और उसका राजा था, उसे माँस खाने की मनाही थी। परन्तु... भाव हुआ... इसलिए... कुछ मँगाकर रसोईया से पकाता था और रसोईया उसे माँस पकाकर देता था। वह रसोईया था, उसे सर्प ने काट खाया। समझ में आया? कल लड़के को काटा न, परसों गुजर गया न? एक दिन... लड़का कहे, उसमें हाथ डालता था। सब कहे डालो हाथ, डालो हाथ, हाथ डाला, उसमें वह नागिन ने काट खाया। काट खाया और इसे कुछ खबर नहीं। (उसे ऐसा कि) खून निकला है। मर गया बारह वर्ष का।

वह यहाँ कहते हैं कि उस रसोईया को सर्प ने काट लिया। वह मरकर स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य हजार योजन का हुआ। समझ में आया? और वह राजा जो था, वह भी मरकर सातवें नरक में गया। परन्तु वह सातवें नरक में क्यों गया यहाँ से? कि तन्दुल मत्स्य में से... तन्दुल मत्स्य हुआ था। चावल जितना। कान में अन्दर मैल खाता था। हजार योजन में। और मुँह ऐसे फाड़े तो कितने ही मत्स्य अन्दर आवे। यह विचार करता है कि यह मत्स्य आते हैं... यह निकाल क्यों डालता है? तन्दुल इतना हों, चावल जितना। मन है, वृजनाराचसंहनन है। वृजनाराचसंहनन है। इतना मत्स्य है। पहला संहनन।

भावना ऐसी है कि यह हजार योजन का मत्स्य था। ऐसे वह मुँह फाड़े तो... ऐसे निकाल डाले। अरे! इतना मैं होऊँ तब तो एक को भी न जाने दूँ। (यहाँ) भाव-भाव की बात है। भावपाहुड़ है न? क्रिया न हो, उसके साथ उसे कुछ सम्बन्ध नहीं। यह तो जड़ की क्रिया है। पर के अस्तित्व में जड़ का यह सब इस प्रकार से हिलना-चलना (होता है)। है, उसके भाव में ऐसे भाव... समझ में आया? कि मरकर वापस दोनों सातवें नरक गये। आहाहा! वह मत्स्य तो जाए परन्तु वह तन्दुल मत्स्य भी गया।

इस भावना का यहाँ आधार देकर ऐसी अशुद्ध भावना से। अशुद्ध भावना का एक भाग अशुभभाव। अशुद्ध भावना का दूसरा भाग शुभभाव, ये दोनों अशुद्धभाव, दोनों चार गति के कारणरूप साधन हैं। शुभ हो या अशुभ दो। आहाहा!

यह भावपाहुड़ है। शुद्धभाव। शुद्धभाव का अविकार मुख्य। जिस भाव से स्वर्ग मिले, यह शुभभाव भी अशुद्ध है। जो भाव तीर्थंकरगोत्र बाँधने का है, वह भाव भी अशुद्ध और मलिन है। तीर्थंकरगोत्र का भाव भी अधर्म है, धर्म नहीं। ऐई! इन दो अशुद्धभाव की भावना छोड़, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिनभावना वीतरागमूर्ति, प्रभु! जिसमें वीतरागता भरी है, पड़ी है, सत्वरूप से सब सत् ही है, उसका आश्रय कर तो वीतरागता प्रगट होगी। निमित्त का, राग का और पर्याय का आश्रय करेगा तो राग उत्पन्न होगा और लाभ मानेगा तो मिथ्यादृष्टि होगा। समझ में आया? इसलिए जिनभावना, बस परमात्मा स्वयं शुद्ध आनन्द का धाम, जिसमें एक समय की पर्याय का भी अभाव, ऐसे भाव की भावना कर। आहाहा! ऐसी बात, भाई! यह वीतराग की आज्ञा है। अनन्त केवली, तीर्थंकर, परमात्मा हुए और होंगे, उनकी यह आज्ञा है। समझ में आया?

अपने आत्मा को जानने के लिये। आत्मा द्रव्य हुआ त्रिकाली है, उसे जानने की **निरन्तर जिनभावना,...** वीतरागभाव में, शुद्धभाव में ध्येय बनाकर निरन्तर भावना ध्रुव की कर। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह आत्मा के पकवान हैं। बाकी सब पकवान विष्टा होकर निकल जाएँगे। आहाहा! यह तो हड्डियाँ-माँस के दिखाव, विष्टा बनाने की मशीन। चाहे जो डालो, मौसम्बी का पानी डालो, क्या कहलाता है, समझ में आया? मावा-मावा। घुघरा होता है न मावा का! ऐसे घी में तला हुआ घुघरा, अन्दर मावा और बादाम तथा पिस्ता, ऊपर लौंग चिपकाया हो। करते हैं या नहीं? यह धूल भी नहीं, भाई! यह तो जड़ की अवस्था का रूप है। यह चेतन नहीं है, वह चेतन में नहीं है, यह चेतन से होता नहीं। चेतन से होनेवाला हो, तो यह जिनभावना कर सकता है। आहाहा! समझ में आया?

पुण्य-पाप का भाव, वह परद्रव्य के लक्ष्य से होता है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! भगवान की भक्ति और भगवान का स्मरण भी परद्रव्य के लक्ष्य से।

मुमुक्षु : भगवान परद्रव्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अभी पर्याय को परद्रव्य कहा। भगवान तो कहीं परद्रव्य रहे। यह वहाँ (संवत्) २०१० के वर्ष में कहते थे।...वे कहते थे। २०१० के वर्ष में... व्याख्यान चलता था। तो कहे, देव-गुरु-शास्त्र पर? वे तो शुद्ध हैं। देव अरिहन्त परमात्मा शुद्ध जो निर्ग्रन्थ मुनि नग्न दिगम्बर आत्मध्यानी-ज्ञानी, अमृत के रस में रेलमछेल लेनेवाले और शास्त्र! शास्त्र तो पर है, यह तो और ठीक। परन्तु देव-गुरु पर? वे तो शुद्ध हैं, कहते हैं। अरे! अनन्त बार पर। एक बार क्या? देव-गुरु पर हैं। यहाँ तो यह तो पर कहा परन्तु अपनी पर्याय पर है। आहाहा! क्योंकि जिसका आश्रय करने से जीव को लाभ नहीं, उसे यहाँ पर कहने में आता है। जयसुखभाई! बहुत सूक्ष्म! प्रवीणभाई! पर्याय का आश्रय करने से कहीं लाभ नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षा से परद्रव्य है। यह नियमसार की ५०वीं गाथा है न? मोक्ष का मार्ग निश्चय-सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र, वह परद्रव्य। आहाहा! समझ में आया? इसका आश्रय करने जाए तो लाभ कहाँ है? वह तो विकल्प उठा। प्रवीणभाई! यह सब सूक्ष्म है। दवा-ववा जैसा नहीं है यह कुछ।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! मोटा थोर जैसा है। यह तो अमृत के बर्फी की बात है। आहाहा!

'आशा औरन की क्या कीजै? ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजै!' भगवान अनन्त आनन्द का नाथ, पूर्ण परब्रह्म परमात्मा स्वयं निजस्वरूप से द्रव्यरूप विराजता है, उसका आश्रय करने से आत्मा को आनन्द और समकित होता है। बाकी दूसरा किसी पर का आश्रय करने से आत्मा को समकित और आनन्द नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! कहो, शामजीभाई! बहुत कठिन मार्ग है। हम सामायिक करते हैं, प्रौषध करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं। रात्रिभोजन नहीं करते, वह कुछ धर्म होगा? धर्म धूल में भी नहीं है, सुन न! सामायिक कहाँ से आयी?

आत्मा ज्ञायकभाव आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, सच्चिदानन्दस्वरूप ध्रुवकन्द परमात्मा, उसका जहाँ सत् नहीं, स्पर्श किया नहीं, आश्रय लिया नहीं, जाना नहीं, उसे धर्म कहाँ से होगा? समझ में आया?

....आता है न देवचन्दजी में। 'मोटा ने.. उछरंग बैठा ने शी चिन्ता? प्रभु चरण पसाय सेवक थया निश्चन्ता।' परन्तु यह तो पर की अपेक्षा की बात है। ऐसा भक्ति का विकल्प है। 'मोटा ने उत्संग...' उत्संग अर्थात् खोलो। खोलो कहते हैं न? गोद। 'मोटा ने उत्संग बैठा ने शी चिन्ता!' माता की गोद में बैठा हो, उसे चिन्ता नहीं होती कि... आयेगा तो मुझे... करेगा। मेरी माँ रक्षा करेगी। समझ में आया? 'परन्तु प्रभु...' प्रभु! तेरा आश्रय लिया। अर्थात् तुमने जो कहा, ऐसा द्रव्य का आश्रय लिया, निश्चिन्त हो जाए। समझ में आया? भगवान ने आज्ञा की है कि एक द्रव्यस्वभाव तेरा पूर्ण परमात्मा, वह तेरा स्वद्रव्य है। इसका आश्रय कर, इसमें दृष्टि लगा, उसे ज्ञेय बना। पूरा हो जाएगा। ...संसार ही नहीं न! भव ही नहीं न! भव का भाव जिसे नहीं न! अरे! इसके मोक्ष की पर्याय अथवा केवलज्ञान पर्याय ही जिसे नहीं न...!

केवलज्ञान वह सत् व्यवहार है, वह असद्भूतव्यवहार का विषय है, निश्चय का विषय नहीं। आहाहा! रवजीभाई! वह इस अपेक्षा से है... आहाहा! कारण प्रभु पूर्णानन्द विराजता है न! उसमें तो कहा है न? अलिंगग्रहण में। अलिंगग्रहण में। कारणद्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं, आहाहा! आलिंगन करता नहीं। तेरी वीतरागी पर्याय धर्म जो हुआ, वह द्रव्य के आश्रय से हुआ, उस वीतरागी पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! गजब बात की है। वीतराग के पेट गहरे हैं। मूल वीतराग पुरुष का धर्म आत्मा के द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है, यह वीतरागी पुरुषों का धर्म है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसा है। हाय.. हाय.. अब तब हमें करना क्या? यह सब... अन्दर में समझना। अन्दर में वस्तु है, उसे समझना, वह करना नहीं है? ऐई!

मुमुक्षु : कोई देखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई देखता नहीं। देखता नहीं, ऐसा यह निर्णय करनेवाला कौन? देखता नहीं, ऐसा निर्णय किस भूमिका में हुआ? किसकी भूमिका में? - देखनेवाले की भूमिका में है। समझ में आया? यह जयसुखभाई का भतीजा है। लड़का परेश। वकील है न! सात वर्ष पहले। अभी चौदह वर्ष का हो गया। सात वर्ष पहले इसने पूछा था। तब तो यहाँ... वीरजीभाई के कारण गये और उसमें उसे लग गयी। ऐसा मार्ग यह।

यह परेश ने प्रश्न किया था। कहा था न? इनका भतीजा है तो होशियार। उसके घर में वाँचन बहुत है। कहता है महाराज! तुम आत्मा देखो... आत्मा देखो... आत्मा देखो... किया करते हो, परन्तु हमें आत्मा कहाँ देखना? बाहर देखते हैं (तो) यह दिखता है, आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है। वजुभाई! सात वर्ष का लड़का था। आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है ऐसा देखते हैं तो यह दिखता है, हमें आत्मा कहाँ देखना? कहा, अन्धेरा देखनेवाला कौन है? अन्धेरा देखनेवाला अन्धेरास्वरूप नहीं है। अन्धेरा देखनेवाला प्रकाशस्वरूप है। अन्धेरे में अन्धेरे का ज्ञान नहीं होता; ज्ञान में अन्धेरे का ज्ञान होता है। यह सात वर्ष पहले (कहा था)। उस दिन तुम नहीं आते थे.... मार्ग ही यह है।

सत्य को समझना हो और हित करना हो तो (मार्ग ही यह है)। बाकी तो सब इस जगत में भटकने का चलता है। पैसेवाला हो या राजा हो, सब दु:खी-दु:खी के सरदार हैं। ऐसा होगा या नहीं? मलूकभाई! वहाँ देखा था या नहीं तुमने? ये बाग, बगीचे और सब। लड़के के बाग, बगीचे देखने गये थे। कैसा वैभव।

अरे! वैभव तो तेरा नाथ अन्दर में स्थित है, उसे देख न! यह तो हड्डियों का वैभव सब धूल का है। उसके सामने देखेगा तो राग और आकुलता होगी। तेरा अन्तरवैभव अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु महा वैभव। जिसे आत्मवैभव कहा है। आहाहा! ऐसे आत्मभावना के वैभव को तू जान और उसकी भावना कर, ऐसा कहते हैं। पैसे के लिए देखो न, वहाँ भटकते थे न! बलुभाई! कहाँ के कहाँ गये थे? अफ्रीका और सर्वत्र ग्राहक खोजने। यह तो और वहाँ गये। बहुत भटकते थे न। अमेरिका तक भटकते हैं। आहाहा! भाई! तेरी लक्ष्मी अन्दर में पड़ी है, भाई! तुझे कमाना नहीं आता, कमाना नहीं आता। बाहर में भटकाभटक करता है।

'भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशा धारी' दस बजे तो इस कुत्ते की तरह घर-घर में... सामने सिर डाले। कुछ रोटी मिलेगी, ऐसे जहाँ-तहाँ भटके। ऐसे-ऐसे ठिकाने बिना के आढ़तिया को बहुमान से बुलाना पड़े। वहाँ यह है न... दुकानदारी में हो तो (कहे), ऐ... बहिन बा! आओ-आओ। होवे ठिकाने बिना की और रुपया आधा-पूरा लाओ न, बहिन बा बुलावें तो आवे दुकान में। आहाहा! भिखारी है। यह

तब कहता, हों! ...क्या कहलाता है यह? चिमनी... पैसा पैदा करे... आओ बहिन, आओ बहिन लेने। ठिकाने बिना की हो।

मुमुक्षु : कमायी देती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कमाने के वे छह पैसे, दो पैसे कमाये। ऐसे पूरे दिन ग्राहक आवे। अरे रे! भिखारी वह कहीं कम होगा यह? भिखारी की जाति कोई दूसरी कहलाती होगी? चन्दुभाई! यहाँ कहते हैं कि अरे! नाथ! देखो!

भावार्थ – अशुद्धभाव के माहात्म्य से तन्दुल मत्स्य जैसा अल्प जीव भी... छोटा आवे। सातवें (नरक में) गया।

मुमुक्षु : अशुद्धभाव का भी माहात्म्य कहा यहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न माहात्म्य, है न उसका। आहाहा!

मुमुक्षु : भटकना माहात्म्य कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : माहात्म्य अर्थात् कि यह अशुद्धभाव के फलरूप से सातवें नरक (गया)। इतना मत्स्य। कान में (बैठा था)। हजार योजन के मस्त्य के कान में (बैठा) कान का मैल खाये। कान का मैल खाये। ...देखना न पड़े। उसके... मुँह में आवे... हो! चावल जितना। पूरा चावल जितना नहीं, चावल के असंख्यवें भाग जितना होता है। शास्त्र ऐसा कहते हैं। अंगुल के असंख्यवें भाग जितना मत्स्य होता है। सातवें नरक में जाये। पहला संहनन होता है। क्रिया-फ्रिया कुछ नहीं होती। आहाहा! एक व्यक्ति कहता था... वह मुँह ऐसा करे। ...क्रिया तो हो, ऐसा कहे। धूल भी क्रिया न हो। इतना छोटा मस्त्य है। भाव अन्दर में इतनी मलिनता... आहाहा! जो सातवें नरक में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती रवरव नरक में गया, यह मस्त्य वहाँ गया। शरीर की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। साधन बहुत हों तो पाप बहुत हों, ऐसा नहीं है। परिणाम के ऊपर की बात यहाँ तो है।

कहते हैं, **अल्प जीव भी सातवें नरक में गया, तो अन्य बड़े जीव क्यों न नरक जावें, इसलिए भाव शुद्ध करने का उपदेश है।** देखो! इसलिए भाव शुद्ध करने का उपदेश है, भाई! भगवान आत्मा परमात्मा शुद्ध चैतन्य है, उसका ज्ञान और श्रद्धा कर,

वह शुद्ध कहने में आता है। इसके बिना शुद्धता प्रगट नहीं होगी और शुद्धता के बिना धर्म नहीं है। पुण्य-पाप के परिणाम, वे धर्म नहीं है, तथा वे धर्म का कारण भी नहीं है। समझ में आया?

देखो! **इसलिए भाव शुद्ध करने का उपदेश है। भाव शुद्ध होने पर अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है।** भाव त्रिकाली ज्ञायकभाव की श्रद्धा-ज्ञान हो, तब उसे स्वद्रव्य और पर्याय का सच्चा ज्ञान होता है। तब उसे राग था, उसका ज्ञान होता है, देव-गुरु यह है, उसका उसे ज्ञान होता है, परन्तु भाव शुद्ध स्व के आश्रय से प्रगट करे तो। समझ में आया? **भाव शुद्ध करने का उपदेश है।** पुण्य-पाप दोनों अशुद्ध हैं, मलिन हैं। आहाहा! भगवान की भक्ति का भाव भी मलिन है, पंच महाव्रत के परिणाम भी मलिन है, अचेतन है, जड़ है। क्योंकि उनमें चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव का अंश उनमें नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

भाव शुद्ध होने पर... यह शुद्ध धर्मतत्त्व भगवान आत्मा, इसकी श्रद्धा-ज्ञान होने से... **अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है।** आत्मा त्रिकाल, इसका ज्ञान होता है, एक समय की अवस्था का ज्ञान होता है, राग बाकी रहा, उसका ज्ञान होता है, निमित्त कौन था, उसका ज्ञान अपने से अपने में होता है, परन्तु स्व का ज्ञान करे तो। समझ में आया? भावपाहुड़ है न। **भाव शुद्ध होने पर अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है। अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है,...** जिनदेव की आज्ञा यह है कि ध्रुव का आश्रय ले। आहाहा! भगवान कहते हैं कि तू मेरे सामने देखना छोड़ दे। आहाहा! भारी गजब! भगवान की आज्ञा में ऐसा आया है कि तू मेरे सन्मुख का देखना, मुझे भूल जा। तेरे भगवान के सामने जा तो तुझे ज्ञान होगा। आहाहा! सूक्ष्म शल्य होती है, उसकी इसे अनन्त काल की खबर पड़ी नहीं। समझ में आया? ऐसा लगे अन्दर से कि आहाहा! वृत्ति ऋद्धि हो जाये। ऐई! कान्तिभाई!....

श्रीमद् कहते हैं न एक जगह 'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल' चिल्लाहट मचाये कायर लोग। अर.र..! हाय.. हाय.. यह तो सब व्यवहार का लोप-लोप... (हो जाता है)। लोप नहीं। है, वैसा

जाननेयोग्य है। परन्तु उसे कब जाने? कि स्वद्रव्य का ज्ञान यथार्थ करे, वह पर को यथार्थ जाने। कहो, समझ में आया?...

जिनदेव की आज्ञा की भावना... आज्ञा की भावना कि यह मर्यादा का स्वरूप जो चैतन्य भगवान आत्मा का, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करना, उसमें स्व का आश्रय करना, ऐसी वीतराग की आज्ञा है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त वीतराग, अनन्त केवलियों की यह आज्ञा है कि तेरा पूर्ण द्रव्य ध्रुव है, उसका आश्रय ले। समझ में आया? यह अन्तिम में अन्तिम भगवान के घर का चुकादा है। आहाहा! 'अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की...' वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने आज्ञा की है कि स्वरूप का आश्रय ले। **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** यह भगवान की आज्ञा। (श्री समयसार) ११वीं गाथा। भूतार्थ का आश्रय ले तो सम्यग्दर्शन होगा। त्रिकाल का आश्रय ले तो सम्यग्ज्ञान होगा। त्रिकाल का आश्रय कर तो चारित्र होगा। ऐसी वीतराग की आज्ञा... कहो, भीखाभाई! इसमें कुछ रहता नहीं, हों! बाहर का।

अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की... पहले ऐसा कहा कि **भाव शुद्ध होने पर अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है।** ऐसा पहले कहा। पहले ऐसा कहा, पश्चात् ऐसा कहा कि **अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना...** भगवान ने वीतरागस्वभाव आत्मा का, उसके ऊपर नजर कर, उसे ध्येय बना, उसका विषय कर, यह भगवान की आज्ञा है। आहाहा! आचारांग में एक आता है। तब उसमें सब विवाद उठते थे। ...ऐसा एक टुकड़ा है। आचारांग में है। ... कहते, ... कहते हैं। ... श्वेताम्बर शास्त्र की... है न? पहले आचार्य ने बनाया है। कल्पित किया है। समझ में आया? ऐई! फूलचन्दभाई! उसमें यह शब्द आया है।... आज्ञा में एक उपस्थित... करते नहीं और... आज्ञा बिना का पुरुषार्थ जगत के प्राणी करते हैं। इसलिए यहाँ कहते हैं... तब ऐसा कहते हैं कि देखो! उसमें भगवान ने ऐसा नहीं कहा कि पुरुषार्थ कर। अरे! इसका अर्थ क्या हुआ? तुम यह क्या (बोलते हो)? भगवान की आज्ञा है कि आत्मा त्रिकाली है, उसका आश्रय ले। उसका उद्यम करते नहीं, तथा तुझे न होओ। द्रव्य में उद्यम करता नहीं, यह तुझे न होओ और द्रव्य के आश्रय बिना का दूसरा सब उद्यम करता है, वह भी तुझे न होओ। ... यह तीर्थंकर का

उपदेश है। आहाहा! यह तीर्थंकर का अभिप्राय है। अनन्त तीर्थंकरों का अभिप्राय है। समझ में आया? यह... टुकड़े आते थे, हों! ... यह शैली नहीं थी।

आज्ञा बाहर का उद्यम और आज्ञा में आलस, हे शिष्य! दोनों तुझे न हो। आज्ञा क्या? पहले पंच महाव्रत पालना और गुप्ति, समिति, भक्ति आदि, यह आज्ञा नहीं है। जिनभावना, वह आज्ञा है। आहाहा! हमको भूल जा और तुझे स्मरण कर, ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं। तू तुझे भूल गया है और हमें स्मरण करता है, इसमें कुछ माल नहीं है।

कहते हैं, **जिनदेव की आज्ञा की भावना...** है पाठ। '**णिच्चं**' है, देखो! नित्य अर्थात् क्या? कि ज्ञायकभाव त्रिकाली है, उसकी दृष्टि निरन्तर रहना चाहिए। किसी समय भी पर्याय और विकल्प का आश्रय हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कहो, अमरचन्दभाई! गजब मार्ग भाई! वीतराग का। आहाहा! कहते हैं, यह '**भावय**' '**इति ज्ञात्वा आत्मानं भावय**' '**आत्मानं भावय**' भगवान आत्मा... परन्तु इसे विश्वास में बैठता नहीं। ऐसा मैं तो आत्मा हूँ, ऐसा बैठता नहीं। रंक होकर हुआ है न। बड़ा बादशाह हूँ, तीन लोक का नाथ। एक समय में मेरी पर्याय मानों ऐसी अनन्त पर्याय का कन्द मैं हूँ। केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, इतना भी मैं नहीं।

मुमुक्षु : वह तो एकदम छोटे में छोटा अंश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह छोटा अंश है। केवलज्ञान तो एक अंश है, एक समय की अवस्था है। ऐसी अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अवस्था का सागर भगवान आत्मा... आहाहा! उसका आश्रय कर।

जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है,... लो! क्या कहते हैं? स्व-पर का ज्ञान यथार्थ, जिन आज्ञा की अर्थात् द्रव्य के स्वभाव के निरन्तर आश्रय से स्व-पर का सच्चा ज्ञान होता है। नहीं तो स्व-पर का सच्चा ज्ञान नहीं होता। **इसलिए जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर करना योग्य है।** लो! जिनदेव की आज्ञा वीतरागभाव प्रगट करने की है और वीतरागभाव का प्रगटपना वीतरागस्वभाव के

आश्रय से होता है। आहाहा! समझ में आया? बीच में कथा है एक। कही न अभी? वह कथा है। अन्तिम ... **नरक गया इसलिए आत्मज्ञान के बिना केवल पुण्य ही मोक्ष का साधन नहीं है।** लो! अन्तिम शब्द है। आत्मा के ज्ञान बिना केवल पुण्य—दया, दान, भक्ति, व्रत, विकल्प, शुभ, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है।

श्रोता : आत्मा का ज्ञान, वह तो मोक्ष का कारण है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं वह तो आरोप कहा जाता है। है कहाँ? व्यवहार से कहा जाता है। आरोप दिया जाता है। यह साधन किया हो, स्वभाव को साधन किया हो (तब) रागादि भक्ति के विकल्प को, व्रत के विकल्प को व्यवहार साधन का आरोप दिया जाता है। साधन नहीं है, उसे साधन कहना, वह व्यवहार। साधन है, उसे साधन जानना, उसका नाम निश्चय है। अमरचन्दभाई! आहाहा!

कहते हैं **इसलिए आत्मज्ञान के बिना केवल पुण्य ही मोक्ष का साधन नहीं है।** ऐसा पुण्य तो अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में गया तब किया। ग्यारह अंग का ज्ञान किया, नौ पूर्व पढ़ा और माँस खमण के पारणा करे और आहार लेने जाए तो छिलका खाये। मुरमुरा नहीं खाये। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे। ऐसी बाहर की जिनदीक्षाएँ अनन्त बार लीं। वह कोई वस्तु नहीं है। समझ में आया?

गाथा-८९

आगे कहते हैं कि भावरहित के बाह्य परिग्रह का त्यागादिक सब निष्प्रयोजन है–

बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं।।८९।।

बाह्यसंगत्यागः गिरिसरिद्दरीकंदरादौ आवासः।
सकलं ज्ञानाध्ययनं निरर्थकं भावरहितानाम्।।८९।।

सब बाह्य परिग्रह–त्याग गिरि सरि कंदरादि में बसे।
सब ध्यान अध्ययन निरर्थक हैं भाव–विरहित श्रमण के।।८९।।

अर्थ – जो पुरुष भाव रहित हैं, शुद्ध आत्मा की भावना से रहित हैं और बाह्य आचरण से सन्तुष्ट हैं, उनके बाह्य परिग्रह का त्याग है, वह निरर्थक है। गिरि (पर्वत) दरी (पर्वत की गुफा) सरित् (नदी के पास) कन्दर (पर्वत के जल से चीरा हुआ स्थान) इत्यादि स्थानों में आवास (रहना) निरर्थक है। ध्यान करना, आसन द्वारा मन को रोकना, अध्ययन (पढ़ना) ये सब निरर्थक हैं।

भावार्थ – बाह्य क्रिया का फल आत्मज्ञान सहित हो तो सफल हो, अन्यथा सब निरर्थक है। पुण्य का फल हो तो भी संसार का ही कारण है, मोक्षफल नहीं है।।८९।।

गाथा-८९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि भावरहित के बाह्य परिग्रह का त्यागादिक सब निष्प्रयोजन है– आहाहा!

बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं।।८९।।

यह ज्ञान और अध्ययन करे वह सब द्रव्य के शुद्धभाव की श्रद्धा और शुद्धभाव बिना वह सब निरर्थक... निरर्थक... निरर्थक है। शास्त्र का पठन निरर्थक, शास्त्र का अध्ययन निरर्थक, शास्त्र का वाँचन निरर्थक। आहाहा! सुजानमलजी!

मुमुक्षु : गजब....

पूज्य गुरुदेवश्री : गजब है?

मुमुक्षु : लोग मर गये बेचारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गये बेचारे मिथ्यात्वभाव में। समझ में आया?

अर्थ - जो पुरुष भावरहित है... भाव शब्द से शुद्ध। **शुद्ध आत्मा की भावना से रहित हैं...** देखो! जिसे भगवान आत्मा ध्रुव की भावना नहीं अर्थात्, श्रद्धा नहीं, इसका ज्ञान नहीं, उसमें एकाग्रता नहीं, उसमें सन्मुखता नहीं। उस बिना के जीव **बाह्य आचरण से सन्तुष्ट हैं, उनके बाह्य परिग्रह का त्याग है, वह निरर्थक है।** नग्नपना धारण करे,

हजारों रानियाँ छोड़े, वह निरर्थक है। मान्यता में है। मान्यता में तो अपना राग है और अन्दर राग का आश्रय तो पड़ा है। श्रद्धा में तो राग से लाभ होता है, यह दृष्टि पड़ी ही है। राग का ही स्वामी है, राग का ही मालिक और राग का ही कर्ता (होता है)। आहाहा! समझ में आया?

बाह्य परिग्रह का त्याग है, वह निरर्थक है। गिरि (पर्व) दरी (पर्वत की गुफा) सरित् (नदी के पास)... उसके निकट। ...नदी के तट। निकट का अर्थ तट... नदी के तट अर्थात् किनारे। यह करे न? तपस्या करे महीने-महीने के... पवन-हवा ठण्डी लगे (उसे) सहन करता है। धूल में भी नहीं वहाँ। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय लेकर शुद्धभावरूपी सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट नहीं की, उसके लिये यह सब पर्वत, गिरि और नदी। **(पर्वत के जल से चीरा हुआ स्थान)... कन्दर (पर्वत के जल से चीरा हुआ स्थान)...** पर्वत के जल से हुए नीचे स्थानक। **इत्यादि स्थानों में आवास (रहना) निरर्थक है।** यह सब रण में शोर मचाने जैसा है। आहाहा! **ध्यान करना,...** ध्यान करे बेचारे। परन्तु अब वस्तु की श्रद्धा नहीं, जहाँ द्रव्य का आश्रय नहीं वहाँ तेरा ध्यान कैसा? बिना एक के शून्य है। आहाहा!

ध्यान करना, आसन द्वारा मन को रोकना,... लो! आसन लगाकर मन को रोके **अध्ययन (पढ़ना)...** ऐसा है न? '**णाणज्झयणो**' ऐसा है। ध्यान और अध्ययन। ध्यान में मन को अशुभ से जरा रोकना और अध्ययन कर पढ़ना। **यह सब।** वस्तु के-द्रव्यस्वभाव की श्रद्धा, शुद्धता बिना यह सब निरर्थक... निरर्थक है। समझ में आया?

भावार्थ - बाह्य क्रिया का फल आत्मज्ञान सहित हो तो सफल हो,... तब तो वह निमित्तरूप कहलाये। **अन्यथा सब निरर्थक है।** आत्मा का ज्ञान अर्थात् स्वभाव भगवान आत्मा, उसे स्पर्श किये बिना, स्पर्श किये बिना का ज्ञान, वह सब निरर्थक है, उसका पठन भी निरर्थक।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सफल... सफल... चार गति मिलने के लिये है।

मुमुक्षु : तप भी व्यर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तप व्यर्थ नहीं, चार गति में भटकने के लिये है (सफल है)। वर्षीतप किया है न इन्होंने ? लंघन किया था न ? इन्होंने लंघन किया था। अब भूल गये हो न! भले किया हो, उसका कुछ नहीं। वर्षीतप किया था, लो! ऐसे होशियार व्यक्ति होकर ... आहाहा!

कहते हैं, यह **पुण्य का फल हो तो भी संसार का ही कारण है,...** ठीक! राग की मन्दता हो, संसार का कारण है। **मोक्षफल नहीं है।** मोक्ष नहीं मिलता। संसार फलेगा। यह तो अनादि से फल हो, वह फलेगा। उसमें कुछ नया नहीं है ? शुद्धभाव की श्रद्धा-ज्ञान बिना और शुद्धभाव को प्रगट किये बिना, यह सब निरर्थक... निरर्थक... निरर्थक है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-९०

आगे उपदेश करते हैं कि भावशुद्धि के लिए इन्द्रियादिक को वश करो, भावशुद्धि के बिना बाह्यभेष का आडम्बर मत करो –

भंजसु इन्दियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु।।९०।।

भंग्धि इन्द्रियसेनां भंग्धि मनोमर्कटं प्रयत्नेन।
मा जनरंजनकरणं बहिर्व्रतवेष ! त्वं कार्षी:।।९०।।

सब नष्ट कर इंद्रीय–सेना मनो मर्कट यत्न से।
ये बाह्य व्रत वेशादि कर नहिं लोक–रंजन के लिए।।९०।।

अर्थ – हे मुने ! तू इन्द्रियों की सेना का भंजन कर, विषयों में मत रम, मनरूप बन्दर को प्रयत्नपूर्वक बड़ा उद्यम करके भंजन कर, वशीभूत कर और बाह्यव्रत का भेष लोक को रंजन करनेवाला मत धारण करे।

भावार्थ – बाह्य मुनि का भेष लोक का रंजन करनेवाला है, इसलिए यह उपदेश है, लोकरंजन से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं है, इसलिए इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिए बाह्य यत्न करे तो श्रेष्ठ है। इन्द्रिय और मन को वश में किये बिना केवल लोकरंजन मात्र भेष धारण करने से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं है।।९०।।

प्रवचन-१२८, गाथा- ९० से ९२, रविवार, कार्तिक शुक्ल २, दिनांक १-११-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़ है। इसकी ९०वीं गाथा। आगे उपदेश करते हैं कि भावशुद्धि के लिए इन्द्रियादिक को वश करो, भावशुद्धि के बिना बाह्यभेष का आडम्बर मत करो – क्या कहते हैं ?

भंजसु इन्दियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु।।९०।।

मुनि की मुख्यता से उपदेश है। कहते हैं कि भावशुद्धि अर्थात् आत्मा पाँच इन्द्रियाँ, उनके विषय और इन्द्रिय की विकल्प की वासना से पार आत्मा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से लेते हैं। एक शब्द से कुछ समझ में आये, ऐसा नहीं है। पहले यह आत्मा जो है, वह भावशुद्धि करने के पश्चात्, कहते हैं कि तेरा सब काम सफल होगा। भावशुद्धि अर्थात् आत्मा, यह इन्द्रियाँ हैं, वे जड़ मिट्टी, उनसे आत्मा परवस्तु है, अतीन्द्रिय है। ऐसे यह इन्द्रिय के विषयों को जाननेवाली खण्ड-खण्ड इन्द्रिय है-भावेन्द्रिय-ज्ञान का अंश जो एक-एक विषय—शब्द, रूप, रस, गन्ध को जाने, वह भी खण्ड-खण्ड भाव है। उससे भी आत्मा भिन्न चीज़ है और इन्द्रियों के जो विषय, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वे तो जड़ हैं तो कहते हैं कि इन्द्रिय से पार अतीन्द्रिय आत्मा है, उसकी तू पहले शुद्ध श्रद्धा—सम्यग्दर्शन प्रगट कर। इसके बिना तेरा हित एक भी अंश में है नहीं। बाह्य व्रत धारण कर, पूजा-भक्ति कर, दया-दान के भाव कर, वह सब संसार के संयोग को देनेवाले हैं। आत्मा की शान्ति, आत्मा का वास किये बिना उसकी शान्ति प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। बाहर की सब चीज़ें व्यर्थ है। मलूकचन्दभाई! कैसे होगा? यह सब तुम करोड़पतियों को सुखी कहते हैं न?

मुमुक्षु : आप तो ऐसा ही कहो। हमसे कहीं ऐसा कहा जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं कहा जाए, तब क्या कहलाये? यह बात कहीं खोटी है? इन तीन भाईयों को लेकर आये हैं, तीन। यह तो इनके मूल सेठ कहलाये। यह तो इनके घर के तीन व्यक्ति। आहाहा! कहते हैं...

मुमुक्षु : बाहर में...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। वापस इसका यहाँ होवे न कोई...

यहाँ तो अकेला आत्मा है, कोई है नहीं, कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा इस देह के रजकणों से जड़रूप रहे हुए, जड़रूप रहे हुए रजकणों से भगवान चैतन्यस्वरूप अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? इस शरीर की पाँच इन्द्रियाँ तो इसके अवयव, इसके

अंश हैं। शरीर है अवयवी—पूरी चीज़ और उसकी पाँच इन्द्रियाँ कान, वे तो उसके अवयव—अंश, वे जड़ के अंश हैं। उनसे भिन्न भगवान आत्मा और उसके विषयों को जाननेवाला जो ज्ञान, विषयों को। विषय शब्द से—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तो जगत की चीज़ है, वह विषय तो है। यह तो तदुपरान्त वीतराग की वाणी और देव-गुरु-शास्त्र भी विषय है। आहाहा! गजब बात है। इसे—प्रवीणभाई को सबसे पीछे बैठना है न? वहाँ धूप है, यहाँ जगह है। न आवे वह हमारे, पीछे बैठे वह। आज आया। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : मंगल मुहूर्त हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक किया। इसके काका भी प्रसन्न हुए न।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! भाई! तू कौन है? कहाँ है? कैसे है? और तुझमें क्या नहीं? और तुझमें क्या है? इसके भान बिना चौरासी के अवतार अनन्त बार जन्म-मरण किये। वह सब दुःख के पन्थ में पड़े हुए प्राणी हैं। प्रवीणभाई! यह दुःख के पन्थ में पड़े हुए तुम सब, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। दुनिया पागल कहे। पैसेवाले को। ऐई! मनसुखभाई! लो, यह भी करोड़पति कहलाता है। सब करोड़पति के पति कहलाये। सब धूलपति है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु धूल के भी पति तो हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में अजीव है। यह तो कल कहा था। अजीव का स्वामी हो, वह जड़ अजीव है। निर्जरा अधिकार में लिया है। धर्मी जीव, जिसे सुख का पन्थ हाथ लगा, अरे! मैं तो आत्मा हूँ। भले गृहस्थाश्रम में हो परन्तु मेरा स्वरूप तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। मैं तो ज्ञान का भण्डार ज्ञानस्वभाव हूँ। ऐसा जिसे भान है, वह संसार में रहा होने पर भी कहीं उसकी रुचि जमती नहीं। समझ में आया? क्योंकि ज्ञानी ऐसा विचारता है कि मैं तो आत्मा हूँ। यदि मैं राग को, शरीर को और ये चीज़ें जो बाहर है, उन्हें यदि मेरी मानूँ तो मैं तो अजीव हो जाऊँ। न्यालभाई! बराबर है? अजीव हो जाता होगा?

मुमुक्षु : मान्यता में हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान्यता में जड़ जैसा हो जाता है वह। नवरंगभाई! यह निर्जरा अधिकार में बात है।

भाई! मैं तो आत्मा हूँ न? जहाँ होऊँ वहाँ तो मैं मेरा ज्ञान, मेरा आनन्द, मेरी शान्ति अर्थात् वीतरागता, उसके स्वभाव के साथ मैं हूँ। मेरे साथ कोई दूसरी चीज़ है नहीं। आहाहा! संयोगी चीज़ तो कहीं उसके कारण से टिककर बदल रही है। पुण्य और पाप के विकल्प अन्दर राग होता है, वह भी विभाव और दु:खरूप का परिणमन है। धर्मी है सुख के पन्थ में पड़ा हुआ प्राणी, अपने हित के लिये ऐसा भाता है कि अरे! मैं यदि राग को, इस पुण्य के परिणाम को, दया, दान, व्रतादि के भाव को मेरा मानूँ तो मैं अजीव होऊँ। क्योंकि राग अजीव है। राग है, उसमें चैतन्यपना नहीं है। भगवान चैतन्य का नूर है, आत्मा चैतन्य का प्रकाश है। तो उसके चैतन्य के प्रकाश में तो उसकी किरणें प्रकाश चैतन्य के ज्ञान और आनन्द की निकले। इससे यह राग का भाव और राग से बँधा हुआ पुण्य और पुण्य से फली हुई यह बाहर की धूल, उसे यदि मैं मेरा मानूँ तो मैं आत्मा जड़ हो जाऊँ। आहाहा! भगवानजीभाई!

मूल भाव श्रद्धा में ही पूरा अन्तर है। मूल श्रद्धा के भान बिना सब रण में शोर मचाने जैसी बाह्य व्रत और क्रिया है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। बाह्य व्रत पाले, पूजा करे, भक्ति करे... पाप के परिणाम की तो बात ही क्या करना? हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना और जगत की चीज़ों की मिठास, बाह्य पदार्थ की उत्साह से अधिक हूँ, ऐसा माने, उसने अपने आत्मा का संहार किया है, हिंसा की है। आहाहा! जगत को बहुत कठिन काम है। अनन्त काल से इसका अनजाना पन्थ, उस पन्थ को जाने बिना (भटक रहा है)।

कहते हैं कि मैं आत्मा तो आनन्द और ज्ञान हूँ। मेरे लिये राग भी पर और राग को जाननेवाला ज्ञान उसका अकेला, हों! वह भी पर। और विषय वह बाहर है देव-गुरु-शास्त्र और स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, वे सब इन्द्रिय के विषय हैं। अरे... अरे! गजब बात है। आहाहा! देव-गुरु और शास्त्र, सम्मेदशिखर और शत्रुंजय, अरिहन्त का शासन अर्थात् समवसरण, वह भी एक इन्द्रिय का विषय है। क्योंकि अतीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप मैं हूँ, उसकी अपेक्षा से जितनी इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड, ज्ञान

का अंश जो है, वह भी मैं नहीं हूँ। यह जड़ मैं नहीं और इनसे निमित्त होकर ज्ञात होनेवाले परपदार्थ, वे भी मैं नहीं। और यदि वहाँ मैं होऊँ तो वह चीज़ तो पर है, अजीव है। तो मैं अजीव हो जाऊँ। आहाहा! नवनीतभाई! आहाहा!

कहते हैं, भावशुद्धि के लिये तू इन्द्रिय की सेना को भंजन कर। अर्थात्? अतीन्द्रिय ऐसा भगवान आत्मा, उसे अन्तर ज्ञान की पर्याय में ध्येय-विषय बनाकर अतीन्द्रिय भगवान आत्मा है, उसकी श्रद्धा कर। वह श्रद्धा, शुद्ध श्रद्धा कहलाती है। उस श्रद्धा की शुद्धता बिना जो कुछ किया जाता है, वह सब संसार खाते भटकने का है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र तो ऐसा कहे कि वर्तमान में जिसे पुण्य और पाप के राग का प्रेम और उसके फल का प्रेम है, वह भविष्य में ढोरादि में जानेवाला है तो हम उसे वर्तमान भविद्र ढोर कहते हैं।

मुमुक्षु : पशु कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पशु कहते हैं न, पशु, बापू! तुझे खबर नहीं। तू हर्ष के आवेग में चढ़ा है। समझ में आया? यह शरीर, वाणी, मन, पैसा, पुण्य और पाप के भाव, उसे हर्ष और आवेग तुझे लगता है, वह सब ढोर के अवतार के तेरे लक्षण हैं। बलुभाई! गजब काम कठिन यह! ऐई! चिमनभाई!

इसलिए यहाँ कहते हैं, भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! और आत्मा है, वह तो ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर प्रभुत्व परमेश्वर शक्ति से भरा हुआ वह तत्त्व है। उस तत्त्व को साधने के लिये अथवा उस तत्त्व को सिद्ध करने के लिये, श्रद्धा में उस तत्त्व को साबित करने के लिये इन्द्रियों के विषयों की रुचि छोड़ दे। समझ में आया? बात तो कठिन है, बड़ी है परन्तु यह मार्ग है। इसके बिना बाहर से मान जाए, कोई व्रत किये और तप किये और इन बाह्य इन्द्रियों को दमन किया, तत्त्व की शुद्धि-दृष्टि बिना, यह सब निरर्थक, चार गति में भटकने के लिये है। समझ में आया?

अरे! इसकी इसे दया नहीं आती। अरे! मैं यह भटकता हूँ। भटकाऊ होकर चौरासी में भटकूँ, यह तो कहीं मेरी चीज़ है? नये-नये वेश धारण करना, शरीर नये-नये धारण करना और शरीर में रोग आवे, तब तड़पड़ाहट मारना। हाय... हाय... यह

क्या ? बापू ! यह तो... शरीर में रोग न आवे, तब कहाँ आवे ? दीवार में आवे ? जहाँ आत्मा है, वहाँ असाता का उदय है और वहाँ शरीर में रोग होता है। यह कहीं तू नहीं है। आहाहा ! रोग मुझे हुआ, ऐसा माननेवाला जड़ है। जड़ की अवस्था को रोग हुआ है। तू उसमें नहीं, वह तुझमें नहीं। बराबर होगा ? ब्लड प्रेशर हो तब हुं... हुं... हो नहीं गया था ? एक बार। यहाँ आहार के समय। खबर है न ? आहार के समय का अवसर था। खबर है। और बराबर ब्लड प्रेशर हुआ और आये ऐसे... परन्तु वह तो शरीर को था।

मुमुक्षु : ब्लड प्रेशर उतारना पड़ेगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन ? यह कहते हैं कि तू उतार, भगवान ! तू चढ़ा है उल्टे रास्ते और अब तू उल्टा रास्ता छोड़। जिसने भूल की, वह भूल मिटाये। कोई समझानेवाले ने तेरी भूल नहीं की है कि तेरी भूल वह मिटाये। बराबर है ? जिसने राग और इन्द्रिय के साथ एकत्वबुद्धि की है, जिसने जोड़ी है, वह तोड़े। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि यहाँ तो **'भंजसु इन्द्रियसेणं'** पाँच इन्द्रियों की सेना, उनकी विषय। आहाहा ! भांग—तोड़ कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव आत्मा, उसकी दृष्टि कर। आहाहा ! समझ में आया ? तेरा बसने का वास तो आत्मा है। यह कोई राग और पुण्य और पाप तथा शरीर तेरे बसने का स्थान नहीं है, प्रभु ! यह तो व्यभिचारी स्थान में तू चला गया है। समझ में आया ? कहते हैं... गजब बात, भाई ! देव-गुरु और शास्त्र भी इन्द्रिय के विषय। गजब बातें करना। लोग तो चिल्ला उठे या नहीं ? ऐई ! समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो चली जाएगी। वह बाधक नहीं। ठण्डी है न। न हो तो भी वह बाधक नहीं है। ख्याल कैसे आया ? मुझे भी खबर है ... ख्याल आया कि क्या करते हैं यह ? यह तो चला जाए। कहो, समझ में आया इसमें ?

कहते हैं, भाई ! तेरी अस्ति में क्या है ? तेरे मौजूदगी तत्त्व में क्या है ? क्या यह पुण्य-पाप के भाव हैं उसमें ? क्या यह इन्द्रियाँ हैं ? शरीर है ? यह सब इज्जत-कीर्ति की धूल-धाणी के जो जम्पा-पाप, वह क्या तुझमें है ? तुझमें नहीं, उसे अपने मानना और

अपने में है, उसे पररूप से मानना अथवा भूल जाना, यह एक महा मिथ्यात्व का दोष इसने खड़ा किया है। समझ में आया?

अर्थ – हे मुने ! तू इन्द्रियों की सेना का भंजन कर, विषयों में मत रम,... उसमें—रमणता में प्रेम छोड़ दे। आहाहा! क्या कहा? तेरा हित करना हो और अहित टालना हो तो इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय की रुचि छोड़ दे। यह इन्द्रियों को वश किया, ऐसा पहले कहने में आता है। यहाँ तो मुनि को लक्ष्यकर है, इसलिए पहली सम्यग्दर्शन की शुद्धि हुई है। पश्चात् उसे इन्द्रिय को वश करने का कहते हैं। अस्थिरता की आसक्ति टालने का कहेंगे। अर्थ में भी है न अन्दर में जरा? **इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिए बाह्य यत्न करे...** है न अन्दर? इसका अर्थ कहना है यह। परन्तु पहले तो अतीन्द्रिय आत्मा हूँ। इस इन्द्रिय से जाना ज्ञात न हो, वह इन्द्रिय से ज्ञात न हो। आहाहा! लो! और अलिंगग्रहण का आया।

अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं न? उसमें पहला बोल यह है कि वह इन्द्रिय से जानने का काम करनेवाला नहीं है। इन्द्रिय से जानने का काम करे, वह आत्मा नहीं। आहाहा! गजब बातें हैं न! और इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। दो बोल। मनसुखभाई! यहाँ तो भाई ऐसी बातें हैं। यहाँ कोई उस खजूर में वे पाँच-पाँच लाख रुपया आवे कोटा के और आमदनी हो तब, यह बातें यहाँ नहीं हैं। यहाँ तो ऊपर घाटा है।

मुमुक्षु : कीमत तो जानता है न? उसकी कीमत कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमत धूल की नहीं। परन्तु बाहर में उसकी कुर्सियाँ सामने आगे पड़ती हैं। आहाहा! अरे! सामने आगे पड़े अर्थात्? यह पाप के स्थान और पाप के फल में बैठकर वह गादीपति कहलाये। मूढ़ है, यहाँ तो कहते हैं। यह करोड़पति, अरबोंपति मूढ़ के धनी हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मूढ़ के धनी हैं या मूढ़ ही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन मूढ़ के धनी का अर्थ कि मूढ़ का स्वामी है। आत्मा का स्वामी नहीं। आहाहा!

भाई! तुझे तेरी खबर नहीं। तू अनादि का किस भाव के साथ रहा हुआ है और

दूसरे भाव जो तेरे नहीं हैं, उसके साथ में है, ऐसा मान रहा है। तुझे तेरी खबर नहीं है। तू दुःखी है... दुःखी है। आहाहा! शरीर में दुःख आवे तो दुःखी है, ऐसा नहीं है, हों! ब्लड प्रेशर आवे तो दुःखी है, ऐसा नहीं है। परन्तु शरीर निरोग है, पैसा पाँच-पच्चीस लाख, करोड़, दो करोड़... समझे? पाँच-पच्चीस लाख की गिनती अभी कुछ नहीं होती। बहुत पैसेवालों को। दो-पाँच-दस करोड़ (होते हैं)। समझ में आया?

क्या कहा? यह पृष्ठ में है। देखो! २२५। कहते हैं कि अतीन्द्रिय आनन्द का धाम ऐसा आत्मा, उसकी दृष्टि और शुद्धि प्रगट किये बिना तेरे बाह्य व्रत और तप और दानादि सब व्यर्थ है। संसार में भटकने के लिये है। आहाहा! कहो, समझ में आया? अर्थात् कि इन्द्रियों की सेना को वश कर। अर्थात् कि अतीन्द्रिय भगवान आत्मा की अन्दर शुद्धि प्रगट कर। आहाहा! समझ में आया?

मनरूप बन्दर को प्रयत्नपूर्वक बड़ा उद्यम करके भंजन कर,... आहाहा! मनरूपी बन्दर। समझ में आया? यह बन्दर है न? बन्दर। बन्दर-बन्दर। यों ही बैठा-बैठा ऐसे किया करे। किया ही करे। कुछ न हो तो भी। इसकी उसे आदत है। उसमें और कहते हैं कि बन्दर ने पी हो शराब। एक तो चपलाई का पुतला और उसमें पी हो शराब और उसे वापस लगा हो भूत। और चौथा, काटा हो बिच्छू। फिर देख लो बन्दर की रीति। आहाहा!

इसी प्रकार आत्मा चिदानन्दस्वरूप को भूलकर मिथ्यात्वभाव में अभिमान... अभिमान... अभिमान... हम पैसेवाले, हम शरीरवाले, हम इज्जतवाले, हम पुण्यभाव के करनेवाले, ऐसी तो मानो इसको चपलता तो चिपटी है मिथ्यात्व के कारण। उसमें बाहर की कुछ सुविधा आवे उसका इसे भूत लगा। अच्छी स्त्री, अच्छा पैसा, अच्छा लड़का, उनका भूत लगा। उसमें भी कुछ और अधिकार का औहदा ठीक-सा मिला हो, फिर इसने शराब पीया। समझ में आया? ऐई! फूलचन्दभाई! आहाहा!

कहते हैं, अरे! भगवान! एक बार तो चैतन्य को देख। यह सब भूत लगे, वह तेरी चीज़ नहीं। समझ में आया? मरकट का दृष्टान्त दिया है न, देखो! **'मणमक्कडं'** मनरूपी मरकट है, बन्दर है, बन्दर। आहाहा! भगवान उस मन के बन्दर से भी पार

पृथक् है। ऐसे आत्मा की श्रद्धा और शुद्धि सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये मन और इन्द्रियों के वश न हो। आत्मा के वश हो। यह अभी धर्म की पहली बात है, हों! यह सम्यग्दर्शन की बात चलती है। आहाहा!

कहते हैं, मन और इन्द्रियों के वश न हो। परन्तु चैतन्यमूर्ति भगवान मन और इन्द्रिय से पार है, उसके वश हो। तो तेरे हित का और सुख का पन्थ होगा। नहीं तो दु:ख का... है, ऐसा जाना नहीं। है, ऐसा उसमें स्थिर हुआ नहीं। इसमें नहीं उसे अपना जाना है। इसमें नहीं, उसे अपना माना है। इसमें नहीं, उसे अपने आचरणरूप से स्वीकार किया है। बलुभाई! आहाहा! बाहर में वे पैसे और सब पैदा होते हों और चारों ओर के कारखाना-बारखाना किये हों। पाँच लाख की यहाँ आमदनी, दस लाख की यहाँ आमदनी, खजूर में इतनी, काजू... में इतनी, खारेक में इतनी, सुकेल खारेक। ऐई! मनसुखभाई! इनके घर गये थे, तब एक बार खारेक की सब्जी थी। खारेक बहुत थी इनके घर में, वह शक्कर। तुम्हारे शक्कर का व्यापार है न। शक्करिया खारेक। उसकी सब्जी थी। नहीं? मनसुखभाई! खबर है? बहुत प्रकार की खारेक थी। बड़ा व्यापारी। कितनी ही प्रकार की खारेक थी। उसमें साकरिया खारेक की, खारेक को क्या कहते हैं? खारेक न? भूल जाते हैं तुम्हारे नाम। साकरिया खारेक की सब्जी बनायी है, लो। लाओ, कहा। आहाहा! साकरी खारेक कहाँ थी? साकरी खारेक वह आत्मा होगा? समझ में आया? भिन्न-भिन्न प्रकार के नमूने काँच की बरणी में रहे। हसुभाई! उनके वह रहते हैं, धन्धा बड़ा है। बरणी में रखे दुकान में सब। इसका यह ...है, इसका यह है, धूल में बादाम और... आहाहा! ऐ! परन्तु तेरा नमूना एक भी रखा तूने घर में? मेरा ज्ञान, मेरा आनन्द, मेरी शान्ति, मेरी स्वच्छता, मेरी प्रभुता वह मेरी चीज़ है। समझ में आया? ऐसे आत्मा को पर से विमुख करके... है न?

बाह्यव्रत का भेष लोक को रंजन करनेवाला मत धारण करे। आत्मा की अन्तर श्रद्धा शुद्ध चिदानन्द हूँ, उसके भान बिना, यह बाह्य व्रत और बाह्य तप से लोकरंजन है। लोग प्रसन्न होंगे। तेरे आत्मा को उसमें प्रसन्नता मिलेगी नहीं। आहाहा! है? मूल पाठ है, देखो! **'बाहिरवयवेस तं कुणसु जणरंजणकरणँ'** लोग प्रसन्न हों, ऐसे वेश धारण करना और व्रत धारण करना, परन्तु आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसका स्वभाव

का भान नहीं, उसकी दृष्टि नहीं, वह लोकरंजन के लिये यह न कर भाई! अब। आहाहा! दुनिया तो प्रसन्न हो जाए कि आहाहा! स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़ा, व्रत कितने... परन्तु धूल भी छोड़ा नहीं, सुन न! जिसे अन्दर में राग के छोटे में छोटे विकल्प की एकताबुद्धि है, उसने कुछ छोड़ा नहीं है। इसे सब संसार गले पड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

लोक को रंजन करनेवाला मत धारण करे। आहाहा! आचार्य की करुणा तो देखो! भाई! दूसरे प्रसन्न हों, इसमें तुझे क्या? दूसरे प्रसन्न हों। पैसेवाले देखकर सगे-सम्बन्धी रिश्तेदार भी महिमा करे, लो!

मुमुक्षु : इसे सोदरी (सन्तोष) तब हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्तोष तब हो। एक व्यक्ति कहता था, हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। यह नानालालभाई के लिये (कहता है)। वे थे न? वढवाण से कोई आया था। चूडगर-चूडगर। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। वह करोड़पति इसलिए। सुखी की व्याख्या क्या? कहा। सुखी की व्याख्या क्या? यह पैसे में सुख है? हम तो भाई ऐसा जानते हैं कि हम तो साधारण व्यक्ति और यह करोड़पति हो वह सुखी है। अरे! दुःख के ढ़ेर में सिर फोड़ा है उसने तो। सुन न! आनन्द का सागर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसका जिसे प्रेम नहीं, उसकी रुचि नहीं और जिसे पर का प्रेम है, उसने आत्मा का लूट डाला है। आत्मा को हैरान करने के पन्थ में वह पड़ा है। आहाहा! ऐ, मलूकचन्दभाई! कहते हैं....

भावार्थ – बाह्य मुनि का भेष लोक का रंजन करनेवाला है,... यहाँ तो मुनि को लक्ष्य कर बात है न मूल। **इसलिए यह उपदेश है, लोकरंजन से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं है,...** लोग प्रसन्न हो, उसमें तुझे लाभ नहीं है। आहाहा! **इसलिए इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिए बाह्य यत्न करे...** तुझे स्वरूप की दृष्टि तो शुद्ध हुई है। अब यहाँ आत्मा शुद्ध आनन्द है, ऐसे प्रेम की रुचि का परिणमन हुआ है। तदुपरान्त अब कहते हैं कि भाई! अब आसक्ति को छोड़। इन्द्रिय के प्रति जो आसक्ति और वृत्ति समकिती को भी होती है। समझ में आया? वह आसक्ति छोड़ने की यहाँ बात करते हैं। मुनि को उपदेश है न?

सम्यग्दृष्टि को आसक्ति होती है। भरत चक्रवर्ती छियानवें करोड़ सैनिक का

स्वामी था। छियानवें करोड़ सैनिक और छियानवें हजार स्त्रियाँ पद्मनी जैसी, हों! सोलह हजार देव सेवा करनेवाले। इन्द्र, एकावतारी इन्द्र जिनके मित्र। इन्द्र जिसके मित्र। हीरा कें सिंहासन पर भरत जब बैठे, तब इन्द्र आकर मित्ररूप से साथ में बैठे। अन्तर में कुछ भी मेरी मित्रता पर में तीन काल में नहीं है, ऐसा मानता है। अरे! मेरा आनन्द और मेरी शान्ति सागर तो मैं हूँ। शान्तिसागर चले गये, लो! गये न? दिल्ली गये। वह शान्तिभाई हैं न? दीक्षित होनेवाले। दीक्षा ले लेनेवाले हैं, हों! नग्नमुनि। वे कल गये। वैरागी मनुष्य, वैरागी है। स्त्री है, पुत्र है, माता-पिता है, पैसेवाले हैं। एकदम दीक्षा ले लेने का मन हो गया। नग्नमुनि हो जाऊँ, बस। फिर यहाँ का जहाँ पढ़ा कुछ... ओय माँ! अकेले नग्नमुनि में तो कुछ नहीं होता। ... अकेले नग्न... यह वेश कहा न अकेला? पाँच महाव्रत के विकल्प भी वेश बाहर का, वह तो राग है। बाहर की नग्न दशा वह तो जड़ की है। वह तेरी दशा नहीं, तुझमें नहीं।

इसलिए कहते हैं कि हे मुनि! **लोकरंजन से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं है, इसलिए इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिए बाह्य यत्न करे तो श्रेष्ठ है।** स्वरूप की शुद्धि की श्रद्धा उपरान्त आसक्ति को छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो तो तेरी लक्ष्मी तुझे मिले। समझ में आया? **इन्द्रिय और मन को वश में किये बिना केवल लोकरंजन मात्र भेष धारण करने से कुछ परमार्थ सिद्धि नहीं है।** है न? अब ९१।

गाथा-९१

आगे फिर उपदेश कहते हैं –

णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए।
चेइयपवयणगुरुणं करेहि भत्तिं जिणाणाए।।९१।।

नवनोकषायवर्गं मिथ्यात्वं त्यज भावशुद्धया।
चैत्यप्रवचनगुरूणां कुरु भक्तिं जिनाज्ञया।।९१।।

मिथ्यात्व नौ ईषत् कषायें छोड़ भाव विशुद्धि से।
जिन चैत्य प्रवचन गुरु की भक्ति करो जिन-वचन ये।।९१।।

अर्थ **– हे मुने ! तू नव जो हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये नो कषायवर्ग तथा मिथ्यात्व इनको भावशुद्धि द्वारा छोड़ और जिन-आज्ञा से चैत्य, प्रवचन, गुरु इनकी भक्ति कर।।९१।।**

गाथा-९१ पर प्रवचन

णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए।
चेइयपवयणगुरुणं करेहि भत्तिं जिणाणाए।।९१।।

समकित उपरान्त भी क्या करना, वह कहते हैं।

अर्थ – हे मुने ! तू नव जो हास्य, रति,... प्रसन्नता, **अरति,...** दिलगीरिपना। **शोक,...** दुःख के प्रसंग में शोक। **भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये नो कषायवर्ग...** समूह, उसे छोड़। विकार है, भाई! वह तुझे दुःखरूप है। आहाहा! उसके साथ तू मिथ्यात्व छोड़। यह बाहर की वृत्ति आदि छोड़ परन्तु मिथ्यात्व छूटे बिना वह वस्तु वास्तविक छूटती नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा में गहरे-गहरे राग की विकल्पदशा का मन्दता का पुण्यभाव, उसके प्रति भी उल्लसित वीर्य से एकताबुद्धि (होना), वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? उस मिथ्यात्व को छोड़, भाई! तुझे सुख के पन्थ में जाना हो, भटकना बन्द करना हो तो यह कर। परन्तु जिसे भटकना ही पसन्द पड़ता हो... समझ में आया?

बहुत वर्ष पहले एक व्यक्ति कहता था। 'वडोद' है न? वडोद। उमराला के पास। मुम्बई में व्याख्यान चलता होगा तो कोई आता होगा मुम्बई में। (संवत्) २०१३ के वर्ष की बात है, हों! यह महाराज कहते हैं कि तुम दुःखी हो, परन्तु हमें तो कुछ दुःख लगता नहीं। यह बारह महीने में पाँच-दस हजार पैदा करते हैं, आजीविका निकलती है, शरीर अच्छा है। उसमें हमें दुःख कहाँ है? कहे। लो ठीक! परन्तु दुःख किसे कहना, इसका तुझे भान नहीं। हम तो कुछ दुःखी नहीं लगते। पाँच-दस हजार

पैदा करते हैं। पाँच हजार का खर्च होता है, पाँच हजार बढ़ते हैं। यह बड़े की बात अलग रखो। यह भटकने में बड़े। परन्तु यह तो उन छोटे-छोटे लोगों की बात है। उन्हें दस हजार की आमदनी हो, उसमें पाँच हजार का खर्च हो और पाँच हजार बचते हों, इसलिए यह लगता है कि हम सुखी हैं। धूल भी नहीं, सुन न! इस परपदार्थ के आश्रय से विकल्प उठाना, वह सब दुःख है। चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, दोनों भाव दुःख है। तुझे भान नहीं। वह तेरा आत्मा आनन्द का इसमें लुट जाता है। आहाहा! हर्ष करके, हृदय हर्ष करके लुटने देता है उसे। ठीक है मुझे... ठीक है मुझे... ठीक है... हमें बादशाही है। धूल भी नहीं अब, सुन न! समझ में आया?

परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि पहले मिथ्यात्व को तो छोड़। समझ में आया? तदुपरान्त यहाँ मुनि की बात है न? इसलिए नोकषाय को भी छोड़, ऐसा कहते हैं। श्रेणिक राजा भी गृहस्थाश्रम में थे, बड़ा राज था, हजारों रानियाँ थीं परन्तु आत्मज्ञान और क्षायिक समकित था। कहीं उनका मन लगता नहीं था। कहीं प्रेम नहीं होता, कहीं प्रेम नहीं होता। राग में प्रेम नहीं होता, स्त्री में प्रेम नहीं होता। प्रेम लगा था आत्मा में। ऐसे राजपाट में रहे होने पर भी प्रेम स्वरूप में लगा हुआ था, वे स्वरूप की प्रेमी, रसिक जीव वे तीर्थंकरगोत्र होंगे। बाँधा तीर्थंकर होनेवाले हैं। समझ में आया? नरक का आयुष्य बँध गया पहले। साधु की असातना की, इसलिए आयुष्य बँध गया हो तो लड्डू बँधा हो तो खाना ही पड़ेगा। लड्डू (होने के) बाद उसमें से घी निकालकर पूड़ी हो, आटा निकालकर रोटी हो (तथा) होगा? इसी प्रकार नरक का आयुष्य बँध गया। राजा श्रेणिक को सातवें नरक का आयुष्य बँधा, हों! परन्तु फिर पाये आत्मधर्म। सम्यग्दर्शन आत्म आनन्द का अनुभव (हुआ)। आहाहा!

अतीन्द्रिय प्रभु इन्द्रिय और राग से पार, उसकी जहाँ श्रद्धा और भान हुआ, उसके स्वाद में पूरी दुनिया का स्वाद अन्दर में से उड़ गया था। वे तीर्थंकरगोत्र के भाव आये और बँधा (गोत्र) तीर्थंकर का, परन्तु अभी नरक में गये। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वहाँ है। थी ३३ सागर की स्थिति, परन्तु आत्मदर्शन और सम्यग्दर्शन पाये, राग के प्रेम को छोड़ा, पर के प्रेम को छोड़ा, अर्पणता अकेली आत्मा में थी। ऐसा भगवान आत्मा, उसे नरक का आयुष्य था, इसलिए नरक में गये, परन्तु वहाँ से निकलकर

आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? तीन लोक के नाथ, इन्द्र जिनके चरण में पड़ेंगे। उन्हें इन्द्रिय के विषय और रानियाँ छोड़ी नहीं थी। विकल्प। परन्तु विकल्प से रहित ऐसे आत्मा की दृष्टि से विकल्प भी मेरा नहीं, ऐसा दृष्टि में से छूट गया था। आहाहा! समझ में आया?

जिसकी श्रद्धा में पूरा आत्मा (है और) संसार मेरा नहीं, विकल्प मेरा नहीं, उदय मेरा नहीं। उसमें स्त्री, पुत्र, पैसा और राजपाट मेरा, यह तो समकिती के हृदय में होता नहीं। आहाहा! वह जीव मरकर पूर्व का आयुष्य था तो नरक में है। परन्तु आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। जैसे महावीर भगवान थे। समझ में आया? वैसे होनेवाले हैं। जिनके जन्म में इन्द्र आकर जिनका जन्म-महोत्सव करेंगे। यह समकित का प्रताप! बलुभाई!

क्या समकित और क्या मिथ्यात्व? लोगों को कीमत नहीं। मात्र बाह्य के त्याग और व्रत ले, वहाँ ऐसा हो जाए कि... आहाहा! बहुत किया। स्त्री-पुत्र छोड़े, कुछ पाँच-दस लाख की पूँजी हो और छोड़े। हमने यह छोड़ा। क्या धूल छोड़ी? समकित छोड़ा है, सुन! आहाहा! परवस्तु तो तुझमें नहीं थी। नहीं थी, उसे छोड़ा, कहाँ से लाया? हाँ, तेरी पर्याय में राग था। उस राग की दृष्टि छोड़े बिना राग मेरा है, ऐसी मान्यता इसकी कभी नहीं बदलती। मैं तो आत्मा हूँ। ऐसे आत्मा की शुद्ध श्रद्धासहित मिथ्यात्व छोड़। और जिनाज्ञा से फिर विशेष कहते हैं।

आत्मा का भान हुआ है, सम्यग्दर्शन हुआ है, फिर जिन आज्ञा से चैत्य— वीतराग की आज्ञावाली प्रतिमा की पूजन और भक्ति कर। यह तदुपरान्त बात करते हैं अब। निश्चयसहित का व्यवहार ऐसा धर्मी को होता है। समझ में आया? जिसे आत्मा का दर्शन हुआ है, आत्मा की श्रद्धा हुई है, सम्यग्दर्शन है, उसे कहते हैं, तुझे अब राग की रुचि तो नहीं परन्तु राग की आसक्ति है, उसमें चैत्य अर्थात् परमात्मा की आज्ञा प्रमाण प्रतिमा... समझ में आया? यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। उस प्रतिमा की भक्ति को शुभराग कहा जाता है। समझ में आया? परन्तु पाठ है जिन आज्ञा की प्रतिमा।

वीतराग मुद्रा, जिसके ऊपर शृंगार नहीं, वस्त्र नहीं, गहने नहीं। कुछ नहीं होता। समझ में आया? जिसके अभिषेक में पानी के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। घी, दूध

और.... क्या कहलाता है? सब पंचामृत साकर और फाकर... ऐसी प्रतिमा का... भगवान का तुझे विरह है अभी, कहते हैं। समझ में आया? पंचम काल की बात है न? साक्षात् तीर्थंकर वीतरागदेव, उनका अभी विरह पड़ा। महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। परन्तु यहाँ विरह है तो उनकी प्रतिमा की पूजा, भक्ति का भाव धर्मी को भी होता है। जानता है कि वह पुण्य हेय है। तथापि शुभभाव पाप से बचने के लिये किया जाता है।

मुमुक्षु : किया जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। किया जाता है अर्थात् परिणमन में आता है न, इसलिए किया जाता है ऐसा (कहा जाता है)। बाकी कर्तृत्वबुद्धि है नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम।

चैत्य, प्रवचन,... भगवान की वाणी, त्रिलोकनाथ परमेश्वर की वाणी, उसकी भक्ति कर। वह परमेश्वर की वाणी परमागम 'समयसार' आदि वे सब परमागम हैं। समझ में आया? उनकी भक्ति कर, ऐसा कहते हैं, देखो! यह परमागम होता है न अपने? उसमें समयसार, प्रवचनसार, नियमसार लगभग... अपने वजुभाई करते हैं सब। चार लाख अक्षर कहते थे। वे कहते हों वह खबर हो। अपने को कहाँ खबर होती है। पौने चार लाख, चार लाख के अन्दर। समझ में आया?

ऐसे सम्यग्दर्शन-आत्मा की श्रद्धा, शुद्ध का भान होने पर भी, धर्मी को ऐसी प्रतिमा और प्रवचन के प्रति भक्ति का भाव आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? मनुभाई! तुम्हारे तो मन्दिर है।

श्रोता : इनके काका ने बनाया हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमने भाग लिया है न।

श्रोता : भूराभाई ने स्वयं ही बनाया हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाद में लिया। उस समय नहीं पहले। कहो, समझ में आया? यह तो जगे तब से सवेरा। भाई! वह कोई वहाँ... मनसुखभाई! आहाहा!

देखो! आचार्य महाराज क्या फरमाते हैं? कि पहले तो मिथ्यात्व को छोड़। अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि में रागमात्र चैतन्य की प्रतिमा, भगवान की प्रतिमा

का राग जो है, उसे भी छोड़ने योग्य है। ऐसी पहले दृष्टि कर। समझ में आया? आहाहा! पश्चात् स्वरूप में स्थिर नहीं रह सके, इसलिए उसे वीतराग की प्रतिमा जिनेश्वरनाथ की प्रतिमा, 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' वीतराग मुद्रा, उसकी भक्ति का भाव तू कर। भक्ति कर, ऐसा कहा जाता है न यहाँ तो? है न? पाठ में ऐसा है न? देखो न! **'चेइयपवयणगुरुणं करेहि भत्तिं जिणाणाए'** व्यवहार से कथन होवे तो क्या कथन होगा? उसे ऐसा शुभभाव होता है। कितने ही यह प्रतिमा उत्थापते हैं और प्रतिमा वन्दन को (उत्थापते हैं), वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? ऐसा यहाँ कहते हैं। होता है। शुभभाव का लक्ष्य वहाँ जाता है। वस्तु होती है।

भगवान तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा इत्यादि भी वीतराग मुद्रा (होती है), जिसके ऊपर वस्त्र का धागा नहीं होता। समझ में आया? ऊपर चन्दन और फूल का लेप नहीं होता। ऐसी वीतराग मुद्रा। वह तेरा स्वभाव ही वीतराग मुद्रा है अन्दर। ऐसा तुझे भान हुआ हो तो अब तू ऐसे वीतराग की प्रतिमा, जिनाज्ञा, पाठ ऐसा लिया है न? **'जिणाणाए'** अर्थात् दूसरा है इतना लिया है। आचार्य तो... क्योंकि उस समय भी श्वेताम्बर पन्थ निकल गया था न? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य से पहले श्वेताम्बर पन्थ निकल गया था। और उनकी प्रतिमा में सब विकृत हो गया था। समझे? आंगी करना, मुकुट धराना, यह सब। इसलिए कहते हैं, जिनाज्ञाप्रमाण प्रतिमा की भक्ति कर। न्यालभाई! यह सब अपने आप (समझ में आये ऐसा नहीं है)। है? पुस्तक है? घर में नहीं होगी वहाँ। घर में-घर में है?

मुमुक्षु : पुस्तक रखते हैं।

मुमुक्षु : यह रखते हैं परन्तु अष्टपाहुड़ है? वहाँ है?

मुमुक्षुः अष्टपाहुड़ नहीं परन्तु दूसरे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, मैं तो अष्टपाहुड़ की बात करता हूँ।

मुमुक्षु : इनके बापू के पास में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बापू के पास बापू को काम आवे। इसे क्या वहाँ? आहाहा! पुस्तक की खबर नहीं अभी? यह अष्टपाहुड़ जगत में है, इतनी खबर नहीं?

पैसे की सब खबर है, चारों ओर घड़ी की और... रात्रि में कल बात कहते थे। दोपहर में घड़ी देने आये तब। ऐसी घड़ी कहलाती है, ऐसी घड़ी कहलाती है। क्या कुछ नाम देते थे अलग-अलग। पिता-पुत्र बातें करते थे। अपने को तो कुछ समझ में आता नहीं। रोमन और रोलेक्स। उसमें सब नाम आते हैं। उस पुस्तक का घर में संग्रह नहीं मिलता अभी, कहते हैं। पढ़ने का बाद में रहा। ऐई! हसमुख! है या नहीं यह अष्टपाहुड़ तेरे घर में? भाई के पास है। बड़े भाई के पास है। आहाहा!

यहाँ तो तीन बातें कीं—देव, गुरु और शास्त्र। यह बात यहाँ की है। समझ में आया? कहते हैं कि आत्मा के भानसहित, सम्यग्दर्शन अनुभव सहित शुद्ध श्रद्धा के भान की भूमिका में देव अर्थात् चैतन्य प्रतिमा, (उसकी भक्ति कर)। आहाहा! अभी अरिहन्तदेव तो हैं नहीं। देखो! देव, शास्त्र और गुरु। आता है न उसमें? देव, शास्त्र, गुरु तीन। भक्ति में आता है। देखो! यह यहाँ नाम नहीं लिया, देखो! **चैत्य, प्रवचन, गुरु...** देव-शास्त्र और गुरु ऐसे तीन शब्द पड़े हैं। चिमनभाई! तीन नाम क्रम पड़े हैं, बराबर। आहाहा! गजब! देव, शास्त्र और गुरु। देव की प्रतिमा, अभी देव नहीं तो उन भगवान की जिनाज्ञाप्रमाण निर्दोष प्रतिमा, उसकी भक्ति कर, बहुमान कर। वह है शुभभाव, परन्तु वह अशुभ से बचने अथवा उसके काल में वह भाव आये बिना नहीं रहता, तथापि सम्यग्दृष्टि जीव उसे व्यवहार से आदरणीय कहता है, निश्चय से उसे छोड़नेयोग्य मानता है। परन्तु आये बिना रहता नहीं। आहाहा! व्यवहार से आदरणीय है। पूज्य है न व्यवहार से? भगवान भी तीन लोक के नाथ पूज्य हैं या नहीं? व्यवहार से पूज्य हैं। निश्चय से तो पूज्य आत्मा है। समझ में आया? परन्तु जिसे निश्चय हो—आत्मा का सम्यक् अनुभव, उसे ऐसा व्यवहार हो, उसे व्यवहार कहने में आता है। अज्ञानी के व्यवहार को व्यवहार भी कहा नहीं जाता।

प्रवचन,... शास्त्र, भगवान की वाणी, दिव्यध्वनि। समझ में आया? ॐ भगवान की वाणी निकलती है। परमात्मा पूर्ण वीतराग होते हैं, जब सर्वज्ञ होते हैं, तब ॐ ध्वनि अन्दर उठती है। ॐ ध्वनि।

धन्य दिव्यवाणी ॐकार को रे,
जिसने प्रगटाया आतमदेव,

धन्य दिव्यवाणी ॐकार को रे,
जयवन्त वर्तो, जिनवाणी जयवंत वर्तो।

यह जिनवाणी वीतराग की आज्ञाप्रमाण क्या है, यह इसे पहिचानना पड़ेगा। जिसे-तिसे जिनाज्ञा माने, वह बात नहीं चलती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिनवाणी वीतराग की कही हुई, सन्तों (ने कही हुई)। समयसार कुन्दकुन्दाचार्य की जो है, वह जिनवाणी। बाकी दूसरे कहते हैं कि हमारे जैन बनिया ३२ (सूत्र), वह जिनवाणी है ही नहीं। वह जिनवाणी नहीं और प्रतिमा के अन्दर फूल और फल चढ़ावे, वह वीतराग की प्रतिमा नहीं। आहाहा! परन्तु कहाँ ऐसा विचार करने को निवृत्त है? यह होली सुलगाने में पूरे दिन। राग और द्वेष, राग और द्वेष ऐसे जल रहा है पूरे दिन। उसमें से भिन्न हूँ, उसे भान का विचार करने का भी समय नहीं मिलता। और फिर स्थिर होने के बाद भी वापस ऐसा करना हो, वह तो समकिती को ऐसा हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया?

जिन-आज्ञा से चैतन्य,... (प्रतिमा) जिन आज्ञा से करके **चैत्य,...** (शास्त्र) जिन आज्ञा के वीतराग के कहे हुए शास्त्र। देखो! डाला व्यवहार। आहाहा! समझ में आया? और जिन आज्ञा से माने हुए **गुरु...** जिन्हें आत्मध्यान आनन्दज्ञान प्रगट हुआ है और जिनकी बाह्य नग्नदशा, दिगम्बरदशा वर्तती है। अन्दर में तीन कषाय का जिन्हें अभाव वर्तता है। क्षण में और पल में जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का स्वाद, डकार अन्दर से आती है, उन्हें जिन आज्ञा प्रमाण गुरु कहा जाता है। समझ में आया? **इनकी भक्ति कर।** दूसरे की भक्ति तो श्रद्धा में से पहले छूट गयी है। समझ में आया? परन्तु श्रद्धा सहित में ऐसे परमात्मा की आज्ञा प्रमाण उसे देव-गुरु-शास्त्र तीन। आता है न, ऐई? नाथूलालजी! यह आता है या नहीं भक्ति में? वह आती है भाषा फिर? देव-शास्त्र-गुरु तीन, यहाँ यह कहते हैं।

मुमुक्षु : तीन रतन...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे। वे तीन यह। पाठ में वापस ऐसा लिखा— **'जिणाणाए'** प्रतिमा। **'जिणाणाए'** शास्त्र **'जिणाणाए'** गुरु। आहाहा! समझ में आया? उनकी भक्ति का भाव शुभभाव है। परद्रव्यानुसारी वह शुभभाव है। ऐसा व्यवहार धर्मी को होता है।

समझ में आया? तब उसे निश्चय के अनुभवसहित ऐसा होता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। पश्चात् कहते हैं जरा, ९२ (गाथा) देखो!

गाथा-९२

आगे फिर कहते हैं –

तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं।।९२।।

तीर्थंकरभाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक्।
भावय अनुदिनं अतुलं विशुद्धभावेन श्रुतज्ञानम्।।९२।।

तीर्थेश भाषित अर्थमय गणधर ग्रथित सम्यक् अतुल।
श्रुत-ज्ञान को सुविशुद्ध भावों से सदा भाओ सतत।।९२।।

अर्थ – हे मुने! तू जिस श्रुतज्ञान को तीर्थंकर भगवान् ने कहा और गणधर देवों ने गूंथा अर्थात् शास्त्ररूप रचना की, उसको सम्यक् प्रकार भाव शुद्ध कर निरन्तर भावना कर। कैसा है वह श्रुतज्ञान? अतुल है; इसके बराबर अन्य मत का कहा हुआ श्रुतज्ञान नहीं है।।९२।।

गाथा-९२ पर प्रवचन

तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं।।९२।।

आहाहा! देखो, क्या कहते हैं यह? **तीर्थंकर भगवान् ने कहा...** सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने कही वाणी। समझ में आया? कल्पित अज्ञानियों ने बनायी हुई वाणी, वह वाणी वीतराग की नहीं है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! देखो! अब न्याय बताते हैं, बाहर का व्यवहार। तीर्थंकर तीन लोक के नाथ की जो ॐ ध्वनि आयी। उसमें से जो

शास्त्र रचे गये—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय इत्यादि। अष्टपाहुड़ इत्यादि सब जिनवाणी है।

और गणधर देवों ने गूंथा... भाषा, देखो! बीच में दूसरे कल्पित आचार्यों ने गूँथे, वे शास्त्र नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी मुख में से निकली और उस वाणी को गणधर ने शास्त्र में गूँथी। ऐसे शास्त्र। परन्तु इसका निर्णय करने का अवसर कहाँ है? सब देव सच्चे। यह भी देव सच्चे, यह भी गुरु सच्चे, यह भी शास्त्र सच्चे और यह भी शास्त्र सच्चे। इसके लिये यहाँ इनकार करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान की आज्ञा से निकले हुए, ॐ ध्वनि से उठे हुए और गणधरों ने गूँथे हुए, उन्हें शास्त्र कहा जाता है। यह **शास्त्ररूप रचना की, उसको सम्यक् प्रकार भाव शुद्ध कर निरन्तर भावना कर।** आहाहा! सम्यग्ज्ञान के लिये बारम्बार उसकी भावना कर। आहाहा! भगवान की वाणी, उसमें क्या कहते हैं, उसकी भावना से भावश्रुतज्ञान के लिये उसकी भावना कर। **भाव शुद्ध कर निरन्तर भावना कर।** देखो! परन्तु भावशुद्धि कर, हों! सम्यग्दर्शन की प्रतीति और अनुभवसहित भगवान की कही हुई वाणी को बारम्बार भा, उसका ज्ञान कर।

कैसा है वह श्रुतज्ञान? अतुल है;... वीतराग की वाणी का जो ज्ञान है, वह अतुल है, उसके साथ कोई उपमा नहीं होती। उसकी तुलना किसी के साथ नहीं दी जा सकती, ऐसी वाणी। आहाहा! वाणी भी व्यवहार से पूज्य है, ऐसा कहते हैं। समयसार के दूसरे श्लोक में भी कहा न? पूज्य है। व्यवहार से, हों! निश्चय से तो पूज्य आत्मा है। निश्चय से गुरु आत्मा है, निश्चय से देव आत्मा है। परन्तु निश्चय हो, तब व्यवहार गुरु और व्यवहार शास्त्र ऐसे होते हैं। नवरंगभाई! ओहोहो! गजब बात की, देखो न!

इसके बराबर अन्यमत का कहा हुआ श्रुतज्ञान नहीं है। भगवान ने कहे हुए शास्त्रों का ज्ञान ऐसा दूसरे मत में नहीं है। ऐसा कहते हैं। श्वेताम्बरमत में भी यह ज्ञान नहीं है। शास्त्र भगवान के कहे हुए नहीं हैं, ऐसा जरा कहते हैं। समझ में आया? इसलिए श्रुतज्ञान की भावना कर, स्वभाव के भानसहित। ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ का उपदेश कुन्दकुन्दाचार्य जगत के समक्ष रखते थे। वह भावशुद्धि के लिये और भावशुद्धिसहित ऐसा शुभभाव भी होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)